॥ श्रीहरिः ॥

2302

अयोध्या-माहात्म्य

[श्रीरुद्रयामलोक्त श्रीअयोध्यामाहात्म्य एवं श्रीस्कन्दपुराणोक्त श्रीअयोध्यामाहात्म्यका सम्पूर्ण सानुवाद सचित्र संकलन]

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि।
उत्तर दिसि बह सरजू पावनि॥
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा।
मम समीप नर पावहिं बासा॥

अनुवादक

श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी शुक्ल

गीताप्रेस, गोरखपुर

2302 हिन्दी

वेब आफसेट

सं० २०८० द्वितीय पुनर्मुद्रण ५,०००
कुल मुद्रण १०,०००

❖ मूल्य— ` 100
(एक सौ रुपये)

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये
गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
www.gitapress.org
gitapressbookshop.in

प्रकाशक एवं मुद्रक—

गीताप्रेस, गोरखपुर

(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)

मो० नं० : +91- 8188054403, 8188054408

web : gitapress.org e-mail : booksales@gitapress.org

निवेदन

अयोध्याकी महिमा अपार है। भगवान् श्रीराम स्वयं सुग्रीव, विभीषण आदिको श्रीअयोध्यापुरीकी महिमा बताते हुए कहते हैं—

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना । बेद पुरान बिदित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ । यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

परंतु अयोध्याकी महिमा जीव तभी जान पाता है, जब हाथमें धनुष धारण करनेवाले भगवान् श्रीरामजी उसके हृदयमें निवास करते हैं—

अवध प्रभाव जान तब प्रानी । जब उर बसहिं रामु धनुपानी॥

(रामचरितमानस उत्तरकाण्ड)

अयोध्या, मथुरा, मायापुरी (हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारकापुरी—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं। अर्थात् जहाँ मृत्यु होनेपर प्राणी फिर मृत्युलोकमें नहीं आता—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

इनमें श्रीअयोध्याजीकी विशेष महिमा होनेका कारण यह है कि सातों पुरियोंमें यह आदिपुरी है। दूसरी बात यह है कि और सब पुरियाँ भगवान्‌के अंग-प्रत्यंग हैं और यह तो ब्रह्मका अधिष्ठानभूत शिरोभाग ही है—'**ब्रह्मपदं वदन्ति मुनयोऽयोध्यापुरीं मस्तके॥**' (पद्मपुराण)

भक्तिका अनुष्ठान करनेवालोंके लिये महत्त्वपूर्ण साधन और भगवत्सम्बन्धी पदार्थोंमें चार मुख्य हैं—भगवान्‌के दिव्य नाम, रूप, लीला और परात्पर धाम—

रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥

(वसिष्ठसंहिता)

भगवान्‌के नाम-रूप-लीला-धाम—ये सभी नित्य और सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। इनके गुण, प्रभाव, तत्त्व तथा रहस्य—इन चारोंको विशेष रूपमें समझना चाहिये। भगवान् श्रीरामके नाम-रूप-लीलाके विषयमें गीताप्रेसद्वारा कई आर्ष ग्रन्थ, पुस्तकें एवं कल्याणके विशेषांक आदि प्रकाशित ही हैं, परंतु भगवान्‌के दिव्य धामके विषयमें मात्र एक लघु पुस्तिका 'अयोध्या-दर्शन' ही प्रकाशित है।

मुक्तिदायिनी अयोध्यापुरीका अप्रतिम माहात्म्य आर्षग्रन्थों विशेषकर विभिन्न पुराणोंमें प्राप्त होता है। इनमें भी स्कन्दपुराणके द्वितीय वैष्णवखण्डका अयोध्या-माहात्म्य (कुल १० अध्याय) एवं रुद्रयामलतन्त्रका अयोध्याखण्ड (कुल ३० अध्याय) विशिष्ट हैं। दोनों प्रकरण ग्रन्थोंके विषयोंमें ही नहीं अपितु श्लोकोंमें भी पर्याप्त साम्य है। परम्परामें इन दोनों प्रमाणभूत ग्रन्थोंका विशेष महत्त्व एवं आदर रहा है। अयोध्यापुरीमें जहाँ-जहाँ भी भगवान् की लीला-स्थलियाँ अथवा अन्यान्य पौराणिक स्थान हैं, वे प्रायः इन्हींके द्वारा निर्धारित होते हैं।

भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारकी परमपावन लीलास्थलीपर बने विक्रमादित्यकालीन जिस भव्य मन्दिरको यवनोंने ध्वस्त करके वहाँ विवादास्पद ढाँचा बना दिया था; वह एक सुदीर्घकालीन गौरवशाली ऐतिहासिक आन्दोलनके अनन्तर सर्वोच्च न्यायालयद्वारा अमान्य घोषित कर दिया गया तथा वहाँपर पुनः भगवान् श्रीरामललाके भव्य मन्दिरके निर्माणका मार्ग प्रशस्त हो गया। इस सम्बन्धमें सर्वोच्च न्यायालयमें रामजन्मभूमिके पौराणिक साक्ष्योंको विशेषकर उक्त दो ग्रन्थोंके प्रकाशमें ही सिद्ध करना सम्भव हुआ।

दुर्भाग्यसे इन ग्रन्थोंका संस्कृत मूलपाठ भी अब दुर्लभ है तथा हिन्दी अनुवादके साथ तो सम्भवतः कहींसे प्रकाशित ही नहीं है।

गीताप्रेसद्वारा इसे प्रकाशित करनेका स्वप्न भी अभीतक अधूरा ही था। भगवत्कृपासे इधर कुछ ऐसे संयोग बने कि उक्त दोनों ग्रन्थोंका सानुवाद संस्करण एक ही जिल्दमें प्रस्तुत किया जा रहा है, इसमें अयोध्याके वयोवृद्ध सन्त स्वनामधन्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी शुक्ल (अयोध्यावाले श्रीब्रह्मचारीजी)-की परिकल्पना, संग्रहीत मूलपाठ एवं अनुवाद हमें सम्बलकी भाँति प्राप्त हुए। उनके इस श्रमसाध्य सारस्वतकार्यको सर्वजनसुगम बनानेकी दृष्टिसे यथासम्भव सुबोध भाषाशैलीमें प्रस्तुत करते हुए हमें गौरवकी अनुभूति हो रही है।

आशा है, अयोध्यापुरीका प्रायः समग्र माहात्म्य एक ही जिल्दमें सानुवाद पाकर जिज्ञासु एवं प्रेमीभक्तजन विशेष लाभान्वित होंगे।

—प्रेमप्रकाश लक्कड़

विषय-सूची

[१] श्रीरुद्रयामलोक्त श्रीअयोध्यामाहात्म्य

अध्याय	विषय	पृष्ठांक
१.	अयोध्यापुरीका दिव्य स्वरूप, उसका भूतलपर अवतरण एवं पुरीका संस्थान तथा माहात्म्य	११
२.	अयोध्याकी यात्रा-दर्शनादिका माहात्म्य, तीर्थसेवनकी विधि एवं अयोध्या तीर्थकी सर्वोत्कृष्टता	२५
३.	सरयूजीकी उत्पत्तिका इतिहास, सरयू-अष्टकस्तोत्र एवं अयोध्या तथा सरयूका माहात्म्य	४०
४.	स्वर्गद्वार तीर्थका परिमाण एवं माहात्म्य तथा चन्द्रहरिदेवका माहात्म्य	५७
५.	नागेश्वरनाथ, धर्महरि, जानकीतीर्थ और रामतीर्थ नामक पुण्य स्थानोंका इतिहास एवं माहात्म्य	६७
६.	अयोध्यापीठके अन्तर्वती रामसभागृह, दन्तधावनकुण्ड, रामदुर्ग और दुर्गके आवरणभूत विघ्नेश्वरतीर्थ, हनुमत्कुण्ड एवं सुग्रीवादि परिकरोंके स्थानरूप तीर्थोंका वर्णन	८२
७.	रत्नमण्डपपीठमें स्थित सीता-रामकी पूजाविधि, कनकभवनस्थ श्रीसीताजीकी पूजाविधि, रामजन्मभूमिकी शास्त्रीय सीमा एवं रामनवमी-व्रतका माहात्म्य	९२
८.	रामनवमी-व्रतानुष्ठानके प्रसंगमें आवरणपूजाका विधान एवं पाँच पापियोंके उद्धारकी कथा	१०५
९.	अयोध्यादेवीके अनुग्रहसे पाँच महापापियोंका उद्धार और भृत्योंके अपराधके कारण यमदेवका अयोध्याजीके शरणापन्न होना	११७
१०.	यमदेवकृत अयोध्यास्तवन और यमस्थल, सीतामहानस, कैकेयीभवन, सुमित्राभवन, ज्ञानकूप (सीताकूप), सुग्रीवकुण्ड, विभीषणकुण्ड, स्वर्णखनि आदि तीर्थोंका वर्णन	१२८
११.	स्वर्णखनिकुण्डका इतिहास एवं माहात्म्य	१३७

अध्याय	विषय	पृष्ठांक
१२.	यज्ञवेदी, अग्निकुण्ड, तिलोदकी-संगम, अशोकवाटिका, सीताकुण्ड, महाविद्यापीठ तथा विद्याकुण्ड—इन तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य	१५०
१३.	खर्जूकुण्ड, मणिपर्वत, गणेशकुण्ड, दशरथकुण्ड, कौसल्याकुण्ड, सुमित्राकुण्ड, भरतकुण्ड, दुर्भर-महाभर-कुण्ड, योगिनीकुण्ड तथा उर्वशीकुण्ड—इन तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य	१६३
१४.	बृहस्पतिकुण्ड, रुक्मिणीकुण्ड, क्षीरोदकतीर्थ तथा धनयक्षकुण्डका इतिहास एवं माहात्म्य	१७५
१५.	विष्णुहरितीर्थ, वसिष्ठकुण्ड एवं वामदेवतीर्थका इतिहास-माहात्म्यादि	१९१
१६.	सागरकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, ऋणमोचनतीर्थ एवं पापमोचनतीर्थ नामक पुण्यस्थलोंकी उत्पत्ति एवं महिमाका वर्णन	२००
१७.	सहस्रधारातीर्थका इतिहास एवं वहाँ करनेयोग्य सत्कृत्योंका निरूपण	२०८
१८.	वैतरणीतीर्थ, घोषार्कतीर्थ, रति-कुसुमायुधकुण्ड आदि तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य	२१६
१९.	गिरिजाकुण्ड, मन्त्रेश्वर, शीतलास्थान, बन्दीस्थान, चुटकीस्थान, इन्द्रकुण्ड, निर्मलीकुण्ड, गुप्तहरिपीठ आदि तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य	२२६
२०.	गुप्तहरि तथा चक्रहरि नामक तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य, गोप्रतारतीर्थकी महिमा एवं श्रीरामके महाप्रयाणका उपक्रम	२३५
२१.	भाइयोंसहित भगवान् श्रीरामका महाप्रयाण एवं उनके अनुगत प्रजाजनों तथा ऋक्ष-वानरादिको भगवदनुग्रहसे सन्तानक आदि लोकोंकी प्राप्ति	२४५
२२.	गोप्रतारतीर्थकी महिमा, वहाँ अनुष्ठेय सत्कर्म एवं उनके फल तथा राजर्षि हरिश्चन्द्र एवं राजर्षि रुक्मांगदका संक्षिप्त चरित्र	२५३
२३.	दुर्गाकुण्ड, नरग्राम, नारायणग्राम, त्रिपुरारितीर्थ, बिल्वहरितीर्थ, वाल्मीकतीर्थ, पुण्यहरितीर्थ तथा भरतकुण्ड आदि तीर्थोंकी महिमा एवं इतिहास	२६५

अध्याय	विषय	पृष्ठांक
२४.	नन्दिग्राम, कालिकापीठ, जटाकुण्ड, अजितपीठ, शत्रुघ्नकुण्ड, गयाकुण्ड, पिशाचमोचनतीर्थ, मानसतीर्थ एवं तमसा नदी—इन पुण्यस्थलोंकी महिमा एवं यात्राविधि आदि	२७४
२५.	माण्डव्याश्रम, गौतमादि मुनियोंके आश्रम, तमसातटवर्ती तीर्थ, रामकुण्ड, सीताकुण्ड, दुग्धेश्वर महादेव एवं भैरवपीठ—इन तीर्थोंकी महिमा	२८१
२६.	दुग्धेश्वरपीठ, सीताकुण्ड, सुग्रीवकुण्ड, हनुमत्कुण्ड, आस्तीकपीठ, विभीषणसरोवर, रमणकतीर्थ, घृताचीतीर्थ और संगमतीर्थ—इन पुण्यस्थलोंका इतिहास एवं माहात्म्य	२९०
२७.	जम्बुकतीर्थ, तुन्दिलाश्रम, अगस्त्यसर, पराशरस्थल, गोकुलातीर्थ श्रीकुण्डक्षेत्रस्थ महालक्ष्मीपीठ, स्वप्नेश्वरीपीठ, वरस्रोततीर्थ एवं कुटिलासंगम—इन पुण्यस्थलोंका माहात्म्य	३०१
२८.	कुटिलासंगम, मनोरमातीरवर्ती मखस्थान एवं रामरेखातीर्थका इतिहास और माहात्म्य	३०६
२९.	रामतीर्थ एवं अयोध्यापुरीकी महिमाका और मानसतीर्थोंका वर्णन..	३१४
३०.	भौम एवं मानसतीर्थ, अयोध्यापुरीकी विविध परिक्रमा-यात्राएँ, अयोध्यास्तोत्र, अयोध्याके द्वादश पुण्यवन, मोक्षप्रद सात नद, तीन ग्राम, सात पुरियाँ, नौ अरण्य, नौ ऊषर और चौदह गुप्तस्थल, मुक्तिके प्रत्यक्ष साधन, अयोध्याखण्डकी महिमा एवं ग्रन्थका उपसंहार	३२२

[२] श्रीस्कन्दपुराणोक्त श्रीअयोध्यामाहात्म्य

१.	व्यास-अगस्त्य-संवादमें अयोध्यापुरीकी संरचना, सीमा तथा माहात्म्य एवं वहाँके चक्रतीर्थ और विष्णुहरिदेवका माहात्म्य इतिहासादि	३३७
२.	ब्रह्मकुण्ड, ऋणमोचन, पापमोचन तथा सहस्रधारासंज्ञक तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य..	३५८
३.	स्वर्गद्वार तथा चन्द्रहरि तीर्थका इतिहास और माहात्म्य एवं ‘चन्द्रसहस्र’ नामक व्रतके उद्यापनका विधान	३७३

अध्याय	विषय	पृष्ठांक
४.	धर्महरि तथा स्वर्णखनि नामक तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य..	३८८
५.	महर्षि कौत्सका पूर्व वृत्तान्त, सरयू-तिलोदकी-संगम तथा समीपवर्ती सम्भेदतीर्थका इतिहास एवं माहात्म्य..................	४०३
६.	सीताकुण्ड, चक्रहरि, गुप्तहरि, सरयू-घाघरासंगम तथा गोप्रतार-तीर्थका इतिहास एवं माहात्म्य, गोप्रतारतीर्थके महिमावर्णनके प्रसंगमें अयोध्यावासियों और अपने परिकरोंके सहित श्रीरामके महाप्रयाणका विस्तृत वर्णन	४०९
७.	क्षीरोदककुण्ड, बृहस्पतिकुण्ड, रुक्मिणीकुण्ड, धनयक्षकुण्ड, वसिष्ठकुण्ड, वामदेवस्थान, सागरकुण्ड, योगिनीकुण्ड, उर्वशीकुण्ड तथा घोषार्क (सूर्य)-कुण्ड—इन तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य..	४४९
८.	रतिकुण्ड, कुसुमायुधकुण्ड, मन्त्रेश्वर, शीतलादेवी, बन्दी देवी, चुडकीदेवी, महारत्नतीर्थ, दुर्भर-महाभरतीर्थ, महाविद्या सिद्धपीठ क्षीरेश्वर आदि तीर्थोंका इतिहास-माहात्म्यादि और अयोध्याकी परिक्रमाका क्रमिक वर्णन	४७४
९.	गयाकूप, पिशाचमोचन, मानसस्थल, तमसा नदी, माण्डव्याश्रमादि तप:स्थल, सीताकुण्ड, विघ्नेश्वरस्थान, भैरवस्थान, नन्दिग्राम, भरतकुण्ड, जटाकुण्ड आदि तीर्थोंका माहात्म्य....................	४९५
१०.	अजितदेव, मत्तगजेन्द्र, सप्तसागर, सुरसादेवी, पिण्डारकदेव, विघ्नेश्वर तथा रामजन्मस्थान—इन तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य, मानसतीर्थ, अयोध्याकी परिक्रमाविधि, फलश्रुति एवं ग्रन्थका उपसंहार..	५०८

परिशिष्ट

१.	अयोध्याकी ८४ कोसी परिक्रमाके तीर्थस्थल [अयोध्याकी शास्त्रीय परिधिमें लगे १४८ प्राचीन शिलालेख]............	५२५

चित्र-सूची

रंगीन चित्र

विषय	फलक-संख्या
१-अयोध्याके कनक-भवनकी दिव्य झाँकी........................	आवरण-पृष्ठ
२-मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम	१
३-यज्ञकुण्डसे प्रकट अग्निदेवद्वारा दशरथजीको चरुप्रदान	२
४-महाराज श्रीदशरथका सौभाग्य..	३
५-सरयूपुलिनपर बन्धु-सखाओंके साथ श्रीरामकी बाल-क्रीड़ा.........	३
६-श्रीसियाराम-सन्निधिसुख-निमग्न श्रीहनुमान्जी	४
७-बालक श्रीराम..	४
८-राजसदनके प्रांगणमें रामलला..	४
९-भगवान् श्रीरामके कुलगुरु महर्षि श्रीवसिष्ठजी	५
१०-सर्वस्व दानी महाराजा रघु और ब्राह्मण कौत्स	६
११-सरयूतटविहारी युवराज श्रीराम	७
१२-अयोध्याके राजसिंहासनपर श्रीरामका राजतिलक	८

सादे चित्र

विषय	पृष्ठ-संख्या
१३-अयोध्याके राजसिंहासनपर भगवान् श्रीसीताराम..........................	१०
१४-सर्वस्व दानी महाराजा रघु और ब्राह्मण कौत्स..........................	१४३
१५-प्राणोत्सर्गके समय लक्ष्मणजीके समक्ष शेषनागका प्राकट्य...........	२१२
१६-भगवान् सूर्यका राजा घोषके निकट प्रकट होकर वरदान देना.....	२२२
१७-गोप्रतारघाटपर अयोध्यावासियोंसहित भगवान् श्रीरामका महाप्रयाण....	२५४
१८-श्रीसीताजीद्वारा निर्मित कुण्डको श्रीरामद्वारा वरदान देना..............	४११
१९-नन्दिग्राममें श्रीरामपादुकाओंका पूजन करते श्रीभरतजी	५०५

॥ अयोध्याके राजसिंहासनपर भगवान् श्रीसीताराम ॥

॥ श्रीजानकीवल्लभो विजयते ॥

अयोध्या-माहात्म्य

श्रीरुद्रयामलोक्त श्रीअयोध्यामाहात्म्य

पहला अध्याय

अयोध्यापुरीका दिव्य स्वरूप, उसका भूतलपर अवतरण एवं पुरीका संस्थान तथा माहात्म्य

वन्देऽहं रामचन्द्रस्य पादौ प्रणतरक्षकौ।
सीतायाश्च पुनः पादौ सर्वसिद्धिविधायकौ॥ १॥

मैं भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके उन युगल चरणोंकी वन्दना करता हूँ, जो शरणमें आये हुए भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं, साथ ही मैं श्रीजानकीजीके भी उन युगल चरणोंकी वन्दना करता हूँ, जो सभी प्रकारकी सिद्धियोंको प्रदान करनेवाले हैं॥ १॥

रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम्।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः॥ २॥

मैं श्रीरामजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीजानकीजी, श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजी, श्रीसुग्रीवजी तथा श्रीहनुमान्‌जीको बार-बार प्रणाम करता हूँ॥ २॥

श्रीपार्वत्युवाच

साधु भागवतश्रेष्ठ साधुमार्गप्रबोधक।
त्वया तु यत्परिज्ञातं तन्न जानाति कश्चन॥ ३॥

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे वैष्णवशिरोमणि! [आपको] साधुवाद है। हे सज्जनोंके मार्ग अर्थात् आचरणके प्रकाशक! जिन-जिन

विषयोंको आप जानते हैं, उन विषयोंको कोई भी नहीं जान सकता॥ ३॥

त्वत्तः श्रुता महाभाग नानातीर्थसमाश्रिताः।
कथाः श्रावय भो देव अयोध्याया मनोहराः॥ ४॥

हे महाभाग! आपके द्वारा मैंने अनेक तीर्थ-सम्बन्धी कथाओंको सुना। हे देव! अब अयोध्यापुरीकी मनोहर कथाओंको सुनाइये॥ ४॥

साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि सरहस्यं सनातनम्।
अयोध्याया महापुर्या महिमानं गुणोज्ज्वलम्॥ ५॥

इस समय मैं महानगरी अयोध्याकी गुणोंसे भासमान सनातन महिमाको रहस्योंके साथ सुनना चाहती हूँ॥ ५॥

कीदृशी सा सदा मेध्याऽयोध्या विष्णुप्रिया पुरी।
आद्या या गीयते वेदैः पुरीणां मुक्तिदायिका॥ ६॥

जो वेदोंमें गायी गयी है, जो [सात] पुरियोंमें [अन्यतम] मुक्ति देनेवाली है, जो महाविष्णु श्रीरामचन्द्रजीको अतिप्रिय है और जो सभी अवस्थाओंमें पवित्र है—ऐसी वह आद्या पुरी किस प्रकारकी है?॥ ६॥

संस्थानं कीदृशं तस्याः तस्यां के च महीभुजः।
कानि तीर्थानि पुण्यानि माहात्म्यं तेषु कीदृशम्॥ ७॥

उस अयोध्यापुरीका नगरविन्यास कैसा है? उसमें कौन-कौनसे राजा हुए? कौन-कौनसे पवित्र तीर्थ हैं तथा उन तीर्थोंका माहात्म्य किस प्रकारका है?॥ ७॥

अयोध्यासेवनान्नॄणां फलं स्याद् वाथ कीदृशम्।
उत्पत्तिश्च कथं जाता का नद्यः के च सङ्गमाः॥ ८॥

अयोध्यापुरीके सेवनसे मनुष्योंको कैसा फल मिलता है, इस पुरीकी उत्पत्ति कैसे हुई एवं [यहाँ] कौन-कौन-सी नदियाँ हैं तथा [उनके] संगम कितने हैं?॥ ८॥

तत्र स्नानेन किं पुण्यं दानेन च महामते।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तः शिव गुणाधिकात्॥ ९॥

अयोध्यापुरीके उन [कुण्ड-नदी-संगमादिरूप] तीर्थोंमें स्नान तथा दान करनेसे किस प्रकारका पुण्य होता है? हे महाबुद्धिमान् शिवजी! ये सब बातें मैं आपसे सुनना चाहती हूँ; क्योंकि आप सभी सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं॥ ९॥

एतत् सर्वं क्रमेणैव ब्रूहि शिव यथार्थतः।
अयोध्याया महापुर्या माहात्म्यं वक्तुमर्हसि॥ १०॥

हे शिवजी! इन ऊपर पूछे हुए विषयोंको यथार्थ एवं क्रम-बद्ध रीतिसे आप कहिये। अयोध्या-महापुरीकी महिमाका आप ही वर्णन करनेयोग्य हैं॥ १०॥

एते वै मुनयः सर्वे नानादेशनिवासिनः।
कथाः श्रावय भोः पुण्याः सर्वयज्ञफलं तव॥ ११॥

हे [प्रभो]! ये अनेक देशोंके निवासी सभी मुनिगण [आपको सर्वज्ञ तथा श्रीरामका भक्त जानकर अयोध्यापुरीके माहात्म्यको सुननेकी इच्छासे यहाँ पधारे हैं और मेरी भी इस विषयमें उत्कट इच्छा है]। अतः [इसके माहात्म्यसे सम्बन्धित] पवित्र कथाओंको आप सुनाइये। इससे आपको सम्पूर्ण यज्ञोंके करनेका फल मिलेगा॥ ११॥

श्रीशङ्कर उवाच

यस्याः पश्चिमतो नदः प्रवहति ब्रह्मात्मजो घर्घरः
सामीप्यं न जहाति यत्र सरयूः पुण्या नदी सर्वदा।
विद्या यत्र महाधिका गिरिसुते स्थानं च विष्णोर्हरेः
साऽयोध्या विमला पुरी पुरिवरा स्याद् वः सदानन्ददा॥ १२॥

श्रीशंकरजी बोले—हे पर्वतनन्दिनि! जिस अयोध्यापुरीकी पश्चिम दिशामें ब्रह्माजीके पुत्र घर्घर (घाघरा) नदरूपमें बह रहे हैं तथा पुण्या नदी सरयूजी जिस पुरीकी समीपताको कभी नहीं

छोड़तीं, जो पुरी विद्याओंकी खानि है और जो महाविष्णु श्रीरामचन्द्रजीकी [उत्पत्ति एवं निवासकी] स्थली है, वह सातों पुरियोंमें शिरोमणि, विमला उपनामवाली श्रीअयोध्यापुरी आप (श्रोतागणों)-को आनन्द देनेवाली हो॥ १२॥

नमामि परमात्मानं रामं राजीवलोचनम्।
अतसीकुसुमश्यामं रावणान्तकमच्युतम्॥ १३॥

अलसीके पुष्पके समान श्याम शरीरवाले, कमलके सदृश नेत्रोंवाले, [अपनी महिमासे कभी] च्युत न होनेवाले और रावणका नाश करनेवाले परमात्मा श्रीरामभद्रको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १३॥

शृणु देवि सवत्से त्वमयोध्यानगरं शुभम्।
सर्वतीर्थाधिकं पुण्यं श्रुत्वा पापातिगो भवेत्॥ १४॥

हे देवि! हे वात्सल्यमयि! तुम सुन्दर अयोध्यानगरके वर्णनको सुनो! जिसके सुननेसे सब तीर्थोंसे अधिक पुण्य होता है और जिसे सुनकर जीव पापोंसे रहित हो जाता है॥ १४॥

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥ १५॥

श्रीरघुनाथजीके चरित्रका विस्तार सैकड़ों करोड़ है। उस चरित्रका एक-एक अक्षर भी पुरुषोंके बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है॥ १५॥

राम रामेति रामेति ये जपन्ति च सर्वदा।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च जायते चात्र पार्वति॥ १६॥

हे पार्वतीजी! इस संसारमें जो प्राणी सदा 'श्रीराम-राम-राम'—ऐसा जपते हैं, उनको यहाँ ऐहलौकिक समस्त सुख मिलते हैं और अन्तमें मुक्ति मिलती है॥ १६॥

सृष्ट्यादौ तु समुत्पन्ना त्रैलोक्ये च विराजते।
नगरी निर्मिता पूर्वमीश्वरेण महात्मना॥ १७॥

यह अयोध्यानगरी सृष्टिके आदिमें उत्पन्न हुई और इस त्रिलोकीमें विराजमान है। महात्मा परमेश्वरद्वारा पूर्वकालमें इसका निर्माण किया गया था॥ १७॥

तदुत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वं च मनोहरे।
स्वायम्भुवो मनुर्नाम ब्रह्मणः प्रथमः सुतः॥ १८॥

हे मनोहरे! उस अयोध्यापुरीकी उत्पत्ति मैं कहूँगा, तुम सुनो! ब्रह्माजीके प्रथम पुत्र स्वायम्भुव नामवाले मनु हुए॥ १८॥

प्रजानां पालको राजा सत्यलोकं जगाम ह।
ब्रह्माणं च नमस्कृत्य विनयावनतः स्थितः॥ १९॥

वे प्रजापालनमें निरत महाराज मनु ब्रह्माजीके लोक सत्यलोकको गये। वहाँ ब्रह्माजीको प्रणामकर विनम्र भावसे उनके समक्ष स्थित हो गये॥ १९॥

कृतांजलिपुटो भूत्वा विनयानतकन्धरः।
तं दृष्ट्वा राजशार्दूलं विनयेन विराजितम्॥ २०॥
ततः प्रहस्योवाचेदं ब्रह्मा लोकपितामहः।

दोनों हाथ जोड़े हुए, विनम्रतापूर्वक सिर झुकाये उन राजशिरोमणि मनुको इस प्रकार सविनय विराजमान देखकर लोकपितामह ब्रह्माजीने उस समय हँसकर यह कहा— ॥ २०$^{1}/_{2}$ ॥

ब्रह्मोवाच

किमर्थमागतो वत्स किं कार्यं वद मेऽग्रतः॥ २१॥
शीघ्रं कथय मे सर्वं तवागमनकारणम्।

ब्रह्माजी बोले—हे वत्स! किस प्रयोजनसे [यहाँ] आये हो, तुम्हारा कौन-सा कार्य है, मेरे समक्ष बताओ। [हे मनु!] अपने आगमनका कारण शीघ्र ही विस्तारपूर्वक कहो॥ २१$^{1}/_{2}$ ॥

मनुरुवाच

सृष्ट्यर्थं ज्ञापितोऽहं वै तवाज्ञा प्रतिपालिता॥ २२॥

मनुजीने कहा—[हे पिताजी!] सृष्टि बढ़ानेके लिये आपने मुझे आज्ञा दी और उसका पालन भी मैंने किया॥ २२॥

सृष्ट्यादौ वसतेस्तात स्थानं देहि मनोरमम्।
इति तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः॥ २३॥
जगाम विष्णुलोकं च मनुना सह पार्वति।
वैकुण्ठनिलयं यत्र विकुण्ठासुतनिर्मितम्॥ २४॥

हे पिताजी! सृष्टिके आदि (आरम्भ)-में मेरा निवास कहाँ हो? मेरे रहनेके लिये कोई मनोहर स्थान दीजिये। हे पार्वती! महाराज मनुकी ऐसी वाणी सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजी मनुके साथ उस वैकुण्ठधाममें गये, जिसका निर्माण विकुण्ठाके पुत्रने किया था॥ २३-२४॥

चतुरस्त्रं चतुर्द्वारं वरप्राकारतोरणम्।
सर्वदेवनमस्कार्यं जगाम मनुना सह॥ २५॥

जिसकी आकृति चतुरस्त्र (चौकोर) थी, जिसमें चार द्वार थे। जहाँ उत्तम चहारदीवारी तथा उत्तम नगरद्वार था और सभी देवता जिसे प्रणाम करते हैं—ऐसी विष्णुपुरीमें मनुके साथ ब्रह्माजी पधारे॥ २५॥

यत्र वैमानिकाः प्रोक्ता ललनायूथपास्ततः।
गायन्ति सामगा नित्यं गन्धर्वाप्सरसस्तथा॥ २६॥

जिस वैकुण्ठमें [महर्षिगण] निरन्तर सामगान कर रहे हैं, जहाँ गन्धर्व, अप्सराएँ, देवांगनाओंके समूह [एवं देवतागण] विमानोंपर आरूढ़ होकर [भगवद्गुणानुवाद करनेमें निरत] बतलाये जाते हैं॥ २६॥

सर्वे चतुर्भुजाः प्रोक्ता मणिकुण्डलशोभिताः।
चण्डप्रचण्डौ प्राग्द्वारे याम्ये भद्रसुभद्रकौ॥ २७॥

[वहाँपर स्थित] सभी [भगवत्पार्षद] चार-चार भुजाओंवाले हैं तथा कानोंमें मणियोंके कुण्डल धारण करनेसे अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। [उन पार्षदोंमें] चण्ड तथा प्रचण्ड पूर्व द्वारके द्वारपाल हैं और दक्षिण द्वारके भद्र एवं सुभद्र द्वारपाल हैं॥ २७॥

जयविजयौ वारुण्यां सौम्ये धातृविधातरौ।
तन्मध्ये तु महापीठं नानारत्नोपशोभितम्॥ २८॥

पश्चिम द्वारपर जय-विजय नामक द्वारपाल हैं और उत्तर द्वारपर धाता तथा विधाता नामक द्वारपाल हैं। बीचमें अनेक रत्नोंसे जटित बहुत बड़ा सिंहासन है॥ २८॥

तस्योपरि महाराजं सर्वलोकपितामहम्।
वासुदेवं जगन्नाथं ब्रह्मा लोकपितामहः॥ २९॥
उवाच प्रांजलिर्ब्रह्मा वाचा मधुरया गिरा।

उस सिंहासनपर समस्त ब्रह्माण्डके पितामह महाराज जगन्नाथ वासुदेव विराजमान थे, उनसे लोकपितामह ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर मधुर वाणीमें कहा॥ २९१/२॥

ब्रह्मोवाच

देवाधिदेव देवेश भक्तानुग्रहकारक॥ ३०॥
नगरं वसतिं देहि मन्वर्थे देवसत्तम।
इति तस्य वचः श्रुत्वा वासुदेवो जनार्दनः॥ ३१॥
वैकुण्ठमध्ये यत्प्रोक्तमयोध्यानगरं शुभम्।
अनेकाश्चर्यसंयुक्तं सर्वसम्पत्तिदं शुभम्॥ ३२॥
दत्वा च मनुहस्ते च ब्रह्मणा चानुमोदितः।
अथोऽनुज्ञापितो ब्रह्मा मनुः स्वायम्भुवश्च सः॥ ३३॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओंके अधिष्ठाता! हे देवताओंके

स्वामी! हे देवशिरोमणि! भक्तोंपर कृपा करनेवाले! [इस मेरे पुत्र] मनुको नगररूपमें कोई वासस्थान दीजिये। इस प्रकारकी ब्रह्माजीकी वाणी सुनकर जनार्दन भगवान् वासुदेवने वैकुण्ठपुरीके मध्यभागमें स्थित जो सुन्दर, सर्वसम्पत्ति देनेवाला तथा अनेक प्रकारकी आश्चर्यमय रचनासे समन्वित अयोध्या नगर है, उसे ही मनुके हाथमें दिया, [जिसका] ब्रह्माजीने अनुमोदन किया। इसके अनन्तर श्रीविष्णुभगवान्ने ब्रह्माजी और मनुको [मृत्युलोकमें जानेकी] आज्ञा दे दी॥ ३०—३३ ॥

आगतौ मर्त्यलोके च विश्वकर्मसमन्वितौ।
वसिष्ठं प्रेषयामास पश्चात् तत्र जनार्दनः॥ ३४॥

ब्रह्माजी और उनके पुत्र [मनु] देवशिल्पी विश्वकर्माके साथ मृत्युलोकमें आये। तत्पश्चात् जनार्दनभगवान्ने वसिष्ठजीको [उनकी सहायताके लिये] वहाँ भेजा॥ ३४॥

सुचारु क्ष्मा यत्र दृश्या ह्ययोध्यां तत्र कल्पय।
आगतो मुनिशार्दूलो वसिष्ठो मुनिसत्तमः॥ ३५॥

[श्रीहरिने महर्षि वसिष्ठको आज्ञा दी कि] जहाँपर शोभामय भूभाग दृष्टिगोचर हो, वहीं अयोध्यापुरीकी रचना कराओ। [तब] मुनिश्रेष्ठ ऋषिशिरोमणि वसिष्ठजी [भगवान्की आज्ञा स्वीकारकर मृत्युलोकमें] आये॥ ३५॥

विश्वकर्माणमाहूय पुरीं वै निर्ममे शुभाम्।
इति विष्णोरादेशाच्च पुरी सा निर्मिता शुभा॥ ३६॥

वसिष्ठजीने विश्वकर्माको बुलाकर सौन्दर्यमयी अयोध्यापुरीका निर्माण कराया। इस प्रकार श्रीविष्णुभगवान्की आज्ञासे उस मंगलमयी अयोध्यापुरीका निर्माण हुआ॥ ३६॥

अयोध्या रचिता तेन सर्वदेवनमस्कृता।
अयोध्या नगरी रम्या रत्नमण्डपशोभिता॥ ३७॥

अनेकरत्नसंकीर्णा ज्वलनार्कसमप्रभा।
आवासैरुत्तमैर्युक्ता दिव्यप्राकारतोरणा॥ ३८॥

उन विश्वकर्माने रमणीक नगरी अयोध्याका निर्माण किया, जो कि सभी देवताओंसे वन्दित है। रत्नोंके मण्डपोंसे अतीव मनोहर है, उसकी दीवालोंमें अनेक रत्न जड़े हैं, इसलिये वह अग्नि तथा सूर्यके समान चमक रही है। उसमें उत्तमोत्तम निवास-स्थान बने हुए हैं। उसकी चहारदीवारी एवं नगरके फाटक अति दिव्य हैं॥ ३७-३८॥

सुवर्णदुर्गसंयुक्ता रौप्यताम्रककोष्ठका।
परिखाह्वारकूटा च हर्म्यस्वर्णविराजिता॥ ३९॥

उस पुरीमें सुवर्णके किले, चाँदी तथा ताँबेके कोठे, पीतलके घेरे और सोनेके सदन बने हुए हैं॥ ३९॥

प्राकारोपवनाट्टालपरिखा रत्नतोरणा।
अनेकगृहसंयुक्ता रचिता विश्वकर्मणा॥ ४०॥

विश्वकर्माने भिन्न-भिन्न प्रकारके गृहों, रत्नजटित तोरणों, घेरा, बगीचा, अट्टालिका, खाईं आदिसे [उस पुरीको] समन्वित किया है॥ ४०॥

स्वर्णरौप्यायसैः शृंगैः संकुला सर्वतो गृहैः।
नीलस्फटिकवैडूर्यमुक्तामरकततोरणैः॥ ४१॥
क्लृप्तहर्म्यस्थला रम्या सर्वदेवनमस्कृता।
सभाचत्वररथ्याभिः सर्वतो भवनैर्युता॥ ४२॥

वह पुरी सब ओरसे [उत्तमोत्तम] महलोंसे समन्वित है, जिनके शिखर सुवर्ण, रजत तथा लौहसे निर्मित हैं और जिनके द्वार [एवं भित्तियाँ] नीलम, स्फटिक, मौक्तिक, वैदूर्य, मरकत आदि रत्नोंसे जटित हैं। [और वैसा ही रत्नजटित] उन महलोंका स्थलभाग (फर्श) है। सभी दिशाओंमें अवस्थित भवनों, चौराहों

और गलियोंसे समन्वित वह रमणीक नगरी समस्त देवताओंसे अभिवन्दित है॥ ४१-४२॥

अयोध्या परमा मेध्या पुरी दुष्कृतिदुर्लभा।
कस्य सेव्या च नो भव्या यस्यां साक्षाद् हरिः स्वयम्॥ ४३॥

ऐसी परम पवित्र वह अयोध्यापुरी पापियोंको दुर्लभ है। [हे पार्वती!] ऐसी मंगलमयी अयोध्यापुरीका निवास कौन नहीं चाहता, जिस पुरीमें [पापको हरनेवाले] स्वयं साक्षात् श्रीहरि [श्रीरामरूपमें निवास करते] हैं॥ ४३॥

सरयूतीरमासाद्य दिव्या परमशोभना।
अमरावतीति सा प्रायः श्रिता बहुतपोधनैः॥ ४४॥

वह अयोध्यापुरी सरयूजीके तटपर बसनेसे अति दिव्य, परम सुन्दर इन्द्रपुरी अमरावती-जैसी प्रतीत होती है, जिसमें बहुत-से तपस्वी निवास करते हैं॥ ४४॥

हस्त्यश्वरथपत्त्याढ्या विभूत्या च विराजिता।
प्राकाराट्टप्रतोलीभिस्तोरणैः कांचनैः शुभैः॥ ४५॥

वह हाथी, घोड़े, रथ, पैदल चलनेवाली चतुरंगिणी सेना आदि तथा अनेक प्रकारकी विभूतियोंसे सुशोभित है। वहाँ सुवर्णमय सुन्दर घेरे, अट्टालिकाएँ एवं सजे हुए नगरद्वार हैं, वहाँकी गलियाँ अनुपम शोभा दे रही हैं॥ ४५॥

सुरूपवेषैः सर्वत्र सुविभक्तचतुष्पथा।
अनेकभूमिप्रासादबहुभाण्डसुविक्रया॥ ४६॥

नगरके चारों ओर अतिसुन्दर बहुत-से चौराहे हैं, अनेक तल्लोंवाली दुकानोंसे परिपूर्ण बाजार हैं, जहाँ अनेक प्रकारके उत्तम-उत्तम बरतनों आदि वस्तुओंका विक्रय होता है॥ ४६॥

पद्मोत्पलसुगन्धीभिर्वापीभिरुपशोभिता।
देवतापत्तनैर्दिव्यैर्वेदघोषैश्च घोषिता॥ ४७॥

स्थान-स्थानपर लाल, नीले, सफेद कमलोंके फूलोंकी सुगन्धसे सुगन्धित बावलियाँ शोभा दे रही हैं। देवी-देवताओंके अतिरमणीय मन्दिर बने हुए हैं, जिनमें वेदोंका सुन्दर घोष हो रहा है॥ ४७॥

वीणावेणुमृदंगादिशब्दैरुत्कृष्टकैर्युता ।
शालैस्तालैर्नारिकेलैः पनसामलकैस्तथा॥ ४८॥
तथैवाम्रकपित्थाद्यैरशोकैरुपशोभिता ।
आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वर्तुफलपादपैः॥ ४९॥

वह पुरी वीणा, वंशी, मृदंग आदि वाद्योंकी उत्कृष्ट ध्वनियोंसे गूँज रही है और साखू, ताड़, नारियल, कटहल, आँवला, आम, कैथा, अशोक आदि वृक्षोंसे सुशोभित है। वहाँ सभी ऋतुओंमें फल देनेवाले वृक्षोंके विविध उपवन हैं॥ ४८-४९॥

मालतीजातिबकुलपाटलानागचम्पकैः ।
करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलंकृता॥ ५०॥

मालती, चमेली, मौलसिरी, पाटल, नागचम्पा, चम्पा, करवीर, कर्णिकार, केतकी आदि अनेक प्रकारके पुष्पपादपोंसे वह नगरी अलंकृत है॥ ५०॥

निम्बुजम्बीरकदलीमातुलिंगमहाफलैः ।
लसच्चन्दनगन्धाढ्यैर्नागरैरुपशोभिता ॥ ५१॥

निम्बू, जम्बीरी, केला, बिजौरा नींबू आदि प्रशस्त फलोंवाले वृक्ष वहाँ विद्यमान हैं। वह पुरी चन्दनका अंगराग एवं सुगन्धित द्रव्य लगाये हुए नागरिकोंसे शोभायमान है॥ ५१॥

देवतुल्यप्रभायुक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता।
सुरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देवस्त्रीभिरिवावृता ॥ ५२॥

वह पुरी देवताओंके तुल्य कान्तिवाले राजकुमारोंसे समन्वित

है एवं सुन्दर रूपवाली उत्तम श्रेणीकी देवांगनातुल्य नारियोंसे समावृत है॥ ५२॥

श्रेष्ठैः सत्कविभिर्युक्ता बृहस्पतिसमैर्द्विजैः।
वणिग्जनैस्तथा पौरैः कल्पवृक्षैरिवावृता॥ ५३॥

वह पुरी उत्तम-उत्तम कविगणों, बृहस्पतिके समान [कर्मनिष्ठ, तपोयुक्त] द्विजगणों और [मुँहमाँगा देनेवाले] कल्पवृक्षके समान [उदार] नागरिक वैश्यजनोंसे परिपूर्ण है॥ ५३॥

अश्वैरुच्चैश्रवःप्रख्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैरिव।
इति नानाविधैर्भावैरयोध्येन्द्रपुरी समा॥ ५४॥

वहाँ उच्चैःश्रवाके समान घोड़े और दिग्गजोंके सदृश हाथी विद्यमान हैं। इन उपर्युक्त वैभवोंसे परिपूर्ण वह अयोध्यापुरी इन्द्रपुरीके समान है॥ ५४॥

यस्यां जाता महीपालाः सूर्यवंशसमुद्भवाः।
इक्ष्वाकुप्रमुखाः सर्वे प्रजापालनतत्पराः॥ ५५॥

जिस पुरीमें पुत्रवत् प्रजापालन करनेवाले इक्ष्वाकु आदि प्रमुख सूर्यवंशी राजागण उत्पन्न हुए थे॥ ५५॥

यस्यास्तीरे पुण्यतोया कूजद्भृंगविहंगमा।
सरयूर्नाम तटिनी मानसात्प्रभवोत्तमा॥ ५६॥

जिस पुरीके किनारे ही मानसरोवरसे निकली हुई और भ्रमरों तथा पक्षियोंसे निनादित [तटवर्तिनी वृक्षावलीसे शोभायमान] एवं पवित्र जलवाली सरयू नामकी उत्तम नदी है॥ ५६॥

पश्चिमोत्तरतः पुण्या पूर्वस्यां दिशि सर्वदा।
पुण्यवृद्धिकरी सा च घर्घरोत्तमसङ्गमा॥ ५७॥

वह पवित्र सरयू नदी अयोध्यापुरीके पश्चिम-उत्तर तथा पूर्व दिशाओंमें सर्वदा बहा करती है। [दर्शन-स्पर्शन-मज्जनादिसे]

पाप हरनेवाली और पुण्य बढ़ानेवाली वह सरयू घाघरा नदीके उत्तम संगमवाली है॥ ५७॥

मुनीश्वराश्रिततटा जागर्ति जगदुच्छ्रिता।
गंगा च सरयूश्चैव ब्रह्मद्रव इतीर्यते॥ ५८॥

उस सरयूके तटपर श्रेष्ठ मुनियोंका निवास है, वह त्रैलोक्यमें सर्वोपरि है। गंगा तथा सरयू—ये दोनों नदियाँ ब्रह्मद्रव (ब्रह्मरूप जल) कही जाती हैं॥ ५८॥

तस्मादिमे पुण्यतमे नद्यौ देवनमस्कृते।
एतयोः स्नानमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ ५९॥

इस कारणसे ये दोनों नदियाँ देवताओंसे भी अभिवन्दित तथा अति पवित्र हैं। इन दोनोंमें स्नानमात्रसे ब्रह्महत्या नाशको प्राप्त होती है॥ ५९॥

अहो पुण्यतमा भूमिरयोध्या परिकीर्तिता।
अहो धन्यतमा भूमिस्तव जाता सुलोचने॥ ६०॥

हे सुन्दर नेत्रोंवाली [प्रिये]! अहो! यह अयोध्याकी भूमि तो अत्यन्त पवित्र कही गयी है। अहो! यह भूमि तो धन्यतम है। [इसके माहात्म्य-श्रवणमें] तुम्हारी [बुद्धिकी] प्रवृत्ति हुई, [अतः तुम भी धन्य हो]॥ ६०॥

श्रूयते महिमा तस्या मनो दत्वा च पार्वति।
अकारो वासुदेवः स्याद् यकारस्तु प्रजापतिः॥ ६१॥
उकारो रुद्ररूपस्तु तां ध्यायन्ति मुनीश्वराः।
सर्वोपपातकैर्युक्तैर्ब्रह्महत्यादिपातकैः॥ ६२॥
न योध्या सर्वतो यस्मात् तामयोध्यां ततो विदुः।
विष्णोराद्या पुरी चेयं क्षितिं न स्पृशति प्रिये॥ ६३॥

हे पार्वती! अब मन लगाकर अयोध्यापुरीका माहात्म्य सुनो!

[‘अयोध्या’ इस पदका तात्पर्य इस प्रकारसे ज्ञातव्य है—] अकारका अर्थ वासुदेव, यकार का अर्थ ब्रह्मा तथा उकारका अर्थ शंकर [एवं ‘ध्या’ का अर्थ ध्यान करना] है। इन तीनोंका श्रेष्ठ मुनिगण जिस स्थलीपर ध्यान करें, उसे अयोध्या कहते हैं। समस्त उपपातकोंके सहित ब्रह्महत्यादि महापातकगण सब जगह, सब कालमें युद्धमें जिसके समक्ष न ठहर सकें, उसे ‘अयोध्या’ के नामसे विद्वज्जन जानते हैं और भी हे प्रिये! महाविष्णु श्रीरामभद्रकी [पुरियोंमें प्रधान] यह आद्या पुरी अयोध्या है, जो पृथ्वीतलका स्पर्श नहीं करती है॥ ६१—६३॥

यत्र साक्षात् स्वयं देवो विष्णुर्वसति सर्वदा।
सहस्रधारामारभ्य योजनं पूर्वतो दिशि॥ ६४॥

जिस पुरीमें साक्षात् देवाधिदेव महाविष्णु सर्वदा निवास करते हैं। सहस्रधारा-लक्ष्मणघाटसे लेकर पूर्वमें एक योजन (चार कोस)-तक इसकी सीमा है॥ ६४॥

विष्णोः सुदर्शने चक्रे स्थिता पुण्यांकुरा सदा।
केन वर्णयितुं शक्यो महिमास्याः सबुद्धिना॥ ६५॥

महाविष्णुके सुदर्शन चक्रपर अयोध्यापुरी स्थित है। इसमें पुण्य-रूप अंकुर ही सदा उगते हैं। कौन ऐसा बुद्धिवाला मनुष्य है, जो इस पुरीकी महिमाका वर्णन कर सकता है॥ ६५॥

पश्चिमे च तथा देवि योजनं संमतोऽवधि।
दक्षिणोत्तरभागे तु सरयूस्तमसावधि॥ ६६॥

पश्चिम दिशामें भी [इस पुरीकी] एक योजन (चार कोस) अवधि शास्त्रसे मानी गयी है। उत्तर-दक्षिणमें सरयूसे लेकर तमसा नदीपर्यन्त इसकी सीमा है॥ ६६॥

एतत् क्षेत्रस्य संस्थानं हरेरन्तर्गृहं स्मृतम्।
मत्स्याकृतिरियं भद्रे पुरी विष्णोरुदीरिता॥ ६७॥

यही इस अयोध्यापुरीकी लम्बाई-चौड़ाईका मान है, जो

श्रीहरिका अन्तर्गृह कहा जाता है। हे कल्याणी! यह विष्णुपुरी मछलीके आकारकी कही गयी है॥ ६७॥

पश्चिमे मत्स्यमूर्धा तु गोप्रताराश्रिता प्रिये।
पूर्वतः पुच्छभागो हि दक्षिणोत्तरमध्यमः॥ ६८॥

हे प्रिये! पश्चिम दिशामें स्थित गोप्रतारतीर्थ (गुप्तारघाट) मछलीके आकारवाली इस अयोध्याका सिर माना गया है। पूर्व दिशामें इसका पुच्छभाग परिकल्पित है और उत्तर-दक्षिणका मध्यस्थल ही इसका मध्यभाग है॥ ६८॥

एतत् क्षेत्रस्य संस्थानं मया सुन्दरि वर्णितम्॥ ६९॥

हे सुन्दरि! यह अयोध्यापुरीका क्षेत्रविन्यास मैंने तुम्हें बतला दिया है॥ ६९॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे
पुरीवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-सम्वादरूप अयोध्याखण्डके अन्तर्गत 'पुरीवर्णन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

अयोध्याकी यात्रा-दर्शनादिका माहात्म्य, तीर्थसेवनकी विधि एवं अयोध्यातीर्थकी सर्वोत्कृष्टता

श्रीपार्वत्युवाच

किं फलं गमने तत्र किं फलं दर्शने कृते।
कानि तीर्थानि तत्रैव को देवस्तद् वदस्व मे॥ १॥

श्रीपार्वतीजीने पूछा—उस अयोध्यातीर्थमें जाने एवं वहाँका दर्शन करनेसे क्या फल होता है? वहाँ कौन-कौनसे तीर्थ हैं और कौन-कौनसे देवता हैं, इन बातोंको मुझे बतलाइये॥ १॥

कस्मिन् मासे तिथौ कस्यां कस्मिन् पर्वणि मानवैः।
कर्तव्यं कानि दानानि कथयस्व महामते॥ २॥

हे महाबुद्धिमान्! किस महीनेमें, किस तिथिमें तथा किस पर्वमें [एवं किस अयोध्याक्षेत्रवर्ती तीर्थमें] कौन-कौन-से दान लोगोंको करने चाहिये, इस बातको भी बताइये॥ २॥

श्रीशङ्कर उवाच

शृणु पार्वति यत्नेन परं गुह्यं सनातनम्।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तद् वदामि सुविस्तरात्॥ ३॥

श्रीशंकरजीने कहा—हे पार्वती! यह अतिगुप्त सनातन रहस्य, जो कि मैंने आजतक किसीसे भी नहीं कहा, वह तुमसे विस्तारसहित कह रहा हूँ, उसे [सावधानीसे] यत्नपूर्वक सुनो॥ ३॥

यदा मतिं प्रकुरुते अयोध्यागमनं प्रति।
तदा नरकनिर्मुक्ता गायन्ति पितरो दिवि॥ ४॥

जिस समय मनुष्य अयोध्यापुरीमें जानेकी इच्छा करता है, उसी क्षण उसके नरकमें पड़े हुए पितर नरकसे छूटकर स्वर्गमें [जाकर अपने वंशजोंकी कीर्तिका] गान करते हैं॥ ४॥

यावत् पदानि रामस्य मार्गं गच्छति मानुषः।
पदे पदेऽश्वमेधस्य यज्ञस्य लभते फलम्॥ ५॥

मनुष्य रामके मार्ग (श्रीअयोध्यापुरी)-की यात्रामें [पैदल चलकर] जितने पद (कदम) मार्गमें रखता है, उसे पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है॥ ५॥

यात्रां निर्गच्छमानस्य यः प्रेरयति चापरान्।
स तु पापान्निवृत्तो वै लभते वाञ्छितं फलम्॥ ६॥

जो मनुष्य अयोध्यापुरीको जाते समय अन्य लोगोंको भी [तीर्थयात्राके लिये] प्रेरणा करके ले जाता है, वह पापोंसे छूटकर इच्छित मनोरथको प्राप्त करता है॥ ६॥

अयोध्यां गच्छमानस्य यो ददाति प्रतिश्रयम्।
पुत्रपौत्रसमायुक्तः क्रीडते नन्दने वने॥ ७॥

जो [धर्मात्मा] व्यक्ति अयोध्यापुरी जानेवाले यात्रीको तन, मन, धनादिसे किसी भी प्रकारकी सहायता पहुँचाता है, वह इस संसारमें यावज्जीवन पुत्र-पौत्र-ऐश्वर्यादिजन्य सुखोंको भोगकर [परलोकमें इन्द्रके] नन्दनवनमें विहार करता है॥ ७॥

तथैव मधुरां वाणीं क्रीडेच्चैत्ररथान्तरे।
अध्वनि श्रान्तदेहस्य वाहनं यः प्रयच्छति॥ ८ ॥
हंसयुक्तविमानेन इन्द्रलोकं स गच्छति।

अयोध्या जानेवाले तीर्थयात्रीका जो प्रेमभरी मीठी वाणीसे स्वागत करता है, वह कुबेरके चैत्ररथ नामक वनमें विहार करता है और अयोध्याके तीर्थयात्रीको मार्गमें थक जानेपर जो धर्मात्मा सवारीका प्रबन्ध कर देता है, वह हंसयुक्त विमानसे इन्द्रलोकको गमन करता है॥ ८१/२ ॥

यात्रायां गच्छमानस्य मध्याह्ने क्षुत्पिपासिनः॥ ९ ॥
अन्नं ददाति यो भक्त्या शृणु यल्लभते फलम्।
गयाश्राद्धेन यत्पुण्यं लभते मानवो भुवि॥ १०॥
प्रयागे वपनेनैव यत्पुण्यं लभते भुवि।
अन्नदानेन तत्सर्वं पितॄणां तृप्तिमक्षयाम्॥ ११॥

अयोध्या जानेवाले तीर्थयात्रीको मध्याह्नमें भूख-प्यासके लगनेपर जो धर्मात्मा भक्तिभावसे अन्न-जल देता है, उसे जो पुण्य मिलता है, [हे पार्वती!] उसे सुनो! इस पृथ्वीपर गयाश्राद्ध करनेसे मनुष्यको जो पुण्य मिलता है तथा प्रयागमें मुण्डन करानेसे जो पुण्य मिलता है, वह समस्त पुण्य अयोध्या जानेवाले तीर्थयात्रीको अन्न प्रदान करनेसे मिलता है तथा उसके पितरोंको अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है॥ ९—११॥

उपानहौ च यो दद्यादयोध्यां प्रति गच्छतः।
रामप्रसादात् पुरुषो गजस्कन्धेन गच्छति॥ १२॥

अयोध्यापुरी जानेवालेको जो जूता आदि दान करता है, वह पुरुष श्रीरामके प्रसादसे हाथीपर बैठकर चलता है॥ १२॥

विघ्नमाचरते यस्तु अयोध्यां प्रति गच्छतः।
नरके मज्जते मूढः कल्पमात्रं तु रौरवे॥ १३॥

अयोध्या जानेवाले तीर्थयात्रीको जो मनुष्य विघ्न-बाधा पहुँचाता है, वह मूर्ख कल्पभर रौरव नरकमें डूबा रहता है॥ १३॥

मार्गस्थितस्य यो धान्यं प्रयच्छति कमण्डलुम्।
प्रपादानसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः॥ १४॥

अयोध्यातीर्थगामीको जो पुण्यात्मा धान्य (कच्चा अन्न, सीधा आदि) तथा जलपात्र प्रदान करता है, उसे हजारों पौंसला (प्याऊ) चलानेका फल मिलता है॥ १४॥

यात्रार्थे गच्छमानस्य पादाभ्यंगं करोति यः।
अथ प्रक्षालयेत् पादौ सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ १५॥

अयोध्यापुरीके यात्रीके पैरमें जो तेल मलता है, पैर दबाता है तथा पैर धोता है, उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं॥ १५॥

कथां शृणोति यो विष्णोर्गीतं वा परि गच्छति।
अन्नं ददाति मनुजस्तस्मादन्यतरो नहि॥ १६॥

जो मनुष्य भगवान्‌की कथा सुनता है, भगवान् विष्णुका कीर्तन करता है और भूखेको अन्न देता है, उससे बड़ा भाग्यशाली दूसरा नहीं॥ १६॥

अयोध्यां दृश्यमानां यो हृष्टरोमा च सुन्दरि।
वाहनं सम्परित्यज्य लुंठते धरणीं गतः॥ १७॥

पञ्चसूनाकृतं पापं तथा मार्गकृतं च यत्।
कृमिकीटपतंगाश्च निहताः पथि गच्छताम्॥ १८॥
परान्नं परपानीयमस्पृश्येन च संगमः।
तत्सर्वं नाशमायाति अयोध्यादर्शने कृते॥ १९॥

हे सुन्दरी! अयोध्यापुरीको दूरसे ही देखकर जो प्रेमी भक्त हर्षसे रोमांचित हो करके, सवारी छोड़कर पृथ्वीपर लोटने लगता है, [ऐसे मनुष्यके] पंचसूनाजनित अर्थात् कूटने, पीसने, झाड़ू लगाने, भोजन बनाने तथा जल रखनेके स्थानपर मार्जनादि क्रियाओंमें होनेवाले पाप, मार्गमें चलते हुए चींटी-कीड़े, पतिंगोंके मरनेसे होनेवाले पाप, दूसरोंका अन्न-जल खाने-पीनेसे होनेवाले पाप तथा अपवित्र वस्तुके स्पर्शसे होनेवाले पाप—ये सभी अयोध्यापुरीके दर्शनमात्रसे नाशको प्राप्त होते हैं॥ १७—१९॥

अयोध्यादर्शनं यस्तु करोति मनुजो यदि।
सप्तजन्मकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः॥ २०॥

जो मनुष्य अयोध्यापुरीका दर्शन करता है, उसके सात जन्मोंके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २०॥

पठेन्नामसहस्रं तु स्तवराजमथापि वा।
गजेन्द्रमोक्षणं चापि पथि गच्छन् शनैः शनैः॥ २१॥

अयोध्यापुरीके मार्गमें (या उत्तम-मध्यम-कनिष्ठ श्रेणीकी परिक्रमामें) विष्णुसहस्रनाम या श्रीरामस्तवराज अथवा गजेन्द्रमोक्षका धीरे-धीरे चलते हुए पाठ करे॥ २१॥

पठते मनुजो नित्यमयोध्यागमनं प्रति।
गायमानो भगवतः प्रादुर्भावकथाः शुभाः॥ २२॥
अथवा पठते नित्यं रामनामसहस्रकम्।
पठते नाममात्रन्तु मुच्यते महतो भयात्॥ २३॥

अयोध्यापुरी जाते समय मनुष्य [यदि सांसारिक मायामोहको छोड़कर] इन स्तोत्रोंका पाठ करता है या भगवान् श्रीहरिकी मंगलमयी अवतार-कथाओंका गान करता है। अथवा निरन्तर रामसहस्रनामका पाठ करता है या फिर केवल नाममात्र (राम-राम)-का कीर्तन करता है, तो वह महान् भयसे छुटकारा पा जाता है॥ २२-२३॥

अयोध्यां दृश्यमानां यो दण्डवत् प्रणमेत् सुधीः।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति विष्णोश्च सन्निधिम्॥ २४॥

जो सुबुद्ध व्यक्ति अयोध्यापुरीके [दूरसे ही] दिखलायी पड़नेपर दण्डवत् प्रणाम करता है, वह भक्त सब पापोंसे मुक्त, पवित्र आत्मावाला होकर भगवान् विष्णुके समीपमें पहुँच जाता है॥ २४॥

सर्वविघ्नविनाशं च रामं राजीवलोचनम्।
नीलोत्पलदलश्यामं पीतकौशेयवाससम्॥ २५॥
दण्डवत् प्रणमेद् भक्त्या हर्षसंयुक्तमानसः।
बालभावे कृतं पापं कौमारे यौवने तथा॥ २६॥
तत्सर्वं नाशमायाति अयोध्यादर्शने कृते।
रामदर्शनमाहात्म्यपुण्यसंख्या न विद्यते॥ २७॥

जो मनुष्य समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाले कमलनेत्र, नीलकमलदलके समान [कोमल एवं] श्यामवर्ण तथा पीले रेशमी वस्त्र धारण किये हुए श्रीरामको हर्षयुक्त मनसे भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करता है, उस भक्तकी बाल्यावस्था, कुमारावस्था और युवावस्थाके समस्त पाप [नष्ट हो जाते हैं और वैसे ही] अयोध्यापुरीके दर्शनसे [भी वे सब पाप] नष्ट हो जाते हैं। श्रीरामके दर्शनकी महिमा [का आकलन] तथा [दर्शनजनित] पुण्यकी गणना नहीं की जा सकती॥ २५—२७॥

दर्शनाद् रामदेवस्य पापं सर्वं लयं व्रजेत्।
पुनः शृणु महाभागे सरयूतीर्थमुत्तमम्॥ २८॥
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।
दुरितौघक्षयकरममंगलविनाशनम्।
सर्वकामप्रदं नृणां प्रणमेत् सरयूजलम्॥ २९॥
महापापक्षयकरं दुष्टानां च गतिप्रदम्।
सर्वपुण्यवशात् प्राप्तं सुन्दरं सरयूजलम्॥ ३०॥

देवदेव श्रीरामके दर्शनसे ही सभी पाप नाशको प्राप्त हो जाते हैं। हे महाभागे! अब फिरसे तुम [उस] उत्तम सरयूतीर्थका वर्णन सुनो, जिसके दर्शनसे ही सब पाप छूट जाते हैं, जो सरयूजल पापराशि-विनाशक, अमंगल-अनिष्ट-प्रशामक और [श्रद्धालु-विश्वासी-आस्तिक] मनुष्योंके समस्त वांछितोंका पूरक है, [तीर्थयात्री] उस सरयूजलको प्रणाम करे [और कहे]—जो महापापोंका भी ध्वंस करनेवाला है और दुरात्माओंको भी सद्गति प्रदान करनेवाला है—ऐसे उस आह्लादक सरयूजलको मैंने समस्त पुण्योंके परिणामरूपमें पा लिया है॥ २८—३०॥

श्रीपार्वत्युवाच

तीर्थे विधिं च पृच्छामि यथोक्तं फलमश्नुते।
स्नानदानैर्नरो याति विष्णुलोके वसेत् सदा॥ ३१॥

श्रीपार्वतीजीने पूछा—[हे भगवन्!] [अयोध्यातीर्थके वर्णनके प्रसंगमें] तीर्थोंके सेवनका शास्त्रोक्त विधान मैं सुनना चाहती हूँ, जिसका यथावत् अनुष्ठान करनेसे शास्त्रोक्त फल मिलते हैं तथा स्नान-दान-पुण्यादि करनेसे मनुष्य निरन्तर विष्णुलोकमें निवास करता है॥ ३१॥

श्रीशङ्कर उवाच

अनेन विधिना देवि शृणुष्वाद्यं यथातथम्।
अहं ते कथयिष्यामि यद् ऋषीणां परायणम्।

तदेकाग्रमना देवि शृणु तीर्थेषु यत्फलम्॥ ३२॥

श्रीशंकरजीने कहा—हे देवि! सुनो, [आगे कही जानेवाली] इस विधिसे आरम्भमें ही बतलाया गया ठीक-ठीक शास्त्रोक्त फल मिलता है। जो महर्षियोंका परमाश्रय अथवा उत्तमचर्या है, उस (तीर्थविधि)-को मैं तुम्हें बतलाऊँगा। हे देवि! मनको एकाग्रकर सुनो! जिन [आचरणोंके करने]-से तीर्थका फल मिलता है॥ ३२॥

यस्य हस्तौ च पादौ च जिह्वा चैव सुसंयता।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ ३३॥

जिस श्रद्धालुके हाथ-पैर तथा जीभ वशीभूत हैं तथा जिसमें विद्याज्ञान, कीर्तिरक्षाका ध्यान और इन्द्रियोंका दमनरूप तप है, वही तीर्थफल पा सकता है॥ ३३॥

अकामुको निरालम्बः स्वल्पाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वदोषैश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ ३४॥

कामवासनासे रहित होकर, [बाहरी] आश्रयका त्यागकर, [शरीरनिर्वाहार्थ] अल्पमात्र आहार लेते हुए, इन्द्रियोंको संयतकर और [मान-मद-राग-द्वेषादि] दोषोंसे विमुक्त होकर [जो तीर्थसेवन करता है,] वही तीर्थफलको पा सकता है॥ ३४॥

परिग्रहनिवृत्तश्च सन्तुष्टो येन केनचित्।
अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ ३५॥

[हे देवेशि!] जो संयमी संचय नहीं करता, जो कुछ मिल गया उसीमें सन्तुष्ट रहता है और जिसका अहम् भाव मिट गया है, वही तीर्थफल पा सकता है॥ ३५॥

अक्रोधनश्च देवेशि सत्यवादी दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥ ३६॥

हे देवेशि! जिसे क्रोध नहीं आता, जो सत्यवादी है, दृढ़व्रत है और अपने दुःख-सुखके समान जीवमात्रके दुःख-सुखको समझता है, वही तीर्थफलका अधिकारी है॥ ३६॥

ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता वेदेष्वेव यथाक्रमम्।
फलं चेह यथाबुद्धि प्रेत्य चेह च सर्वशः॥ ३७॥

वेदोंमें छोटे-बड़ेके क्रममें महर्षियोंने अनेक प्रकारके यज्ञोंको [जन-कल्याणहेतु] बतलाया है, जिनमें किसीका फल इसी लोकमें और किसी यज्ञका फल परलोकमें मिलनेवाला है। [राजस, तामस तथा सात्त्विक] बुद्धिके अनुसार सब यज्ञ अपने-अपने फलोंको देनेवाले हैं॥ ३७॥

ते न शक्या दरिद्रेण यज्ञाः कर्तुं महीतले।
बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः॥ ३८॥

वे यज्ञ इस पृथ्वीतलपर दरिद्र लोग नहीं कर सकते; क्योंकि यज्ञोंमें बहुत-से उपकरणों तथा अनेक प्रकारकी सामग्रियोंकी आवश्यकता पड़ती है। इनका विधान भी विस्तारपूर्ण है॥ ३८॥

प्राप्यन्ते पार्थिवैरेते समृद्धैर्वा नरैः क्वचित्।
नार्थन्यूनैरवगुणैर्नरैरकृतबुद्धिभिः॥ ३९॥

इन यज्ञोंको बुद्धिहीन, व्यसनी एवं धनहीन साधारण मनुष्य करनेमें असमर्थ एवं अनधिकारी माने गये हैं। ये यज्ञ तो राजाओं और कभी-कभी सर्वसमृद्धिसम्पन्न मनुष्योंद्वारा किये जाते हैं॥ ३९॥

यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं च सुन्दरि।
तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तन्निबोध महेश्वरि॥ ४०॥

हे महेश्वरि! जो विधान पुण्यफल देनेमें यज्ञोंके समान है और जिसका दरिद्र भी विधिपूर्वक अनुष्ठान करके पुण्यफल पा

सकते हैं, हे सुन्दरि! उस पुण्य कार्यको तुम मुझसे सुनो॥ ४०॥

ऋषीणां परमं गुप्तं देवानामपि दुर्लभम्।
तीर्थाभिगमनं चैव यज्ञैरपि विशिष्यते॥ ४१॥

देवताओंके लिये भी जो परम दुर्लभ है और महर्षियोंका जो परम गुप्त रहस्य है, वह तीर्थयात्रारूपी पुण्यकार्य तो यज्ञोंसे भी विशिष्ट फल देनेवाला है॥ ४१॥

अनुपोष्य त्रिरात्रं च तीर्थान्यनभिगम्य च।
अदत्वा कांचनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते॥ ४२॥

जिसने [देवदुर्लभ मनुष्यदेह पाकर] त्रिरात्र उपवास नहीं किया, तीर्थयात्रा नहीं की तथा स्वर्णदान और गोदान नहीं किया, वही भाग्यहीन दरिद्र होता है॥ ४२॥

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।
स तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत्॥ ४३॥

विशाल दक्षिणावाले अग्निष्टोम [राजसूय, वाजपेय] आदि यज्ञोंके करनेसे जो फल मिलता है, वही फल तीर्थाभिगमनसे मिलता है॥ ४३॥

नृलोके देवलोके च तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
अयोध्या नाम विख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम्॥ ४४॥

इस मृत्युलोकमें तथा देवलोकमें त्रिलोकविख्यात अयोध्या नामक तीर्थकी विशेष चर्चा की जाती है और उसे सम्पूर्ण देवता नमस्कार करते हैं॥ ४४॥

दशकोटिसहस्राणि दशकोटिशतानि च।
एतानि सर्वतीर्थानि त्रिसन्ध्यं निवसन्ति च॥ ४५॥

दस कोटि शत एवं दस कोटि सहस्रकी संख्यावाले ये जो समस्त तीर्थ हैं, वे अयोध्यापुरीमें प्रातः-मध्याह्न-सायं—तीनों सन्ध्याओंमें [सर्वदा] निवास करते हैं॥ ४५॥

आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्चैव मरुद्गणाः।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव नित्यं सन्निहितास्तथा॥ ४६॥
यत्र देवास्तपस्तप्त्वा दिव्या ब्रह्मर्षयस्तथा।
दिव्ययोगान् महादेवि पुण्येन महतान्विताः॥ ४७॥
अन्यदेशस्थितो यस्तु ह्ययोध्यां मनसा स्मरेत्।
नश्यन्ति सर्वपापानि नाकपृष्ठे च पूज्यते॥ ४८॥

जिस अयोध्यातीर्थमें [बारह] सूर्य, [आठ] वसु, [ग्यारह] रुद्र, साध्य नामक देवतागण, [उनचास] मरुद्गण, गन्धर्व तथा अप्सराएँ नित्य निवास करते हैं। हे महादेवि! जिस श्रीरामपुरीमें देवगण तपश्चर्या करके तथा दिव्य ब्रह्मर्षिगण योगसाधन करके महान् पुण्यशाली हो गये। जो व्यक्ति अन्य स्थानमें निवास करते हुए उस अयोध्यापुरीका मनसे भी स्मरण करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह देवलोकमें पूजित होता है॥ ४६—४८॥

तस्मिन् तीर्थे च देवेशि नित्यमेव पितामहः।
उवास परमप्रीतो देवदानवसंयुतः॥ ४९॥

हे देवेशि! उस अयोध्यातीर्थमें पितामह ब्रह्माजी देवताओं और दानवोंके सहित आनन्दपरिपूर्ण होकर नित्य निवास करते हैं॥ ४९॥

अयोध्यायां महादेवि देवाः शक्रपुरोगमाः।
सिद्धिं समभिसम्प्राप्ताः पुण्येन महतान्विताः॥ ५०॥

हे महादेवि! अयोध्यापुरीमें ही इन्द्रादि प्रमुख देवता भी [कठिन तप करके इन्द्रत्व, वरुणत्व, कुबेरत्व आदि] सिद्धियोंको प्राप्त कर सके और महान् पुण्यके भागी बने॥ ५०॥

तत्राभिषेकं यः कुर्यात् पितृदेवार्चने रतः।
अश्वमेधाद् दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ५१॥

उस अयोध्यातीर्थमें जो मनुष्य देवार्चन, पितृतर्पण, पिण्डदानादि करते हुए [सरयूमें] अवगाहन करता है, उसको अश्वमेध-यज्ञसे दसगुना पुण्यफल मिलता है—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं॥ ५१॥

अथैकं भोजयेद् विप्रं सरयूतीरमास्थितः।
तेनासौ कर्मणा देवि प्रेत्य चेह च मोदते॥ ५२॥

[अयोध्याजीकी तीर्थयात्रा करनेवाला मनुष्य] सरयूतटपर [कम-से-कम] एक ब्राह्मणको भोजन कराये, इस कार्यसे वह इहलोक और परलोकमें आनन्दकी प्राप्ति करता है॥ ५२॥

फलेन शाकमूलाभ्यां येन वै वर्तते स्वयम्।
तद् वै दद्याद् ब्राह्मणाय श्रद्धावाननसूयकः॥ ५३॥

श्रद्धावान् और असूया दोषसे रहित तीर्थयात्रीको चाहिये कि वह फल-शाक-कन्दमूल आदि जो आहार स्वयं ग्रहण कर रहा हो, उसको वही आहार ब्राह्मणके लिये भी देना चाहिये॥ ५३॥

तेनैव प्राप्नुयात् प्राज्ञः हयमेधफलं नरः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवेतरे जनाः॥ ५४॥
न वियोनिं व्रजन्त्येते स्नात्वा तीर्थे शुभार्थिनः।
चैत्रे मासि च सम्प्राप्ते नवमीदिनमाश्रितः॥ ५५॥
योऽभिगच्छति वै भद्रे ह्ययोध्यां सरयूं प्रति।
फलं तत्राक्षयं देवि भवतीत्यनुशुश्रुम॥ ५६॥

बुद्धिमान् मनुष्य (तीर्थयात्री) उसी (फलमूलादि अग्राशन-दानरूप कर्म)-से अश्वमेध-यज्ञके फलको प्राप्त करता है। ये जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या चाण्डालादि हैं, उन्होंने अपनी कल्याण-कामनासे यदि इस अयोध्यास्थित सरयूतीर्थमें स्नान किया है, तो ये सब [सूकर आदि] विकृत योनियोंमें जन्म नहीं लेते। हे भद्रे! जो भक्त श्रद्धालु चैत्र महीनेकी शुक्ल नवमी (रामनवमी)-के आनेपर अयोध्यापुरी तथा वहाँ बहती सरयूजीमें

जाकर आश्रय लेता है, तो उस [नवमीमें अयोध्यापुरी एवं सरयूमें स्नान-दानादि]-का फल अक्षय होता है, हे देवी! यह अनुश्रुति प्रसिद्ध है॥ ५४—५६॥

सायम्प्रातः स्मरेद् यस्तु ह्ययोध्यां च कृताञ्जलिः।
उपस्पृष्टानि तीर्थानि त्वयोध्यायाश्च भामिनि॥ ५७॥

हे भामिनि! जो तीर्थसेवी प्रातः-सायं अंजलि बाँधकर अयोध्यापुरीका [एवं वहाँके तीर्थोंका] स्मरण करता है, उसने मानो अयोध्याके समस्त तीर्थोंमें आचमन-स्नानादि [-का फल प्राप्त] कर लिया॥ ५७॥

विष्णोः पादमवन्तिकां गुणवतीं मध्यं च कांचीं पुरीं
नाभिं द्वारवतीं पठन्ति हृदयं मायापुरीं योगिनः।
ग्रीवामूलमुदाहरन्ति मथुरां नासां च वाराणसी-
मेतद् ब्रह्मपदं वदन्ति मुनयोऽयोध्यापुरीं मस्तकम्॥ ५८॥

मुनिजनोंने विशिष्ट गुणवाली अवन्तिकापुरी उज्जैनको भगवान्‌का चरण, कांचीपुरीको मध्यभाग, द्वारकापुरीको नाभि, मायापुरी (हरिद्वार)-को हृदय, मथुरापुरीको कण्ठ एवं काशीपुरीको नासिका—इस प्रकार इन छः पुरियोंको भगवान्‌का चरणादिरूप अंग बतलाकर अयोध्यापुरीको ब्रह्मका अधिष्ठानरूप मस्तक बतलाया है अर्थात् इन पुरियोंमें अयोध्या ही सर्वश्रेष्ठ है॥ ५८॥

जन्मप्रभृति यत्पापं स्त्रिया वा पुरुषस्य वा।
अयोध्यास्नानमात्रेण सर्वमेव प्रणश्यति॥ ५९॥

स्त्री अथवा पुरुषके जन्मसे लेकर उस कालतकके जितने पाप हैं, वे सब अयोध्या-स्थित सरयूमें स्नानमात्रसे नाशको प्राप्त होते हैं॥ ५९॥

यथा सुराणां सर्वेषामादिश्च मधुसूदनः।
तथैव क्षेत्रतीर्थानामयोध्या त्वादिरुच्यते॥ ६०॥

जिस प्रकार सब देवोंमें श्रीविष्णुभगवान् सबके आदि कारण

माने जाते हैं, उसी प्रकार समस्त क्षेत्रों तथा तीर्थोंकी आदि कारणभूता श्रीअयोध्यापुरी है॥ ६०॥

प्राप्य द्वादशरात्राणि योऽयोध्यां नियतः शुचिः।
क्रतून् सर्वानवाप्नोति स्वर्गलोकं स गच्छति॥ ६१॥

जो मनुष्य भीतर-बाहरसे विशुद्ध रहता हुआ नियमित रूपसे बारह रात्रि भी अयोध्यापुरीमें निवास करता है, वह समस्त यज्ञोंके फलको पाकर स्वर्गगामी होता है॥ ६१॥

ये तु वर्षशतं पूर्णमग्निहोत्रमुपासते।
अयोध्यां वसते रात्रिं फलं कोटिगुणं स्मृतम्॥ ६२॥

जिन कर्मनिष्ठोंने पूरे सौ वर्ष अग्निहोत्र करके जो वेदोक्त फल पाया है, उसका करोड़ गुना फल अयोध्यापुरीमें मात्र एक रात्रि वास करनेवालेको मिलता है॥ ६२॥

अयोध्यां दुष्करं गन्तुमयोध्यां दुष्करं तपः।
अयोध्यां दुष्करं दानं वासश्चैव सुदुष्करः॥ ६३॥

अयोध्यापुरीमें गमन अति कठिन है, अयोध्या-सेवन असाध्य तप है, अयोध्यापुरीमें दान भी दुष्कर है और अयोध्यावास तो अत्यन्त ही दुष्कर है॥ ६३॥

उपोष्य द्वादशरात्रं नियतो नियताशनः।
प्रदक्षिणा कृता येन जम्बूद्वीपस्य सा कृता॥ ६४॥

जिसने नियमनिष्ठ होकर उचित आहार लेते हुए बारह रात्रितक उपवास करके अयोध्यापुरीकी प्रदक्षिणा की, उसने मानो पूरे जम्बूद्वीपकी परिक्रमा कर ली॥ ६४॥

अश्वमेधमवाप्नोति सर्वकामसमन्वितः।
अत्रोषित्वा तु रजनीं पूतात्मा मानवो भवेत्॥ ६५॥

इस अयोध्यापुरीमें एक रात्रि भी निवास करके मनुष्य पवित्र आत्मावाला और पूर्णकाम हो जाता है तथा अश्वमेध-यज्ञ

करनेका फल प्राप्त करता है॥ ६५॥

न दुर्गतिमवाप्नोति सिद्धिं प्राप्नोति चोत्तमाम्।
अयोध्यादर्शनाद् देवि दिव्यदेहमवाप्नुयात्॥ ६६॥

हे देवि! मनुष्य अयोध्यापुरीके दर्शनमात्रसे कभी भी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता। जीवनमें उत्तमोत्तम कामनाओं—सिद्धियोंको प्राप्तकर अन्तमें वह दिव्य देह भी प्राप्त कर लेता है॥ ६६॥

अयोध्या च परं ब्रह्म सरयूः सगुणः पुमान्।
तन्निवासी जगन्नाथः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ६७॥

अयोध्यापुरी तो परब्रह्मरूपा है और सरयूतीर्थ साकार जलाकार परमपुरुष परमात्मा है। उस अयोध्याके निवासी समस्त जीव श्रीजगन्नाथजीके रूप हैं। हे देवि! मैं सत्य कह रहा हूँ, मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ६७॥

यस्याः प्रभावमतुलं वेदा देवाः शिवो ह्यहम्।
नहि वक्तुं समर्थाः स्मो विष्णुश्च सगुणः पुमान्॥ ६८॥

इस अयोध्यापुरीके अनुपम प्रभावको समस्त वेद, देवता, मैं साक्षात् शिव और साकार परमपुरुष विष्णु भी वर्णन करनेमें असमर्थ हैं॥ ६८॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे अयोध्यामाहात्म्यं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-संवादरूप अयोध्याखण्डके अन्तर्गत 'अयोध्यामाहात्म्य' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

सरयूजीकी उत्पत्तिका इतिहास, सरयू-अष्टकस्तोत्र एवं अयोध्या तथा सरयूका माहात्म्य

श्रीपार्वत्युवाच

देवदेव महादेव भक्तानुग्रहकारक।
ब्रूहि कान्त सरय्वाश्च ह्युत्पत्तिं मम साम्प्रतम्॥ १॥

श्रीपार्वतीजीने पूछा—हे देवोंके देव महादेवजी! आप भक्तोंपर कृपालु रहते हैं। हे कान्त! इस समय आप मुझसे सरयूकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये॥ १॥

एते वै मुनयः सर्वे नानादेशनिवासिनः।
उत्कण्ठन्ते कथां श्रोतुं त्वत्तः सरयुसम्भवाम्॥ २॥

सामने बैठे हुए अनेक देशोंके निवासी ये सभी मुनिगण आपके मुखसे सरयूजीकी उत्पत्तिकी कथा सुननेके लिये उत्कण्ठित हैं॥ २॥

श्रीशङ्कर उवाच

सरयूः स्वमुखेनैव स्वामुत्पत्तिमुवाच ह।
तामहं कथयिष्यामि या श्रुता पुरवासिभिः॥ ३॥

श्रीशंकरजी बोले—सरयूजीने अपनी उत्पत्तिकी कथाका अपने ही श्रीमुखसे [पुरवासियोंके समक्ष] वर्णन किया था। उस उत्पत्तिकथाको मैं [तुमसे] कह रहा हूँ, जिसे मैंने अयोध्यावासियोंसे सुना था॥ ३॥

एकदा रामचन्द्रस्तु बालरूपी सुकौतुकी।
सखिभिर्भ्रातृभिः सार्धं दुर्गद्वारे च क्रीडति॥ ४॥

एक समय परम कौतुकी बालरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी

तीनों भाइयों तथा [समवयस्क] सखाओंके साथ राजसदन (किले)-के द्वारपर खेल रहे थे॥ ४॥

वृषस्कन्धः सखा कश्चित् तस्य स्कन्धे रुरोह वै।
तथा भरतशत्रुघ्नौ लक्ष्मणश्च निजान् सखीन्॥ ५॥

बालक श्रीराम बैलके समान कन्धेवाले किसी सखाके कन्धेपर बैठ गये तथा भरत, शत्रुघ्न एवं लक्ष्मण भी अपने-अपने सखाओंके कन्धोंपर बैठे॥ ५॥

चामरैर्वीज्यमानाश्च तथा बालैः समन्ततः।
अलकैः कम्पमानैश्च मुखस्योपरि शोभिताः॥ ६॥

चारों भाइयोंके अगल-बगल समान अवस्थावाले सखा लोग चामर डुला रहे थे, उससे मुखपर लटके हुए घुँघराले बाल उड़-उड़कर मुखारविन्दकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ६॥

मन्त्रैर्मन्त्रैस्तथामात्यै रक्षितः प्रभुरीश्वरः।
अंगेऽगे च तथा दिव्यं भूषणं विदधत् प्रभुः॥ ७॥

मन्त्रतत्त्वज्ञ लोग अनेक प्रकारके मन्त्रोंके द्वारा [टोना-टामरादिकोंसे] तथा अमात्य (मन्त्रियोंके पुत्रादि)-गण [इधर-उधरके स्पर्शोंसे] सर्वसमर्थ प्रभावशाली श्रीरघुनन्दनकी रक्षा कर रहे थे। प्रभु श्रीराम पैरसे लेकर मस्तकपर्यन्त प्रत्येक अंगमें दिव्य भूषण धारण किये हुए थे॥ ७॥

दिव्यगन्धानुलिप्तांगो राजराजेश्वरात्मजः।
सखिस्कन्धगतो रामो भ्रातृभिर्द्वार्विनिर्ययौ॥ ८॥

[केशर-कस्तूरी-चन्दन-इत्र आदि] उत्तम गन्धद्रव्य अंगोंमें लगाये हुए राजराजेश्वर दशरथनन्दन राजकुमार श्रीराम सखाओंके कन्धेपर बैठे हुए भाइयोंके साथ द्वारसे बाहर निकले॥ ८॥

शिरसा धारयन् रामः स्वर्णसूत्रस्य पट्टिकाम्।
कंचुकं च महादिव्यं स्वर्णसूत्रेण शीलितम्॥ ९॥

बालक श्रीराम सिरपर सुवर्णके तारोंसे बनी हुई पट्टिकासे संयुक्त कामदार टोपी तथा अति रमणीय सुवर्णके तारोंसे सिले हुए जड़ाऊ कंचुक पहने हुए थे॥ ९॥

द्वारदेशं विनिर्गत्य रामो राजीवलोचनः।
तथा भरतशत्रुघ्नौ लक्ष्मणश्च महामतिः॥ १०॥
तथा वेषेण ते बालाः क्रीडां चक्रुर्मनोरमाम्।
शतशो नागरास्तत्र रामं दृष्ट्वा मुदं ययुः॥ ११॥

कमलनेत्र श्रीरामभद्र, महाबुद्धिमान् लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—ये चारों राजकुमार सिंहद्वारपर आ करके वैसी ही वेषभूषावाले एवं समान अवस्थावाले बालसखाओंके साथ चित्ताकर्षक खेलोंको खेलने लगे। सैकड़ों नगरनिवासी नर-नारियाँ बालकोंके मध्य क्रीडामें तल्लीन श्रीरामको देखकर आनन्दमें निमग्न हो रहे थे॥ १०-११॥

बालवृद्धाः पुरन्ध्र्यश्च लेभिरे परमां मुदम्।
ज्येष्ठमासस्य पूर्णायां राजा दशरथो नदीम्॥ १२॥
रामनिर्गमनात् पूर्वं सरयूं स्नातुमागतः।
रघुनाथः सखीनाह क्व चास्ति जनको मम॥ १३॥

बहुत-से बालक, वृद्ध और स्त्रियाँ [श्रीरामचन्द्रजीकी इस देवदुर्लभ बालक्रीड़ाको देखकर] उत्कृष्ट आनन्द ले रहे थे। उस दिन ज्येष्ठ मासकी पूर्णमासी थी। महाराज दशरथ [अपने परिकरोंके साथ प्रातःकाल ही] श्रीरामके निकलनेसे पहले ही सरयूजीमें स्नानके लिये चले गये थे। [खेलते हुए] श्रीरामचन्द्रजीने [अपनी तोतली वाणीसे] बाल-सखाओंसे पूछा—[भाइयो!] मेरे पिताजी कहाँ हैं?॥ १२-१३॥

तत्र सर्वे वयं शीघ्रं व्रजिष्यामोऽद्य मा चिरम्॥ १४॥

जहाँ पिताजी [स्नानको] गये हैं, वहीं हम सब लोग भी

अवश्य चलेंगे—अवश्य चलेंगे, और अब देर मत करो॥ १४॥

वेत्रधरा ऊचुः

स्नानार्थं तु गतो राजा ह्यधुना सरयूं नदीम्।
श्रीमद्भिस्तत्र गन्तव्यं निकटे वर्तते मनः॥ १५॥

यष्टिधर संरक्षकोंने कहा—महाराज तो [प्रातः समय ही जब आप सो रहे थे, तभी] सरयूजीमें स्नानके लिये गये हैं। यदि आप श्रीमान्‌की उत्कट इच्छा है, तो वे समीपमें ही हैं, वहाँ आप लोग अवश्य चलें॥ १५॥

इति वाक्यं तु तेषां वै रामः श्रुत्वा च बालवत्।
हास्यं कृत्वा मुहुश्चोच्चैर्गच्छ गच्छेति चाब्रवीत्॥ १६॥

श्रीरामने उन संरक्षक वेत्रधारियोंके इस कथनको सुनकर बालकके समान हँसकर उच्च स्वरसे बार-बार 'चलो-चलो'—ऐसा [बाल-सखाओंसे] कहा॥ १६॥

ताडयामास तं पद्भ्यां यस्य स्कन्धेऽवतस्थिवान्।
अधावत् सोऽपि वेगेन बालैः सार्धं महामतिः॥ १७॥

श्रीराम जिस सखाके कन्धेपर बैठे हुए थे, उसको अपने दोनों पैरोंसे चलनेके लिये ठोकर लगायी तो वह बुद्धिमान् बालक भी अन्य बालकोंके साथ वेगपूर्वक दौड़ने लगा॥ १७॥

सरयूं प्रति ते सर्वे बालास्तूर्णं प्रतस्थिरे।
मार्गे तत्र नरा नार्यो दृष्ट्वा सर्वे मुदं ययुः॥ १८॥

श्रीरामके साथ वे सब बालक सरयूकी ओर बड़े वेगसे चल पड़े। उस मार्गमें सभी नर-नारियाँ [इस अनुपम लीलाको] देखकर आनन्दलाभ करने लगे॥ १८॥

राजापि सरयूतीरे कृत्वा सन्ध्याजपादिकम्।
गन्तुं चक्रे मनस्तावद् वसिष्ठादिभिरन्वितः॥ १९॥

चारा आगत्य वेगेन रामागमनमब्रुवन्।
क्षणं तस्थौ तदा राजा रामागमनहर्षितः॥ २०॥

महाराज दशरथ भी वसिष्ठादि मुनियोंके साथ सरयूके तटपर सन्ध्या-तर्पण, जपादि नित्यकर्म समाप्तकर [राजमहल] जानेके लिये मनमें सोच ही रहे थे कि तभी समाचार देनेवाले सिपाहियोंने वेगसे आकर महाराजको श्रीरामके आनेका समाचार सुनाया। उस समय श्रीरामके आगमनसे हर्षित महाराज भी कुछ देरके लिये रुक गये॥ १९-२०॥

बालाः सर्वे समाजग्मुः शतशोऽथ सहस्रशः।
चतुराणां चतुर्णां तु चत्वारश्चतुरैः सह॥ २१॥
बालकैस्ते कुमारास्तु भूपतेर्निकटं ययुः।
प्रोत्तीर्य च वयस्यानां स्कन्धेभ्यो बालकास्तथा॥ २२॥

इधर सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें जो [राजद्वारपर] बालक उपस्थित थे, वे सभी चल पड़े। उन चारों राजकुमारोंको चार बालक कन्धोंपर पृथक्-पृथक् उठाये हुए चल रहे थे और उनमेंसे प्रत्येक कुमारके साथ चार-चार बालक [अंगरक्षकके रूपमें] जा रहे थे। वे कुमार उन बालकोंके साथ महाराजके समीप जा पहुँचे और अपने मित्रोंके कन्धोंसे उतर गये॥ २१-२२॥

नृपस्य निकटे तस्थू रामोऽङ्के पितुराविशत्।
कुथे परमविस्तीर्णे स्वर्णसूत्रेण रंजिते॥ २३॥
निवेश्य बालकान् सर्वान् रामं प्राह नृपोत्तमः।
दण्डवत् क्रियतां वत्स वासिष्ठ्यै तु पुनः पुनः॥ २४॥

महाराजके निकट सब बालक जाकर खड़े हो गये। श्रीरामको पिताने गोदमें ले लिया। राजशिरोमणि दशरथजीने सुवर्णके तारोंसे बने हुए और अतिविस्तृत सुन्दर गलीचेपर श्रीरामके साथ आये हुए समस्त बालकोंको बैठाकर श्रीरामसे कहा—वत्स! वसिष्ठपुत्री

सरयूजीको बार-बार दण्डवत् करो॥ २३-२४॥

नरेशस्य वचः श्रुत्वा बालाः सर्वे नदीं प्रति।
साष्टांगं प्रणतिं चक्रुः प्रेम्णा रामादयोऽर्भकाः॥ २५॥

दशरथजीके कथनको सुनकर सभी सखाओंके साथ श्रीराम आदि कुमारोंने सरयूजीको बड़े प्रेमसे साष्टांग प्रणाम किया॥ २५॥

पुनर्निवेश्य तानग्रे कृत्वा च करकुड्मलम्।
जगाद सरयूं राजा सर्वेषां चैव शृण्वताम्॥ २६॥

महाराजने बालकोंके प्रणाम कर लेनेके अनन्तर पुनः उन सबको सामने ही बैठा लिया और हाथोंको जोड़कर समस्त जनोंको सुनाते हुए सरयूजीसे कहा— ॥ २६॥

राजोवाच

नमस्ते सरयू देवि वसिष्ठतनये शुभे।
ब्रह्मादिसकलैर्देवैर्ऋषिभिर्नारदादिभिः॥ २७॥
सदा त्वं सेविता देवि तथा सुकृतिभिर्नरैः।
मानसाच्च समायाते जगतां पापहारिणि॥ २८॥

राजा बोले—हे मंगल करनेवाली! ब्रह्मादि समस्त देवों, नारदादि महर्षियों और पुण्यात्मा मनुष्योंसे सर्वदा सेवित होनेवाली हे वसिष्ठपुत्रि सरयूदेवि! आपको बार-बार प्रणाम है। समस्त जगत्के पाप हरनेवाली आप [वसिष्ठजीकी प्रार्थनापर] मानसरोवरसे आयी हैं॥ २७-२८॥

स्मरतां पश्यतां देवि पापनाशे पटीयसि।
ये पिबन्ति जलं देवि त्वदीयं गतमत्सराः॥ २९॥

हे देवि! जो भक्त आपका केवल स्मरण ही कर पाते हैं तथा जो केवल दर्शन करनेमें ही समर्थ हैं, उनके भी पापप्रणाशमें आप बड़ी निपुण हैं। हे अम्ब! जो जन आपके जलका पान करते हैं, वे नर ईर्ष्या-मत्सर-द्वेषादि दोषोंसे रहित तथा निर्मल मनवाले हो जाते हैं॥ २९॥

स्तनपानं ते न मातुः करिष्यन्ति कदाचन।
मनुप्रभृतिभिर्मान्यैर्मानितासि सदा शुभे॥ ३०॥

उन्हें कभी भी माताके स्तनपानका अवसर नहीं मिलता। अर्थात् जन्म-मरणसे वे मुक्त हो जाते हैं। हे मंगलमयि! आप मनु आदि सम्मानित महाराजाओंसे सर्वदा सम्पूजित होती आ रही हैं॥ ३०॥

त्वत्तीरमरणेनैव त्वन्नामरटनेन च।
ये त्यजन्ति तनुं देवि ते कृतार्था न संशयः॥ ३१॥

हे देवि! जो लोग आपके तटपर शरीर छोड़ते हैं तथा जो भक्त कहीं भी 'सरयू-सरयू' ऐसा आपका नाम रटते हुए इस भौतिक शरीरको छोड़ते हैं, वे कृतकृत्य हो जाते हैं अर्थात् उन्हें कुछ करनेको अवशेष नहीं रहता, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ३१॥

त्वन्तु नेत्रोद्भवा देवि हरेर्नारायणस्य हि।
महिमा तव देवैश्च गीयते च मुहुर्मुहुः॥ ३२॥

हे देवि! आप तो नारायण श्रीहरिके नेत्रोंसे उत्पन्न हुई हैं तथा आपकी महिमाको देवताओंने बार-बार गाया है॥ ३२॥

तत्र का हि मनःशक्तिः स्तवने मानुषस्य च।
त्वत्तीरे सर्वतीर्थानि निवसन्ति चतुर्युगे॥ ३३॥

ऐसी स्थितिमें मेरे सदृश मनुष्योंके मनकी शक्ति आपकी स्तुतिमें कैसे समर्थ हो सकती है! चारों युगोंमें आपके तटपर समस्त तीर्थ निवास करते हैं॥ ३३॥

नमो देवि नमो देवि पुनरेव नमो नमः।
हे वासिष्ठि महाभागे प्रणतं रक्ष बन्धनात्॥ ३४॥

हे वसिष्ठतनये! हे महाभाग्यशालिनि! हे देवि! आपको प्रणाम है, आपको मेरा बार-बार प्रणाम है। मुझ शरणागत भक्तको जन्म-मृत्युके बन्धनसे बचाइये॥ ३४॥

इमे बालास्त्वदीयाश्च वर्तन्ते शरणं तव।
एते रक्ष्याश्च पोष्याश्च तटे देवि सदात्मनः॥ ३५॥

हे देवि! ये चारों बालक आपके ही हैं और आपकी ही शरणमें हैं। इनकी रक्षा, पालन-पोषण अपने तटपर सर्वदा आप कीजिये॥ ३५॥

नद्यष्टकं विधायाथ पुत्राणामुदयाय च।
स्वर्णलक्षं च विप्रेभ्यः पुत्रहस्तैरदापयत्॥ ३६॥

दशरथजीने इस प्रकार सरयूजीकी सरयू-अष्टकस्तोत्रसे स्तुतिकर अपने चारों कुमारोंके अभ्युदयके लिये पुत्रोंके हाथसे लक्ष सुवर्णमुद्राओंका [पूजनपूर्वक सुपात्र] ब्राह्मणोंको दान कराया॥ ३६॥

राज्ञः स्तवं समाकर्ण्य सरयूः कामरूपिणी।
दर्शनार्थं कुमाराणामाजगाम तटे पुनः॥ ३७॥

इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली सरयूजी दशरथजीके इस स्तोत्रको सुनकर कुमारोंके दर्शनके लिये मूर्तरूपमें तटपर आ गयीं॥ ३७॥

सर्वाङ्गेषु दधाना सा भूषणानि मनोहरा।
आगत्य निकटे तस्थौ बालानां सम्मुखे सरित्॥ ३८॥

मनको मोहित करनेवाली, सम्पूर्ण अंगोंमें उत्तमोत्तम भूषणोंको धारण की हुई वे सरयूजी समीपमें आकर चारों बालकोंके सामने उपस्थित हो गयीं॥ ३८॥

जग्राह चरणौ तस्या बालैः सह नरेश्वरः।
आशिषः सरयूर्दत्वा राममङ्के न्यवेशयत्॥ ३९॥

दशरथजीने कुमारोंके सहित सरयूजीके चरणोंमें प्रणाम किया। सरयूजीने आशीर्वाद देकर श्रीरामचन्द्रजीको अपनी गोदमें बैठा लिया॥ ३९॥

मुक्तामालां तु रामस्य ददौ कण्ठे स्वयं मुदा।
घ्राणं चकार मूर्ध्नस्तु प्रेम्णा सा सरयूर्नदी॥ ४०॥

सरयूदेवीने बड़ी प्रसन्नतासे श्रीरामके गलेमें मोतीकी माला

पहना दी और वात्सल्य-प्रेमसे मस्तकको सूँघा॥ ४०॥

भूपतिं जगदे सा तु शृणु राजन् वचो मम।
इमे च बालका इष्टाः सर्वेषामण्डगोलके॥ ४१॥
वसन्ति मम कुक्षौ हि पश्यतां ज्ञानचक्षुषाम्।
त्वया कृतमिदं यस्तु ह्यष्टकं च पठेन्मम॥ ४२॥
स्नानस्य सर्वतीर्थानां फलमाप्नोति मानवः।
उक्त्वैवं दर्शयामास रामादीन् निजकुक्षिगान्॥ ४३॥

प्रत्यक्ष खड़ी हुई श्रीसरयूने दशरथजीसे कहा कि हे राजन्! मेरी वाणी सुनो, ये चारों बालक ब्रह्माण्डगोलकमें सम्पूर्ण प्राणीमात्रके इष्ट हैं और मेरी कुक्षिमें (कोखमें) निवास करते हैं, परन्तु इस रहस्यको ज्ञान-नेत्रवाले पुरुष ही देख सकते हैं। आपका बनाया हुआ यह अष्टश्लोकात्मक मेरा स्तोत्र जो पढ़ेगा, उस मनुष्यको समस्त तीर्थोंके स्नानका फल प्राप्त होगा। ऐसा कहकर सरयूजीने अपनी कुक्षिमें श्रीराम आदि चारों भाइयोंको स्थित दिखलाया॥ ४१—४३॥

दृष्ट्वा दशरथो राजा विस्मयं परमं गतः।
पप्रच्छ तां प्रणम्यादौ कदोत्पन्ना सरिद्वरे॥ ४४॥

महाराज दशरथ यह देखकर अत्यन्त आश्चर्यविभोर हो गये। उन्होंने सर्वप्रथम सरयूजीके चरणोंमें प्रणामकर उनसे पूछा कि हे उत्तम नदियोंमें श्रेष्ठ सरयूजी! आप कब उत्पन्न हुईं?॥ ४४॥

वसिष्ठेन समानीता मनोर्वैवस्वतान्तरे।
वासिष्ठीति समाख्याता पुत्रा मे ह्युदरे धृताः।
कथ्यतामिति मे पृष्टं स्वमुखेनैव हे नदि॥ ४५॥

वसिष्ठजीके द्वारा वैवस्वत मन्वन्तरमें आप लायी गयी हैं। अतः आपका नाम 'वासिष्ठी' ऐसा प्रसिद्ध है तथा मेरे पुत्रोंको आपने अपने उदरमें धारण किया है। [यह आश्चर्यकी बात है,

इसलिये] मैंने [आपसे ऐसा] पूछा है—हे सरिते! इस मेरे प्रश्नको आप अपने मुखसे कहें॥ ४५॥

श्रीशङ्कर उवाच

उवाच सरयूर्भूयो वाचा गम्भीरया नदी।
श्रूयतां राजशार्दूल ह्युत्पत्तिं कथयामि ते॥ ४६॥

श्रीशंकरजीने कहा—[हे पार्वती!] सरिद्रूपा सरयूजी तब गम्भीर वाणीमें बोलीं—हे राजशिरोमणि! सुनो, मैं अपनी उत्पत्तिका वृत्तान्त आपसे कहती हूँ॥ ४६॥

सृष्ट्यादौ तु यदा ब्रह्मा पद्मनाभस्य नाभितः।
उत्पन्नो विष्णुनाज्ञप्तः तपसाराधयेति माम्॥ ४७॥

सृष्टिके आदिमें जब नारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और उन्हें श्रीविष्णुभगवान्‌की आज्ञा हुई कि तपके द्वारा मेरी आराधना करो॥ ४७॥

तदा धाता तपः कर्तुं मनश्चक्रे निजासने।
दिव्याब्दानां सहस्रं च कुम्भकेन व्यवस्थितः॥ ४८॥

ध्यायन् भगवतो रूपं कोटिमन्मथसुन्दरम्।
निदेशे वर्तमानं तं विज्ञाय कमलापतिः॥ ४९॥

आरुह्य गरुडं वेगात् त्रिपाल्लोकात् समागमत्।
तं तदा तादृशं दृष्ट्वा ह्यात्मभक्तिपरायणम्॥ ५०॥

कृपया सम्परीतस्तु जलं नेत्रान्मुमोच ह।
पस्पर्श पाणिपद्मेन पद्मनाभो हि पद्मजम्॥ ५१॥

उस समय ब्रह्माजीने अपने मनको तप करनेमें लगाया और वे अपने आसनपर ही देवताओंके हजार वर्षपर्यन्त कुम्भक प्राणायाम साधकर भगवान्‌के करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर रूपका ध्यान करनेमें तल्लीन हो गये। तब लक्ष्मीपति श्रीहरि

अपने आज्ञापालनमें तत्पर ब्रह्माजीको जानकर वेगसे गरुड़जीपर बैठकर अपने त्रिपाद्विभूतिस्थानसे ब्रह्माजीके पास आ गये और उनको अपनी भक्तिमें सन्नद्ध देखकर दयासे परिपूर्ण होकर भगवान् अपनी आँखोंसे अश्रुपात करने लगे एवं अपने करकमलोंसे श्रीभगवान्ने ब्रह्माजीके शरीरको स्पर्श किया॥ ४८—५१ ॥

स्पर्शनात् पद्मनाभस्य सुखात् स प्रपितामहः।
सुशीतेनैव स्पर्शेन तत्यजे कुम्भकं विधिः॥ ५२॥

श्रीभगवान्के स्पर्शके कारण (शरीरपर हाथ फेरनेसे) होनेवाले सुखसे उन ब्रह्माजीने शीतलताका अनुभवकर कुम्भक प्राणायामको त्याग दिया॥ ५२ ॥

उन्मील्य नयनेऽपश्यल्लोकनाथं पितामहः।
प्रणम्य दण्डवद् वेधास्तस्यापश्यच्च माधुरीम्॥ ५३॥

ब्रह्माजीने अपने नेत्रोंको खोलकर सामने उपस्थित भगवान्को देखा तथा दण्डवत् प्रणाम करके वे उनकी रूपमाधुरीका अवलोकन करने लगे॥ ५३ ॥

पतितं विष्णुनेत्राच्च जलं जग्राह पाणिना।
कमण्डलौ तदा प्रेम्णा स्थापयामास विश्वसृट्॥ ५४॥

संसारके रचयिता ब्रह्माजीने भगवान्की आँखोंसे गिरे हुए जलको अंजलिमें रोक लिया और बड़े प्रेमसे अपने कमण्डलुमें रख लिया॥ ५४ ॥

चतुर्भिर्वदनैर्ब्रह्मा तुष्टाव जगतीपतिम्।
स्तोत्रेण च प्रसन्नोऽभूद् वरं दत्वा जगाम सः॥ ५५॥

ब्रह्माजीने अपने चारों मुखोंसे जगत्के स्वामी भगवान्की स्तुति की। उस स्तुतिसे प्रसन्न होकर प्रभु ब्रह्माजीको वरदान देकर अपने लोकको चले गये॥ ५५ ॥

ब्रह्मापि तज्जलं ज्ञात्वा ब्रह्मद्रवमिदं शुभम्।
मनसा रचयामास मानसं हि सरश्च सः॥ ५६॥

तब ब्रह्माजीने भी 'यह जल मंगलमय एवं [अतिपवित्र] ब्रह्मद्रव है' (ब्रह्मसे अभिन्न नारायणके नेत्रोंसे निकला है)—ऐसा समझकर अपने मनके द्वारा मानस सरोवरकी रचना की॥ ५६॥

जलस्य सरसि न्यासं तस्मिंश्चक्रे च पद्मजः।
जलस्य द्रुहिणो ज्ञात्वा माहात्म्यं परमाद्भुतम्॥ ५७॥

ब्रह्माजीने उस जलके आश्चर्यजनक अतिविलक्षण माहात्म्य—प्रभावको जानकर वह नेत्रज जल उसी [निजनिर्मित] मानसरोवरमें रख दिया॥ ५७॥

स्वयं तु जगतां सर्गे सम्बभूव पितामहः।
एवं बहुगते काले ययुर्मन्वन्तराणि षट्॥ ५८॥

[मानसरोवरमें जलको रखकर] ब्रह्माजी स्वयं जगत्की सृष्टि-रचना में लग गये। इस प्रकार बहुत अधिक समय—छः मन्वन्तर बीत गये॥ ५८॥

सप्तमो वै श्राद्धदेवोऽयोध्यायामभवन्मनुः।
तस्य पुत्रस्तु राजासीदिक्ष्वाकुस्तव पूर्वजः॥ ५९॥

सातवें मन्वन्तरमें श्राद्धदेव नामक मनु अयोध्यापुरीके महाराज हुए। उनके पुत्र इक्ष्वाकु भी अयोध्यापुरीके राजा हुए, जो आपके पूर्वज थे॥ ५९॥

अभवत् पृथिवीपालस्तेनाज्ञप्तो मुनिः स्वयम्।
वसिष्ठो मानसं गत्वा नद्यर्थं भुजकेशिनम्॥ ६०॥

वे इक्ष्वाकु सम्पूर्ण पृथिवीके सम्राट् थे, उन्होंने [प्रजाका पालन करते समय अयोध्यावासी प्रजाको जलपूर्ण नदी न होनेके कारण दुखी देखकर वसिष्ठजीसे जलपूर्ण] नदी लानेके लिये

प्रार्थना की। तब वसिष्ठजीने [सूर्यवंशके कुलगुरु होनेके कारण] स्वयं मानसरोवरपर जाकर नदीके लिये श्रीहरिकी आराधना की॥ ६०॥

तुष्टाव सम्प्रसन्नोऽभूद् वरं ब्रूहि द्विजोत्तम।
वव्रे मुनिर्नदीं तस्मात्तेन दत्तं च नेत्रजम्॥ ६१॥

श्रीविष्णु वसिष्ठजीकी स्तुति एवं आराधनासे प्रसन्न होकर बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! वर माँगो। वसिष्ठजीने अयोध्यापुरीकी शोभावर्धक एक नदीके लिये उनसे याचना की, तब भगवान् विष्णुने अपने नेत्रसे निकले हुए उसी जलको दे दिया॥ ६१॥

जलं यन्मानसे न्यस्तं ब्रह्मणा ब्रह्मयोनिना।
नदीरूपेण साऽहं वै सरसस्तु विनिर्गता॥ ६२॥

चारों वेदोंके समुद्धर्ता ब्रह्माजीने अपने मनके द्वारा रचित मानससरोवरमें जिस भगवन्नेत्र-निस्सृत जलको रखा था, मानसरोवरसे नदीरूपमें निकली मैं वही [जलराशि] हूँ॥ ६२॥

वसिष्ठः प्रययावग्रे पश्चाच्चाहं तु तस्य वै।
विष्णुनेत्रसमुत्पन्ना रामं कुक्षौ बिभर्म्यहम्॥ ६३॥

वसिष्ठजी आगे-आगे चले और मैं उनके पीछे-पीछे चली। विष्णुभगवान्के नेत्रसे उत्पन्न हुई मैं श्रीरामको अपनी कुक्षि (कोख)-में सदैव धारण किये रहती हूँ॥ ६३॥

ये ध्यायन्ति सदा रामं मम कुक्षिगतं नराः।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः॥ ६४॥

जो मनुष्य मेरी कोखमें स्थित श्रीरामका सदा ध्यान करते हैं, उनको भुक्ति तथा मुक्ति (भोग-मोक्ष)—दोनों मिलते हैं, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है॥ ६४॥

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
भक्तानां रक्षणार्थाय दुष्टानां च वधाय वै॥
जातस्तव गृहे राजन् तपसा तोषितस्तव॥ ६५॥

हे राजन्! आप इन श्रीरामको अद्वैत सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म जानो। आपकी तपश्चर्यासे सन्तुष्ट होकर, भक्तोंकी रक्षाके लिये तथा दुष्टोंके संहारके लिये ये आपके घरमें उत्पन्न हुए हैं॥ ६५॥

श्रीशङ्कर उवाच

विश्राव्य चात्मनो जन्म त्वन्तर्धानं हि सा गता।
अयोध्यावासिनः सर्वे विस्मयं लेभिरे परम्॥ ६६॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—[हे पार्वती!] सरयूजी अपने जन्मकी कथा दशरथजीको सुनाकर [सबके देखते-देखते] अन्तर्धान हो गयीं। तब [वहाँ उपस्थित] समस्त अयोध्यावासीजन [इस विलक्षण घटनाको देख तथा सुनकर] बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ ६६॥

धन्यो दशरथो राजा धन्येयं सरयूनदी।
इति शुश्राव धर्मात्मा धार्मिकाणां शिरोमणिः॥ ६७॥

धर्मात्मा, धार्मिक जनोंके मुकुटमणि महाराज दशरथजीने 'धन्य हैं महाराज दशरथ, धन्य है यह सरयू नदी'—ऐसा अयोध्यावासियोंको कहते हुए सुना॥ ६७॥

ततो दशरथो राजा विज्ञाप्य चात्मनो गुरुम्।
आजगाम गृहं ध्यायन् भाग्यं स्वं च महामतिः॥ ६८॥

इसके पश्चात् महाबुद्धिमान् महाराज दशरथजी अपने गुरु वसिष्ठजीकी आज्ञा लेकर [परिकरों एवं चारों कुमारोंके साथ] अपने भाग्यकी मनमें सराहना करते हुए अपने राजसदन में आ

गये ॥ ६८ ॥

वसिष्ठेन समानीता वासिष्ठी परिकीर्तिता।
रामार्थे च समायाता रामगंगा च कथ्यते॥ ६९ ॥

वसिष्ठजीके द्वारा लायी गयी होनेसे सरयूजीको वासिष्ठी कहते हैं, श्रीरामको आनन्द देनेके लिये सरयूजी अयोध्यामें आयीं, इसलिये उनका एक नाम रामगंगा भी है॥ ६९ ॥

अयोध्यां प्रापयामास तां नदीं मानसोद्भवाम्।
सरसः सम्प्रवृत्ता तु सरय्विति प्रथामगात्॥ ७० ॥

मानसरोवरसे आविर्भूत उस नदीको वसिष्ठजी अयोध्या ले आये। वह [मानस नामक] सरोवरसे निकली थी, इसलिये वह 'सरयू' नामसे प्रसिद्ध हुई॥ ७० ॥

मन्वन्तरसहस्त्रैस्तु काशीवासेन यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥ ७१ ॥

सहस्त्रों मन्वन्तरपर्यन्त काशीपुरीमें निवास करनेसे जो फल मिलता है, वही फल सरयूजीके दर्शनसे मिलता है॥ ७१ ॥

प्रयागे यो नरो गत्वा मासद्वादशकं वसेत्।
तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥ ७२ ॥

तीर्थराज प्रयागमें बारह महीनेतक निवास करनेवाले मनुष्यको जो फल मिलता है, वही फल सरयूजीके केवल दर्शनसे मिलता है॥ ७२ ॥

गयाश्राद्धं च यः कुर्यात् पुरुषोत्तमदर्शनम्।
तत्फलादधिका प्रोक्ता कलौ दाशरथी पुरी॥ ७३ ॥

गयामें श्राद्ध करनेसे तथा गदाधरनाथके दर्शन करनेसे जो फल मिलता है, उससे कहीं अधिक फल देनेवाली कलियुगमें श्रीरामपुरी अयोध्या बतलायी गयी है॥ ७३ ॥

मथुरायां कल्पमेकं वसते मानवो यदि।
तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥ ७४॥

मथुरापुरीमें एक कल्पपर्यन्त निवास करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, वही फल केवल सरयूजीके दर्शनसे मिलता है॥ ७४॥

या गतिर्योगयुक्तानां वाराणस्यां तनुत्यजाम्।
सा गतिः स्नानमात्रेण सरय्वां हरिवासरे॥ ७५॥

काशीपुरीमें योगाभ्याससे शरीर छोड़नेवालोंकी जो गति होती है, वही गति एकादशीको सरयूजीमें केवल स्नानसे मिलती है॥ ७५॥

पुष्करे तु नरो गत्वा कार्तिक्यां कृत्तिकायुते।
तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥ ७६॥

कार्तिक महीनेमें कृत्तिका नक्षत्रके होनेपर पुष्करतीर्थमें जाने [स्नान-दान, श्राद्ध करने]-से जो फल मिलता है, वही फल केवल सरयूजीके दर्शनमात्रसे मिलता है॥ ७६॥

कल्पकोटिसहस्राणि ह्यवन्तीवासजं फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥ ७७॥

हजार करोड़ कल्पपर्यन्त अवन्तिकापुरीमें निवाससे जो फल मिलता है, वही फल केवल सरयूजीके दर्शनसे मिलता है॥ ७७॥

षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहनात्।
तत्फलं समवाप्नोति दृष्ट्वा दाशरथीं पुरीम्॥ ७८॥

साठ हजार वर्षपर्यन्त श्रीगङ्गाजीमें स्नानसे जो फल मिलता है, वही फल श्रीरामपुरी अयोध्याके दर्शनमात्रसे मिलता है॥ ७८॥

निमिषं निमिषार्धं वा प्राणिनां रामचिन्तनम्।
यत्र कुत्र स्थितो जीवो ह्ययोध्यां मनसा स्मरेत्॥ ७९॥

न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पान्तरशतैरपि।
जलरूपेण ब्रह्मैव सरयू मोक्षदा सदा॥ ८०॥

जहाँ-कहीं भी पड़ा हुआ जीव एक निमेष (पलक गिरनेका समय) या आधा निमेष भी श्रीरामका चिन्तन करता है या अयोध्यापुरीका मनसे स्मरण-ध्यान करता है, उसको सैकड़ों कल्पपर्यन्त जन्म-मरणके चक्रमें नहीं आना पड़ता, क्योंकि जलरूपमें बहती हुई सरयूजी ब्रह्मरूपा ही हैं और सर्वदा मोक्ष देनेवाली हैं॥ ७९-८०॥

नैवात्र कर्मणां भोगो रामरूपो भवेन्नरः।
पशुपक्षिमृगाश्चैव त्वन्ये ये पापयोनयः।
तेऽपि मुक्ता दिवं यान्ति मम वाक्यं न संशयः॥ ८१॥

इस अयोध्यापुरीमें कर्मजन्य भोगोंको नहीं भोगना पड़ता; क्योंकि यहाँके निवासी श्रीरामरूप हो जाते हैं। पशु,पक्षी, मृगादि तथा अन्य जो पाप-योनियाँ हैं, वे सबके सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं एवं स्वर्गमें गमन करते हैं, ऐसा मेरा कथन है, [हे पार्वती!] इसमें सन्देह नहीं है॥ ८१॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे सरयूत्पत्तिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें श्रीशंकर-पार्वती-सम्वादरूप अयोध्या-खण्डके अन्तर्गत 'सरयूजीकी उत्पत्तिका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

स्वर्गद्वारतीर्थका परिमाण एवं माहात्म्य तथा चन्द्रहरिदेवका माहात्म्य

श्रीशङ्कर उवाच

प्रथमं तत्र तीर्थं तु कथयामि वरानने।
स्वर्गद्वारं समुत्पन्नं प्रथमं सरयूतटे॥ १॥

श्रीशंकरजी कहते हैं— हे वरानने! अयोध्यापुरीका सर्वप्रथम तीर्थ स्वर्गद्वार; जो कि सरयूजीके किनारे विराजमान है; उसका मैं तुमसे सबसे पहले वर्णन करता हूँ॥ १॥

मुक्तिद्वारमिदं ज्ञेयं स्वर्गप्राप्तिकरं नृणाम्।
स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं विस्तराद् वक्तुमीश्वरः॥ २॥
नहि कश्चिदतो वच्मि संक्षेपाच्छृणु सुव्रते।

हे उत्तम व्रतको धारण करनेवाली पार्वती! इस तीर्थको मुक्तिका द्वार तथा मनुष्योंको स्वर्ग देनेवाला समझो। इस स्वर्गद्वार-तीर्थकी महिमाका कोई भी विस्तारपूर्वक वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है। [इस स्वर्गद्वारतीर्थकी महिमा अपार है,] अतएव मैं संक्षेपमें तुमसे कहता हूँ, सुनो!॥ २१/२॥

सहस्रधारामारभ्य पूर्वतः सरयूजले॥ ३॥
षट्त्रिंशदधिकं प्रोक्तं धनुषां षट्शतानि च।
स्वर्गद्वारस्य विस्तारः पुराणज्ञैः प्रकीर्तितः॥ ४॥

सहस्रधारातीर्थ (श्रीलक्ष्मणघाट)-से लेकर पूर्व दिशामें सरयूजीके जलमें छह सौ छत्तीस (६३६) धनुष परिमाणमें स्वर्गद्वारतीर्थका विस्तार पुराणवेत्ताओंने बतलाया है॥ ३-४॥

स्वर्गद्वारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं नासत्यं मम भाषितम्॥ ५॥

स्वर्गद्वारके समान कोई भी तीर्थ न हुआ है, न होगा। यह मेरा कथन कभी भी असत्य नहीं हो सकता—यह सत्य है, सत्य है, त्रिकालमें सत्य है॥ ५॥

स्वर्गद्वारसमं तीर्थं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके।
दिव्यान्यपि च भौमानि तीर्थानि सकलान्यपि।
प्रातरागत्य तिष्ठन्ति तत्र संसृत्य पार्वति॥ ६॥
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं प्रातः स्नानं विशेषतः।
सर्वतीर्थावगाहस्य फलप्राप्तिमभीप्सता॥ ७॥

हे पार्वती! स्वर्गद्वारके तुल्य तीर्थ ब्रह्माण्डमण्डलमें नहीं है। स्वर्ग तथा भूमिके समस्त तीर्थ प्रातःकाल आकर, सम्मिलित होकर यहाँ उपस्थित रहते हैं, इसलिये जो समस्त तीर्थोंके स्नानसे होनेवाले फलको चाहता हो, उसे यहाँपर विशेषरूपसे प्रातःकाल स्नान अवश्य करना चाहिये॥ ६-७॥

त्यजन्ति प्राणिनः प्राणान् स्वर्गद्वारे तु ये नराः।
प्रयान्ति परमं स्थानं विष्णोस्ते नात्र संशयः॥ ८॥

जो पशु-पक्षी आदि प्राणी या मनुष्य इस स्वर्गद्वारतीर्थमें प्राण छोड़ते हैं, वे भगवान् विष्णुके उत्तम लोकको प्राप्त होते हैं, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं॥ ८॥

मुक्तिद्वारमिदं यस्मात् स्वर्गप्राप्तिकरं नृणाम्।
स्वर्गद्वारमिति ख्यातं तस्मात्तीर्थमनुत्तमम्॥ ९॥
स्वर्गद्वारं सुदुष्प्राप्यं देवैरपि न संशयः।
यद् यत् कामयते तत्र तत्तदाप्नोति मानवः।
स्वर्गद्वारे परा सिद्धिः स्वर्गद्वारे परा गतिः॥ १०॥

क्योंकि यह तीर्थ मुक्तिका दरवाजा है, मनुष्योंको स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है, इस कारणसे यह सर्वोत्तम तीर्थ स्वर्गद्वार नामसे विख्यात है। देवताओंको भी यह स्वर्गद्वार अतिदुर्लभ है,

इसमें सन्देह नहीं। श्रद्धालु मनुष्य जिन-जिन वस्तुओंकी कामना [-से यहाँ स्नान-दान-तर्पण-पिण्डदान-जप-पूजा-पाठ] करता है, वे-वे इच्छित वस्तुएँ उसे मिलती हैं। [दृढ़व्रत मनुष्यको] स्वर्गद्वारमें सब प्रकारकी उत्तम सिद्धियाँ मिलती हैं तथा उत्तमोत्तम गति मिलती है॥ ९-१०॥

जप्तं दत्तं हुतं पूर्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम्॥ ११॥

यहाँपर किया गया जप, दान, होम, यज्ञादि पूर्तकर्म, तप, ध्यान, [वेद-वेदांगका] अध्ययन तथा विद्यादानादि—ये सभी सत्कर्म अक्षय हो जाते हैं॥ ११॥

जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं समुपार्जितम्।
स्वर्गद्वारं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्॥ १२॥

स्वर्गद्वारतीर्थमें प्रवेश करनेमात्रसे श्रद्धावान् मनुष्यके हजारों जन्मोंके कमाये हुए जितने पाप हैं, वे सबके सब नाशको प्राप्त हो जाते हैं॥ १२॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसंकराः।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः॥ १३॥
कीटाः पिपीलकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः।
कालेन निधनं प्राप्ताः स्वर्गद्वारे शृणु प्रिये॥ १४॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा वर्णसंकर, म्लेच्छ एवं कृमिरूप जीव आदि दूसरी जितनी भी पतित पापयोनियाँ हैं तथा कीट, पतंग, चींटी, पशु-पक्षी आदि जो अन्य योनियाँ हैं, वे सभी जीव यदि कालके द्वारा स्वर्गद्वारतीर्थमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, तो हे प्रिये! [उन जीवोंकी गतिके विषयमें] सुनो॥ १३-१४॥

कौमोदकीकराः सर्वे पद्माक्षा गरुडध्वजाः।
शुभं विष्णुपुरं दिव्यं प्रयान्ति भवनं हरेः॥ १५॥

[स्वर्गद्वारतीर्थमें शरीर छोड़नेवाले] वे जीव [श्रीहरिकी] कौमोदकी नामक गदाको हाथमें धारणकर, कमलनेत्र होकर और गरुड़की पताकावाले विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके सुन्दर दिव्यधाम वैकुण्ठके लिये प्रयाण करते हैं॥ १५॥

अकामो वा सकामो वा चापि तिर्यग्गतोऽपि वा।
स्वर्गद्वारे त्यजन् प्राणान् विष्णुलोके महीयते॥ १६॥

चाहे कामनाहीन हो या कामनावाला हो अथवा पशु-पक्षियोंकी योनिमें गया हुआ प्राणी हो, यदि वह भी स्वर्गद्वारमें प्राण छोड़ता है, तो विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १६॥

मुनयो देवताः सिद्धाः साध्या यक्षा मरुद्गणाः।
यज्ञोपवीतमात्रेण विभागं चक्रिरे भुवः॥ १७॥

मुनि, देवता, सिद्ध, साध्य, यक्ष और मरुद्गण—इन सभीने [स्वर्गद्वारमें रहनेकी कामनासे अपने-अपने निवासहेतु] 'यज्ञोपवीत' परिमाणसे वहाँके भूभागका बँटवारा किया था॥ १७॥

मध्याह्नेऽत्र प्रकुर्वन्ति सान्निध्यं देवतागणाः।
तस्मादत्र प्रकुर्वन्ति मध्याह्ने स्नानमादरात्॥ १८॥

समस्त देवगण मध्याह्नकालमें इस स्वर्गद्वारतीर्थमें नियमतः उपस्थित हो जाते हैं, इसलिये यहाँपर [भक्तजन] उत्कट श्रद्धासे मध्याह्नके समय [भी] स्नान करते हैं॥ १८॥

कुर्वन्त्यनशनं ये तु स्वर्गद्वारे जितेन्द्रियाः।
प्रयान्ति परमं स्थानं ये च मासोपवासिनः॥ १९॥

जो लोग इस स्वर्गद्वारतीर्थमें इन्द्रियोंको जीतकर उपवास करते हैं तथा जो लोग यहाँ एक मासतक निराहार रहते हैं, वे उत्तम दिव्यलोकको प्रयाण करते हैं॥ १९॥

अन्नदानरता ये च रत्नदा भूमिदा नराः।
गोवस्त्रदाश्च विप्रेभ्यस्ते यान्ति परमां गतिम्॥ २०॥

जो लोग स्वर्गद्वारमें सुयोग्य अधिकारी ब्राह्मणोंको सत्कारपूर्वक अन्नदान, रत्नदान, भूमिदान, गोदान तथा वस्त्रदान देते हैं, वे जन उत्तमोत्तम गतिको प्राप्त होते हैं॥ २०॥

तत्र सिद्धा महात्मानो मुनयः पितरस्तथा।
स्वर्गं प्रयान्ति ते सर्वे स्वर्गद्वारं तु तत्स्मृतम्॥ २१॥

उस स्वर्गद्वारतीर्थमें सिद्धलोग, महात्मागण, मुनिसमूह तथा पितरलोग भी [स्नानादि सत्कर्म करके] स्वर्गगमन करते हैं, इसलिये यह तीर्थ 'स्वर्गद्वार' शब्द से विख्यात है॥ २१॥

चतुर्धा च तनुं कृत्वा देवदेवो हरिः स्वयम्।
अत्रैव रमते नित्यं भ्रातृभिः सह राघवः॥ २२॥

देवोंके भी देव, पापहारी साक्षात् श्रीहरि अपने शरीरको चार रूपोंमें बनाकर श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें भाइयोंके साथ इस स्वर्गद्वारतीर्थमें नित्य निरन्तर रमण करते हैं॥ २२॥

ब्रह्मलोकं परित्यज्य चतुर्वक्त्रः सनातनः।
अत्रैव रमते नित्यं देवैः सह पितामहः॥ २३॥

सनातन चतुर्मुख पितामह ब्रह्माजी भी ब्रह्मलोकको छोड़कर देवगणोंके साथ नित्य इसी स्वर्गद्वारमें रमण करते हैं॥ २३॥

मेरुमन्दरतुल्योऽपि राशिः पापस्य कर्मणः।
स्वर्गद्वारं समासाद्य पापं व्रजति संक्षयम्॥ २४॥

यदि सुमेरु तथा मन्दराचलपर्वतके तुल्य भी पापकर्मोंकी राशियाँ हों, तो भी स्वर्गद्वारमें पहुँचे हुए प्राणीके वे पाप नाशको प्राप्त हो जाते हैं॥ २४॥

या गतिर्ज्ञानतपसां या गतिर्यज्ञयाजिनाम्।
स्वर्गद्वारे मृतानां तु सा गतिर्विहिता तथा॥ २५॥

जो गति ज्ञानी तपस्वियोंकी होती है तथा जो गति यज्ञ करनेवालोंको मिलती है, वही गति स्वर्गद्वारतीर्थमें शरीर छोड़नेवालोंको

मिलती है॥ २५॥

ऋषिदेवासुरगणैर्जपहोमपरायणैः ।
यतिभिर्मोक्षकामैश्च स्वर्गद्वारो निषेव्यते॥ २६॥

इसीलिये मोक्षकी कामनावाले संन्यासीगण और जप, होमादिमें तल्लीन हुए ऋषिगण, देवगण एवं असुरगण स्वर्गद्वारतीर्थका सदैव सेवन करते हैं॥ २६॥

स्वर्गद्वारि मृतः कश्चिन्नरकं नैव पश्यति।
केशवानुगृहीताश्च सर्वे यान्ति परां गतिम्॥ २७॥

स्वर्गद्वारमें शरीर छोड़नेवाला कोई भी जीव नरकोंको नहीं देखता; क्योंकि वे सब स्वर्गद्वारमें शरीरत्यागके कारण भगवान्‌के कृपापात्र होकर उत्तमोत्तम गतिको प्राप्त होते हैं॥ २७॥

भूलोके चान्तरिक्षे वा दिवि तीर्थानि यान्यपि।
अतीत्य तानि तिष्ठन्ति कृतार्थास्ते द्विजातयः॥ २८॥

पृथ्वीतलपर, अन्तरिक्षमें एवं स्वर्गमें जितने भी तीर्थ हैं, उन समस्त तीर्थोंका अतिक्रमण करके स्वर्गद्वारसेवी द्विजगण कृतकृत्य हो जाते हैं अर्थात् उनको कुछ करनेको शेष नहीं रहता॥ २८॥

विष्णुभक्तिं समासाद्य रमन्ते तु सुनिश्चिताः।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ २९॥

स्वर्गद्वारसेवी भक्तगण भगवान् श्रीविष्णुकी भक्तिका आश्रय लेकर उनके समीपमें रमण करते हैं, यह बात अटल है। ऐसे लोगोंको सैकड़ों कल्पपर्यन्त जन्म-मरणके चक्रमें फिर नहीं आना पड़ता॥ २९॥

हन्यमानोऽपि यो विघ्नैर्वसेदेव शतैरपि।
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥ ३०॥

[अयोध्याजीके स्वर्गद्वारादि तीर्थोंमें निवास करनेहेतु आया हुआ] मनुष्य यदि सैकड़ों विघ्नोंसे ताड़ित होते हुए भी निरन्तर

निवास करता है—भागता नहीं, तो वह पुरुष उस दिव्य लोकमें निवास करता है, जहाँ पहुँचकर उसे शोक-ग्लानि-चिन्तादि नहीं सताते हैं॥ ३०॥

स्वर्गद्वारे वियुज्येत स याति परमां गतिम्।
उत्तरं दक्षिणं चापि त्वयने न विकल्पयेत्।
सर्वस्तेषां शुभः कालः स्वर्गद्वारे मृताश्च ये॥ ३१॥

स्वर्गद्वारमें शरीर छोड़नेवालेको [सदैव] उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। उसके लिये दक्षिणायनमें नरक, उत्तरायणमें स्वर्ग—यह विकल्प नहीं रहता। स्वर्गद्वारमें शरीर छोड़नेवालोंके लिये प्रत्येक समय शुभ समय ही होता है॥ ३१॥

स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चन्द्रहरिं विभुम्।
वपनं तत्र कुर्वीत धर्मी तत्र विचक्षणः॥ ३२॥

स्वर्गद्वारमें [तीर्थव्रतधारी] विद्वान् पुरुष स्नान करके और विभु चन्द्रहरिजीका दर्शन करके सर्वप्रथम वहीं मुण्डन कराये॥ ३२॥

अयोध्यानिलयं विष्णुं ज्ञात्वा शीतांशुरुत्सुकः।
आगच्छत् तीर्थमाहात्म्यं साक्षात्कर्तुं सुधानिधिः।
आगत्य चात्र चन्द्रोऽथ तीर्थयात्रां चकार सः॥ ३३॥

अयोध्यामें महाविष्णु (श्रीरामचन्द्रजी) सदैव निवास करते हैं, इस बातको जानकर चन्द्रदेव दर्शनके लिये अति उत्कण्ठित हुए। उन सुधानिधि चन्द्रदेवने तीर्थ-महिमा जाननेके अनन्तर उसका प्रत्यक्ष करनेके लिये इस अयोध्यामें आकर तीर्थयात्रा की॥ ३३॥

क्रमेण विधिपूर्वेण नानाश्चर्यसमन्वितः।
समाराध्य ततो विष्णुं तपसा दुश्चरेण वै॥ ३४॥

चन्द्रमाने अनेक प्रकारकी आश्चर्यमयी घटनाओंको देखकर

विधिपूर्वक क्रमसे यात्रा करके अति कठिन तपश्चर्याके द्वारा महाविष्णुकी आराधना की॥ ३४॥

तत्प्रत्यक्षं समासाद्य स्वाभिधानपुरस्सरम्।
हरिं संस्थापयामास तेन चन्द्रहरिः स्मृतः॥ ३५॥

महाविष्णुके सामने उपस्थित होनेपर [चन्द्रमाने यही वर माँगा कि आप यहाँ सदैव निवास करें तथा मेरे नामसे पीछे आपका नाम रहे, अर्थात् चन्द्रहरि नामसे आपकी प्रसिद्धि हो। इस प्रकार] चन्द्रदेवने अपने नामको पूर्वमें रखकर चन्द्रहरिजीकी स्थापना की, अतः यह तीर्थ चन्द्रहरि नामसे विख्यात है॥ ३५॥

सत्यायां सप्तहरयो वर्तन्ते पुण्यवर्धनाः।
गुप्तहरिश्चक्रहरिस्तथा विष्णुहरिः प्रिये॥ ३६॥
धर्महरिर्बिल्वहरिस्तथा पुण्यहरिः शुभः।
एतेषां दर्शनाद् देवि पुण्यवृद्धिः प्रजायते॥ ३७॥

[श्रीशंकरजी पार्वतीजीसे कहते हैं कि] हे प्रिये! सत्या अर्थात् अयोध्यापुरीमें सात 'हरि' हैं। इन सातोंके दर्शनसे पुण्य बढ़ता है। उनके नाम क्रमशः [चन्द्रहरि,] चक्रहरि, गुप्तहरि, विष्णुहरि, धर्महरि, बिल्वहरि और पुण्यहरि हैं। हे देवि! इनके दर्शनोंसे पुण्यकी वृद्धि होती है॥ ३६-३७॥

तस्माच्चन्द्रहरेः पूजा कर्तव्या च विचक्षणैः।
द्विजपूजा चन्द्रपूजा हरिपूजा विधानतः॥ ३८॥

इसलिये [तीर्थसेवी] विद्वानोंको चन्द्रहरिकी पूजा करनी चाहिये, साथ ही ब्राह्मण, चन्द्रदेव तथा भगवान् श्रीहरिकी भी विधानपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥ ३८॥

वासुदेवप्रसादेन तत्स्थानं जातमद्भुतम्।
तद्धि गुह्यतमं स्थानं वासुदेवस्य सुव्रते॥ ३९॥

हे सुन्दर व्रतको धारण करनेवाली पार्वती! महाविष्णुके प्रसादसे वह चन्द्रहरि नामक तीर्थ अद्‌भुत महिमावाला हो गया। महाविष्णुका वह तीर्थ अति गुप्त है॥ ३९॥

सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा।
तस्मिन् सिद्धाः सदा विप्रा गोविन्दव्रतमास्थिताः॥ ४०॥

यह चन्द्रहरि नामक तीर्थ सम्पूर्ण जीवोंको मोक्ष देनेवाला है। इस तीर्थमें निरन्तर विष्णुव्रतका अनुष्ठान करनेवाले ब्राह्मण सिद्धिको प्राप्त कर लेते हैं॥ ४०॥

नानालिङ्गधरा नित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः।
अभ्यस्यन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः॥ ४१॥

विष्णुलोककी प्राप्तिकी अभिलाषा रखनेवाले जीवन्मुक्त जन इन्द्रियोंको जीतकर तथा अनेक प्रकारके शरीरादि धारणकर [यहाँ] परमयोगका अभ्यास करते हैं॥ ४१॥

यथा धर्ममिहाप्नोति न तथान्यत्र कुत्रचित्।
दानं व्रतं तथा होमः सर्वमक्षयतां व्रजेत्॥ ४२॥

जितना धार्मिक अनुष्ठानोंका फल इस तीर्थमें मिलता है, उतना अधिक फल अन्य कहीं, किसी भी तीर्थमें नहीं मिलता। यहाँपर किया गया दान, व्रत एवं होमादि सत्कर्म—ये सब कभी भी नाशको नहीं प्राप्त होते॥ ४२॥

सर्वकर्मफलावाप्तिर्जायते प्राणिनां सदा।
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं दानं च विविधं तु वै॥ ४३॥

यहाँ सदा समस्त जीवोंको उनके समस्त कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है। इसलिये [सकाम तीर्थसेवीको] इस तीर्थमें अनेक प्रकारके दानोंको अवश्य करना चाहिये॥ ४३॥

अन्नदानं भूमिदानं गजदानं गवां तथा।
अश्वदानं रथानां च शिविकायास्तथैव च॥ ४४॥

[इस तीर्थमें] अन्नदान, भूमिदान, गजदान, गोदान, अश्वदान, रथदान तथा पालकीदानादि यथाशक्ति करना चाहिये॥ ४४॥

दानादिकं विप्रपूजा दम्पत्योश्च विशेषतः।
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पंचदश्यां विशेषतः।
तस्य साम्वत्सरी यात्रा देवैश्चन्द्रहरेः स्मृता॥ ४५॥

ये दानादि सत्कार्य ज्येष्ठ महीनेके शुक्लपक्षकी पूर्णमासी तिथिमें सर्वोत्तम हैं और [यहाँपर] सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करके दिया गया दान विशेष फलप्रद है। [ज्येष्ठमासकी पूर्णमासीको] उन चन्द्रहरिजीकी वार्षिकी तीर्थयात्रा देवताओंके द्वारा समर्थित है॥ ४५॥

हरिश्चन्द्रो हि राजर्षिः सत्यधर्मपरायणः।
तेन राज्ञा त्वयोध्येयं स्वर्गं नीता वरानने॥ ४६॥

स्वर्गद्वारमिति ख्यातं लोके वेदे तथैव च।
तथा रुक्मांगदेनापि स्वर्गं नीता वरानने॥ ४७॥

नारदस्योपदेशेन कृतमेकादशीव्रतम्।
तेन राज्ञा महादेवि पौरैः सार्धं सभक्तिकम्॥ ४८॥

तेन पुण्यप्रभावेण कोसलास्त्रिदिवं गताः।
अनेनैव पथा स्वर्गं स्वर्गद्वारं तथा विदुः॥ ४९॥

राजर्षि हरिश्चन्द्र सत्यधर्ममें निरत रहते थे। हे वरानने! वे नरेश इस अयोध्याको स्वर्ग ले गये। [अयोध्याका स्वर्गगमन यहींसे हुआ था, यही कारण है कि] यह स्थान लोक और वेदमें 'स्वर्गद्वार' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। हे वरानने! ऐसे ही महाराज रुक्मांगद भी इस पुरीको स्वर्ग ले गये थे। हे महादेवि! उन नरेशने नारदजीके उपदेशसे अपने पुरवासियोंके साथ भक्तिपूर्वक एकादशीव्रत

किया था। उस पुण्यके प्रभावसे कोसल (अयोध्यावासी) जन इसी मार्गसे स्वर्ग गये थे, अतएव इसे [मनीषीजन] 'स्वर्गद्वार' [ऐसा] जानते हैं॥ ४६—४९॥

सर्वदेवावलोकस्य यत्पुण्यं जायते नृणाम्।
तत्सर्वं जायते पुण्यं प्राणिनामस्य दर्शनात्।
तस्मादेतन्महास्थानं पुराणादिषु गीयते॥ ५०॥

मनुष्योंको सम्पूर्ण देवताओंके दर्शनका जो फल मिलता है, वह फल इस स्वर्गद्वार तीर्थके दर्शनसे प्राप्त हो जाता है, यही कारण है कि शास्त्रों–पुराणोंमें इसे परम स्थान कहा गया है॥ ५०॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे स्वर्गद्वार-चन्द्रहरिमहिमकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर–पार्वती–सम्वादरूप अयोध्याखण्डमें 'स्वर्गद्वार और चन्द्रहरिजीकी महिमाका वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

नागेश्वरनाथ, धर्महरि, जानकीतीर्थ और रामतीर्थ नामक पुण्य स्थानोंका इतिहास एवं माहात्म्य

श्रीपार्वत्युवाच

कदा प्रभृति देवेश स्वर्गद्वारे विराजते।
तन्मे कथय भोः शीघ्रं प्रतिष्ठा केन ते कृता॥ १॥

श्रीपार्वतीजीने पूछा— हे देवोंके स्वामी! कबसे आप स्वर्गद्वारमें [नागेश्वरनाथ नामसे] विराजते हैं, इसको आप शीघ्र कहिये तथा आपकी स्थापना किसने की?॥ १॥

श्रीशङ्कर उवाच

श्रृणु प्रिये मयाख्यातं यदाप्रभृति मे स्थितिः।
वैकुण्ठभवने याते रामचन्द्रे परात्मनि॥ २॥

पुत्रं कुशं कुशावत्यां राज्यं दत्वा महामतिः।
अयोध्यायां तदा देवास्तीर्थानि निवसन्ति हि॥ ३॥

श्रीशंकरजीने कहा—हे प्रिये! जबसे मेरी स्थिति स्वर्गद्वारमें हुई, वही मैं तुम्हें बतला रहा हूँ, [ध्यान देकर] सुनो। जिस समय परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी अयोध्याको छोड़कर वैकुण्ठलोकको चले गये। [साकेतयात्रासे पहले] महामतिमान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने पुत्र कुशको कुशावती नगरीका राज्य दे दिया। [वे अयोध्यावासी समस्त जीवोंको साकेतमें ले गये, उस समय अयोध्या सूनी हो गयी थी।] तब केवल तीर्थ तथा देवता ही अयोध्यामें रह गये थे॥ २-३॥

तदायोध्या स्वयं गत्वा ह्यर्धरात्रे कुशावतीम्।
एकाकी च कुशो यत्र सुष्वाप नृपतिर्गृहे॥ ४॥

उस समय अयोध्यापुरी [देवीका रूप धारणकर] आधी रातकी वेलामें कुशावती नगरीमें वहाँ गयी, अपने राजमहलमें जहाँपर महाराज कुश अकेले सो रहे थे॥ ४॥

दृष्ट्वाऽयोध्यामुवाचाथ कुतश्चागमनं तव।
देवी वा मानुषी वा त्वं किन्नरी वासि शोभने॥ ५॥

महाराज कुशने देवीरूपमें अयोध्यापुरीको देखकर पूछा—हे सुन्दरी! तुम कहाँसे आयी हो, तुम देवी हो या मानुषी हो या किन्नरी हो? [तुम किसलिये अर्धरात्रिमें आयी हो?]॥ ५॥

रघूणां च कुले जातः परस्त्रीषु न गच्छति।
हेतुना केन भो देवि ह्यागतासि ममालयम्॥ ६॥

रघुवंशमें उत्पन्न होनेवाला कोई भी पुरुष परायी स्त्रीके साथ गमन नहीं करता। हे देवि! मेरे भवनमें इस समय किस कारण आयी हो?॥ ६ ॥

अयोध्योवाच

तव पित्रा महाराज नीता मे पुरवासिनः।
स्वपदं गन्तुकामेन स्वर्गं प्राप्ताश्च कोटिशः॥ ७॥

अयोध्यापुरीने कहा—हे महाराज! अपने परमपद साकेतलोकको जाते समय आपके पिता श्रीरामचन्द्रजी मुझ अयोध्यापुरीके सारे निवासियोंको अपने साथ ले गये तथा [दूसरे] करोड़ों प्राणी भी [उन्हींके प्रभावसे] स्वर्गमें पहुँच गये॥ ७॥

समग्रशक्तौ त्वयि भो सूर्यवंशविभूषणे।
अवस्थामीदृशीं प्राप्ता नारकैरपि वर्जिताम्॥ ८॥

सूर्यवंशके भूषण हे महाराज कुश! आपमें सभी प्रकारकी शक्तियाँ रहनेपर भी मेरी (अयोध्यापुरीकी) ऐसी दुर्दशा है, जो नारकीय जीवोंकी भी नहीं हो सकती॥ ८॥

भग्ना मे रचना सर्वा शास्तापि प्रभुणा विना।
अस्तसूर्या यथा सन्ध्या वायुना मेघमण्डलैः॥ ९॥

किसी समर्थ स्वामीके बिना मैं शासकविहीन हो गयी हूँ, मुझ अयोध्यापुरीकी समस्त रचनाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी हैं। जिस प्रकार वायुके द्वारा प्रेरित मेघमण्डलोंसे सूर्यके आच्छादित हो जानेपर सन्ध्याकी प्रतीति होने लगती है, वही मेरी दशा हो रही है॥ ९॥

ईदृशी न कृता कैश्चित् तव पूर्वैर्महात्मभिः।
तव पित्रा यथा वत्स मयि वासं कुरुष्व च॥ १०॥

हे वत्स! तुम्हारे पिता श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा जो दशा मेरी की गयी है, ऐसी दशा तुम्हारे किसी भी पूर्वज राजाद्वारा नहीं की

गयी। [अतः] तुमको मुझ (अयोध्या)-में निवास करना चाहिये॥ १०॥

कुश उवाच

एवं वदसि भो देवि नास्ति दोषः पितुर्मम।
तव वासाद् गताः सर्वे लोकं सन्तानकं जनाः॥ ११॥

कुशने कहा—हे देवि अयोध्ये! जो तुम ऐसा कह रही हो, इसमें मेरे पिताजीका कुछ भी दोष नहीं है। आप (अयोध्यापुरी)-में निवास करनेके पुण्यप्रभावसे ही समस्त प्राणी सन्तानक लोकको चले गये हैं॥ ११॥

अयोध्योवाच

यदि वासाद् गताः सर्वे जनाः स्वर्गं न संशयः।
यदि स्वर्गो बहुमतस्तव राजन् हि वर्तते॥ १२॥
मयि वासं कुरुष्वेति ह्यन्तर्धानं च सा गता।
व्यतीतायां निशायां तु मन्त्रिणस्तदपृच्छत॥ १३॥

अयोध्यापुरीने कहा—हे राजन्! यदि मेरी पुरीमें निवास करनेके पुण्यप्रभावसे सभी लोग स्वर्ग चले गये और इसमें सन्देह भी नहीं है तथा यदि आपको भी स्वर्ग अति प्रिय है, तो मुझ अयोध्यापुरीमें ही आप निवास कीजिये। [शिवजी कहते हैं—] ऐसा कहकर वह तत्काल अन्तर्धान हो गयी। [तब] रातके बीत जानेपर महाराज कुशने मन्त्रियोंसे [अयोध्यावासके लिये] सलाह ली॥ १२-१३॥

मन्त्रिणामनुमत्या तत्पुरं ब्राह्मणसात्कृतम्।
सैन्येन महता सार्धमाजगामात्मनः पुरीम्॥ १४॥

[तदनन्तर] महाराज कुश मन्त्रियोंकी अनुमतिसे कुशावती नगरीको ब्राह्मणोंको देकर बहुत बड़ी सेनाके साथ अपनी नगरी अयोध्यापुरीमें आ गये॥ १४॥

वासयामास नगरं यथायोग्यं महामतिः।
एकदा नावमारूढो विजहार सखीजनैः॥ १५॥

महाबुद्धिमान् कुशजीने जैसा चाहिये, वैसे ही पूर्वकी भाँति पुनः पुरीको बसाया—जीर्णोद्धार किया। एक दिनकी बात है, वे मित्रोंके साथ नौकामें बैठकर सरयूजीमें जल-विहार करने लगे॥ १५॥

दृतिभिः सिच्यमानोऽसौ विजहार नदीजले।
कुमुदो नाम नागस्तु सरय्वां वसते सदा॥ १६॥

पिचकारी आदि स्नपनयोग्य पात्रोंसे क्रीडा करते हुए महाराज कुश नदीके जलमें विहार करने लगे। सरयूजीमें एक कुमुद नामका नाग सर्वदा रहता था॥ १६॥

कुमुद्वती च भगिनी तस्य नागस्य सुन्दरी।
मोहिता रूपमालोक्य जहार करकङ्कणम्॥ १७॥

उस नागकी बहन बड़ी सुन्दरी थी, जिसका नाम कुमुद्वती था। उसने महाराजके सौन्दर्यपर मोहित होकर उनके हाथके कंगनको चुरा लिया॥ १७॥

कुशो नैव विजानीते क्रीडनासक्तमानसः
कृत्वा विहारं तु जलाद् बहिर्निर्गत्य भूमिपः॥ १८॥
न ददर्शात्मनो हस्ते तद् वै विजयकङ्कणम्।
अगस्त्येन पुरा दत्तं रामाय परमात्मने॥ १९॥

जलक्रीडामें आसक्त मनवाले महाराज कुशको इस बातकी जानकारी न हो सकी कि उनका कंगन चोरी हो गया है, और वे विहार करके जब जलसे बाहर आये, तो अपने हाथमें उस विजय-कंकणको न देखा, जिसको पूर्वकालमें अगस्त्यजीने परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीको दिया था॥ १८-१९॥

रामचन्द्रस्तु पुत्राय दत्वा स्वपदमन्वगात्।
शुशोच तस्य लाभाय भूषणार्थं न राजराट्॥ २०॥

श्रीरामचन्द्रजी उस कंकणको अपने पुत्र कुशको देकर साकेत चले गये। महाराज कुशने [यह सोचकर कि वह कंकण एक तो पिताका दिया हुआ, दूसरे अगस्त्यजीका प्रसाद, तीसरे विजयकंकण, इसलिये बड़ा] शोक किया, उनका शोक भूषणके लिये नहीं था; क्योंकि वे राजाओंके भी राजा थे॥ २०॥

जगृहे विशिखं तीक्ष्णमग्निमन्त्रेण मन्त्रितम्।
तं दृष्ट्वा सरयूर्देवी पादपद्ममुपागता॥ २१॥

तदुपरान्त महाराजने अग्निमन्त्रसे अभिमन्त्रित तीखे बाणको हाथमें उठाया। इस घटनाको देखकर सरयूदेवी महाराजके चरणकमलोंके पास जा पहुँचीं॥ २१॥

ब्रुवन्ती त्राहि त्राहीति मम दोषो न विद्यते।
कुमुदो नाम नागस्तु भगिन्या तस्य तद् हृतम्॥ २२॥

और 'रक्षा करो, रक्षा करो' ऐसा कहने लगीं। 'मेरा इसमें कुछ भी दोष नहीं है, कुमुद नामक नागकी बहन कुमुद्वतीने उस कंकणको चुराया है'—ऐसा सरयूजीने बतलाया॥ २२॥

तच्छ्रुत्वा जगृहे बाणं गारुडं तद्वधाय वै।
सर्पराजस्तु तद् दृष्ट्वा भगिन्या सह पार्वति॥ २३॥
पपात चरणोपान्ते कंकणं च समर्पयत्।
क्षमस्व मम दौरात्म्यं भगिन्या यत् कृतं नृप॥ २४॥

हे पार्वती! 'नागकी बहन कुमुद्वतीने कंकण चुराया है' ऐसा सुनकर उसके वधके लिये कुशने गरुड़ास्त्रको हाथमें लिया। यह देखकर सर्पराज कुमुद अपनी बहन कुमुद्वतीके साथ महाराज कुशके चरणोंमें गिर पड़े और उस कंगनको अर्पण कर दिया तथा प्रार्थना की कि महाराज! मेरी बहन कुमुद्वतीने जो दुष्टता की है, उसे आप क्षमा करें॥ २३-२४॥

श्रीशङ्कर उवाच

कुमुदो मम भक्तो हि नागराजः प्रियो मम।
तस्य कष्टं समालोक्य प्रत्यक्षमभवं प्रिये॥ २५॥

श्रीशंकरजीने कहा—हे प्रिये! नागराज कुमुद मेरा भक्त है। इस कारण मेरा प्रिय भी है। अतः उसके कष्टको देखकर [कुशके सामने] मैं प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट हो गया॥ २५॥

मां दृष्ट्वा कुशराजस्तु जग्राह चरणौ मम।
उवाच प्रांजलिर्भूत्वा ममागमनकारणम्॥ २६॥

मुझे देखकर महाराज कुशने मेरे चरणोंमें प्रणाम किया तथा हाथ जोड़कर मेरे आनेका कारण पूछा॥ २६॥

तदाहमब्रुवं राजन् भक्तरक्षार्थमागतः।
कुमुद्वत्यस्य भगिनी पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम्॥ २७॥
वरं ब्रूहि महाराज मुंच नागं महाबल।

[हे पार्वती!] तब मैंने कहा—हे राजन्! मैं अपने भक्तकी रक्षाके लिये आया हूँ। इस भक्त नागकी बहन कुमुद्वतीको अपनी पत्नी बनानेके लिये आप ग्रहण करें। हे महाराज! वर माँगिये। हे महाबलशाली! आप इस मेरे भक्त नागको छोड़ दीजिये॥ २७½॥

कुश उवाच

स्वर्गद्वारे सदा तिष्ठ नागेश्वरप्रथामगाः॥ २८॥

कुशने कहा—[हे भक्तरक्षक भोलेनाथ!] आप भक्तोंकी रक्षाके निमित्त स्वर्गद्वारमें सदा निवास कीजिये तथा आपकी प्रसिद्धि नागेश्वरनाथ नामसे हो॥ २८॥

इत्युक्त्वा पूजयामास पूजोपकरणैः स माम्।
ॐ नमः श्रीशिवायेति मन्त्रं चापि जजाप सः॥ २९॥

ऐसा वर माँगकर पूजासामग्रीके द्वारा कुशने मेरा पूजन किया तथा इस '**ॐ नमः श्रीशिवाय**' मन्त्रका जप भी किया॥ २९॥

प्रत्युवाच जनान् राजा कुशाख्यः पङ्कजेक्षणः।
स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा नागेश्वरं शिवम्॥ ३०॥
पूजयित्वा सुविधिवत् सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा पूजयेद् वृषभध्वजम्॥ ३१॥
सम्पूर्णा तस्य यात्रा स्यादन्यथार्धफलप्रदा।

तदनन्तर कमलनेत्र महाराज कुशने अपनी प्रजाको आज्ञा दी कि स्वर्गद्वारमें जो मनुष्य स्नान तथा श्रीनागेश्वरनाथजीका दर्शन करके उनका विधानपूर्वक पूजन करता है, उसकी सभी कामनाएँ परिपूर्ण होती हैं, इसलिये स्वर्गद्वारमें स्नान करके मनुष्य नागेश्वरनाथजीका पूजन अवश्य करे। श्रीनागेश्वरजीका दर्शन करके ही उसकी तीर्थयात्रा परिपूर्ण होगी, अन्यथा उसको तीर्थयात्राका आधा पुण्यफल ही मिलेगा॥ ३०—३१$^{१}/_{२}$॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्युवाच कुशो राजा प्रविवेश गृहं स्वकम्॥ ३२॥

श्रीशंकरजीने कहा—ऐसा कहकर महाराज कुश अपने राजमहलमें चले गये॥ ३२॥

मासं सम्पूज्य विधिवन्नागोऽपि स्वगृहं गतः।
तदा प्रभृति भो देवि स्वर्गद्वारे वसाम्यहम्॥ ३३॥

नागराज कुमुद भी एक मासपर्यन्त नागेश्वरलिंगका नियमतः पूजन करके अपने घरको चले गये। हे देवि! उसी समयसे मैं स्वर्गद्वारमें निवास करता हूँ॥ ३३॥

तस्माच्चन्द्रहरेः स्थानादाग्नेय्यां दिशि संस्थितः।
देवो धर्महरिर्नाम कलिकल्मषनाशनः ॥ ३४॥

उस पूर्ववर्णित चन्द्रहरिजीके स्थानसे अग्निकोणमें कलियुगके विकारका नाश करनेवाले श्रीधर्महरि देवका स्थान है॥ ३४॥

पुरा समागतो धर्मस्तीर्थयात्रां चिकीर्षया।
आगत्य च चकारोच्चैर्यात्रां तत्रादरेण सः॥ ३५॥

एक समय धर्मदेवता तीर्थयात्रा करनेकी इच्छासे अयोध्यापुरी आये। उन्होंने आ करके समारोहपूर्वक बड़ी श्रद्धाके साथ तीर्थयात्रा की॥ ३५॥

दृष्ट्वा माहात्म्यमतुलमयोध्यायाः सविस्मयः।
विधाय सभुजावूर्ध्वमिदमाह मुदान्वितः॥ ३६॥

धर्मदेवता अयोध्यापुरीके अनुपम प्रभावको देखकर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये तथा आनन्दमें विभोर हो उन्होंने अपनी दोनों भुजाओंको उठाकर इन (आगे लिखी हुई) बातोंको कहा॥ ३६॥

अहो रम्यमिदं तीर्थमहो माहात्म्यमुत्तमम्।
यस्यां स्थितो हरिः साक्षात् केनेयमुपमीयते॥ ३७॥

अहो! इस अयोध्यातीर्थकी मनोहरता आश्चर्यजनक है एवं इसकी महिमा भी उत्तमोत्तम है; क्योंकि इसमें साक्षात् भगवान् ही स्वयं निवास करते हैं, अतः इसकी तुलना किससे की जाय, अर्थात् इसके समान कोई तीर्थ ही नहीं है॥ ३७॥

अहो तीर्थानि सर्वाणि विष्णुलोकप्रदानि वै।
अहो विष्णुरहो तीर्थमहोऽयोध्या महापुरी॥ ३८॥

अयोध्यापुरीमें स्थित निश्चित रूपसे विष्णुलोकको देनेवाले समस्त तीर्थोंकी महिमा आश्चर्यमय है! धन्य हैं विष्णुभगवान् और धन्य है यह तीर्थ अयोध्यापुरी!॥ ३८॥

अहो माहात्म्यमतुलं किन्न श्लाघ्यमिहस्थितम्।
अयोध्यासदृशी काचिद् दृश्यते नापरा पुरी॥ ३९॥

इत्युक्त्वा तत्र बहुशो ननर्त च मुदाकुलः।
धर्मो माहात्म्यमालोक्य त्वयोध्याया विशेषतः॥ ४०॥

अहो! इस अयोध्यापुरीकी महिमा अनुपम एवं आश्चर्यमय है! इस पुरीमें स्थित कौन-सा तीर्थ, देवस्थान आदि प्रशंसनीय नहीं है। अयोध्याके जैसी कोई दूसरी पुरी दृष्टिगत नहीं होती—ऐसा कहकर वे आनन्दसे परिपूर्ण हो गये और अयोध्यापुरीकी विशिष्ट महिमाको देखकर धर्मदेवता वहाँ नाचने लगे॥ ३९-४०॥

तं तथा नर्तनासक्तं धर्मं दृष्ट्वा कृपान्वितः।
आविर्बभूव भगवान् पीतवासा हरिः स्वयम्॥ ४१॥

इस प्रकार नृत्यमें आसक्त, सुध-बुध भूले हुए धर्मदेवताको देखकर भगवान्‌को बड़ी दया आ गयी। [और तत्काल ही वे] पापहारी, पीतपटधारी भगवान् श्रीहरि स्वयं प्रकट हो गये॥ ४१॥

तं प्रणम्याथ धर्मोऽपि तुष्टाव हरिमादरात्॥ ४२॥

तब धर्मदेवता भी उन श्रीहरिको प्रणाम करके बड़े आदरसे उनकी स्तुति करने लगे॥ ४२॥

धर्म उवाच

नमः क्षीराब्धिवासाय शेषपर्यङ्कशायिने।
नमो लक्ष्म्यंगसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे॥ ४३॥

धर्म बोले—क्षीरसागरनिवासी, शेषरूपी पलंगपर शयन करनेवाले [आप]-को प्रणाम है। लक्ष्मीजीद्वारा गोदमें रखकर लालित किये जाते दिव्य चरणोंवाले [आप] महाविष्णुको प्रणाम है॥ ४३॥

भक्तार्तिनिघ्नपादाय नमो योगप्रियाय ते।
शुभांगाय सुनेत्राय माधवाय नमो नमः॥ ४४॥

भक्तोंकी पीड़ाको दूर करनेवाले, योगाभ्याससे अतिशीघ्र प्रसन्न होनेवाले, मंगलमय शरीरवाले, सुन्दर नेत्रोंवाले आप

माधवको बार-बार प्रणाम है॥ ४४॥

नमोऽरविन्दपादाय पद्मनाभाय ते नमः।
नमः क्षीराब्धिकल्लोलस्पृष्टगात्राय शार्ङ्गिणे॥ ४५॥

कमलवत् चरणोंवाले [आप]-को नमस्कार है, नाभिमें स्थित कमलवाले आपको नमस्कार है। क्षीरसमुद्रकी लहरियोंके द्वारा स्पर्श किये जाते श्रीविग्रहवाले तथा तथा शार्ङ्ग नामक धनुषको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ४५॥

ॐ नमो योगनिद्राय योगज्ञभावितात्मने।
तार्क्ष्यासनाय देवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ ४६॥

ॐकारस्वरूप, योगनिद्रामें तल्लीन, योगाभ्यासियोंके द्वारा हृदयमें प्रत्यक्ष किये जानेवाले [आप]-को नमस्कार है। गरुड़पर आसीन देव गोविन्दको बार-बार नमस्कार है॥ ४६॥

सुकेशाय सुनासाय सुललाटाय चक्रिणे।
सुवस्त्राय सुवर्णाय श्रीधराय नमो नमः॥ ४७॥

सुन्दर केशोंवाले, मनोहर नासिकावाले, रमणीय मस्तकवाले, सुदर्शन चक्रधारी, दिव्य वस्त्रोंसे सजे हुए, सुन्दर वर्णवाले और शोभा एवं श्रीवत्स नामक चिह्नको धारण करनेवाले [आप]-को बार-बार नमस्कार है॥ ४७॥

सुबाहवे नमस्तुभ्यं चारुजंघाय ते नमः।
सुमुखाय सुदिव्याय सुविद्याय गदाभृते॥ ४८॥

सुन्दर भुजाओंवाले आपको नमस्कार है, रमणीय जंघावाले आपको नमस्कार है। रुचिर मुखवाले, अति दिव्य झाँकीवाले, उत्कृष्ट ज्ञानवाले तथा कौमोदकी गदाको धारण करनेवाले [आप]-को नमस्कार है॥ ४८॥

केशवाय च शान्ताय वामनाय नमो नमः।
धर्मप्रियाय देवाय नमस्ते पीतवाससे॥ ४९॥

शान्तमूर्ति, वामनरूपधारी केशवको बार-बार नमस्कार है। धर्मसे प्रेम करनेवाले, पीताम्बरधारी, देवोंके देवको नमस्कार है॥ ४९॥

श्रीशङ्कर उवाच

इति स्तुतो जगन्नाथो धर्मेण श्रीपतिर्मुदा।
उवाच स हृषीकेशः प्रीतो धर्ममुदारधीः॥ ५०॥

श्रीशंकरजी कहते हैं— इस प्रकार आनन्दमग्न धर्मदेवताके द्वारा स्तुति करनेपर जगन्नाथ, लक्ष्मीपति, इन्द्रियों के स्वामी तथा उदार बुद्धिवाले भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होकर धर्मदेवतासे बोले— ॥ ५०॥

तुष्टोऽहं भवतो धर्म स्तोत्रेणानेन सुव्रत।
वरं वरय धर्मज्ञ यस्ते स्यान्मनसः प्रियः॥ ५१॥

हे उत्तम व्रतधारी धर्म! तुम्हारे इस स्तोत्रसे मैं अति प्रसन्न हूँ। हे धर्मके जाननेवाले! जो वर तुम्हारे मनको प्रिय हो, वह तुम मुझसे माँग लो॥ ५१॥

स्तोत्रेणानेन यः स्तौति मानवो मामतन्द्रितः।
सर्वान् कामानवाप्नोति पूजितः श्रीयुतः सदा॥ ५२॥

जो मनुष्य आलस्य छोड़कर [श्रद्धाके साथ तुम्हारे द्वारा रचित] इस स्तोत्रसे मेरी स्तुति करेगा, वह शोभा, लक्ष्मीसे युक्त होकर सदा सब कामनाओंको प्राप्त करेगा॥ ५२॥

धर्म उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव देवदेव जगत्पते।
त्वामहं स्थापयाम्यत्र निजनाम्ना जगद्गुरो॥ ५३॥

धर्मने कहा—हे देव! हे देवोंके भी देव! हे जगन्नाथ! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो हे जगद्गुरो! मैं अपने नामपूर्वक अर्थात् अपने नामसे आपका नाम संयुक्त करके 'धर्महरि' इस नामसे

आपकी स्थापना यहाँ करता हूँ॥ ५३॥

श्रीभगवानुवाच

एवमस्तु भवत्वत्र नाम्ना धर्महरिर्विभुः।
स्मरणादेव यस्य स्यात् सर्वकिल्विषसंक्षयः॥ ५४॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—ऐसा ही हो, यहाँपर धर्महरि नामसे मुझ व्यापककी उपस्थिति सदा रहे, जिसके स्मरणमात्रसे सब प्रकारके पाप नाशको प्राप्त होंगे॥ ५४॥

श्रीशङ्कर उवाच

एवमुक्तस्ततो धर्मो देवदेवेन सादरम्।
स्थापयामास विधिवन्नाम्ना धर्महरिं विभुम्॥ ५५॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—जब देवदेव श्रीहरिने धर्मसे इस प्रकार कहा तो उन्होंने विधानपूर्वक 'धर्महरि' नामसे उन विभुकी वहाँ स्थापना की॥ ५५॥

सरयूसलिले स्नात्वा शुचिस्तद्गतमानसः।
देवं धर्महरिं पश्येत् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५६॥

सरयूजीमें स्नानकर, भीतर-बाहर पवित्र होकर भगवान्‌में मनको लगाये हुए जो प्राणी धर्महरि देवका दर्शन करता है, वह सब प्रकारके पापोंसे छूट जाता है॥ ५६॥

अन्नदानं तथा होमो जपो ब्राह्मणभोजनम्।
सर्वमक्षयतां याति विष्णुलोकनिवासकृत्॥ ५७॥

इस धर्महरितीर्थमें किया गया अन्नदान, होम, जप, ब्राह्मण-भोजन आदि सभी कर्म अक्षय हो जाते हैं तथा कर्ता विष्णुलोकमें निवास करता है॥ ५७॥

अज्ञानाद् ज्ञानतो वापि यत् किंचिद् दुष्कृतं कृतम्।
प्रायश्चित्तं विधातव्यं मत्परेण प्रयत्नतः॥ ५८॥

जानकर या बिना जाने, जितने भी दुष्कर्म किये गये हैं,

उनका नाश करनेके लिये मनुष्य मुझमें मन लगाये हुए यत्नपूर्वक [शास्त्रके अनुसार] यहाँपर प्रायश्चित्त करे॥ ५८॥

प्रायश्चित्तेन विधिना पापं तस्य प्रणश्यति।
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं प्रायश्चित्तं विधानतः॥ ५९॥

विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करनेसे ही व्यक्तिके पाप नाशको प्राप्त होते हैं। इसलिये इस धर्महरितीर्थमें सविधि प्रायश्चित्त अवश्य करे॥ ५९॥

प्रमादालस्यतो वापि राजदेवग्रहार्तिभिः।
नित्यकर्मनिवृत्तिः स्याद् यस्य पुंसोऽवशात्मनः॥ ६०॥
तेनाथात्र विधातव्यं प्रायश्चित्तं विधानतः।

प्रमाद, आलस्य, राजकोप, देवप्रकोप, ग्रहबाधा—इन पीड़ाओंके कारण और अपने मन-इन्द्रियादिपर नियन्त्रण न रख पानेके कारण जिस मनुष्यके नित्यकर्मोंका लोप हो गया हो, उसको यहाँपर शास्त्रवर्णित विधानके अनुसार प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ ६०१/२॥

अत्र साक्षात् स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः॥ ६१॥
तस्माद् वर्णयितुं शक्यो महिमा न हि मानवैः।

इस तीर्थमें साक्षात् देवदेव भगवान् विष्णु बड़े आदरसे निवास करते हैं; इसलिये धर्महरितीर्थकी महिमाका वर्णन मनुष्योंके द्वारा कभी किया ही नहीं जा सकता॥ ६११/२॥

आषाढे शुक्लपक्षस्य चैकादश्यां सुलोचने॥ ६२॥
तस्य सांवत्सरी यात्रा कर्तव्या तु विधानतः।
विष्णुलोकमवाप्नोति नरो यात्राविधानतः॥ ६३॥

हे सुलोचने! आषाढ़मासके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिको उस (धर्महरितीर्थ)-की विधानपूर्वक वार्षिक यात्रा करनी चाहिये। इस यात्राका अनुष्ठान करके मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्ति करता है॥ ६२-६३॥

स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा धर्महरिं विभुम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके वसेत् सदा॥ ६४॥

यात्री स्वर्गद्वारतीर्थमें स्नानकर श्रीधर्महरिजीका दर्शन करनेसे सब पापोंसे छूटकर विशुद्ध अन्तःकरणवाला हो जाता है और निरन्तर विष्णुलोकमें निवास करता है॥ ६४॥

तस्मादीशानकोणे तु जानकीतीर्थमुत्तमम्।
श्रावणस्य तृतीयायां शुक्लायां च विशेषतः॥ ६५॥
तस्य साम्वत्सरी यात्रा कर्तव्या सुविचक्षणैः।
अन्नदानं तथा होमो जपो ब्राह्मणभोजनम्।
सर्वमक्षय्यतां याति विष्णुलोके वसेत् सदा॥ ६६॥

उस धर्महरितीर्थसे ईशानकोणमें उत्तम जानकीतीर्थ है। अत्यन्त बुद्धिशील जनोंको विशेष रूपसे श्रावणके शुक्लपक्षकी तृतीयामें उस तीर्थकी वार्षिक यात्रा करनी चाहिये। यहाँपर किया गया दान, होम, जप, ब्राह्मण-भोजनादि सत्कर्म—सभी अक्षय हो जाते हैं और वह मनुष्य विष्णुलोकमें सदा निवास करता है॥ ६५-६६॥

तस्माद् दक्षिणकोणे तु रामतीर्थं मनोहरम्।
यस्य दर्शनमात्रेण नरः सिद्धिमवाप्नुयात्।
चैत्रशुक्लनवम्यां तु यात्रा तस्य प्रकीर्तिता॥ ६७॥

इस जानकीतीर्थके दक्षिणकोण अर्थात् आग्नेयकोणमें मनोहारी रामतीर्थ है। जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। चैत्र शुक्ला नवमीको उसकी [वार्षिक] यात्रा बतायी गयी है॥ ६७॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे पंचमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-सम्वादरूप अयोध्याखण्डके अन्तर्गत पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

अयोध्यापीठके अन्तर्वर्ती रामसभागृह, दन्तधावनकुण्ड, रामदुर्ग और दुर्गके आवरणभूत विघ्नेश्वरतीर्थ, हनुमत्कुण्ड एवं सुग्रीवादि परिकरोंके स्थानरूप तीर्थोंका वर्णन

श्रीशङ्कर उवाच

तस्माद् दक्षिणदिग्भागे स्वर्गद्वाराच्च पार्वति।
अयोध्यापीठमिति सा ख्याता भूर्नगनन्दिनि॥ १॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—हे गिरिनन्दिनि पार्वती! उस धर्महरितीर्थसे तथा स्वर्गद्वारसे दक्षिण दिशामें अयोध्यापीठ नामक प्रसिद्ध स्थली है॥ १॥

क्रोशमात्रं तु विस्तारश्चतुर्दिक्षु प्रमाणतः।
तन्मध्ये च सभा रम्या रामचन्द्रस्य शोभने॥ २॥

हे सुन्दरि! इस अयोध्यानामक पीठका विस्तार चारों दिशाओंमें एक-एक कोसके प्रमाणसे है। अयोध्यापीठके मध्यमें श्रीरामचन्द्रजीकी रमणीय सभा है, [जिसे आज भी रामसभा कहते हैं]॥ २॥

अनेकाश्चर्यसंयुक्ता नानाधातुविचित्रिता।
कुबेरस्य च शक्रस्य यमस्य वरुणस्य वा॥ ३॥

अनेक प्रकारकी आश्चर्यमयी रचनाओंसे युक्त तथा अनेक धातुओं (सुवर्ण, रजत, रत्न, मणियों आदि)-से विचित्र बनी हुई वह सभा तो कुबेर, इन्द्र, यमराज, वरुण आदिकी सभाओंसे भी विशिष्ट है॥ ३॥

यादृशी रामचन्द्रस्य सभाद्यापि न विद्यते।
मेरुमन्दरतुल्योऽपि राशिः पापस्य कर्मणः॥ ४॥
तत्क्षणान्नाशमाप्नोति सभागृहविलोकनात्।

श्रीरामकी सभाके समान तो आज भी किसीकी सभा नहीं है। सुमेरु तथा मन्दराचलके समान पापराशि भी उस सभाभवनका दर्शन करते ही तत्काल विनष्ट हो जाती है॥ ४१/२ ॥

जन्मान्तरसहस्त्रेषु यत्पापं समुपार्जितम्॥ ५॥
तत्सर्वं नाशमायाति सभागृहविलोकनात्।
तस्मिन् सभागृहे रम्ये सर्वदेवनमस्कृते॥ ६॥
राजकार्यं च कुरुते भ्रातृभिः सह राघवः।

सहस्त्रों जन्मोंमें अर्जित जितने भी पाप हैं, वे सब श्रीरामसभाके दर्शनके क्षण ही विनाशको प्राप्त हो जाते हैं। समस्त देवताओंसे नमस्कृत उस रमणीक सभाभवनमें [अपने शासनकालमें] भाइयोंके साथ भगवान् श्रीराम राजकीय कार्य सम्पन्न करते थे॥ ५—६१/२ ॥

उलूकगृध्रयोश्चापि शुनः संन्यासिनस्तथा॥ ७॥
चकार न्यायं धर्मात्मा वसिष्ठादिभिरन्वितः।
तत्र पूजा प्रकर्तव्या राघवाणां महात्मभिः॥ ८॥

[यहींपर] वसिष्ठ आदि ऋषियोंके साथ धर्ममूर्ति भगवान् श्रीरामने गीध और उल्लूका तथा कुत्ते और संन्यासीका आपसी विवाद सुलझाया था। महात्मा मनुष्योंको यहाँपर रघुवंशियों (श्रीराम, भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न)-की पूजा करनी चाहिये॥ ७-८॥

जायते पुण्यवृद्धिश्च राघवेन्द्रस्य दर्शनात्।
तस्मिन् सभागृहे रम्ये सर्वदेवमनोहरम्॥ ९ ॥
नाम्नो लोके च विख्यातं दन्तधावनकुण्डकम्।
यत्र स्नानेन दानेन गर्भवासक्षयो भवेत्॥ १०॥

यहाँपर श्रीराघवेन्द्रका दर्शन करनेसे पुण्यकी वृद्धि होती है। इसी मनोहर सभागृहमें सम्पूर्ण देवोंके मनको हरण करनेवाला दन्तधावनकुण्ड नामसे लोकमें प्रसिद्ध एक विशिष्ट तीर्थ है, जहाँपर स्नान-दान करनेसे गर्भवाससे छुटकारा मिल जाता है॥ ९-१०॥

सर्वदा रामचन्द्रस्तु तत्रागत्य वरानने।
दन्तधावनकं भद्रे कुरुते भ्रातृभिः सह॥ ११॥

हे सुमुखि पार्वती! हे भद्रे! श्रीरामचन्द्रजी भाइयोंके साथ नित्य यहाँ आकर इस दन्तधावनकुण्डके समीप दतुवन किया करते थे॥ ११॥

कौण्डिन्यो ब्राह्मणः कश्चिदेकदात्र समागतः।
स्नानं कृत्वा तटे चास्य ध्यानतत्परमानसः॥ १२॥

एक समय कौण्डिन्य नामक एक ब्राह्मण इस कुण्डपर आये। कुण्डमें स्नान करके वे किनारेपर [भगवान्‌के] ध्यानमें निरत हो गये॥ १२॥

वायुना प्रेरितं तस्य च द्विजस्य मृगाजिनम्।
दन्तधावनकुण्डस्य जले निपतितं शुभे॥ १३॥

हे शुभे! हवाके झोंकेसे उन ब्राह्मण कौण्डिन्यकी मृगछाला दन्तधावनकुण्डके जलमें गिर पड़ी॥ १३॥

जलस्यास्य प्रभावात्तु दिव्यरूपमपद्यत।
विमानवरमारूढो ह्यप्सरोभिः समन्वितः॥ १४॥

वह मृगचर्म इस कुण्डके जलके प्रभावसे दिव्य देवरूप हो गया और उत्तम विमानपर बैठकर अप्सरागणोंसे सेवित होने लगा॥ १४॥

चामरैर्वीज्यमानश्च वैजयन्त्या विभूषितः।
वीक्ष्य लोका विमानस्थं विस्मयं परमं गताः॥ १५॥

उसे चँवर डुलाये जा रहे थे और वह वैजयन्तीकी माला पहने हुए था। विमानपर बैठे हुए उस जीवको देखकर [देखनेवाले] लोग बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुए॥ १५॥

तदा रामः स्वयं जानन् ज्ञापयन् सर्वतो जनान्।
पप्रच्छ दिव्यरूपं तं सुरं परमधार्मिकः॥ १६॥

उस समय परम धार्मिक श्रीरामचन्द्रजीने इस आश्चर्यमय रहस्यको स्वयं जानते हुए भी सब लोगोंको बतलानेकी इच्छासे दिव्यरूपधारी उस देवतासे पूछा— ॥ १६ ॥

कस्त्वं दिव्यवपुः प्राप्तः कस्मात् त्वं मृगतां गतः।
कथं सुरस्त्रीसहितः किं चिकीर्षसि तद् वद॥ १७॥

तुम कौन हो? कैसे तुमको यह दिव्य शरीर मिला? किस पापसे तुम मृगयोनिको प्राप्त हुए थे? किस पुण्यसे देवांगनाएँ तुम्हारी सेवा कर रही हैं? और अब तुम क्या करना चाहते हो? इन प्रश्नोंका उत्तर दो॥ १७॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा देवः प्रोवाच राघवम्।
तवाज्ञातं न सर्वत्र बाह्याभ्यन्तरचारिणः॥ १८॥

श्रीरामके वचनको सुनकर उस दिव्यरूपधारी देवताने श्रीरामसे कहा—आप [प्राणीमात्रके] भीतर-बाहर सर्वत्र रहनेवाले हैं, आपसे कोई बात छिपी नहीं है॥ १८॥

तथापि पृच्छते तुभ्यं कथयामि यथातथम्।
अहं पुरा भवे वैश्यो जात्या रघुकुलोद्भव॥ १९॥

तो भी आप पूछ रहे हैं, अतः यथार्थ बात मैं आपको बतला रहा हूँ। मैं पिछले जन्ममें वैश्य था। हे रघुवंशमें उत्पन्न श्रीरामचन्द्रजी! [इस बातको आप जान लीजिये]॥ १९॥

आचरन् प्रतिकूलं तु वेदस्य रघुनन्दन।
धनगर्वेण भो देव नियमव्रतवर्जितः॥ २०॥

हे रघुनन्दन! हे देव! मैं वेदमार्गसे विपरीत आचरण करता था एवं धनके गर्वसे [नास्तिक होकर मैंने] शास्त्रोंमें बतलाये हुए नियमों तथा व्रतोंको छोड़ दिया था॥ २०॥

स्नानदानादिरहितो वेश्याजनरतः सदा।
एकदा तुलसीवृन्दे जलं दत्तमजानता॥ २१॥

मैं स्नान-दानादि सत्कर्म छोड़कर सदा वेश्याओंमें आसक्त

रहता था। एक बार तुलसीवृक्षोंमें मैंने बिना जाने जल डाल दिया॥ २१॥

तेन पुण्यप्रभावेण मृगत्वं गतवानहम्।
चर्म मे साधुसंगेन कोसलायां समागतम्॥ २२॥

उसी [तुलसीजीमें जल छोड़नेके] पुण्य-प्रभावसे मैं [यद्यपि अपकर्मवश] मृगयोनिको प्राप्त हुआ, [तथापि] मेरा चर्म [इन] महात्माके साथ अयोध्यापुरीमें आ गया॥ २२॥

जलस्यास्य प्रभावेण दन्तधावनकुण्डके।
दिव्यं वपुर्मनोहारि लब्धं तव प्रसादतः॥ २३॥

आपकी कृपासे और इस दन्तधावनकुण्डके जलके पुण्य प्रभावसे यह दिव्य मनोहर शरीर मुझे मिला है॥ २३॥

आज्ञापय महाबाहो त्वत्प्रसादादहं प्रभो।
गच्छामि शाश्वतं स्थानं तव दुःखादिवर्जितम्॥ २४॥

हे महाबाहो! हे प्रभो! आप मुझे आज्ञा दीजिये। अब मैं आपके प्रसादसे आपके दुःख-शोकादिरहित नित्य साकेतलोकको जा रहा हूँ॥ २४॥

न यत्र शोको न जरा न मृत्युः कालविभ्रमः।
तत्स्थानं देव गच्छामि त्वत्प्रसादाद् रघूत्तम॥ २५॥

हे रघुवंशशिरोमणि! जहाँपर न शोक है, न बुढ़ापा है, न मृत्युका भय है और न कालकृत परिवर्तन ही है, हे देव! आपके प्रसादसे उस स्थानको मैं जा रहा हूँ॥ २५॥

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य विमानवरमारुहत्।
अनेकरत्नरचितं सर्वदेवैश्च वन्दितम्॥ २६॥

गतोऽसौ शाश्वतं स्थानं रामपादप्रसादतः।
पुनरावृत्तिरहितं शोकमोहविवर्जितम्॥ २७॥

उसने श्रीरामसे ऐसा कहकर उनकी परिक्रमा की और

नानाविध रत्नोंसे जटित उस उत्तम विमानमें बैठ गया। श्रीरामके चरणारविन्दके प्रसादसे वह सर्वदेववन्दित उस शाश्वत धामको प्राप्त हुआ, जो आवागमनसे रहित और शोक-मोहादिसे परे है॥ २६-२७॥

चैत्रे शुक्लनवम्यां तु यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
सभायाः पश्चिमे भागे रामदुर्गस्तु विद्यते॥ २८॥

इस दन्तधावनकुण्डकी वार्षिक यात्रा चैत्र शुक्ल नवमी (रामनवमी)-को करनी चाहिये। इस रामसभासे पश्चिम भागमें रामदुर्ग (रामकोट) नामक तीर्थस्थली है॥ २८॥

श्रीपार्वत्युवाच

भगवन् रामचन्द्रस्य पुर्यां सर्वे समागताः।
वानरा राक्षसाश्चैव तेषां स्थानानि मे वद॥ २९॥

श्रीपार्वतीजीने पूछा—हे भगवन्! [रावणवधके पश्चात्] श्रीरामचन्द्रजीकी पुरीमें [उनके साथ] सभी वानर तथा राक्षस आये थे, उनके स्थानोंको मुझसे कहिये॥ २९॥

श्रीशङ्कर उवाच

राजद्वारे हनूमान् वै वायुपुत्रस्तु तिष्ठति।
तथा तिष्ठति सुग्रीवो दक्षिणे च हनूमतः॥ ३०॥

श्रीशंकरजीने कहा—[रामकोटके प्रधान] राजद्वारपर वायुपुत्र श्रीहनुमान्‌जीका स्थान है तथा श्रीहनुमान्‌जीके दक्षिण भागमें सुग्रीवजीका स्थान है॥ ३०॥

सुग्रीवस्य समीपे तु ह्यंगदोऽपि विराजते।
दुर्गस्य दक्षिणे द्वारे नलनीलौ प्रतिष्ठितौ॥ ३१॥

सुग्रीवजीके समीप ही अंगदजीका स्थान है। रामकोटके दक्षिण द्वारमें नल और नीलजीकी स्थिति है॥ ३१॥

सुषेणो वानरश्रेष्ठो नवरत्नस्य पूर्वतः।
नवरत्नादुत्तरे तु गवाक्षो नाम वानरः॥ ३२॥

नवरत्न (कुबेर)-जीसे पूर्वमें सुषेणजीका स्थान है। कुबेरजीके उत्तरमें गवाक्षजीका स्थान है॥ ३२॥

दुर्गस्य पश्चिमे भागे दधिवक्त्रस्तु तिष्ठति।
दुर्गेश्वरेति नाम्नाहं तस्मिन् द्वारे व्यवस्थितः॥ ३३॥

रामकोटके पश्चिम भागमें दधिवक्त्रजीकी स्थिति है। उसी पश्चिम भागमें दधिवक्त्रजीके उत्तरमें स्थित द्वारदेशमें मैं दुर्गेश्वरके नामसे भलीभाँति स्थित रहता हूँ॥ ३३॥

ततः शतवलिर्वीरस्तदग्रे गन्धमादनः।
ऋषभः शरभश्चैव पनसोऽपि विराजते॥ ३४॥

दुर्गेश्वरजीके समीप ही शतवलिजीका, उनसे आगे गन्धमादनजीका स्थान है। उनसे आगे ऋषभजी तथा उनसे आगे शरभजी और उनसे आगे पनसजी विराजते हैं॥ ३४॥

उत्तरे द्वारदेशे तु राजते च विभीषणः।
विभीषणस्य महिषी सरमा नाम राक्षसी॥ ३५॥

रामकोटसे उत्तर द्वारपर विभीषणजी विराजते हैं। विभीषणजीकी पत्नी सरमा नामकी राक्षसी [भी वहीं] हैं॥ ३५॥

पूर्वे विभीषणस्यापि सदा तिष्ठति पूजिता।
रक्षणं धर्मशीलानां भक्षणं दुष्टचेतसाम्॥ ३६॥
करोति सरमा नित्यं कोसलायां प्रहर्षिता।

विभीषणजीसे पूर्वमें वे सरमाजी [इनके साथ] पूजित होती हुई निवास करती हैं। इनका कार्य अयोध्यामें हर्षपूर्वक रहकर धर्मशील जनोंकी रक्षा एवं दुष्ट बुद्धिवालोंका भक्षण करना है॥ ३६ $^{१}/_{२}$॥

ततो विघ्नेश्वरो देवः पूर्वभागे च तिष्ठति॥ ३७॥
यस्य दर्शनतो नृणां विघ्नलेशो न जायते।

सरमाजीसे पूर्व भागमें विघ्नेश्वरदेवजीका स्थान है, जिनके

दर्शन-पूजनसे मनुष्योंके पास विघ्नोंका लेश भी नहीं आ सकता॥ ३७१/२ ॥

तस्मात् पूर्वदिशाभागे वीरः पिण्डारको बली॥ ३८ ॥
कोसलारक्षणे दक्षो दुष्टताडनतत्परः।

इन विघ्नेश्वरजीसे पूर्व दिशामें बलवान् श्रीपिण्डारक वीरका स्थान है। ये पिण्डारक नामक वीर अयोध्यापुरीकी रक्षामें बड़े चतुर हैं। दुष्ट पापियोंको दण्ड देना इनका कार्य है॥ ३८१/२ ॥

ततः पूर्वदिशाभागे वीरस्य शुभशंसिनः॥ ३९ ॥
स्थानं मत्तगजेन्द्रस्य वर्तते नियतात्मनः।

इन पिण्डारकजीसे पूर्व दिशामें बड़े ही वीर और मंगल करनेवाले [विभीषणजीके पुत्र तथा अयोध्याके कोतवाल] जितेन्द्रिय मत्तगजेन्द्र (मातगैंड़)जीका स्थान है॥ ३९१/२ ॥

तदग्रे सरसि स्नात्वा पूजां कुर्याद् विचक्षणः॥ ४० ॥

बुद्धिमान् यात्री मत्तगजेन्द्रजीसे उत्तर सप्तसागर नामक सरोवरमें स्नानकर मत्तगजेन्द्रजीका विधिवत् पूजन करे॥ ४० ॥

पूर्णां सिद्धिमवाप्नोति यामवाप्य न शोचति।
अयोध्यारक्षको वीरः सर्वकामार्थसिद्धिदः॥ ४१ ॥

भक्त मत्तगजेन्द्रजीका पूजन करनेसे पूर्ण सिद्धिको प्राप्त होता है। जिस सिद्धिके प्राप्त हो जानेपर उस भक्तको कुछ सोचना नहीं रह जाता, क्योंकि वे वीर अयोध्यापुरीके रक्षक-कोटपाल हैं तथा सभी कामनाओंकी सिद्धिको देनेवाले हैं॥ ४१ ॥

नवरात्रिषु पंचम्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
गन्धपुष्पादिधूपैश्च नैवेद्यैश्च विधानतः॥ ४२ ॥

नवरात्रकी पंचमी तिथिमें इन मत्तगजेन्द्रजीकी वार्षिकी यात्रा करनी चाहिये। [उस समय] चन्दन, फूल, माला, धूप, नैवेद्यादिसे विधानपूर्वक यत्नसे पूजा करनी चाहिये॥ ४२ ॥

पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः।
यं यं काममिहेच्छेत तं तं काममवाप्नुयात्॥ ४३॥

विधिवत् पूजन करनेसे ये सब कामनाओंकी सिद्धियोंको देते हैं। भक्त जिन-जिन कामनाओंको करता है, उन-उन कामनाओंको ये पूर्ण करते हैं॥ ४३॥

मङ्गले मङ्गले यात्रा तस्य स्यात् प्रातिमासिकी।
ततः पूर्वदिशाभागे द्विविदोऽपि विराजते॥ ४४॥

इन मत्तगजेन्द्रजीकी यात्रा प्रत्येक मासके प्रत्येक मंगलवारको करनी चाहिये। इनसे पूर्व दिशामें द्विविदजीका स्थान है॥ ४४॥

ईशानकोणके मैन्दो बुद्धिमानवतिष्ठति।
ततो दक्षिणदिग्भागे जाम्बवान् च विराजते॥ ४५॥

मत्तगजेन्द्रजीसे ईशानकोणमें बुद्धिशाली मैन्दजी विराजते हैं। मैन्दजीसे दक्षिण भागमें जाम्बवान्‌जी विराजते हैं॥ ४५॥

तस्माद्दक्षिणतो वीरः केशरी चापि राजते।
दुर्गभित्तौ सदा ह्येते रक्षां कुर्वन्ति वानराः॥ ४६॥

जाम्बवान्‌जीसे दक्षिण भागमें केशरीजी विराजमान हैं। ये उपर्युक्त वानरगण रामकोट (किले)-के घेरेके चारों तरफ प्रतिष्ठित होकर कोटकी रक्षा करते हैं॥ ४६॥

राजद्वारे हनूमाँस्तु वायुपुत्रो महाबलः।
महावीर इति ख्यातः सर्वलोकेषु पूजितः॥ ४७॥

रामकोटके प्रधान राजद्वारपर वायुनन्दन श्रीहनुमान्‌जी विराजमान हैं, जो महाबलवान्, वीरशिरोमणिके रूपमें लोकमें प्रसिद्ध हैं; सब लोकों तथा सब देशोंमें इनकी पूजा होती है॥ ४७॥

तस्य पूजा प्रकर्तव्या नरैर्नारीभिरेव च।
स्थानाद् हनूमतश्चापि पूर्वस्यां दिशि वर्तते॥ ४८॥
हनुमत्कुण्डमिति तत् ख्यातं सर्वार्थदं नृणाम्।
अंजनीनन्दनो यत्र वाञ्छितार्थप्रदायकः॥ ४९॥

इन महावीरजीका पूजन–दर्शन नर–नारियोंको अवश्य करना चाहिये। इन हनुमान्‌जीसे पूर्व भागमें इनका कुण्ड है। यह प्रसिद्ध श्रीहनुमान्-कुण्ड मनुष्योंकी सभी कामनाओंको देनेवाला है। यहाँपर श्रीअंजनीनन्दन हनुमान्‌जी मनोरथदाताके रूपमें स्थित हैं॥ ४८–४९॥

मङ्गले मङ्गले देवि यात्रा स्यात् प्रातिमासिकी।
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा पूजयेद् वायुनन्दनम्॥ ५०॥

हे देवि! प्रत्येक मासके प्रत्येक मंगलवारको यहाँकी यात्रा करनी चाहिये। हनुमत्कुण्डमें तीर्थयात्री स्नानकर श्रीवायुनन्दन हनुमान्‌जीका पूजन अवश्य करे॥ ५०॥

तस्य दर्शनमात्रेण करस्थाः सर्वसिद्धयः।
अञ्जनीनन्दनं देवं जानकीशोकनाशनम्॥ ५१॥
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम्।
इति मन्त्रं समुच्चार्य प्रणमेद् दण्डवत् सुधीः॥ ५२॥

इन हनुमान्‌जीके दर्शनमात्रसे सभी प्रकारकी सिद्धियाँ करतलमें आ जाती हैं। 'अंजनी अम्बाको आनन्द देनेवाले, श्रीजानकीजीके शोकका नाश करनेवाले, वानरोंके अधिपति, अक्षकुमारको मारनेवाले तथा लंकापुरीको भय देनेवाले देव हनुमान्‌जीकी मैं वन्दना करता हूँ।' बुद्धिमान् यात्री इस मन्त्रको पढ़कर दण्डके समान भूमिपर गिर करके श्रीहनुमान्‌जीको प्रणाम करे॥ ५१–५२॥

धूपं दीपं च नैवेद्यं दत्वा चैव विधानतः।
ततः प्रविश्य दुर्गं तु पूजयेद् रत्नमण्डपम्॥ ५३॥

श्रीहनुमान्‌जीका विधानपूर्वक धूप, दीप, नैवेद्यादिसे पूजन करके [उनकी आज्ञा लेकर] दुर्ग (रामकोट)-के भीतर प्रवेश करे और रत्नमण्डप (रत्नसिंहासन)-का पूजन करे॥ ५३॥

इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे षष्ठोऽध्यायः॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके श्रीपार्वती-शंकर-सम्वादरूप अयोध्याखण्डका छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

रत्नमण्डपपीठमें स्थित सीता-रामकी पूजाविधि, कनकभवनस्थ श्रीसीताकी पूजाविधि, रामजन्मभूमिकी शास्त्रीय सीमा एवं रामनवमीव्रतका माहात्म्य

श्रीशङ्कर उवाच

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे।
ध्यायेत् कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम्॥ १॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—[हे पार्वती!] अतिरमणीय अयोध्यानगरमें रत्नमण्डपके मध्य भागमें कल्पवृक्षके नीचे विद्यमान सुन्दर रत्नसिंहासनका ध्यान करना चाहिये॥ १॥

महामरकतप्रख्यं नानारत्नैश्च मण्डितम्।
सिंहासनं चित्तहरं कान्त्या तामिस्रनाशनम्॥ २॥

वह सिंहासन उत्तम मरकत मणियोंसे बना हुआ, अनेक रत्नोंसे मण्डित, अपने प्रकाशसे अन्धकारका नाश करनेवाला और चित्तका हरण करनेवाला है॥ २॥

तस्योपरि समासीनं रघुराजं मनोहरम्।
ध्यायेत् कमलपत्राक्षं जानकीसहितं हरिम्॥ ३॥

उस सिंहासनपर जानकीजीके साथ बैठे हुए अति सुन्दर, कमलनेत्र रघुराज [रामरूप] श्रीहरिका [इस प्रकार] ध्यान करे— ॥ ३॥

चन्दनागुरुकर्पूरवासिते रत्नमण्डपे।
तन्मध्ये कल्पवृक्षस्य छायायां परमासने॥ ४॥
नानारत्नमये दिव्ये सौवर्णे सुमनोहरे।
तस्मिन् बालार्कसंकाशे पंकजेऽष्टदले शुभे॥ ५॥

[वह] रत्नमण्डप चन्दन, अगुरु एवं कर्पूरसे [निर्मित धूप-द्रव आदिसे] सुवासित है। मण्डपके मध्यभागमें कल्पवृक्ष है,

जिसकी छायामें एक उत्तम (सिंहासन) है, जो स्वर्णनिर्मित, नाना रत्नोंसे जटित, अत्यन्त मनोहर तथा दिव्य है। उस सिंहासनमें उदीयमान सूर्यके समान आभावाला सुन्दर अष्टदल कमल है॥ ४-५॥

वीरासने समासीनं वामाङ्के सीतया सह।
सुस्निग्धं शाद्वलश्यामं कोटिवैश्वानरप्रभम्॥ ६ ॥

[उस सिंहासनस्थ कमलपर श्रीराम] वीरासनमें बैठे हुए हैं, उनके वामभागमें श्रीजानकीजी विराजमान हैं। [श्रीरामजीका] अतिकोमल स्निग्ध शरीर है, नवदूर्वादलके तुल्य श्यामवर्ण छवि है और करोड़ों अग्नियोंके तुल्य तेज है॥ ६॥

युवानं पद्मनयनं कम्बुग्रीवं महाहनुम्।
विशालाक्षं सुसंरक्तहस्तपादतलं शुभम्॥ ७ ॥

युवावस्था है, कमलके सदृश नेत्र हैं, शंख-जैसी ग्रीवा है, ठुड्डी ऊँची है, विशाल नेत्र हैं और हाथ-पैरके तलवे सुन्दर तथा अतिशय लालवर्णके हैं॥ ७॥

बन्धूकपुष्पसंकाशस्निग्धोष्ठद्वयशोभितम्।
पूर्णचन्द्राननं स्निग्धनयनं चारुनासिकम्॥ ८ ॥

[वे] दुपहरियाके फूलके समान लाल रंगवाले कोमल ओष्ठयुगलसे सुशोभित हैं तथा पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाले, स्निग्ध नेत्रोंवाले और सुन्दर नासिकासे सुशोभित हैं॥ ८॥

करभोरुकमानीलकुन्तलं स्मितसुन्दरम्।
तरुणादित्यसंकाशकुण्डलाभ्यां विराजितम्॥ ९ ॥

[वे] गजशुण्डके सदृश सुन्दर जंघावाले तथा घुँघराले काले केशोंवाले हैं और मध्याह्नकालके सूर्यसदृश तेजवाले सुन्दर कुण्डल धारण किये हुए हैं। उनकी मुसकान बड़ी शोभामयी है॥ ९॥

हारकेयूरकटकैरङ्गुलीयकभूषणैः ।
श्रीवत्सकौस्तुभाभ्यां च वैजयन्त्या विभूषितम्॥ १०॥

[वे] गलेमें हार, बाहुओंमें विजायठ, हाथोंमें कंकण, अंगुलियोंमें अँगूठी आदि आभूषणोंसे तथा हृदयदेशमें श्रीवत्सचिह्न, कौस्तुभमणि एवं वैजयन्तीसे विभूषित हैं॥ १०॥

हरिचन्दनलिप्ताङ्गं कस्तूरीतिलकांचितम्।
वरदाभयहस्ताभ्यां राजमानं मनोहरम्॥ ११॥

[उनके] सर्वांगमें हरिचन्दन लिप्त है, मस्तकमें कस्तूरीका तिलक लगा है। एक हाथमें वर मुद्रा तथा दूसरे हाथमें अभय मुद्रासे वे शोभायमान हैं और [प्रत्येक प्राणीके] मनका हरण करनेवाले हैं॥ ११॥

वामाङ्के सुस्थितां सीतां तप्तकांचनसन्निभाम्।
पद्माक्षीं पद्मवदनां नीलकुंचितमूर्धजाम्॥ १२॥
सिंहस्कन्धस्वरूपां च कम्बुकण्ठीं सुलोचनाम्।
हरिचन्दनलिप्ताङ्गीं कस्तूरीतिलकांचिताम्॥ १३॥
तरुणादित्यसंकाशताटकद्वयशोभिताम् ।
आरूढयौवनां नित्यं पीनोन्नतपयोधराम्॥ १४॥

श्रीरघुनाथजीके वामभागमें तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाली, कमलसदृश नेत्रोंवाली, कमलोपम मुखवाली और काले घुँघराले केशोंसे अलंकृत श्रीसीताजी विराजमान हैं। वे सिंहके कन्धेके सदृश सुन्दर कन्धेवाली, शंखके सदृश कण्ठवाली, सुन्दर नेत्रोंवाली, सर्वांगमें हरिचन्दन लगायी हुई, मस्तकमें कस्तूरीका तिलक धारण की हुई, मध्याह्नकालके सूर्यसदृश प्रभावाले युगल कुण्डल धारण की हुई, नित्य युवावस्थावाली एवं उन्नत, पुष्ट वक्षःस्थलवाली हैं॥ १२—१४॥

पश्चिमे लक्ष्मणं ध्यायेत् धृतच्छत्रं महाबलम्।
पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ बालव्यजनपाणिकौ॥ १५॥

अग्रतश्च हनूमन्तं बद्धांजलिपुटं मुदा।

श्रीरामके पृष्ठभागमें छत्र लेकर स्थित महाबली लक्ष्मणजीका तथा दोनों पार्श्वों—दक्षिण और वामभागमें चँवर लिये भरतजी एवं शत्रुघ्नजीका ध्यान करे। श्रीरामके समक्ष अंजलि बाँधकर प्रसन्नतापूर्वक स्थित श्रीहनुमान्‌जीका ध्यान-पूजनादि करे॥ १५१/२ ॥

सुग्रीवं जाम्बवन्तं च सुषेणं च विभीषणम्॥ १६॥
नीलं नलञ्चाङ्गदं च ऋषभं दिक्षु पूजयेत्।
वसिष्ठं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम्॥ १७॥
मार्कण्डेयं च मौद्गल्यं तथा पर्वतनारदौ।
धृष्टं जयन्तं विजयं सुराष्ट्रं राष्ट्रवर्धनम्॥ १८॥
अशोकं धर्मपालं च सुमन्त्रं चाष्टमन्त्रिणः।

[इसके अनन्तर] चारों दिशाओं एवं आग्नेयादि कोणोंमें सुग्रीव, जाम्बवान्, सुषेण, विभीषण, नील, नल, अंगद, ऋषभ आदि [भगवत्पार्षदों]-का तथा वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, मार्कण्डेय, मौद्गल्य, पर्वत एवं नारद—इन ऋषियोंका ध्यान-पूजनादि करे। ऐसे ही [इन्हीं दिशाभागोंमें] धृष्ट, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अशोक, धर्मपाल और सुमन्त्र—इन आठों मन्त्रियोंका भी ध्यान-पूजनादि करे॥ १६—१८१/२ ॥

इन्द्रादिलोकपालांश्च देवान् सर्वान् व्यवस्थितान्॥ १९॥
विमानस्थांश्च सर्वत्र ह्याकाशे च विचक्षणः।
एवं ध्यात्वा नरो धीमान् मन्त्रेणानेन पूजयेत्॥ २०॥

आकाशमें अपनी-अपनी दिशाओंमें भलीभाँति व्यवस्थित, विमानारूढ़ इन्द्रादि लोकरक्षक [दिक्पाल] देवताओंका विद्वान् पुरुष ध्यान-पूजनादि करे। इस प्रकार वह धीमान् व्यक्ति [परिवार-देवताओंका] ध्यान [-पूजनादि] करनेके अनन्तर इस (आगे बताये गये) मन्त्रसे [श्रीसीतासहित श्रीरामका] पूजन करे॥ १९-२०॥

ॐ रामाय नमो ह्येष तारको ब्रह्मरूपकः।
नाम्नां विष्णोः सहस्त्राणामधिकोऽयं महामनुः॥ २१॥

'**ॐ रामाय नमः**' यह तारक मन्त्र ब्रह्मरूप है, यह महामन्त्र विष्णुके सहस्त्रों नामोंसे अधिक श्रेष्ठ है॥ २१॥

अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन समतां गताः।
अस्य श्रवणमात्रेण सर्व एव दिवंगताः॥ २२॥

भगवान्‌के मन्त्र अन्तहीन हैं, परन्तु इस रामतारक मन्त्रकी तुलनामें कोई भी मन्त्र नहीं है। इस मन्त्रको [अन्तकालमें] केवल सुननेमात्रसे सभी [मरणासन्न जन] स्वर्गको चले जाते हैं॥ २२॥

धूपं दीपं च नैवेद्यं पुष्पं चन्दनकं तथा।
मन्त्रेणानेन वै कुर्यान्नत्वा स्तोत्रमुदीरयेत्॥ २३॥

धूप, दीप, नैवेद्य, फूल, चन्दन आदि उपचारोंको इसी उपर्युक्त मन्त्रसे श्रीसीतारामजीको अर्पण करके प्रणाम करे और फिर [आगे लिखे हुए स्तोत्रसे] स्तुति करे॥ २३॥

राघवेन्द्र महाराज रावणान्तक भोऽच्युत।
कामादिभिः पराभूतं रक्ष मां शरणागतम्॥ २४॥

हे राघवेन्द्र! हे महाराज! हे लोकको रुलानेवाले रावणका अन्त करनेवाले! हे अच्युत! काम-क्रोधादिके वशीभूत और शरणमें आये हुए मेरी रक्षा कीजिये॥ २४॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥ २५॥

सबमें रमण करनेवाले, कल्याणकारी, चन्द्रसदृश प्रकाशवाले, सृष्टिनायक, रघुवंशके नाथ, जगत्‌के नाथ, सीतापति श्रीरामको नमस्कार है॥ २५॥

सम्प्राप्य नगरं दिव्यमभिषिक्तस्तु सीतया।
राजेश्वराधिराजाय सीतायाः पतये नमः॥ २६॥

[लंकाको जीतकर] दिव्य अयोध्या नगरमें आकर श्रीजानकीजीके साथ राज्याभिषेक किये गये, राजशिरोमणियोंके भी महाराज सीतापति श्रीरामको नमस्कार है॥ २६॥

ब्रह्मादिदेवदेवाय ब्रह्मण्याय महात्मने।
जानकीप्राणनाथाय रामभद्राय ते नमः॥ २७॥

ब्रह्मा आदि देवताओंके भी देव, ब्राह्मणोंके हितैषी, श्रीजानकीजीके प्राणनाथ महात्मा श्रीरामभद्र! आपको नमस्कार है॥ २७॥

विभीषणश्च सुग्रीवो रक्षितौ शरणागतौ।
तथा मां देवदेवेश पादौ ते प्रणतोऽस्म्यहम्॥ २८॥

हे देवदेवेश! जिस प्रकार आपने शरणमें आये हुए विभीषण और सुग्रीवकी रक्षा की, उसी तरह शरणमें आये हुए मेरी रक्षा कीजिये, मैं आपके श्रीचरणोंमें [बार-बार] प्रणाम कर रहा हूँ॥ २८॥

एवं स्तुतिं विधायाथ दत्वा च महतीं श्रियम्।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ २९॥

इस प्रकार स्तुति करके [भगवच्चरणोंमें] विपुल सम्पत्तिको अर्पण करे। भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम करे। ऐसा करनेवालेकी सभी कामनाएँ परिपूर्ण होती हैं॥ २९॥

पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात्।
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति तत् किं यदिह नाप्यते॥ ३०॥

पुत्र चाहनेवाला पुत्र प्राप्त करता है, धनका इच्छुक धन प्राप्त करता है, मोक्षका अभिलाषी मोक्षको प्राप्त करता है। संसारमें ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो इस (रत्नसिंहासनपर विराजमान श्रीसीतारामजीके दर्शनरूप अनुष्ठान)-से न मिल सके॥ ३०॥

तस्मादुत्तरदिग्भागे स्थानं चैव मनोहरम्।
सीताया भवनं दिव्यं नाम्ना कनकमण्डपम्॥ ३१॥

इस रत्नसिंहासनसे उत्तर दिशामें अतिमनोहर स्थान—श्रीसीताजीका दिव्य भवन है, जिसे कनकमण्डप—कनकभवन कहते हैं॥ ३१॥

यत्र वै जानकी देवी सखीभिः परिवारिता।
रमते पतिना सार्धं सदैव वरवर्णिनि॥ ३२॥
तत्र गत्वा नरो धीमान् पूजां चैव तु कारयेत्।

हे सुन्दरि! उस कनकभवनमें [आठ] सखियोंसे सेवित श्रीजानकीजी अपने स्वामी (श्रीराम)-के साथ सदैव क्रीडा करती रहती हैं, वहाँ जाकर बुद्धिमान् मनुष्य श्रीजानकीजीका सखियोंके सहित [अर्चकके द्वारा सविधि] पूजन कराये॥ ३२½॥

धूपं दीपं च नैवेद्यं मन्त्रेणानेन कारयेत्॥ ३३॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥ ३४॥
सम्पूज्य विधिवद् दत्वा दानानि च महामतिः।
स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या च विचक्षणैः॥ ३५॥

महाबुद्धिमान् मनुष्य 'सुगन्धित जिनका प्रवेशद्वार है, जो दुराधर्षा तथा नित्यपुष्टा हैं और जो गोमयके बीच निवास करती हैं, सब भूतोंकी स्वामिनी उन लक्ष्मीदेवीका मैं अपने घरमें आवाहन करता हूँ'—इस वेदमन्त्रसे धूप, दीप, नैवेद्यादि उपचारोंसे विधिपूर्वक पूजन करके अनेक प्रकारका दान करे और तत्पश्चात् प्रसन्न मनसे विद्वान् पुरुषोंको [श्रीजानकीजीका अधोनिर्दिष्ट मन्त्रसे] स्तवन करना चाहिये॥ ३३—३५॥

वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं
कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम्।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं
सन्मानसालिपरिपीतपरागपुंजम्॥ ३६॥

अपने नव-नवायमान सौरभसे जिन्होंने योगियोंके अन्तःकरणको आकृष्ट कर लिया है, तीनों (आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक) तापोंका शमन करनेके लिये मुनिजनरूप हंस अहर्निश जिन (-से निर्गत रस अर्थात् चरणोदक)-का सेवन करते हैं और सत्पुरुषोंके चित्तरूप भौंरे जिनकी परागराशिका भलीभाँति आस्वादन करनेमें निरत हैं—विदेहनन्दिनी भगवती श्रीसीताके ऐसे चरणारविन्दकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ३६॥

एवं सम्पूज्य विधिवज्जन्मभूमिं व्रजेन्नरः।
विघ्नेश्वरात्पूर्वभागे वसिष्ठाच्चोत्तरे तथा॥ ३७॥

यात्री इस प्रकार कनकभवनमें विधिवत् दर्शन-पूजनकर श्रीरामजन्मभूमिकी यात्रा करे, जो कि विघ्नेश्वर महादेव*से पूर्व भागमें तथा वसिष्ठस्थानसे उत्तर भागमें स्थित है॥ ३७॥

लोमशात् पश्चिमे भागे जन्मस्थानं तु तत्स्मृतम्।
धनुः पंचशतादूर्ध्वं स्थानं वै लोमशस्थलात्॥ ३८॥

वैसे ही लोमशस्थानसे पश्चिम भागमें वह जन्मस्थानतीर्थ विद्यमान है। उस लोमशतीर्थसे पाँच सौ धनुषसे कुछ अधिक दूरीपर श्रीरामजन्मभूमि महातीर्थकी स्थिति मानी गयी है॥ ३८॥

विघ्नेश्वरात् सहस्राष्टावुन्मत्ताच्च धनुः शतम्।
मध्ये तु राजभवनं ब्रह्मणा निर्मितं स्थलम्॥ ३९॥

विघ्नेश्वरपीठसे आठ हजार धनुष तथा उन्मत्त स्थानसे सौ धनुषकी दूरीपर, मध्य भागमें ब्रह्माजीके द्वारा बनाया हुआ [दशरथजीका] राजभवन है॥ ३९॥

जन्मस्थानमिदं प्रोक्तं मोक्षादिफलदायकम्।
यद् दृष्ट्वा च मनुष्यस्य गर्भवासक्षयो भवेत्॥ ४०॥

---

* (यहाँपर १०० नं० का शिलालेख है। ये विघ्नेश्वर महादेवजी ककरही बाजार फैजाबाद शहरमें हैं।)

[कौसल्याजीका] यह भवन ही श्रीरामकी जन्मभूमि है। इस जन्मभूमिके दर्शनसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—ये चारों पदार्थ मिलते हैं तथा दर्शकको गर्भवाससे छुटकारा मिल जाता है॥ ४०॥

विना दानेन तपसा विना तीर्थैर्विना मखैः।
नवमीदिवसे प्राप्ते व्रतधारी तु मानवः।
स्नानदानप्रभावेण मुच्यते जन्मबन्धनात्॥ ४१॥

चैत्र शुक्ल रामनवमीके दिन जो मनुष्य रामनवमीका व्रत धारण करता है, उसे बिना दान, बिना तप, बिना यज्ञ किये तथा अन्य तीर्थोंका सेवन बिना किये ही [सरयूमें] स्नान तथा दानके प्रभावसे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति मिल जाती है॥ ४१॥

कपिलागोसहस्त्रं च यो ददाति दिने दिने।
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥ ४२॥

जो मनुष्य [सोनेकी सींग, चाँदीकी खुरी, ताम्रकी पीठ, मोतीकी पूँछ और काँसेकी दोहनीसे सुसज्जित सवस्त्रा-सवत्सा] हजार कपिला गायोंका दान प्रतिदिन करता है, उसे जो पुण्य मिलता है, वही फल श्रीरामजन्मभूमिके दर्शनसे मिलता है॥ ४२॥

जन्मान्तरसहस्त्रेण यत्पापं समुपार्जितम्।
तत्सर्वं नाशमायाति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥ ४३॥

सहस्त्रों जन्मोंकी कमायी हुई जो पापराशि है, वह समस्त पापराशि जन्मभूमिके दर्शनसे नाशको प्राप्त होती है॥ ४३॥

मातापित्रोर्गुरूणां च भक्तिमुद्वहतां नृणाम्।
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥ ४४॥

माता-पिता-गुरुजनोंकी भक्ति करनेवालोंको जो पुण्यफल मिलता है, वही फल श्रीरामजन्मभूमिके दर्शनसे मिलता है॥ ४४॥

श्रीपार्वत्युवाच

भगवन् योगिनां श्रेष्ठ नवम्यास्त्वं फलं वद।

व्रतस्य करणे वापि को विधिस्तत्र कार्यते।
पापानां प्रलयं कस्य चकार नवमीव्रतम्॥ ४५॥

श्रीपार्वतीजीने पूछा—हे भगवन्! हे योगियोंमें श्रेष्ठ! आप श्रीरामनवमीका फल बतलाइये।

इस श्रीरामनवमीव्रतके अनुष्ठानमें कौन-सा विधान करना चाहिये? और इस रामनवमीव्रतने किसके पापोंका नाश किया?॥ ४५॥

श्रीशङ्कर उवाच

ततोऽहं कथयिष्यामि पृष्टोऽस्मि च यतस्त्वया।
यस्यां हि जन्म रामस्य पूर्णस्य परमात्मनः॥ ४६॥

श्रीशंकरजीने कहा—तुमने जो [इस गूढ़ रहस्यको] पूछा, इसलिये मैं [उस तिथिके विषयमें] तुमसे [अवश्य] कहूँगा, जिसमें कि पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीरामभद्रका जन्म हुआ॥ ४६॥

चैत्रे मासि सिते पक्षे नवम्यां च पुनर्वसौ।
ततो मध्याह्नसमये कौसल्या सुषुवे सुतम्॥ ४७॥

चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथि और पुनर्वसु नक्षत्रमें, मध्याह्नके समय कौसल्याजीने पुत्र श्रीरामको जन्म दिया॥ ४७॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः।
दिव्यतूर्याण्यवाद्यन्त मुदिता यत्र तत्र ह॥ ४८॥

तब [श्रीरामके जन्मसमयमें] देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, गुह्यक—इन देवयोनियोंने बड़े आनन्दसे चारों तरफ दिव्य बाजोंको बजाया॥ ४८॥

चिन्तामणिर्मणीनां तु वृक्षाणां कल्पवृक्षवत्।
व्रतानामपि सर्वेषां तथा वै नवमीव्रतम्॥ ४९॥

जिस प्रकार मणियोंमें चिन्तामणि और वृक्षोंमें कल्पवृक्ष सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार श्रीरामनवमीव्रत सब व्रतोंमें शिरोमणि है॥ ४९॥

ये कुर्वन्ति व्रतं देवि नवमीं मुक्तिदायिनीम्।
महोत्सवं तथा पूजां तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ ५०॥

हे देवि पार्वती! जो भक्त मुक्ति देनेवाले इस नवमी व्रतको, जन्मोत्सवको एवं विशिष्ट पूजाको सम्पन्न करते हैं, वे भक्त उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं॥ ५०॥

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं साधूनां रक्षणाय च।
वधार्थं यातुधानानामवतीर्णः स्वयं हरिः॥ ५१॥

देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये, साधुओंकी रक्षाके लिये तथा राक्षसोंके वधके लिये स्वयं भगवान् श्रीहरिने अवतार धारण किया॥ ५१॥

चैत्रे मासि नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः।
पुनर्वस्वर्क्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा॥ ५२॥

चैत्र महीनेकी नवमीको स्वयं श्रीहरि श्रीरामभद्रके रूपमें उत्पन्न हुए। उस दिन पुनर्वसु नक्षत्र था। यह नवमी तिथि [परमात्माकी अवतरणतिथि होनेसे] सभी कामनाओंको देनेवाली है॥ ५२॥

श्रीरामनवमी प्रोक्ता सूर्यकोटिशताधिका।
चैत्रशुक्ला तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि॥ ५३॥

यदि चैत्र शुक्ला नवमी पुनर्वसु नक्षत्रयुक्त है, तो ऐसी वह रामनवमी सैकड़ों-करोड़ों सूर्यग्रहणोंसे अधिक पुण्य फल देनेवाली है॥ ५३॥

तस्मिन् दिने महापुण्ये राममुद्दिश्य भक्तितः।
यत्किञ्चित् क्रियते कर्म तद् भवक्षयकारकम्॥ ५४॥

उस परमपवित्र श्रीरामनवमी महापर्वपर श्रीरामको उद्देश्य करके भक्तिपूर्वक जो भी पुण्य कार्य किया जाता है, वह सत्कर्म संसारको छुड़ानेवाला हो जाता है॥ ५४॥

उपोषणं जागरणं राममुद्दिश्य तर्पणम्।
तस्मिन् दिने तु कर्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः॥ ५५॥

ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छावाले धार्मिक जन इस श्रीरामनवमीके दिन श्रीरामको उद्देश्य करके उपवास, तर्पण और उत्सव-जागरण अवश्य करें॥ ५५॥

राम एव परब्रह्म तद्दिनं रामतोषकम्।
उपोषणं जागरणं तस्माद् कुर्याद् विशेषतः॥ ५६॥

श्रीराम ही परब्रह्म हैं तथा श्रीरामनवमी श्रीरामको अति प्रिय हैं, अतः विशेषरूपसे उस दिन उपवास-जागरण अवश्य करे॥ ५६॥

यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते मोहाद् विमूढधीः।
कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः॥ ५७॥

जो मूर्ख मोहमें पड़कर उस दिन [व्रत न रहकर] भोजन करता है, वह घोर कुम्भीपाक आदि नरकोंमें निस्सन्देह पकाया जाता है॥ ५७॥

यस्तु रामनवम्यां वै नियतस्तर्पयेत् पितॄन्।
ते सर्वे तत्क्षणाद्देवि यान्ति विष्णोः परं पदम्॥ ५८॥

जो भक्त श्रीरामनवमीके दिन संयत चित्तसे अपने पितरोंका तर्पण करता है, हे देवि! उस भक्तके समस्त पितर उसी समय श्रीविष्णुभगवान्के परम पदको प्राप्त होते हैं॥ ५८॥

यस्तु रामनवम्यां तु दद्याद् वित्तानुसारतः।
यत् किंचिदपि तत्सर्वं महादानसमं भवेत्॥ ५९॥

जो मनुष्य श्रीरामनवमीपर्वमें अपनी शक्तिके अनुसार कुछ भी दान करता है, वह सब महादानके समान हो जाता है॥ ५९॥

धन्यो लोको व्रतपरो रामनामपरायणः।
तिथिर्धन्या च नवमी यस्यां जातो हरिः स्वयम्॥ ६०॥

श्रीरामनवमीव्रत करनेवाले और श्रीरामनामका जप करनेवाले मनुष्य धन्य हैं, वह नवमी तिथि भी धन्य है, जिसमें पापापहारी भगवान् श्रीहरि स्वयं उत्पन्न हुए॥ ६०॥

ये नवमीव्रतपरा महोत्सवरताश्च ये।
गतिं भागवतीं यान्ति चाक्षयां सुरसेविताम्॥ ६१॥

जो लोग श्रीरामनवमीव्रत करते हैं और जो श्रीराम-जन्मोत्सव भी [उत्तम रूपसे हर्षके साथ] सम्पन्न करते हैं, वे मनुष्य देवोंसे सेवित उस अविनाशी भागवती गतिको प्राप्त होते हैं॥ ६१॥

यस्तु रामनवम्यां तु कुर्याद् रामव्रतं यदि।
तुलापुरुषदानादिफलं प्राप्नोति मानवः॥ ६२॥

जो मनुष्य श्रीरामनवमीपर्वमें श्रीराम [-तोषक] व्रत करता है, उसे तुलादान आदि महादानोंको देनेका फल मिलता है॥ ६२॥

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे महादानैः कृतैर्हुतैः।
तत्फलं समवाप्नोति श्रीरामनवमीव्रतात्॥ ६३॥

सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें बड़े-बड़े दानोंको करनेसे तथा बड़े-बड़े यज्ञोंके करनेसे जो फल मिलता है, वही फल श्रीरामनवमीव्रतके करनेसे मिलता है॥ ६३॥

कुर्याद् रामनवम्यां तु उपवासमतन्द्रितः।
मातुर्गर्भमवाप्नोति नैव रामो न संशयः॥ ६४॥

जो आलस्य-निद्रादिमें सावधानी बरतते हुए श्रीरामनवमीको उपवास करता है, वह माताके गर्भमें नहीं जाता और स्वयं श्रीरामरूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६४॥

नवमी चाष्टमीयुक्ता वर्ज्या विष्णुपरायणैः।
उपोषणं नवम्यां तु दशम्यां चैव पारणम्॥ ६५॥

वैष्णवोंको अष्टमीविद्धा नवमीका व्रत नहीं करना चाहिये। उन्हें शुद्ध नवमीको उपवास करके दशमी तिथिमें पारण करना चाहिये॥ ६५॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-सम्वादरूप अयोध्याखण्डका सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

रामनवमी-व्रतानुष्ठानके प्रसंगमें आवरण-पूजाका विधान एवं पाँच पापियोंके उद्धारकी कथा

श्रीशङ्कर उवाच

जन्मस्थानं नरः प्राप्य कुर्याद् रामस्य पूजनम्।
सौवर्णं राजतं वापि कारयेद् रघुनन्दनम्॥ १॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—मनुष्य [श्रीरामनवमीमें महापूजाहेतु] सुवर्ण या रजतसे राममूर्तिका निर्माण कराये और श्रीरामजन्मस्थानपर पहुँचकर [उसी मूर्तिमें] श्रीरामका पूजन करे॥ १॥

मातुरङ्केशयं राममिन्द्रनीलमणिप्रभम्।
कोमलाङ्गं विशालाक्षं विद्युद्वर्णाम्बरावृतम्॥ २॥
भानुकोटिप्रतीकाशकिरीटेन विराजितम्।
रत्नग्रैवेयकेयूररत्नकुण्डलमण्डितम्॥ ३॥
रत्नकांचनमंजीरकटिसूत्रैरलङ्कृतम्।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्ताहारोपशोभितम्॥ ४॥

जो माता कौसल्याकी गोदमें स्थित, नीलमणिकी-सी कान्तिवाले, कोमल देहवाले एवं विशाल नेत्रोंवाले हैं। जिन्होंने विद्युत्के सदृश भासमान वस्त्र एवं कोटि-कोटि सूर्योंके सदृश देदीप्यमान किरीट धारण किया हुआ है। जो रत्नजटित, स्वर्णनिर्मित मंजीर एवं [वैसे

ही] कटिसूत्र (करधनी)-से विभूषित हैं। जिनकी ग्रीवा रत्नहारसे, श्रवणयुगल रत्नमय कुण्डलोंसे तथा बाहुयुग्म केयूरसे अलंकृत है। कौस्तुभमणि एवं मुक्ताहारसे मण्डित जिनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न सुशोभित हो रहा है [—ऐसे लीलाशिशु भगवान् श्रीरामका भक्तिपूर्वक अनुध्यान करना चाहिये।]॥ २—४॥

सौवर्णे राजते पात्रे षट्कोणं चैव संलिखेत्।
अलाभे बिल्वपीठे वा स्थापयेद् रघुनन्दनम्॥ ५॥
वस्त्रद्वयसमायुक्तं दिव्यरत्नविभूषितम्।
अत्र शक्तिसमायुक्तं देवेशं पूजयेत् क्रमात्॥ ६॥

सुवर्ण या चाँदीके पात्रमें षट्कोण बनाये। यदि सुवर्ण या चाँदीका पात्र न मिल सके तो बिल्वकाष्ठके पीढ़ेपर श्रीरघुनन्दनको स्थापित करे॥ ५॥

उन्हें दो वस्त्र चढ़ाये और अपनी शक्तिके अनुसार रत्नजड़े हुए भूषणोंसे सजाये। इस पीठमें शक्तिके सहित देवोंके देव श्रीराम [-के इस प्रकारके विग्रह]-का क्रमसे पूजन करे॥ ६॥

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य नमः शब्दं ततो वदेत्।
भगवत्पदमाभाष्य वासुदेवाय इत्यपि॥ ७॥

पहले 'ॐ' का उच्चारण करे, उसके बाद 'नमः' शब्द बोले, उसके पीछे 'भगवते' यह पद लगाये, तत्पश्चात् 'वासुदेवाय' यह पद भी लगा दे। [इस प्रकारसे पदोंका विन्यास करनेपर द्वादशाक्षर विष्णुमन्त्र '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' सम्पन्न हो जाता है]॥ ७॥

इति मन्त्रेण तन्मध्ये कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं पुनः।
एवं सम्पूजयेत् पीठं देवमावाह्य पूजयेत्॥ ८॥

इस मन्त्रसे पीठपूजन करके फिर पुष्पांजलि अर्पण करे। पीठपूजन करके उसी पीठपर मध्यभागमें श्रीरामभद्रका आवाहनकर सविधि पूजन करे॥ ८॥

अर्घादिधूपदीपान्तानुपचारान् विधाय च।
ततोऽनुज्ञाप्य देवेशं परिवाराँश्च पूजयेत्॥ ९॥

अर्घ्यसे लेकर धूप-दीपतक, पूजनविधिके अनुसार सभी (सोलह) उपचारोंसे यथाशक्ति पूजनकर देवेश्वर श्रीरामसे आज्ञा लेकर उनके परिवारका पूजन करे॥ ९॥

प्रथमं षट्सु कोणेषु हृदयादीनि षट् क्रमात्।
मूलमन्त्रेण कर्तव्या उपचारास्तु षोडश॥ १०॥

सर्वप्रथम छः कोणोंमें हृदय आदि छः अंगोंका क्रमसे [स्थापन करके] मूल मन्त्रसे [उनका] षोडशोपचार पूजन करे॥ १०॥

इन्द्रादीन् लोकपालाँश्च वसिष्ठादिमुनीनपि।
सर्वदिक्पालमन्त्रेण पूजयेद् भक्तिसंयुतः॥ ११॥

भक्तियुक्त होकर [दिक्पालोंके मन्त्रोंसे] लोकरक्षक इन्द्रादि दिक्पालों एवं [मुनियोंके मन्त्रोंसे] वसिष्ठ आदि मुनियोंका पूजन करे॥ ११॥

अशोककुसुमैर्युक्तमर्घ्यं देवाय चार्पयेत्।
दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च॥ १२॥

दानवानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च।
परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः॥ १३॥

गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ।
प्रतियामं विशेषेण पूजयेद् रघुनन्दनम्॥ १४॥

अशोक पुष्पों [तथा अर्घ्यवस्तुओंसे] समन्वित अर्घ्य [आगेवाले मन्त्रोंको पढ़कर] श्रीरामभद्रको प्रदान करे। 'हे अनघ! रावणका वध करनेके लिये, धर्मके भलीभाँति स्थापनार्थ, दानवोंके विनाशहेतु, दैत्योंके निर्दलनार्थ और सत्पुरुषोंका रक्षण करनेके लिये आप श्रीहरि स्वयं रामरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। [हे प्रभो!]

मेरे द्वारा अर्पण किये गये अर्घ्यको आप भाइयोंके सहित ग्रहण कीजिये।' [ऐसे ही उपासक रात्रिमें] प्रत्येक पहरमें श्रीरघुनन्दनका विशेष पूजन करे॥ १२—१४॥

पुराणस्तोत्रपाठैश्च वेदपारायणेन च।
नृत्यैर्गीतैश्च वाद्यैश्च रात्रिशेषं व्यपोह्य च॥ १५॥
प्रातः स्नात्वा च सावित्रीं जप्त्वा सन्ध्यामुपासयेत्।
षडक्षरेण मन्त्रेण देवेशं मनसा स्मरेत्॥ १६॥

पुराणोंका पारायण, स्तोत्रोंका पाठ, वेदोंका पाठ, नृत्य, गीत और वाद्योंका वादन करते हुए [उपासक] समस्त रात्रि बिताये। तदुपरान्त प्रातः स्नानकर गायत्रीजपके साथ सन्ध्योपासन करे। तत्पश्चात् [गुरुसे प्राप्त] षडक्षर श्रीराममन्त्रका मानसिक जप करता हुआ मनमें श्रीरामका स्मरण निरन्तर करता रहे॥ १५-१६॥

देवदेवं प्रणम्याथ पूर्ववत् पूजयेत् सुधीः।
नवम्यां पूजनं तुभ्यं रामस्योदाहृतं मया॥ १७॥

[हे पार्वती! दशमीको प्रातः नित्यकर्म करके] देवोंके देव श्रीरामका पुनः बुद्धिमान् भक्त पूजनकर दण्डवत् प्रणाम करे। [हे देवि!] नवमीव्रतके प्रसंगमें श्रीरामके पूजनकी यह विधि मैंने तुमसे कही॥ १७॥

माहात्म्यं कथयिष्यामि सेतिहासं पुरातनम्।
मरुकान्तारदेशे च बभूवुः पञ्च पापिनः॥ १८॥

अब [रामनवमीव्रत तथा रामजन्मभूमिकी] महिमाके सन्दर्भमें एक प्राचीन इतिहासको मैं तुमसे कह रहा हूँ। मरुकान्तार (मारवाड़) देशमें पाँच पापी रहा करते थे॥ १८॥

एकस्तु तैलकारो हि लुम्पकेति च कथ्यते।
तन्तुकारो द्वितीयस्तु नाम्ना शङ्कुरिति स्मृतः॥ १९॥

तृतीयस्तु नटो नाम्ना लुण्ठकोऽसावुदाहृतः।
चतुर्थो धीवरो दुष्टो नाम्ना लोकेषु जन्तुहा॥ २०॥
पञ्चमः कुम्भकारस्तु धर्महेति प्रथामगात्।
पञ्चग्रामेषु पञ्चानामेकावस्थितिरन्वभूत्॥ २१॥

एक तो तेली था, जिसका नाम लुम्पक था। दूसरा जुलाहा था, उसका नाम शंकु था। तीसरा जातिका नट था, उसका नाम लुण्ठक था। चौथा मल्लाह था, लोग उस दुष्टको जन्तुहा नामसे पुकारते थे। पाँचवाँ कुम्हार था, जो धर्महा नामसे प्रसिद्ध था। ये पाँचों व्यक्ति पाँच ग्रामोंके रहनेवाले थे, परन्तु एक बार इन पाँचोंका दैवसंयोगसे एक स्थानपर मिलन हो गया॥ १९-२१॥

तैलकारेण गोदोषो बभूव तैलपीडने।
इति दोषश्चरैर्ज्ञात्वा राज्ञा ग्रामाद् बहिष्कृतः॥ २२॥
तन्तुकारस्तु भार्यायामनुजस्यैव सङ्गकृत्।
नटस्तु पथिकान् सर्वान् सदा लुण्ठति कानने॥ २३॥
धनुर्बाणधरः पापी तन्तुकारगृहे स्थितः।
नृपतिस्तौ गृहीत्वा च यष्टिघातानकारयत्॥ २४॥
धीवरः कुम्भकारश्च सदा चौर्यपरायणौ।
राजलोकैर्गृहीतौ च कदाचिच्चौर्यकर्मणि॥ २५॥
बद्ध्वानीतौ नृपस्याग्रे पापिनौ परतापिनौ।
विमलात्मेति राजर्षिर्देहभङ्गं न चाकरोत्॥ २६॥

तेलीको तेल पेरनेके कारण गोहत्या लगी, यह अपराध गुप्तचरोंके द्वारा राजाने सुनकर उसे ग्रामसे निकाल दिया। जुलाहा अपने छोटे भाईकी पत्नीसे व्यभिचार करता था तथा नट जंगलमें सदैव सब यात्रियोंको लूटा करता था। धनुर्बाण धारण करनेवाला वह पापी जुलाहेके घरमें रहा करता था। राजाने जुलाहे तथा नटको पकड़वाकर दण्डोंसे पिटवाया। मल्लाह और कुम्हार— ये दोनों सदा चोरी किया करते थे। किसी समय चोरी करते

हुए इन दोनोंको राजाके सिपाहियोंने पकड़ लिया। दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेवाले ये दोनों पापी बाँधकर राजाके सामने लाये गये। राजा विमलात्मा राजर्षि थे, अतः उन्होंने इन दोनोंको अंग-भंगका दण्ड नहीं दिया॥ २२—२६॥

एष राज्ञां परो धर्मश्चौराणां मारणं तु यत्।
ज्ञानिनाञ्च मते नैव तस्माद् राज्ञा विमोचितौ॥ २७॥
देहभेदेन यो दण्डः कर्तव्यो विदुषा नहि।
वपनं द्रविणादानं देशान्निर्यापणं तथा॥ २८॥
एष हि सर्वदुष्टानां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः।

यह राजाओंका परम धर्म है कि चोरोंको मरवा दे। परन्तु ज्ञानी राजाओंके मतमें चोरोंको मारना धर्म नहीं है। इसलिये उन दोनोंको राजाने छोड़ दिया। विद्वान् राजाको अपराधीका अंग-भंग करना या उसे प्राणदण्ड नहीं देना चाहिये। बाल बनवाकर देशसे निकाल देना तथा उसकी सारी सम्पत्ति ले लेना, यही दण्ड सब दुष्ट अपराधियोंके लिये धर्मनीति कहती है। सभी दुष्टोंके लिये उपर्युक्त दण्ड ही वधके समान है। इनके लिये शास्त्रने अन्य दैहिक दण्ड नहीं बतलाया॥ २७—२८$^{1}/_{2}$॥

तैलकारस्तन्तुकारो नटश्च कुम्भकारकः॥ २९॥
धीवरोऽपि महापापी पञ्चानां मेलनं वने।
बभूव पापिनां दैवाद् हिंस्रानां परतापिनाम्॥ ३०॥

तेली, जुलाहा, नट, कुम्हार और मल्लाह—इन दूसरोंको पीडा देनेवाले एवं हिंसापरायण पाँचों महापापियोंका दैवसंयोगसे वनमें सम्मिलन हुआ॥ २९-३०॥

ग्राममागत्य पञ्चैते चौर्यं कुर्वन्ति नित्यशः।
मुषित्वा द्रव्यमुरु च पलायन्ते वनं पुनः॥ ३१॥

ये पाँचों साथी ग्राममें आकर नित्य चोरी करके बहुत-सा धन

लेकर फिर घोर जंगलमें भाग जाया करते थे॥ ३१॥

ग्रामान्तरं पुनर्गत्वा तत्र चौर्यं च चक्रिरे।
तस्मिन् देशे च ये ग्रामा लुण्ठिताश्चैव पापिभिः॥ ३२॥

फिर दूसरे ग्रामोंमें जाकर वहाँ चोरी किया करते थे। [इस प्रकार] उस देशके जितने ग्राम थे, वे सब ग्राम इन पाँचों पापियोंद्वारा लूट लिये गये॥ ३२॥

मुषित्वा बहुलं द्रव्यं वेश्याभोगपरायणाः।
मद्यपानरताश्चैव मांसाहारोपजीविनः॥ ३३॥

[इस प्रकार] बहुत-सा धन चुराकर वे वेश्यागमन, मदिरापान, मांसाहारादि करते हुए जीवन बिताते थे॥ ३३॥

गोविप्रसुरसाधूनां सदा निन्दापरायणाः।
एवं ते पापिनो राज्ञा स्वदेशाच्च निराकृताः॥ ३४॥

गो, ब्राह्मण, देवता और सज्जनोंकी सदा निन्दा करना—इनका स्वाभाविक कर्म था। इन कुकर्मोंके कारण इन पाँचोंको राजाने अपने देशसे निकाल दिया॥ ३४॥

राज्ञा निराकृताः सर्वे दुःखितास्ते तदाभवन्।
देशाद् देशान्तरं गत्वा न पुनः शर्म लेभिरे॥ ३५॥

राजाके द्वारा देशसे निकाले हुए वे सभी [महापापी] बहुत दुखी हो गये और एक देशसे दूसरे देशमें जाकर भी सुख-शान्ति न पा सके॥ ३५॥

किं कुर्मोऽथ क्व गच्छामो जल्पन्तश्च मुहुर्मुहुः।
भ्रमन्त एव ते सर्वे नानादेशे च पामराः॥ ३६॥
चक्रुरेनाँसि ते सर्वे लोके नानाविधानि च।
पापेन दुःखिताः सर्वे मुहुर्ग्लानिं च लेभिरे॥ ३७॥

वे पाँचों नीच 'क्या करूँ कहाँ जाऊँ,'—ऐसा बार-बार विलाप करते हुए अनेक देशोंमें घूमने लगे। वे पाँचों पापी

अनेक देशोंमें घूमते हुए अनेक प्रकारके पापोंको करने लगे और उन्हीं पापोंसे दुखी होकर वे बार-बार ग्लानि-संतापको प्राप्त हुए॥ ३६-३७॥

मधुमासे महापुण्ये नवम्यां रामजन्मनि।
स्नानार्थं तु जनाः सर्वे चेन्द्रप्रस्थात् प्रचेलिरे॥ ३८॥
तेषां सङ्गस्तु तेषां वै चौराणामभिलुम्पताम्।
एवं विचार्य ते चौराः करिष्यामोऽथ चौरताम्॥ ३९॥

चैत्रमासकी रामजन्मकी तिथि नवमीके महापुण्यप्रद पर्वपर [अयोध्यापुरी—सरयूजीमें] स्नान-दर्शनके निमित्त बहुत-से लोग इन्द्रप्रस्थसे चले। उन यात्रियोंके साथ वे पाँच लुटेरे चोर हो लिये। चोरोंने सोचा था कि मौका पाकर इन तीर्थयात्रियोंको हम लूट लेंगे॥ ३८-३९॥

पृष्टाश्च पथिकैः पञ्च ह्यात्मानं तु ब्रुवन्तु नः।

अयोध्यायात्रियोंने [अपने साथ चल रहे उन] पाँचों चोरोंसे परिचय पूछा—॥ ३९१/२॥

चौरा ऊचुः

वयं तु यात्रिणः सर्वे मरुकान्तारवासिनः॥ ४०॥
तीर्थयात्रां करिष्यामो भवतां सङ्गमे वयम्।
तेषामितीरितं वाक्यं किंचिन्नोचुश्च ते जनाः॥ ४१॥

चोरोंने बतलाया—हम लोग मारवाड़ देशके निवासी हैं और यात्रा करनेवाले हैं। [रामनवमीपर्वपर सरयू-स्नानके लिये] आप लोगोंके साथ हम लोग भी तीर्थयात्रा करेंगे। चोरोंके इस प्रकारके कथनको सुनकर उन लोगोंने कुछ भी नहीं कहा [तथा साथ आने दिया]॥ ४०-४१॥

अयोध्यां च गतास्ते तु नराः सुकृतिनः प्रिये।
चौर्यस्यावसरस्तेषु नाभवत् पापकर्मणाम्॥ ४२॥

[श्रीशंकरजी कहते हैं कि] हे प्रिये! वे पुण्यशील यात्री [निर्विघ्न] अयोध्यापुरीमें पहुँच गये और [श्रीरामकी कृपासे] उन पापी चोरोंको चोरी करनेका अवसर नहीं मिला॥ ४२॥

उपलभ्य त्वयोध्यायाः पूर्वद्वारे समाययुः।
अयोध्यायां तु ये विघ्ना मूर्तिमन्तस्तु ते सदा॥ ४३॥

अयोध्यापुरीमें पहुँचनेपर पुरीके पूर्व द्वारपर [यात्रियोंके साथ] वे पाँचों चोर पहुँचे। अयोध्यापुरीमें पापी पुरुष प्रवेश न कर सकें, इसलिये [काम-क्रोधादि दशविध विकाररूप] विघ्न मूर्तरूपमें [पुरीकी सीमामें] सर्वदा विद्यमान रहते हैं॥ ४३॥

कामः क्रोधश्च लोभस्तु दम्भः स्तम्भोऽथ मत्सरः।
निद्रा तन्द्रा तथालस्यं पैशुन्यमिति ते दश॥ ४४॥

काम, क्रोध, लोभ, पाखण्ड, अभिमान, ईर्ष्या, निद्रा, शिथिलता, आलस्य, चुगली—ये दस विघ्न हैं॥ ४४॥

हस्ते दण्डं गृहीत्वा तु मूर्तिमन्तो विदुद्रुवुः।
बाध्यमानाँश्च तान् दृष्ट्वा दयायुक्तोऽब्रवीन्मुनिः॥ ४५॥

उन मूर्तिमान् विघ्नोंने हाथमें दण्ड लेकर [पाँचों पापियोंको] खदेड़ा—भगाया [पुरीमें जानेसे रोका], तब पीटे और रोके जाते हुए उन पाँचोंको दुखी देखकर असितमुनिको बड़ी दया आयी। उन्होंने रोकनेवाले विघ्नोंसे कहा॥ ४५॥

असितो नाम मेधावी निषिषेधाथ चागतान्।
भविष्यति महापुण्यं युष्माकं पापितारणे॥ ४६॥

महाबुद्धिमान् असितजीने उन उपस्थित विघ्नोंको, जो पापियोंको अयोध्यापुरीमें घुसने नहीं देते थे, रोका तथा समझाया कि पापियोंको तारनेसे तुम सभीको महापुण्य होगा॥ ४६॥

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं नो विघ्नं ते प्रचक्रिरे।
तस्मिन्नवसरे चौरा असितं वाक्यमब्रुवन्॥ ४७॥

असितमुनिके इस कथनको सुनकर उन देहधारी विकारोंने चोरोंको विघ्न नहीं पहुँचाया। तब [आश्चर्यमें पड़कर] चोरोंने असितजीसे पूछा— ॥ ४७ ॥

चौरा ऊचुः

भगवन् के निषिद्धास्ते येऽस्माकं रोधने रताः।
संशयं छिन्धि नो ब्रह्मन् तुभ्यं विप्र नमो नमः॥ ४८॥

चोरोंने कहा—हे भगवन्! जो हम लोगोंको अयोध्यापुरीमें जाने नहीं देते थे और आपने जिन्हें रोका था कि जाने दो; वे कौन हैं, इस सन्देहको आप नष्ट करें। हे ब्रह्मन्! हे विप्रदेव! आपको बार-बार नमस्कार है॥ ४८॥

असित उवाच

सभाग्याश्च भवन्तो हि येषामागमनं त्विह।
एते विघ्ना अयोध्यायां वार्यन्ते हि नराधमान्॥ ४९॥

असितजीने कहा—आप लोग बड़े भाग्यशाली हैं, कि आप लोगोंका आगमन अयोध्यापुरीमें हुआ है। वे अयोध्यापुरीके दस विघ्नरूप दूत हैं। ये पापी पुरुषोंको इस पुरीमें घुसने नहीं देते॥ ४९॥

मया निवारिताः सर्वे त्यक्त्वा युष्मान् पुनर्गताः।
विधिपूर्वमयोध्यायां यात्रां कुरुत सत्तमाः॥ ५०॥
तीर्थयात्राप्रभावेण पापराशिर्विनश्यति।

मैंने इन विघ्नोंको रोका, तब तुम लोगोंको छोड़कर वे फिर [अपने कार्यपर] चले गये। हे श्रेष्ठजनो! तुम सब विधिपूर्वक अयोध्यातीर्थकी यात्रा करो। इस तीर्थयात्राके प्रभावसे तुम लोगोंकी पापराशि नष्ट हो जायगी॥ ५०$^{१}/_{२}$॥

चौरा ऊचुः

केनैव विधिना ब्रह्मन् तीर्थयात्रां चरेमहि॥ ५१॥
येन पापा वयं सर्वे व्रजिष्यामोऽमरावतीम्।

चोरोंने पूछा—हे ब्रह्मन्! किस विधिसे हम पापीजन तीर्थयात्रा करें, जिससे हम सभी अमरावतीपुरी (स्वर्ग)-को चले जायँ॥ ५१½ ॥

असित उवाच

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्॥ ५२॥
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।
पापं न कुरुते यस्तु वाङ्मनोभ्यां जितेन्द्रियः॥ ५३॥
यथा शक्त्या च दानेन स तीर्थफलमश्नुते।

असितजी बोले—जिस यात्रीके हाथ-पैर तथा मन वशमें हैं, जो तीर्थयात्री मनसे, वाणीसे पाप नहीं करता तथा जितेन्द्रिय है एवं जो शास्त्रको जानता है, उसके अनुसार चलता है, जो धर्माचरणमें होनेवाले क्लेशको तप मानता है, जिसे इन्द्रियदमन और कीर्तिरक्षाका प्रतिक्षण ध्यान है और जो यथाशक्ति दान करता है—वही तीर्थफलका अधिकारी है॥ ५२—५३½ ॥

स्वर्गद्वारं समासाद्य वपनं कारयेद् व्रती॥ ५४॥

तीर्थयात्राव्रतका अनुष्ठान करनेवाला स्वर्गद्वारतीर्थमें पहुँचकर मुण्डन कराये॥ ५४॥

स्नात्वा व्रजेत् तु रामस्य जन्मस्थानं विशेषतः।
गोहत्या विप्रहत्या च गुरुस्त्रीगमनं तथा॥ ५५॥
दोषैरेतैस्तथाप्यन्यैर्विमुक्तो जायते क्षणात्।
मधुमासे सिते पक्षे नवम्यां रामजन्मनि॥ ५६॥
समागता नराः सर्वे देवगन्धर्वकिन्नराः।
जन्मस्थानं हि पश्यन्ति स्नात्वा श्रीसरयूजले॥ ५७॥

तदुपरान्त सरयूजलमें स्नानकर वह यात्री विशेषरूपसे रामजन्मभूमिके दर्शनार्थ जाय। उसके दर्शनसे गोहत्या, ब्राह्मणहत्या, गुरुस्त्रीगमन आदि महापापोंसे एवं इसी प्रकारके अन्य पापोंसे

वह उसी क्षण छूट जाता हैं। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको रामजन्मोत्सवके महापर्वपर यहाँ आये हुए समस्त नर-नारी, देवगण, गन्धर्व, किन्नर आदि सरयूजलमें स्नानकर रामजन्मभूमिका दर्शन करते हैं॥ ५५—५७॥

भवद्भिः क्रियतां यात्रा पापनिर्णाशहेतवे।
अग्रे गच्छन्तु पश्यन्तु ह्याश्चर्यं परमाद्भुतम्॥ ५८॥

अब तुम लोग भी अपने पापोंके नाशके लिये [पूर्वमें बतलाये गये इस विधानके अनुसार] रामजन्मभूमिकी यात्रा करो तथा तुम लोग जाओ, आगे अतिविचित्र आश्चर्यमय दृश्य देखोगे॥ ५८॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे योगी नाम्नासावसितो मुनिः।
नगरं विविशुस्ते च पंचचौराश्च हर्षिताः॥ ५९॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—[हे पार्वती!] ऐसा कहकर वे महायोगी असितमुनि [चोरोंके देखते-देखते] अन्तर्धान हो गये और वे पाँचों चोर बड़े हर्षके साथ अयोध्यानगरीमें प्रविष्ट हो गये॥ ५९॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे श्रीरामजन्मभूमि-माहात्म्यं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-संवादरूप अयोध्याखण्डका 'श्रीरामजन्मभूमि-माहात्म्य' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

अयोध्यादेवीके अनुग्रहसे पाँच महापापियोंका उद्धार और भृत्योंके अपराधके कारण यमदेवका अयोध्याजीके शरणापन्न होना

श्रीशङ्कर उवाच

अयोध्यायास्तदा मूर्तिं ददृशुश्चाग्रतस्तु ते।
शुक्लाम्बरधरा देवी सखीभिः परिवारिता॥ १॥
दिव्यमालां च सा कण्ठे बिभ्रती सुमनोहरा।
शङ्खचक्रधरा देवी दिव्यचन्दनभूषिता॥ २॥
रामप्रिया पुरी चाद्या विबुधैः सेविता च सा।
वसिष्ठवामदेवाद्यैर्मुनिवृन्दैश्च शोभिता॥ ३॥
ईदृशी विमला दृष्टा चौरैश्च नगनन्दिनि।
यथा पापैः पुरी दृष्टा तथा नान्यैश्च यात्रिभिः॥ ४॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—हे पार्वती! तदुपरान्त जैसे ही वे चोर आगे बढ़े, उन्होंने अपने समक्ष मूर्तिमती अयोध्याका दर्शन किया। वे देवी अयोध्या सखियोंसे घिरी थीं एवं उन्होंने श्वेत परिधान धारण कर रखा था। उन मनोहारिणी देवीके कण्ठमें दिव्य [पुष्पोंकी] माला थी एवं उनका शरीर दिव्य अनुलेपनसे अलंकृत था। शंख तथा चक्र धारण की हुई उन रामवल्लभा आदिपुरी अयोध्याकी देवगण सेवा कर रहे थे। वसिष्ठ, वामदेव आदि मुनियोंका समुदाय उनको शोभान्वित कर रहा था। ऐसी उन विमला अयोध्यादेवीका [जन्मान्तरीय पुण्यवश] वे चोर प्रत्यक्ष दर्शन कर सके। उन पापियोंको [महर्षि असितके अनुग्रहसे] जैसा पुरीका साक्षात् दर्शन हुआ, वैसा दर्शन दूसरे यात्री नहीं कर सके॥ १—४॥

असितस्य मुनेः संगात् तथा तस्य वरेण च।
अयोध्यादर्शनं चक्रुर्लेभिरे परमां मुदम्॥ ५॥

वे पाँचों चोर असितमुनिकी संगति (दर्शन-संभाषणादि)-के प्रभावसे तथा उनके वरदानसे अयोध्यापुरीका प्रत्यक्ष दर्शन पा गये और बहुत आनन्दको प्राप्त हुए॥ ५॥

पापैर्न योध्यते यस्मात् तेनायोध्येति कथ्यते।
यथार्थं तस्य शब्दस्य कथयिष्यामि पार्वति॥ ६॥

पापसमूह जिसके सामने युद्धमें नहीं ठहर सकते, इस कारण [इस पुरीका] 'अयोध्या' ऐसा उत्तम नाम कहा जाता है। हे पार्वती! अयोध्या शब्दका ठीक-ठीक अर्थ आगे मैं तुमसे कहूँगा॥ ६॥

दृष्ट्वा पापानि चौराणां गदामुद्यम्य सा पुरी।
दुद्राव पश्यतां तेषां चौराणां सम्मुखे तथा॥ ७॥

वह अयोध्यापुरी उन पाँचों चोरोंके पापोंको [प्रत्यक्ष] देखकर गदा हाथमें लेकर चोरोंके सामने ही पापोंको मारनेके लिये दौड़ी॥ ७॥

भयं तु लेभिरे चौरा अस्मान् किं नु हनिष्यति।
चौरदेहाद् विनिःसृत्य पापानां पापविग्रहः॥ ८॥

[जिससे] पाँचों चोर डर गये कि अरे! कहीं ये हम लोगोंको तो नहीं मार डालेगी, तबतक उन पापी चोरोंके देहसे मूर्तिमान् पाप [बाहर] निकल आये॥ ८॥

नीलवस्त्राः करालास्यास्तथा वै निम्ननासिकाः।
लोहभूषणसर्वांगास्तथा रक्तशिरोरुहाः॥ ९ ॥
हस्तेन रहिताः केचित् पद्भ्यां केचिद् विवर्जिताः।
नेत्रहीनास्तथा केचित् कुब्जाः काणास्तथापरे॥ १०॥

भयङ्करास्तथा चान्ये कुष्ठिनश्च तथावरे।
नानावेषधराश्चान्ये पापानां पापविग्रहाः॥ ११॥
उद्यतायुधदोर्दण्डाः सत्यायाः सम्मुखं गताः।
अयोध्यापि महावीर्या यथानाम्नी तथागुणा॥ १२॥

वे (मूर्तिमान् पाप) नीले रंगके वस्त्र पहने हुए, भयंकर मुखवाले, बैठी हुई नाकवाले तथा सर्वांगमें लोहेके भूषण धारण किये हुए थे। उनके सिरके बाल लाल रंगके थे। उनमें-से किसीके हाथ ही नहीं थे, तो किसीके पैर नहीं थे, कोई बिना आँखके थे, कोई कूबरवाले, तो कोई-कोई काने थे, कुछ भयावने थे, तो कुछ कुष्ठयुक्त थे। उनमें-से कुछ पाप अनेक प्रकारकी वेश-भूषा धारण किये हुए थे। इस प्रकार वे पापियोंके शरीरसे निकले हुए पापगण प्रत्यक्ष दीख पड़े। वे मूर्तिमान् पापगण हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये हुए [लड़नेके लिये] अयोध्यादेवीके सामने आ गये। इधर प्रचण्ड शक्तिशालिनी वे अयोध्यादेवी भी जैसा नाम वैसे गुणवाली अर्थात् युद्धमें पराजित न होनेवाली थीं॥ ९—१२॥

ताडिताः सत्यया सर्वे गदया भीमवेगया।
पलायनपराः सर्वे पुरस्तस्या न तस्थिरे॥ १३॥

सत्या (अयोध्या)-जीने अपनी भयंकर गदासे वेगपूर्वक पापोंको मारना आरम्भ कर दिया, वे सभी पापपुरुष भागने लगे और अयोध्यादेवीके सामने [एक क्षण भी] न ठहर सके॥ १३॥

तस्थुर्बहिश्च सत्यायाः समेत्याश्वत्थवृक्षके।
रुदन्तो भैरवं नादं येन लोका विसिस्मिरे॥ १४॥

वे सब पापपुरुष भागकर अयोध्यापुरीसे बाहर एक पीपलके वृक्षपर साथ ही बैठ गये और बड़े जोरोंसे रोने लगे, जिससे आस-पासके मनुष्य बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ १४॥

पुर्या चाकारिताश्चौराः स्वर्गद्वारं समाययुः।
यस्मिन् दिने गताश्चौरा नवमी मधुमासिकी॥ १५॥

इसके पश्चात् अयोध्यादेवीने उन पाँचों चोरोंको [अभयदान देकर] बुलाया [और पापरहित तथा शुद्ध-बुद्ध करके अपनी पुरीमें प्रवेश कराया]। तदुपरान्त वे पापी स्वर्गद्वारतीर्थमें गये। उस दिन चैत्र महीनेकी शुक्ला नवमी तिथि थी, [जो कि श्रीरामका जन्मदिवस है]॥ १५॥

स्नात्वा तु सरयूवारि जन्मस्थानं तु ते गताः।
व्रतिनो रामचन्द्रस्य जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥ १६॥
पापमुक्तास्तदा सर्वे बभूवुः पंच पापिनः।
तस्मिन् काले तु चाहूतश्चित्रगुप्तो यमेन वै॥ १७॥
कर्णे प्रोवाच गुह्यं च चौराणां सुखहेतवे।

वे पाँचों पापी [स्वर्गद्वारतीर्थमें] सरयूजीके जलमें स्नान करके, [श्रीरामनवमीका] व्रत धारणकर श्रीरामजन्मस्थानपर गये। श्रीरामजन्मभूमिके दर्शन [एवं श्रीरामनवमीव्रत]-के पुण्य-प्रभावसे वे सभी पापोंसे मुक्त हो गये। उसी समय यमराजने चित्रगुप्तको बुलाया और चोरोंके सुखके लिये गुप्तरूपसे चित्रगुप्तके कानमें [कुछ ऐसा] कहा— ॥ १६—१७१/२ ॥

यम उवाच

क्षम्यतामपराधस्तु यन्मया प्रोच्यतेऽधुना॥ १८॥

क्रियतां भवता चाद्य चौराणां पापमार्जनम्।
लेखनं पापपङ्क्तेस्तु सत्यया च प्रमार्जितम्॥ १९॥
विष्णोश्चाद्या पुरी सत्या तस्या माहात्म्यमीदृशम्।
पापमुक्तास्तु ते सर्वे पंचचौरास्तथा परे॥ २०॥
मुमुक्षवस्तु ये केचिदयोध्यां समुपासते।

यमदेवने कहा—[हे चित्रगुप्त! इन चोरोंके] अपराधको क्षमा कर दीजिये और जो मैं इस समय बता रहा हूँ, उसका आप

अनुपालन कीजिये। आपको चोरोंके पापविवरणको नष्ट कर देना चाहिये; क्योंकि इनकी पापराशिके लेखको अयोध्यादेवीने मिटा दिया है। यह सत्यापुरी भगवान् विष्णुकी आद्यापुरी है। इसका ऐसा ही (विलक्षण) माहात्म्य है। [जिसके कारण] वे सब पाँचों चोर और दूसरे भी पातकी पापमुक्त हो गये। अयोध्या-तीर्थका सेवन करनेवाले जो मुमुक्षु जन थे, [उनकी सद्गतिका तो कहना ही क्या!] ॥ १८—२०$^{१}/_{२}$ ॥

श्रीशङ्कर उवाच

कृतान्तस्य वचः श्रुत्वा मलिनश्च बभूव ह॥ २१॥
गतः परिश्रमोऽस्माकं बहुकालकृतो लिपौ।

श्रीशंकरजी कहते हैं—यमदेवके इस वचनको सुनकर चित्रगुप्त उदास हो गये। [वे सोचने लगे कि] पापोंके लिखनेमें होनेवाला मेरा बहुत दिनका परिश्रम व्यर्थ हो गया॥ २१$^{१}/_{२}$ ॥

चित्रगुप्त उवाच

एवं भवतु भो काल लेखादुपरता वयम्॥ २२॥

चित्रगुप्त बोले—हे काल! पापियोंको पापोंसे निर्मुक्त करनेको जो आपने कहा, वह वैसे ही हो। परन्तु हम आजसे पुण्य-पाप लिखनेका कार्य नहीं करेंगे॥ २२॥

जन्मभूमेस्तु रामस्य यदि पापानि यान्ति वै।
पापिनस्तु गमिष्यन्ति साकेतं रामजन्मनि॥ २३॥
गतपापा भविष्यन्ति कलिकाले तु पामराः।

यदि रामजन्मभूमिके दर्शनसे पाप नष्ट हो जाते हैं तो निश्चित रूपसे [पाप करके] समस्त पापी रामजन्मके अवसरपर [रामजन्मभूमिका दर्शनकर] साकेतलोकको चले जायँगे। [इस पुरीके प्रभावसे तो] कलियुगके पामर प्राणी भी निष्पाप हो जायँगे॥ २३$^{१}/_{२}$ ॥

श्रीशङ्कर उवाच

एवं विश्राव्य तस्याग्रे विवर्णवदनश्च सः॥ २४॥
ममार्ज च लिपिं शीघ्रं चौराणां पापसम्भवाम्।

श्रीशंकरजी बोले—ऐसा यमदेवको सुनाकर उनके सामने ही चित्रगुप्त मलिनमुख हो गये तथा शीघ्र ही पाँचों चोरोंका पापविवरणरूप लेख [अपनी कर्मपंजिकासे] मिटा दिया॥ २४१/२॥

यमेन प्रेषिता दूताः पर्यटन्ति सदा क्षितौ॥ २५॥
पुर्याः परिसरे ते तु ददृशुः पापविग्रहान्।

यमदेवके दूत उनकी आज्ञासे [प्रत्येक जीवके सुकर्म-दुष्कर्मको लिखनेके लिये] पृथिवीतलपर घूमा करते हैं। पुरीके परिसरमें [घूमते हुए] उन यमदूतोंने [पीपलके वृक्षपर बैठे] शरीरधारी उन पापोंको देखा॥ २५१/२॥

यमदूता ऊचुः

के यूयं पिप्पले ह्यस्मिन् दुःखशोकपरायणाः॥ २६॥
किं कर्तुमाश्रिता यूयं पिप्पले कुत्र वासिनः।

यमदूतोंने पूछा—तुम लोग कौन हो? क्यों दुःख-शोकग्रस्त होकर इस पीपलपर बैठे हो? तुम लोग क्या करनेकी इच्छासे इस पीपलपर बैठे हो? तथा तुम लोग कहाँके रहनेवाले हो?॥ २६१/२॥

पापविग्रहा ऊचुः

मरुकान्तार उत्पन्नाः पापिभिः प्रतिपालिताः॥ २७॥

देहधारी पापोंने कहा— हम लोग मरुकान्तार (मारवाड़) देशमें पैदा हुए हैं और [वहींके पाँच] पापियोंके द्वारा हमारा पालन-पोषण किया गया है॥ २७॥

मातरं पितरं त्यक्त्वा मर्यादां वेदसम्भवाम्।
अस्मासु प्रीतियुक्तैस्तैर्वयं सम्प्रतिपालिताः॥ २८॥

उन पापियोंने अपने माता-पिता एवं वेदोक्त मर्यादाका परित्याग करके [केवल] हम लोगोंसे ही प्रीति की और हमारा सम्यग् रूपसे पालन किया था॥ २८॥

ते वयं यात्रिसङ्गेन साकेतं प्रति चागताः।
ताडिताश्च वयं सर्वे पुर्या तु विमलाख्यया॥ २९॥

वे पाँचों पापी हम पापोंको लेकर तीर्थयात्रियोंके साथ इस अयोध्यापुरीमें आ गये। पुरीमें प्रवेश करते ही अयोध्यापुरीने हम सब पापोंको ताडित किया [और उन पापियोंकी देहसे बाहर कर दिया]॥ २९॥

देहं त्यक्त्वा तु तेषां वै दुःखिताश्च वसेमहि।
नवमी चैत्रमासस्य शुक्ला चाद्य प्रवर्तते॥ ३०॥

उन पापियोंका पिण्ड छूट जानेसे अतिदुखी होकर हम सभी पापगण अपने दिन काट रहे हैं। आज चैत्रमासकी शुक्ला नवमी है॥ ३०॥

तस्या व्रतप्रभावेण सरयूस्नानतः पुनः।
दर्शनाद् रामदेवस्य जन्मभूमेर्विलोकनात्॥ ३१॥
नाम्ना सन्तानकं लोकं विमानैस्तत्र ते गताः।
तेषां वियोगदुःखेन मित्राणां गमनेन च॥ ३२॥

उस रामनवमीव्रतके प्रभावसे, सरयू-स्नानसे, देव श्रीरामका दर्शन करनेसे तथा रामजन्मभूमिके अवलोकनसे वे पापी विमानोंपर बैठकर सन्तानकलोकको चले गये। उन मित्रोंके दिव्यलोकको चले जानेसे हुए वियोग-दुःखोंके कारण हम सब पापपुरुष दुखी हैं॥ ३१-३२॥

यैर्वयं पालिता मित्रैर्धर्मं त्यक्त्वा महात्मभिः।
परित्यज्य च तेऽस्मान् वै लोकं सन्तानकं गताः॥ ३३॥

मित्रसङ्गवियोगेन दुःखिताश्चात्र संस्थिताः।

जिन मित्र महापुरुषोंने अपने धर्मको छोड़कर हम पाप-पुरुषोंका लालन-पालन किया, वे ही आज हम लोगोंको छोड़कर सन्तानकलोकमें चले गये। मित्रोंका साथ छूटनेसे दुखी हुए हम पापपुरुष इस पीपलपर बैठे हैं॥ ३३१/२॥

श्रीशङ्कर उवाच

मनो वै करुणायां तु दूतानां च बभूव ह॥ ३४॥

अब्रुवन् वचनं क्रूरं पापरूपाणि सान्त्वयन्।

श्रीशंकरजी कहते हैं—[पापपुरुषोंके ऐसे वचन सुनकर] यमदूतोंके चित्तमें बड़ी दया आ गयी। वे यमदूत पापपुरुषोंको सान्त्वना देते हुए [अयोध्यादेवीके प्रति] क्रूर वचन बोलने लगे॥ ३४१/२॥

यमदूता ऊचुः

सहायन्तु करिष्यामो युष्माकं मित्रमेलने॥ ३५॥

कार्यं च विद्यतेऽस्माकं हता चाज्ञा यमस्य वै।

ईदृशी विमला धृष्टा पापिनां च गतिप्रदा॥ ३६॥

भवद्भिः स्थीयतां चात्र यावद् ब्रूमो यमं प्रति।

यमदूतोंने कहा—[हे पापपुरुषो!] तुम लोगोंकी मित्रोंसे भेंट करानेमें हम लोग [यथाशक्ति] सहायता करेंगे; क्योंकि यह कार्य तो हम यमदूतोंका है। [अरे!] यह विमला तो बड़ी ही ढीठ है, जो कि इसने यमराजकी आज्ञाका अतिक्रमण किया और पापियोंको सद्गति दे दी। आप लोग यहीं रुकिये, तबतक हम यमराजसे इस बातको निवेदित करते हैं॥ ३५—३६१/२॥

श्रीशङ्कर उवाच

उक्त्वा संयमनीं जग्मुर्यमदूतास्त्वरान्विताः॥ ३७॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—[हे प्रिये!] इस प्रकार पाप-पुरुषोंको धैर्य देकर यमदूत बड़े वेगसे संयमनी नामक यमपुरीमें जा पहुँचे॥ ३७॥

न ज्ञायते तथा दूता देवस्य चक्रपाणिनः।
जन्मभूमेस्तु माहात्म्यं वक्तुं शक्तो न पद्मजः॥ ३८॥

[जब यमदूतोंने यमदेवसे सारा वृत्तान्त बताया तो वे उनसे कहने लगे—] हे दूतो! चक्रधारी भगवान् श्रीहरिकी जन्मभूमिकी महत्ता जानी नहीं जा सकती। उसे बता पानेमें तो ब्रह्माजी भी सक्षम नहीं हैं॥ ३८॥

पापकोटिसमायुक्तश्चैत्रे च नवमीतिथौ।
पापकोटिं नरस्त्यक्त्वा जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥ ३९॥
प्राप्नोति परमं लोकं यत्र गत्वा न शोचति।
प्रसन्ना यस्य सत्या च तस्य किं कुरुते यमः॥ ४०॥
भवतां दुष्टबुद्धिस्तु जाता वै विमलां प्रति।
क्षमापनार्थं च वयं गमिष्यामोऽद्य मा चिरम्॥ ४१॥

करोड़ों पापोंसे युक्त मनुष्य भी चैत्र नवमी (रामनवमी)-के अवसरपर श्रीरामजन्मभूमिका दर्शनकर करोड़ों पापोंसे छूटकर उस उत्तम लोकको प्राप्त होता है, जहाँ जाकर वह शोकरहित हो जाता है। जिसके ऊपर सत्यादेवी (अयोध्यापुरी) प्रसन्न हैं, उसका यमराज क्या कर सकते हैं। [हे दूतो!] विमला (अयोध्यादेवी)-के प्रति तुम लोगोंकी दुष्ट बुद्धि हो गयी है, अतः क्षमा करानेके लिये उनके पास आज ही चलेंगे, इसमें विलम्ब नहीं होना चाहिये॥ ३९—४१॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्युक्त्वा यमराजोऽपि भूतप्रेतगणैर्वृतः।
आरुह्य महिषं वेगात् सत्यां प्रति जगाम ह॥ ४२॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—यमदेव अपने दूतोंको इस प्रकार फटकारकर भूत-प्रेतोंके समूहके साथ अपने वाहन भैंसेपर बैठकर बड़े वेगसे सत्याजी (अयोध्यापुरी)-के पास चले॥ ४२॥

साकेतनिकटे दृष्टो विश्वकर्मा च शिल्पिराट्।
यमराजेन सम्पृष्टः कुतस्ते गम्यतेऽधुना॥ ४३॥
नवमी विद्यते चाद्य तां त्यक्त्वा कुत्र यास्यसि।

साकेतनगरके समीप पहुँचनेपर उधरसे लौटते हुए देवताओंके कारीगरोंके राजा विश्वकर्माको देखकर यमदेवने उनसे पूछा—'इस समय आप कहाँसे आ रहे हैं?' आज तो श्रीरामनवमी है, इस [देवदुर्लभ विशिष्ट महोत्सव]-को छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं?॥ ४३१/२ ॥

विश्वकर्मोवाच

आगम्यते तु साकेतात् स्नात्वा श्रीसरयूजले॥ ४४॥
दर्शनं जन्मभूमेस्तु देवैः सार्धं कृतं मया।
ब्रह्मणा तत्र चाज्ञप्तो गमिष्ये तत्पदं ध्रुवम्॥ ४५॥

विश्वकर्माजीने उत्तर दिया—मैं सरयूजलमें स्नानकर अयोध्यापुरीसे ही लौट रहा हूँ। मैं तो देवताओंके साथ ही रामजन्मभूमिका दर्शन कर चुका हूँ और वहींपर ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर अब उस अचल लोकको जा रहा हूँ॥ ४४-४५॥

तत्र गत्वा च वेश्मानि करिष्ये यात्रिणामपि।
नवमीव्रतिनां तत्र सरयूस्नायिनां पुरः॥ ४६॥

वहाँ जाकर रामनवमीव्रत करनेवाले तथा सरयूजीमें स्नान करनेवाले यात्रियोंके [परलोकमें] निवासके लिये भवनोंका निर्माण करूँगा॥ ४६॥

जगाम चातिवेगेन यमं विश्राव्य कारणम्।
निशम्य तन्मुखोद्गीतं यमभृत्या विसिस्मिरे॥ ४७॥

यमदेवको [अपने गमनका] कारण बताकर विश्वकर्माजी वेगपूर्वक चले गये। उनके मुखसे उद्गीत अर्थात् उनके द्वारा वर्णित अयोध्या-माहात्म्यको सुनकर यमराजके सेवकोंको बड़ा आश्चर्य हुआ॥ ४७॥

जगाम यमराजोऽपि साकेतनगरोद्भवम्।
माहात्म्यं श्रावयन् भृत्यान् तमसां तु ददर्श ह॥ ४८॥

यमराज भी अपने दूतोंसे [मार्गमें] अयोध्यापुरीकी महिमाका वर्णन करते हुए आगे बढ़े तो [सामने ही] तमसानदीको देखा॥ ४८॥

महिषं च परित्यज्य ननाम विधृतांजलिः।
आदौ प्रणवमुच्चार्य विमलायै तु मध्यतः॥ ४९॥
नमश्चान्ते च संयोज्य मन्त्रोऽयं समुदाहृतः।
सोऽन्वधावच्च वेगेन यत्र पुर्या मुखं स्थितम्॥ ५०॥

[उसे देखकर] यमदेवने [अपने वाहन] भैंसेको छोड़ दिया और हाथ जोड़कर अयोध्यापुरीको दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने आदिमें ॐकार लगाकर 'विमलायै'—यह पद मध्यमें तथा 'नमः' पद अन्तमें लगाकर '**ॐ विमलायै नमः**'—इस मन्त्रसे [अयोध्यापुरीको] प्रणाम किया और बड़े वेगसे जहाँ पुरीका मुखभाग है, वहाँ पहुँचनेके लिये दौड़े॥ ४९-५०॥

गोप्रतारं शिरस्तस्याः ततः पूर्वन्तु कण्ठकम्।
तटे स्थित्वा सरय्वास्तु सत्यायाश्च स्तुतिं मुहुः।
अब्रवीत् परया वाण्या मेघनादगभीरया॥ ५१॥

गोप्रतारघाट (गुप्तारघाट) अयोध्यापुरीका सिर माना गया है। उससे पूर्वका भाग अयोध्यापुरीका कण्ठभाग है। यमदेव सरयूतटपर स्थित होकर उत्तम एवं मेघसदृश गम्भीर वाणीसे सत्या (अयोध्या)-जीका बारम्बार स्तवन करने लगे॥ ५१॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे श्रीरामजन्म-भूमिमाहात्म्यवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके अयोध्याखण्डके अन्तर्गत 'श्रीरामजन्मभूमिमाहात्म्यका वर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

यमदेवकृत अयोध्यास्तवन और यमस्थल, सीतारसोई, कैकेयीभवन, सुमित्राभवन, ज्ञानकूप (सीता-कूप), सुग्रीवकुण्ड, विभीषणकुण्ड, स्वर्णखनि आदि तीर्थोंका वर्णन

यमराज उवाच

अयोध्यायै नमस्तेऽस्तु रामपुर्यै नमो नमः।
आद्यायै च नमस्तुभ्यं सत्यायै तु नमो नमः॥ १॥

यमराजजी बोले—अयोध्यापुरीको नमस्कार है, श्रीरामपुरीको बार-बार नमस्कार है, आद्या पुरीको नमस्कार है, हे सत्या नामवाली! आपको बार-बार नमस्कार है॥ १॥

सरय्वा वेष्टितायै च नमो मातस्तु ते सदा।
ब्रह्मादिवन्दिते मातर्ऋषिभिः पर्युपासिते॥ २॥

हे ब्रह्मादि देवोंसे वन्दना की गयी, हे ऋषिगणोंसे उपासना की गयी, हे सरयूसे घिरी हुई अयोध्यामाता! आपको सदा नमस्कार है॥ २॥

रामभक्तप्रिये देवि सर्वदा ते नमो नमः।
ये ध्यायन्ति महात्मानो मनसा त्वां हि पूजिते॥ ३॥

तेषां नश्यन्ति पापानि विजन्मोपार्जितानि च।
अकारो वासुदेवः स्याद् यकारस्तु प्रजापतिः॥ ४॥

उकारो रुद्ररूपस्तु तान् ध्यायन्ति मुनीश्वराः।
सूर्यवंशोद्भवानां तु राज्ञां परमधर्मिणाम्॥ ५॥

तेषां सामान्यधात्री त्वं तथा सुकृतिनामपि।
महिमानं न जानन्ति तव देवि मुनीश्वराः॥ ६॥

हे रामभक्तोंको अति प्रिय लगनेवाली महादेवि! तीनों कालोंमें आपको नमस्कार है। हे पूजिते! जो महात्मागण मनसे आपका ध्यान करते हैं, उनके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। [अयोध्या शब्दमें ४१/२ अक्षर हैं। अ, य, उ, ध्या—इन अक्षरोंके अर्थका वर्णन करते हुए स्तुति कर रहे हैं—] अकारसे वासुदेव, यकारसे ब्रह्मा, उकारसे रुद्र तथा ध्यासे ध्यान करें। अर्थात् इन त्रिदेवोंका मुनिश्रेष्ठ जहाँपर ध्यान करें, उसे अयोध्या कहते हैं। सूर्यवंशमें उत्पन्न परम धार्मिक महाराजाओंको तथा समस्त पुण्यात्माजनोंको आप समान रूपसे अपनी गोदमें धारण करनेवाली हैं। हे देवि! आपके प्रभावको मुनिराज भी नहीं जान सकते॥ ३—६॥

कथं तु ज्ञायते देवि मन्दैर्बुद्धिविवर्जितैः।
नमस्तेऽस्तु सदा देवि सदा देवि नमो नमः॥ ७॥
नमोऽयोध्ये नमोऽयोध्ये पापं नस्त्वमपाकुरु।

हे देवि! बुद्धिहीन, अतिमन्द [मेरे दूत तथा अन्य जन] आपकी महिमाको कैसे जान सकते हैं? हे देवि! सर्वदा सब कालमें आपको नमस्कार, सभी अवस्थाओंमें बार-बार नमस्कार है। अयोध्यादेवि! आपको प्रणाम है। हे अयोध्यामाता! आपको नमस्कार है। आप हमारे [तथा हमारे दूतोंके अपराधोंको क्षमा कीजिये,] पापोंको दूर कीजिये॥ ७१/२॥

श्रीशङ्कर उवाच

स्तुत्वैवं विररामाथ सूर्यपुत्रो महामनाः॥ ८॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—महामना सूर्यपुत्र यमदेव इस प्रकार अयोध्याजीकी स्तुति करके मौन हो गये॥ ८॥

अयोध्या दर्शयामास तनुं स्वां तस्य प्रीतये।
वन्दिता यमराजेन सत्या प्राह यमं त्विदम्॥ ९॥

तब अयोध्यापुरीने यमदेवकी प्रसन्नताके लिये अपने स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कराया। यमदेवने उनकी वन्दना की तब सत्याजी (अयोध्यापुरी)-ने उनसे इस प्रकार कहा— ॥ ९ ॥

सत्योवाच

वरं ब्रूहि महाबुद्धे प्रीताऽहं ते न संशयः।
यदर्थं चागतोऽसि त्वं तन्ममाग्रे च कथ्यताम्॥ १०॥

सत्याजीने कहा—हे महाबुद्धिशाली यमदेव! मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह नहीं है। अब जिस कार्यके लिये आये हो, उस प्रयोजनको तुम हमारे सामने कहो॥ १०॥

यमराज उवाच

प्रसन्ना मम मातश्चेद् देहि स्थानं च कण्ठकम्।
चौरेभ्यस्तु गता ये वै पापरूपाश्च पिप्पले॥ ११॥
तेषां मोक्षविधानं च कथ्यतां देवि मे पुरः।
मम दूतापराधस्तु क्षम्यतां हरिपूजिते॥ १२॥

यमदेवने कहा—हे माता! हे देवि! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो [गुप्तारघाट (गोप्रतारघाट)-से पूर्व] जो आपका कण्ठभाग है, उसी स्थलको मुझे रहनेको दे दीजिये तथा पाँचों चोरोंकी देहसे निकले हुए पापसमूह; जो कि शरीरधारी होकर पीपलपर बैठे हैं, उनका मोक्षविधान मुझे बता दें। हे रामपूजिते! मेरे दूतोंने आपके प्रति जो दुष्ट भावना की है, उस अपराधको क्षमा कीजिये॥ ११-१२॥

अयोध्योवाच

यमस्थलेति विख्यातं स्थानं ते सरयूतटे।
ऊर्जे मासि सिते पक्षे द्वितीयायां तु ये यम॥ १३॥
स्नास्यन्ति ये नरास्तेषां तदा तव भयं नहि।
यानि तिष्ठन्ति पापानि चौराणां चापि पिप्पले॥ १४॥

विलयं यान्तु भो देव मम वाक्यात् तवापि च।
ममेदमष्टकं पुण्यं त्वया भक्त्या तु यत्कृतम्॥ १५॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय पापं तस्य प्रणश्यति।
प्राप्नोति सकलानर्थान् मया दत्तान् नरः सदा॥ १६॥

अयोध्यापुरीने कहा—हे यमदेव! सरयूजीके तटपर तुम्हारा स्थान 'यमस्थला' (अथवा यमस्थल) इस नामसे प्रसिद्ध होगा। कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथि अर्थात् यमद्वितीयामें वहाँ स्नान करनेवाले प्राणियोंको तुम्हारा भय नहीं रहेगा। हे देव! पाँचों चोरोंसे निकले हुए जो पाप [शरीरधारी होकर] पीपलपर बैठे हैं, वे सबके-सब हमारे तथा तुम्हारे वाक्यसे नाशको प्राप्त हों। भक्तिपूर्वक तुम्हारे द्वारा बनाया हुआ आठ श्लोकोंवाला यह स्तोत्र जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर पढ़ेगा, उसके पाप नष्ट हो जायँगे तथा वह मेरे द्वारा प्रदत्त समस्त अभीष्टोंको सर्वदा प्राप्त करता रहेगा॥ १३—१६॥

श्रीशङ्कर उवाच

विश्राव्य वचनं सत्या यमायान्तर्दधे स्वयम्।
स तु स्थितिं तदा चक्रे वासिष्ठ्याः पुलिने शुभे॥ १७॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—अयोध्यादेवी यमराजसे [ऐसी] बात कहकर स्वयं अन्तर्धान हो गयीं और तब यमदेव वसिष्ठपुत्री सरयूजीके शुभ तटपर निवास करने लगे॥ १७॥

चित्रगुप्तश्च ते दूता लज्जिताश्चाभवन्मुहुः।
विग्रहाश्च गता नाशं पापानाञ्च क्षणात्तदा॥ १८॥

चित्रगुप्त तथा वे यमदूत बार-बार [पश्चात्तापके साथ] लज्जित हुए तथा पापोंके शरीर उसी समय क्षणभरमें नष्ट हो गये॥ १८॥

भ्रातापि यमुनायास्तु स्थानं कृत्वा पुरं गतः।
माहात्म्यं विमलायास्तु दूतेभ्यः श्रावयन्मुहुः॥ १९॥

यमुनाजीके भाई यमदेव भी विमलादेवीकी महिमाको दूतोंसे बार-बार कहते हुए तथा इस पुरीमें रहनेका प्रबन्ध करके चल पड़े॥ १९॥

माहात्म्यमीदृशं तुभ्यं मया ते बहु वर्णितम्।
जन्मभूमेरयोध्याया नवम्याश्चैव पार्वति॥ २०॥

हे पार्वती! रामजन्मभूमि अयोध्यापुरी तथा रामनवमीका इस प्रकारका [विलक्षण] माहात्म्य मैंने तुमसे अनेक प्रकारसे वर्णन किया॥ २०॥

य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत्।
भुक्त्वा च विपुलान् भोगानन्ते चापि गतिं लभेत्॥ २१॥

जो प्राणी इस माहात्म्यको नित्य सुनता है तथा जो वर्णन करता है, वह प्रचुर सुखोंको भोगकर अन्तमें उत्तम गतिको भी प्राप्त कर लेता है॥ २१॥

अगस्त्येन पुरा प्रोक्तं सुतीक्ष्णाय च पार्वति।
अहं श्रुत्वा सुतीक्ष्णाच्च रामभक्त्या तु तेऽब्रुवम्॥ २२॥

हे पार्वती! प्राचीन कालमें इस माहात्म्यको अगस्त्यजीने सुतीक्ष्ण मुनिको सुनाया और मैंने सुतीक्ष्णजीसे सुनकर तुम्हारी भक्ति श्रीरामभद्रमें देखकर तुमको सुनाया॥ २२॥

न शठाय प्रवक्तव्यं नातपस्काय पापिने।
निन्दकाय गुरूणां च वेदानां निन्दकाय च॥ २३॥

निन्दकाय च पुण्यानां न तेषां कथयेत् क्वचित्।
ब्रूयाच्छ्रद्धावते चैव भक्तिश्चेच्छूद्रयोषिताम्॥ २४॥

विष्णुभक्ताय प्रेम्णा च स्वयं ब्रूयाद् विचक्षणः।
पठनं श्रवणं चास्य पापपर्वतदारणम्॥ २५॥

इस माहात्म्यको शठोंको, जो धर्माचरणमें कष्ट न उठाना चाहते हों—ऐसे विलासियोंको, पापियोंको, वेदों तथा गुरुजनोंकी

निन्दा करनेवालोंको तथा पवित्र करनेवालों (तीर्थ, मन्दिर और धर्म-कर्म आदि पुण्यकार्यों)-के निन्दकोंको कभी भूलकर भी नहीं सुनाना चाहिये। इसे श्रद्धावान्‌को ही सुनाये। यदि स्त्री, शूद्रादि भी भक्तिसम्पन्न हों, तो उन्हें भी सुनाना चाहिये। विद्वान् पुरुष स्वयं प्रेमसे भगवद्भक्तोंको सुनाये। इस (रामजन्मभूमि तथा रामनवमीसे सम्बन्धित माहात्म्य)-को पढ़ने तथा सुननेसे पर्वतसदृश पापराशिका नाश हो जाता है॥ २३—२५॥

श्रीपार्वत्युवाच

महानसस्य माहात्म्यं वैदेह्या वद मे प्रभो
यच्छ्रुत्वा देवदेवेश प्रसीदति मनो मम॥ २६॥

श्रीपार्वतीजीने पूछा—हे स्वामिन्! जानकीजीके पाकस्थानकी महिमा मुझसे आप कहें। हे देवोंके देव! जिसको सुननेपर मेरे मनमें बड़ा आनन्द होगा॥ २६॥

श्रीशङ्कर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कथां पातकनाशिनीम्।
सीतायाः पाकसदनं सदा पूर्णं विराजते॥ २७॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—हे देवि! सुनो, मैं अब पापोंका नाश करनेवाली कथाको कहता हूँ। श्रीजानकीजीका पाकस्थान सदा-सर्वदा परिपूर्ण रहता है॥ २७॥

तस्य दर्शनमात्रेण करस्थाः सर्वसिद्धयः।
तस्मात् सर्वार्थदा देवि यात्रा स्यात् सार्वकालिकी॥ २८॥

उसके दर्शनमात्रसे समस्त सिद्धियाँ करतलगत रहती हैं। हे देवि! इसलिये प्रत्येक समयमें यहाँकी यात्रा सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है॥ २८॥

पाकस्थानस्य माहात्म्यं यः श्रोष्यति नरोत्तमः।
आजन्मसञ्चितात् पापान्मुक्तो भवति तत्क्षणात्॥ २९॥

जो श्रेष्ठ पुरुष सीतापाकस्थानकी महिमा सुनेगा, उसी समय वह जीवनभरके संचित पापोंसे छूट जायगा॥ २९॥

पाकस्थानस्य माहात्म्यं मया स्वल्पं निरूपितम्।
सकलं चास्य माहात्म्यं सम्यक् को वेद सुन्दरि॥ ३०॥

हे सुन्दरि! पाकस्थानकी महिमाका मैंने थोड़ा-सा निरूपण किया है। इसकी पूर्ण महिमाको तो भलीभाँति कौन जान सकता है॥ ३०॥

प्रत्यहं पश्यतो गेहे त्वन्नपूर्णा विराजते।
अत्र क्षत्रवधाद् दोषाज्जामदग्न्यो विमुक्तवान्॥ ३१॥

जो भक्त प्रतिदिन इस पाकस्थानका दर्शन करता है, उसके घरमें तो [साक्षात्] अन्नपूर्णादेवी ही निवास करती हैं। परशुरामजी इसके ही दर्शनसे क्षत्रियोंके वधके पापसे मुक्त हो गये थे॥ ३१॥

ज्ञानाज्ञानकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति।
अत्र सूतवधात् पापाद् बलदेवो विमुक्तवान्॥ ३२॥

ज्ञानसे या अज्ञानसे किया हुआ पाप इस पाकस्थानके दर्शनकालमें ही नष्ट हो जाता है। यहींपर [दर्शन करनेसे] बलरामजी [कथावाचक] सूतके वधके पापसे छूट गये॥ ३२॥

देवेशि किं बहूक्तेन श्रेयसां साधनं परम्।
जन्मस्थानाद् वायुकोणे पाकस्थानं तु कथ्यते॥ ३३॥

हे देवेश्वरि! अधिक कहनेसे क्या लाभ है! यह पाकस्थान सब प्रकारके कल्याणोंका परम साधन है। यह पाकस्थान रामजन्मभूमिसे वायुकोणमें कहा गया है॥ ३३॥

जन्मस्थानादुत्तरे तु वर्तते भवनं शृणु।
चतुर्विंशत्प्रमाणं च स्थानं वै लोकपावनम्॥ ३४॥

कैकेय्या भवनं दिव्यं यत्र जातो रघूद्वहः।
भरतो नाम धर्मात्मा गुरुदेवार्चने रतः॥ ३५॥

हे देवि! सुनो। जन्मस्थानसे उत्तर दिशामें चौबीस धनुषकी दूरीपर श्रीकैकेयी अम्बाका लोकपावन, दिव्य भवन है, जहाँपर गुरु-देवता-अतिथिकी पूजा करनेवाले धर्मनिष्ठ रघुवंशी श्रीभरतजीका जन्म हुआ था॥ ३४-३५॥

तस्माद् दक्षिणदिग्भागे वर्तते परमं महत्।
सुमित्राभवनं रम्यं चतुस्त्रिंशच्च भामिनि॥ ३६॥
यत्र जातौ महात्मानौ तथा शत्रुघ्नलक्ष्मणौ।
स्थानानां दर्शनाद्देवि मुच्यते व्याधिबन्धनात्॥ ३७॥

हे भामिनि! उस कैकेयीभवनसे दक्षिण दिशामें चौंतीस धनुषकी दूरीपर अति विशाल श्रीसुमित्राजीका भवन है, जहाँपर महामना श्रीलक्ष्मणजी तथा श्रीशत्रुघ्नजीका जन्म हुआ था। हे देवि! इन स्थानोंके दर्शनसे प्राणी रोगों तथा बन्धनोंसे छूट जाता है॥ ३६-३७॥

जन्मस्थानात्तु भो देवि चाग्निकोणे विराजते।
सीताकूप इति ख्यातो ज्ञानकूप इति श्रुतः॥ ३८॥

हे देवि! श्रीरामजन्मभूमिसे अग्निकोणमें सीताकूप विराजमान है, जिसको ज्ञानकूप भी कहते हैं॥ ३८॥

जलपानं कृतं येन तस्य कूपस्य पार्वति।
स ज्ञानवान् भवेल्लोके विबुधानां गुरुर्यथा॥ ३९॥

हे पार्वति! इस कूपके जलका जिसने पान किया, वह लोकमें वैसे ही ज्ञानवान् हो जाता है, जिस प्रकार देवोंके गुरु बृहस्पतिजी हैं॥ ३९॥

वसिष्ठवामदेवाभ्यां जलपानं शुभं कृतम्।
महज्ज्ञानबलं प्राप्य तदा लोके प्रकाशितम्॥ ४०॥

वसिष्ठ और वामदेवजीने भी इस कूपके निर्मल जलका पान किया और उसके प्रभावसे उत्तम ज्ञान-बलको प्राप्त किया तथा उसीको लोकमें प्रकाशित किया॥ ४०॥

देवधर्महरिस्थानाद् दक्षिणे दिग्दले स्थितम्।
नाम्ना लोके तु विख्यातं तीर्थं सुग्रीवकुण्डकम्॥ ४१॥

देवदेव श्रीधर्महरिजीके स्थानसे दक्षिण दिग्भागमें सुग्रीवकुण्ड नामसे लोकप्रसिद्ध तीर्थ है॥ ४१॥

सुग्रीवकुण्डाद् वायव्ये सुन्दरं च मनोहरम्।
कुण्डं विभीषणस्यापि सर्वकामफलप्रदम्॥ ४२॥
तयोर्यात्रा तु कर्तव्या नरैः श्रद्धासमन्वितैः।
चैत्रशुक्लनवम्यां तु तयोर्यात्रा तु वार्षिकी॥ ४३॥

सुग्रीवकुण्डसे वायुकोणमें सुन्दर, मनोहर तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला विभीषणजीका कुण्ड है। इन दोनों सुग्रीवकुण्ड तथा विभीषणकुण्डकी यात्रा वर्षमें एक बार चैत्र शुक्ला नवमीको श्रद्धायुक्त होकर मनुष्योंको अवश्य करनी चाहिये॥ ४२-४३॥

दक्षिणे हनुमत्कुण्डात् स्वर्णस्य खनिरुत्तमा।
यत्र चक्रे स्वर्णवृष्टिं कुबेरो रघुजाद् भयात्॥ ४४॥
कौत्साय मुनये प्रादाद् याचते गुरुदक्षिणाम्।
आशीर्वादेन तस्यैव जातं तीर्थं मनोहरम्॥ ४५॥
आश्विने शुक्लपक्षे तु दशम्यां स्नानमाचरेत्।
अन्यदापि नरः स्नात्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ ४६॥

श्रीहनुमान्‌कुण्डसे दक्षिण भागमें 'स्वर्णखनि' नामक उत्तम तीर्थ है। जहाँपर महाराज रघुके भयसे कुबेरने सोनेकी वृष्टि की थी और उसे रघुने गुरुदक्षिणार्थ आये कौत्समुनिको अर्पण किया था। उन्हीं कौत्समुनिके आशीर्वादसे यह मनोहर तीर्थ प्रकट

हुआ। यहाँ [विशेषकर] आश्विन शुक्ल दशमीको स्नान करना चाहिये। मनुष्य अन्य अवसरोंपर भी यहाँ स्नान करके अपने सभी मनोरथोंको सिद्ध कर लेता है॥ ४४—४६॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके पार्वती-शंकर-सम्वादके अन्तर्गत अयोध्याखण्डका दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वर्णखनिकुण्डका इतिहास एवं माहात्म्य

श्रीपार्वत्युवाच

भगवन् ब्रूहि तत्त्वेन स्वर्णवृष्टिरभूत् कथम्।
कुबेरस्य कथं भीतिरुत्पन्ना रघुभूपतेः॥ १॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मम सुव्रत।
श्रुत्वा कथारहस्यानि न तुष्यति मनो मम॥ २॥

श्रीपार्वतीजीने पूछा—हे प्रभो! यथार्थ रूपमें आप बतलाइये कि सुवर्णकी वृष्टि कैसे हुई तथा कुबेरजीको महाराज रघुसे भय कैसे उत्पन्न हुआ? हे सुव्रत! इन प्रश्नोंका विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये। इन रहस्यमय कथाओंको सुनकर मेरा मन सन्तुष्ट नहीं हो पा रहा है॥ १-२॥

श्रीशङ्कर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि खनेरुत्पत्तिमुत्तमाम्।
तस्याः श्रवणमात्रेण जायते विस्मयो महान्॥ ३॥

श्रीशंकरजी बोले— हे देवि! सुनो। मैं स्वर्णखनिकुण्डकी उत्पत्तिको कह रहा हूँ, जिसके केवल सुननेमात्रसे महान् आश्चर्य होता है॥ ३॥

आसीत् पुरा नरपतिरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः।
रघुर्निजभुजोदारवीर्यपालितभूतलः ॥ ४॥

पुराने समयमें इक्ष्वाकुकुलको समुज्ज्वल करनेवाले और अपनी भुजाओंके उत्कट बलसे समस्त पृथ्वीतलका पालन करनेवाले रघु नामक नरेश थे॥ ४॥

प्रतापतापितारातिवर्गो विख्यातसद्यशाः।
प्रजापालनया सम्यक् तेन नीतिमता सदा॥ ५॥

जिनके प्रतापसे शत्रुवर्ग सन्तप्त था, जिनका महान् यश प्रसिद्ध था। जो सदा राजनीतिसे प्रजाका पालन करते थे॥ ५॥

यशःपट्टेन संवीता दिशो दश तपस्त्विषा।
स चक्रे प्रौढविभवं साधनं विजये क्रमात्॥ ६॥

जिन्होंने अपनी कीर्तिपताका और तपस्याके तेजसे दसों दिशाओंको आच्छादित कर दिया था और अपनी विजययात्राओंके क्रमसे अपने राजकोष तथा दूसरी भी साधन-सम्पदाको अत्यन्त समृद्ध बना दिया था॥ ६॥

नानादेशान् समाक्रम्य चतुरंगबलान्वितः।
भूपतीन् वशमानीय वसु जग्राह दण्डतः॥ ७॥

[उन नरेशने] चतुरंगिणी सेनाके साथ विविध देशोंपर आक्रमणकर दण्डके प्रभावसे राजाओंको वशमें करके [अपरिमेय] द्रव्योंको ग्रहण किया था॥ ७॥

उत्कृष्टान् नृपतीन् वीरो दण्डयित्वा बलाधिकात्।
रत्नानि विविधान्याशु जग्राहातिबलस्तदा॥ ८॥

अपने बलाधिक्यसे वीर राजाओंको दण्ड देकर, उस समय अतिबलवान् वीर महाराज रघुने थोड़े ही समयमें बहुत-सारे रत्नोंको उपार्जित किया॥ ८॥

स विजित्य दिशः सर्वा गृहीत्वा रत्नसंचयम्।
अयोध्यामागतो राजा राजधानीं च तां शुभाम्॥ ९॥

वे महाराज रघु सब दिशाओंपर विजय प्राप्त करके रत्न-राशियोंको लेकर अपनी उस मंगलमयी राजधानी अयोध्या नगरीमें आ गये॥ ९॥

तत्रागत्य च काकुत्स्थो यज्ञायोत्सुकमानसः।
चकार निर्मलां बुद्धिं निजवंशोचितक्रियः॥ १०॥
वसिष्ठमुनिमाज्ञाप्य वामदेवं च कश्यपम्।
जाबालिं च भरद्वाजं गालवं गौतमं तथा॥ ११॥
अन्यानपि मुनिवरान् नानातीर्थसमाश्रितान्।
समानयद् वसिष्ठेन द्विजवर्येण भूपतिः॥ १२॥

अपने वंशके अनुरूप आचरण करनेवाले ककुत्स्थकुलभूषण महाराज रघु अयोध्या लौटकर यज्ञ करनेके लिये उत्कण्ठित हुए और उन्होंने [उसके लिये] विशुद्ध निश्चय किया॥ १०॥

अपने कुलगुरु वसिष्ठजीसे आज्ञा लेकर महाराज रघुने वामदेव, कश्यप, जाबालि, भरद्वाज, गालव, गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियों तथा अन्य अनेक तीर्थनिवासी मुनियोंको वसिष्ठजीके माध्यमसे एक श्रेष्ठ ब्राह्मणद्वारा यज्ञसम्पादनार्थ बुलवाया॥ ११-१२॥

दृष्ट्वा स्थिताँस्तु तान् सर्वान् प्रदीप्तानिव पावकान्।
तानागतान् विदित्वा तु रघुः परपुरंजयः॥ १३॥
निश्चक्राम यथान्यायं स्वयमेव महायशाः।
ततो विनीतवत् सर्वान् काकुत्स्थो द्विजसत्तमान्॥ १४॥
उवाच धर्मसंयुक्तं वचनं यज्ञसिद्धये।

शत्रुओंके पुरोंको जीतनेवाले महाराज रघुने प्रज्वलित अग्निके समान स्वरूपवाले उन ऋषियोंको आकर स्थित हुआ देखा। उनको आया हुआ जानकर वे महायशस्वी नरेश राजधर्मानुसार

[ऋषियोंका स्वागत-सत्कार आदि करनेहेतु] स्वयं ही चल पड़े। [ऋषियोंको अर्घ्य-पाद्यादि समर्पित करनेके] अनन्तर ककुत्स्थवंशी रघुने विनम्रतापूर्वक उन समस्त द्विजवरोंसे धर्मसमन्वित और यज्ञानुष्ठानसम्बन्धी अभिप्राय निवेदित किया॥ १३—१४½॥

रघुरुवाच

मुनयः सर्व एवैते यूयं शृणुत मद्वचः॥ १५॥
यज्ञं विधातुमिच्छामि तत्राज्ञां दातुमर्हथ।
साम्प्रतं मम को यज्ञो युक्तः स्यान्मुनिसत्तमाः॥ १६॥
एतद् विचार्य तत्त्वेन ब्रूथ यूयं मुनीश्वराः।

रघुने कहा—हे मुनियो! आप सभी लोग मेरे कथनको सुनिये। हे मुनिश्रेष्ठो! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः आप लोग मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं यज्ञ करूँ। साथ-ही-साथ यह भी बतलाइये कि मेरे लिये इस समय [विश्वविजयके अन्तमें] कौन-सा यज्ञ करना उचित होगा? हे मुनीश्वरो! यह बात ठीक-ठीक विचार करके आप लोग कहिये॥ १५—१६½॥

मुनय ऊचुः

राजन् विश्वजिदाख्यातो यज्ञस्ते यज्ञसत्तमः॥ १७॥
साम्प्रतं कुरु तं यज्ञं मा विलम्बं वृथा कृथाः।

मुनियोंने कहा—हे राजन्! विश्वजित् नामक यज्ञ तुम्हारे लिये उत्तम यज्ञ होगा। इस समय इसी यज्ञको आप कीजिये, आपको व्यर्थमें विलम्ब नहीं करना चाहिये॥ १७½॥

श्रीशङ्कर उवाच

रघुश्चक्रे ततो यज्ञं विश्वजिज्जयसंचयः॥ १८॥
नानासम्भारमतुलं कृतसर्वस्वदक्षिणम्।
नानाविधानि दानानि दत्तानि मुनितुष्टये॥ १९॥
सर्वस्वमेव प्रददौ द्विजेभ्यो बहुमानतः।
द्विजेषु तेषु यातेषु याजयित्वा स्वकान् गृहान्॥ २०॥

बन्धुष्वपि विसृष्टेषु मुनिषु प्रगतेषु च।
तेन यज्ञेन विधिवत् विहितेन नरेश्वरः।
शुशुभे शोभनाचारः स्वर्गे देवेन्द्रवत् क्षणात्॥ २१॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—हे पार्वती! मुनियोंके कहनेसे महाराज रघुने सारे विश्वपर विजय प्राप्त करनेके कारण विश्वजित् नामवाले [उस] यज्ञको किया। जिस यज्ञमें अतुलनीय अनेकविध सामग्रियाँ थीं। सर्वस्व ही जिसकी दक्षिणा थी। [ऐसे उस यज्ञमें] मुनिगणोंकी सन्तुष्टिके लिये महाराजने विविध दान किये। बड़े सत्कारके साथ ब्राह्मणोंको महाराजने अपना सब कुछ दान कर दिया। यज्ञ कराके उन ब्राह्मणोंके अपने-अपने घर चले जानेपर मुनिजनोंने भी प्रस्थान कर दिया और [महाराज रघुसे अनुमति लेकर उनके] बन्धु-बान्धव भी बिदा हो गये। उस समय विश्वजित् यागको विधानपूर्वक सम्पन्न करके मंगलमय आचरणवाले महाराज रघु वैसे ही शोभित थे, जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्र शोभायमान होते हैं॥ १८—२१॥

तत्रान्तरे समभ्यायान्मुनिर्यमवतां वरः।
विश्वामित्रमुनेरन्तेवासी कौत्स इति स्मृतः।
दक्षिणार्थं गुरोर्धीमान् याचितुं च नरेश्वरम्॥ २२॥
चतुर्दशसुवर्णानां कोटिमाहर सत्वरम्।
मद्दक्षिणेति गुरुणा निर्बन्धादुक्तवान् रुषा॥ २३॥

इसी बीचमें संयमशील पुरुषोंमें श्रेष्ठ कौत्समुनि वहाँ आ पहुँचे। वे विश्वामित्रजीके अन्तेवासी* एवं विशुद्ध बुद्धिवाले थे। वे गुरुकी दक्षिणा चुकानेके लिये महाराजसे याचना करनेहेतु उपस्थित हुए थे। [उन कौत्सने कुछ समय पूर्व विश्वामित्रसे दक्षिणाके लिये बारम्बार] हठ किया, तो गुरुने रोषपूर्वक कहा—

* यह प्रसंग रघुवंशमहाकाव्यमें कुछ भिन्न रूपमें प्राप्त होता है।

'चौदह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ शीघ्रतासे ले आओ। यही मेरी दक्षिणा है'॥ २२-२३॥

आगतः स मुनिः कौत्सस्ततो याचितुमादरात्।
रघुं भूपालतिलकं दत्तसर्वस्वदक्षिणम्॥ २४॥

इसीलिये वे कौत्समुनि आदरपूर्वक अपना सर्वस्व दक्षिणाके रूपमें दे देनेवाले भूपालशिरोमणि महाराज रघुके समीप आये थे॥ २४॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य रघुरादरतस्तदा।
उत्थाय पूजयामास विधिवत् स परन्तपः॥ २५॥
सपर्ययार्घादिकया मृत्पात्रविहितक्रियः।
पूजासम्भारमालोक्य तादृशं स मुनीश्वरः॥ २६॥
विस्मितोऽभून्निरानन्दो दक्षिणाशां परित्यजन्।
उवाच मधुरं वाक्यं वाक्यज्ञानविशारदः॥ २७॥

उस समय उन परम तपस्वी [या शत्रुहन्ता] महाराज रघुने आये हुए कौत्समुनिको देखकर आसनसे उठकर बड़े आदरसे विधिपूर्वक उनका पूजन किया। रघुने मृत्तिकानिर्मित पात्रोंसे कौत्समुनिका शास्त्रोचित अर्घ्य-पाद्यादिरूप सत्कार किया। जब वैसे पूजासम्भार (मिट्टीके बर्तन आदि)-को मुनीश्वर कौत्सने देखा, तो वे विस्मित और उद्विग्न हो गये। उन्होंने दक्षिणाप्राप्तिकी आशा छोड़ दी। फिर वाक्पटु कौत्सने मधुर वाणीमें रघुसे कहा— ॥२५—२७॥

कौत्स उवाच

राजन्नभ्युदयस्तेऽस्तु गच्छाम्यन्यत्र साम्प्रतम्।
गुर्वर्थाहरणायैव दत्तसर्वस्वदक्षिणम्॥ २८॥
त्वां न याचे धनाभावादतोऽन्यत्र व्रजाम्यहम्।

कौत्सने कहा—हे राजन्! आपका अभ्युदय हो, मैं अन्यत्र

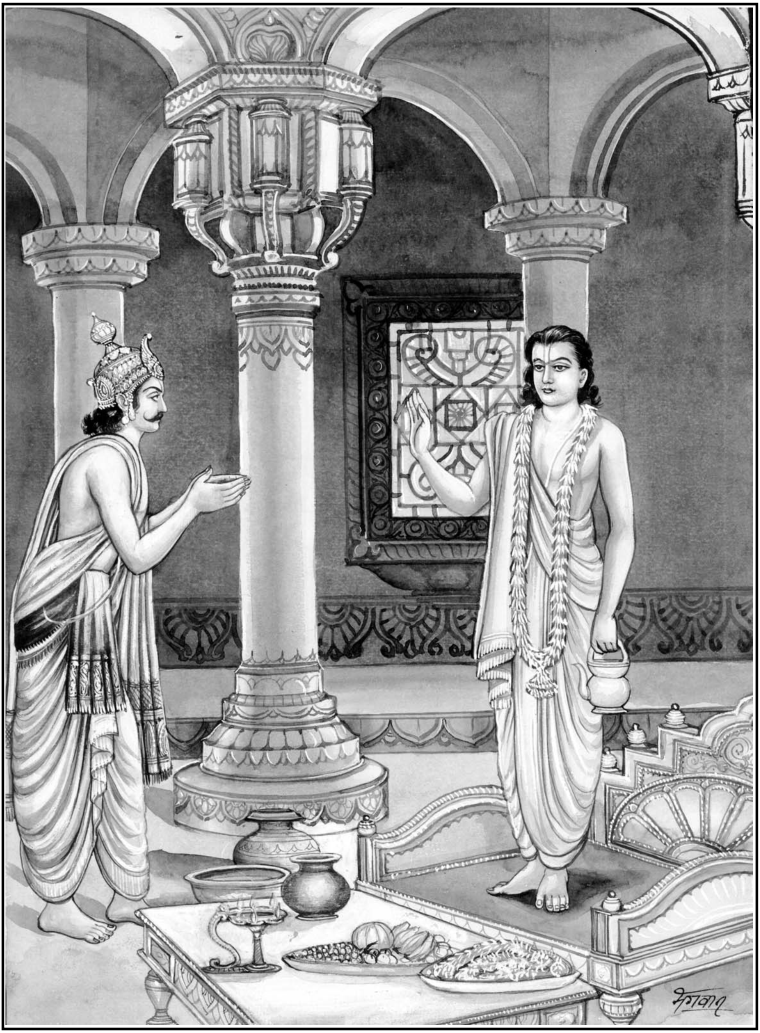

सर्वस्व दानी महाराजा रघु और ब्राह्मण कौत्स

जा रहा हूँ। इस समय आप सर्वस्व दान कर चुके हैं, अतः गुरुजीकी दक्षिणाके लिये आपको छोड़कर अन्यत्र जाऊँगा। आप इस समय निर्धन हैं, अतः आपसे याचना नहीं करना चाहता॥ २८१/२ ॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्युक्तस्तेन मुनिना रघुः परपुरंजयः॥ २९॥
क्षणं ध्यात्वाब्रवीदेनं विनयाद् विहितांजलिः।

श्रीशंकरजी कहते हैं—[हे पार्वती!] जब कौत्सने ऐसी बात कही, तो शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले महाराज रघुने क्षणभर सोचनेके बाद हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे उन कौत्समुनिसे कहा— ॥ २९१/२ ॥

रघुरुवाच

भगवन् तिष्ठ मद्गेहे दिनमेकं शुचिव्रत॥ ३०॥
यावद् यतिष्ये भगवदर्थार्थमहमुच्चकैः।

रघुने कहा—हे पवित्रव्रतधारी! हे भगवन्! आप एक दिन मेरे घरपर ठहरिये। जबतक कि मैं आपके द्रव्यके लिये महान् यत्न कर रहा हूँ॥ ३०१/२ ॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्युक्त्वा परमोदारं वचो मुनिमुदारधीः॥ ३१॥
प्रतस्थे स्थितधीस्तत्र कुबेरविजिगीषया।
तमायान्तं कुबेरोऽपि विज्ञायाप्तजनोदितैः॥ ३२॥
तत्प्रसन्नमनाश्चक्रे वृष्टिं स्वर्णस्य चाक्षयाम्।
स्वर्णवृष्टिरभूद् यत्र सा स्वर्णखनिरुत्तमा॥ ३३॥

श्रीशंकरजी बोले—उदारबुद्धि श्रीरघुने मुनिवरको ऐसी उदार वाणी कहकर रोका। तदुपरान्त दृढ़ निश्चयवाले रघुने उस समय कुबेरके ऊपर चढ़ाई कर दी। जब अपने विश्वस्त जनोंसे कुबेरको यह बात ज्ञात हुई कि महाराज रघु [मुनिवर कौत्सकी

दक्षिणाके लिये मुझे जीतने] आ रहे हैं, तो उन्होंने प्रसन्न चित्तसे स्वर्णकी अक्षय वृष्टि की। जिस स्थानपर सुवर्णकी वृष्टि हुई थी, वह यही 'स्वर्णखनि' नामक उत्तम तीर्थस्थली है॥ ३१—३३॥

तं मुनिं दर्शयामास खनिं जननिवेदिताम्।
तस्मै समर्पयामास तां रघुः खनिमुत्तमाम्॥ ३४॥
मुनीन्द्रोऽपि गृहीत्वा तु ततो गुर्वर्थमादरात्।
राज्ञे निवेदयामास सर्वमन्यद् गुणाधिकम्॥ ३५॥
वरानथ ददौ तुष्टः कौत्सो मतिमतां वरः।

महाराज रघुने यक्षराज कुबेरके द्वारा निवेदित सोनेकी उत्तम खान उन मुनिको दिखलायी और उसे उन्हींको अर्पण कर दिया। मुनिराजने भी बड़े आदरसे गुरुजीको जितनी दक्षिणा देनी थी, उतनी ही [स्वर्णराशि] स्वीकार की। अपने कार्यसे अधिक जो सुवर्ण शेष था, उसे महाराजको लौटा दिया। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ कौत्सने सन्तुष्ट होकर [महाराजको] अनेक वर प्रदान किये॥ ३४—३५$^{1}/_{2}$॥

कौत्स उवाच

राजंल्लभस्व पुत्रं त्वं निजवंशगुणान्वितम्॥ ३६॥
इयं स्वर्णखनिर्दिव्या मनोऽभीष्टफलप्रदा।
भूयादत्र परं तीर्थं सर्वपापहरं सदा॥ ३७॥

कौत्सने कहा—हे राजन्! अपने कुलके राजाओंके उत्तम गुणोंसे परिपूर्ण पुत्रको प्राप्त करो। यह दिव्य सुवर्णखनि मनोवांछित फलोंको देनेवाली हो तथा यहाँपर पापोंको निरन्तर हरनेवाला उत्तम तीर्थ हो॥ ३६-३७॥

अत्र स्नानेन दानेन नृणां लक्ष्मीः प्रजायते।
वैशाखे शुक्लद्वादश्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्॥ ३८॥

नानाभीष्टफलप्राप्तिर्भूयान्मद्वचनान्नृणाम् ।
आश्विने शुक्लपक्षे च दशम्यां स्नानमाचरेत्॥ ३९॥
सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते च नृणां भुवि।

इस तीर्थमें स्नान तथा दान करनेसे मनुष्योंको लक्ष्मीकी प्राप्ति होती रहे। यहाँकी वार्षिक यात्रा वैशाख शुक्ल द्वादशीको होगी। मेरे वचन (के प्रभाव)-से भक्तोंको [यहाँ] अनेक प्रकारके मनोवांछित फल मिलेंगे। आश्विनमासके शुक्लपक्षकी दशमी (विजयादशमी) तिथिमें यहाँ स्नान अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे इस भूतलपर मनुष्योंकी समस्त कामनाओंकी पूर्ति होती है॥ ३८—३९ १/२ ॥

श्रीशङ्कर उवाच

इति दत्वा वरान् कौत्सो राज्ञे सन्तुष्टमानसः॥ ४०॥
प्रतस्थे निजकार्यार्थी गुरोराश्रममुत्सुकः।
राजाऽथ कृतकृत्यो हि शेषं संगृह्य तद्धनम्॥ ४१॥
द्विजेभ्यो विधिवद् दत्वा पालयामास स प्रजाः।
एवं स्वर्णखनेर्जातं माहात्म्यं च मुनेर्वरात्॥ ४२॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—इस प्रकारसे महाराजको वर देकर सन्तुष्ट मनवाले कौत्समुनि अपने अभीष्टहेतु अर्थात् गुरुकी दक्षिणा चुकानेके लिये बड़ी उत्सुकतासे गुरुके आश्रमको चले गये। तदनन्तर महाराज रघुने भी कृतकृत्य होकर बचे हुए सुवर्णको ग्रहण किया। वे विधिपूर्वक द्विजोंको [उस] सुवर्णका दानकर प्रजाओंका पालन करने लगे। इस प्रकार कौत्समुनिके वरदानसे स्वर्णखनिकुण्डका माहात्म्य प्रसिद्ध हुआ॥ ४०—४२॥

श्रीपार्वत्युवाच

भगवन् ब्रूहि तत्त्वेन कथं निर्बन्धतो मुनिः।
विश्वामित्रो निजं शिष्यं कौत्सं क्रोधेन तादृशम्॥ ४३॥

दुष्प्राप्यमर्थं यत्नेन स तु प्रार्थितवाँस्तथा।
एतत् सर्वं समाचक्ष्व यद्यस्ति मयि ते कृपा॥ ४४॥

श्रीपार्वतीजीने पूछा—हे भगवन्! ठीक-ठीक बतलाइये कि उन विश्वामित्रमुनिने क्यों क्रोधवश अपने उत्तम शिष्य कौत्ससे बड़े दुष्कर प्रयत्नके द्वारा उपलब्ध होनेवाले द्रव्यके लिये दुराग्रह किया और उस दक्षिणाको कौत्सने जाकर महाराजसे माँगा। ये सब बातें मुझसे आप कहिये, यदि आपकी मुझपर कृपा है॥ ४३-४४॥

श्रीशङ्कर उवाच

शृणु देवि कथामेतां सावधानं मनः कुरु।
विश्वामित्रो मुनिश्रेष्ठो दिव्यविज्ञानलोचनः॥ ४५॥
निजाश्रमे तपोऽत्यन्तं चकार प्रयतव्रती।
एकदा तत्तपो द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरागतः॥ ४६॥

श्रीशंकरजी बोले—हे देवि! मनको सावधान करो और इस कथाको सुनो! दिव्य विज्ञानमय नेत्रोंवाले विश्वामित्रजी मुनियोंमें श्रेष्ठ थे। उन्होंने अपने ही आश्रममें संयम-नियमका व्रत धारणकर अतिकठोर तपस्या की। एक समय दुर्वासाजी उनकी तपस्या देखनेके लिये आये॥ ४५-४६॥

आगत्य च क्षुधाक्रान्त उच्चैः प्रोवाच स द्विजः।
भोजनं दीयतां मह्यं क्षुधापीडितचेतसे॥ ४७॥
पायसं शुचि नोऽन्नं तु शीघ्रं क्षुत्क्षान्तये द्विज।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य विश्वामित्रः प्रयत्नतः॥ ४८॥
स्थाल्यां पायसमादाय तं समभ्युत्थितः स्वयम्।

वे दुर्वासाजी आकर भूखसे पीड़ित हो उच्च स्वरसे कहने लगे—मैं भूखसे पीड़ित हूँ, मुझे भोजन दीजिये। हे द्विज! मेरी क्षुधाशान्तिके लिये मुझे पवित्र खीरका भोजन शीघ्र दीजिये। विश्वामित्रजीने दुर्वासाजीके ऐसे कथनको सुना तथा प्रयत्नपूर्वक

[खीरका निर्माण किया और फिर] वे पात्रमें खीर लेकर स्वयं उनके समक्ष उपस्थित हो गये॥ ४७—४८½ ॥

तदादायोत्थितं दृष्ट्वा दुर्वासास्तं विलोकयन्॥ ४९ ॥
उवाच मधुरं वाक्यं मुनिर्ज्वलनसन्निभः।

उस खीरको लेकर सामने खड़े हुए विश्वामित्रजीको देखकर अग्निके तुल्य तेजोमय दुर्वासामुनिने उनसे मधुर वाणीमें कहा— ॥ ४९½ ॥

दुर्वासा उवाच

क्षणं सहस्व विप्रेन्द्र स्नानार्थं तु व्रजाम्यहम्॥ ५० ॥
क्षणं तिष्ठ क्षणं तिष्ठ चागच्छाम्येव साम्प्रतम्।
इत्युक्त्वा स जगामाशु दुर्वासाः स्वाश्रमं तदा॥ ५१ ॥

दुर्वासा बोले—हे ब्रह्मर्षे! एक क्षण रुकिये, क्षणभर रुकिये, क्षणभर आप ठहर जाइये, मैं स्नानके लिये जा रहा हूँ और अभी मैं आता हूँ। ऐसा कहकर दुर्वासाजी उसी समय वेगपूर्वक अपने आश्रमकी ओर चले गये॥ ५०—५१ ॥

विश्वामित्रस्तपोनिष्ठस्तदा स्थाणुरिवाचलः।
वर्षाणां तु सहस्त्रं वै तस्थौ स्थिरमतिस्तदा॥ ५२ ॥
तस्य शुश्रूषणपरो मुनिः कौत्सो यतव्रतः।
बभूव परमोदारमतिर्विगतमत्सरः॥ ५३ ॥

दुर्वासाजीके चले जानेपर तपोनिष्ठ विश्वामित्रजी हजार वर्षपर्यन्त स्थिर बुद्धिसे खम्भेके समान अटल रूपसे वहीं [दुर्वासाजीके लौटनेतक] खड़े रह गये। ऐसी अवस्थामें विश्वामित्रजीकी सेवामें उनके अभिमानरहित, परम उदार, दृढ़व्रत शिष्य कौत्समुनि लगे रहे॥ ५२–५३ ॥

पुनरागत्य स मुनिर्दुर्वासा गतकल्मषः।
भुक्त्वा च पायसं चोष्णं गतवाँश्च निजाश्रमम्॥ ५४॥

तस्मिन् याते मुनिवरे विश्वामित्रस्तपोनिधिः।
कौत्सं विद्यावतां श्रेष्ठं विससर्ज गृहं प्रति॥ ५५॥

पापरहित वे दुर्वासाजी [हजार वर्षके बाद] फिर लौटे और [विश्वामित्रजीके पास आकर] गरम-गरम खीर खाकर अपने आश्रमको चले गये। उन मुनिवर दुर्वासाजीके चले जानेपर तपोनिधि विश्वामित्रजीने विद्वानोंमें श्रेष्ठ कौत्समुनिको अपने घर जानेको कहा॥ ५४-५५॥

स विसृष्टो गुरुं प्राह दक्षिणा प्रार्थ्यतामिति।
विश्वामित्रस्तु तं प्राह शुश्रूषा तव दक्षिणा॥ ५६॥
पुनः प्राह गुरुं शिष्यो दक्षिणा प्रार्थ्यतामिति।
विश्वामित्रः पुनः प्राह शुश्रूषा तव दक्षिणा॥ ५७॥
पुनः पुनर्गुरुं प्राह शिष्यो निर्बन्धवांस्तदा।
तदा गुरुश्च क्रुद्धस्तु शिष्यं प्राह च निष्ठुरम्॥ ५८॥
सुवर्णस्य सुवर्णस्य चतुर्दश समाहर।
कोटीर्मे दक्षिणा विप्र पश्चाद् गच्छ गृहं प्रति॥ ५९॥

गुरु विश्वामित्रके द्वारा घर भेजे जाते हुए कौत्सने गुरुसे कहा—दक्षिणा माँगिये। विश्वामित्रजीने कहा—गुरुसेवा ही तुम्हारी दक्षिणा है। शिष्य कौत्सने गुरुजीसे दुबारा कहा कि दक्षिणा माँगिये। विश्वामित्रजीने भी दुबारा यही कहा कि गुरुकी सेवा ही तुम्हारी दक्षिणा है। शिष्य कौत्सने उस समय बार-बार गुरुजीसे 'दक्षिणा माँगिये!' ऐसा दुराग्रह किया। उस समय गुरुने क्रोधमें आकर ऐसे आग्रही शिष्यसे निष्ठुरतापूर्वक कहा—'हे विप्र! उत्तम कोटिके सुवर्णकी चौदह करोड़ [मुद्राओंके] परिमाणवाली दक्षिणा [पहले] मुझे अर्पित करो, फिर घर जाओ'॥ ५६—५९॥

इत्युक्तो गुरुणा कौत्सो विचार्य समुपागतः।
काकुत्स्थं दिग्विजेतारं ययाचे गुरुदक्षिणाम्॥ ६०॥

गुरुजीके ऐसा कहनेपर कौत्सने सोच-समझकर ककुत्स्थवंश-विभूषण, दिग्विजयी महाराज रघुसे गुरुदक्षिणाकी याचना की॥ ६०॥

इति ते कारणं सर्वं मया भद्रे प्रकीर्तितम्।
शृणुयाच्छ्रद्धया यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ६१॥

हे कल्याणी पार्वती! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने [सुवर्ण-वर्षणका] सम्पूर्ण कारण तुम्हें कह सुनाया। जो व्यक्ति इस कथाको श्रद्धासे सुनेगा, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जायेगा॥ ६१॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके शिव-पार्वती-सम्वादके अन्तर्गत अयोध्याखण्डका ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

यज्ञवेदी, अग्निकुण्ड, तिलोदकी संगम, अशोकवाटिका, सीताकुण्ड, महाविद्यापीठ तथा विद्याकुण्ड—इन तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य

श्रीशङ्कर उवाच

तस्या दक्षिणदिग्भागे यज्ञवेदी प्रकीर्तिता।
यत्र यज्ञो बभूवाथ रामस्य परमात्मनः।
ब्राह्मणान् भोजयेत् तत्र सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ १॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—हे पार्वती! स्वर्णखनिसे दक्षिण दिशामें यज्ञवेदी नामक तीर्थ कहा गया है, जहाँपर परमात्मा श्रीरामका यज्ञ हुआ था। वहाँपर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये, इससे सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं॥ १॥

तस्याः पश्चिमदिग्भागे ह्यग्निकुण्डं मनोहरम्।
नानारत्नैर्विचित्रं च कान्त्या तामिस्त्रनाशनम्॥ २॥
ब्राह्मणा हरिभक्तास्तु निवसन्ति सहस्त्रशः।
अग्नयः स्थापितास्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः॥ ३॥
दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयास्त्रयोऽग्नयः।
तत्र यात्रा प्रकर्तव्या नरैः श्रद्धासमन्वितैः॥ ४॥

उस यज्ञवेदीसे पश्चिम दिशामें मनोहर, अनेक रत्नोंसे विचित्र प्रतीत होनेवाला तथा अपने प्रकाशसे अन्धकारका नाश करनेवाला अग्निकुण्ड नामक तीर्थ है। [जिसके आस-पास] हजारों ब्राह्मणों तथा हरिभक्तोंका निवास है। उन वेदवेत्ता ब्राह्मणोंने दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय—इन तीनों अग्नियोंको वहाँ स्थापित किया है। श्रद्धालुजनोंको इस अग्निकुण्डकी यात्रा [अवश्य] करनी चाहिये॥ २—४॥

अत्र यज्ञो महादानं स्तोत्रस्य पठनं तथा।
अत्र स्नास्यन्ति ये मर्त्या अमर्त्यास्ते न संशयः॥ ५॥
स्वर्णं चान्नं च वासांसि देयानि श्रद्धयान्वितैः।
पयस्विनी च गौर्देया सवत्सा स्वर्णशृंगिका॥ ६॥
अत्र स्नानेन दानेन नृणां लक्ष्मीः प्रजायते।
मार्गशीर्षस्य कृष्णायां पक्षतौ च वरानने॥ ७॥
यात्रा साम्वत्सरी कार्या सर्वाभीष्टफलप्रदा।
यज्ञवेद्यां नरः कुर्यात् पिण्डदानं विशेषतः॥ ८॥
गयाश्राद्धसमं प्रोक्तं पितॄणां तृप्तिकारकम्।
यत्पुण्यं क्रियते तत्र ह्यश्वमेधसमं भवेत्॥ ९॥

इस अग्निकुण्डतीर्थमें यज्ञ, महादान तथा स्तोत्रोंके पाठ [भी अधिक पुण्यप्रद होनेसे करनेयोग्य] हैं। जो मनुष्य यहाँ स्नान करते हैं, वे मानो देवता ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है। यहाँपर श्रद्धायुक्त लोगोंको सुवर्ण, अन्न, वस्त्र और सुवर्ण-मण्डित

सींगवाली, बछड़ेके सहित दुधारू गौका दान करना चाहिये। हे सुमुखि! यहाँपर स्नान-दान करनेसे लक्ष्मीकी वृद्धि होती है। अगहनके कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिमें यहाँकी वार्षिक यात्रा करनी चाहिये, वह सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। विशेषकर यज्ञवेदीमें मनुष्यको पिण्डदान करना चाहिये। इस यज्ञवेदीमें किया गया पिण्डदान गयाश्राद्धके समान पितरोंको तृप्त करनेवाला है। यहाँपर जो भी पुण्य कार्य किया जाता है, वह अश्वमेध-यज्ञके समान फल देनेवाला होता है॥ ५—९॥

यज्ञवेद्या दक्षिणे तु संगमः सिद्धसेवितः।
तिलोदकीसरय्वास्तु संगत्या भुवि विश्रुतः॥ १०॥

यज्ञवेदीसे दक्षिण भागमें सिद्धोंसे सेवित तथा पृथ्वीतलपर प्रसिद्ध सरयू-तिलोदकीनदीसंगम नामक तीर्थ है॥ १०॥

तत्र स्नात्वा महाभागे भवन्ति विरुजो नराः।
दशानामश्वमेधानां कृतानां यत्फलं भवेत्॥ ११॥
तदवाप्नोति धर्मात्मा ह्यत्र स्नात्वा यतव्रतः।

हे महाभागे पार्वती! वहाँपर स्नान करनेसे मनुष्य शारीरिक-मानसिक रोगोंसे विमुक्त हो जाते हैं। दस अश्वमेध-यज्ञ करनेसे जो फल मिलता है, उस फलको संयम-नियमपूर्वक धर्मात्मा पुरुष यहाँ स्नान करके पा जाता है॥ ११$^{१}/_{२}$॥

स्वर्णादिकं च यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे॥ १२॥
शुभां गतिमवाप्नोति ह्यग्निवच्चैव दीप्यते।

वहाँपर जो व्यक्ति वेदपाठी ब्राह्मणोंको सुवर्ण आदिका दान करता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है तथा अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है॥ १२$^{१}/_{२}$॥

तिलोदकीसरय्वास्तु संगमे लोकविश्रुते॥ १३॥
दत्वान्नं तु विधानेन न स भूयोऽभिजायते।

उपवासं च कृत्वा तु विप्रांश्च तर्पयेन्नरः॥ १४॥
सौत्रामणेस्तु यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः।
एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः॥ १५॥
यावज्जीवकृतं पापसहस्रं तस्य नश्यति।
अमायां चैव भाद्रस्य यात्रा साम्वत्सरी भवेत्॥ १६॥

जो मनुष्य लोकप्रसिद्ध तिलोदकी-सरयू-संगममें विधानपूर्वक अन्नदान करता है, वह फिर जन्म-मरणके चक्रमें नहीं पड़ता है। जो यहाँपर उपवास करके ब्राह्मणोंको [अन्न-वस्त्रादिसे] तृप्त करता है, उसे सौत्रामणी यज्ञ करनेका फल मिलता है। इस तीर्थमें जो नियम-संयमपूर्वक एक मासतक एक बार भोजन करते हुए निवास करता है, उसके जीवनभरके किये हुए हजारों पाप नष्ट हो जाते हैं। यहाँकी वार्षिकी यात्रा भाद्रपदकी अमावस्या (कुशोत्पाटिनी)-को होती है॥ १३—१६॥

रामेण निर्मिता पूर्वं नदी सिन्धुः स्थितापरा।
सिन्धुजानां तुरंगाणां जलपानाय सुव्रते॥ १७॥
तिलवत् श्याममुदकं यतस्तस्याः सदा बभौ।
तिलोदकीति सा ख्याता पुण्यतोया सदानदी॥ १८॥

हे सुव्रते! सिन्धुदेशमें उत्पन्न हुए [अपने उत्तम] घोड़ोंके जल पीनेके लिये दूसरी सिन्धु नदीके समान [वर्ण एवं गुणोंवाली] इस तिलोदकीका निर्माण करके श्रीरामने इसको स्थापित किया था। इसका जल तिलके समान सर्वदा श्यामवर्ण रहता है, अतः पवित्र जलवाली इस नदीका नाम तिलोदकी है॥ १७-१८॥

संगमादन्यतो यस्यां तिलोदक्यां शुचिव्रतः।
स्नातो विमुच्यते पापैः सप्तजन्मार्जितैरपि॥ १९॥

संगमसे अन्यत्र (जहाँ-कहीं) भी इस तिलोदकीमें पवित्र व्रत धारणकर स्नान करनेवाला व्यक्ति सात जन्मोंमें अर्जित किये गये

पापोंसे छूट जाता है॥ १९॥

तस्मात् तिलोदकीस्नानं सर्वपापहरं प्रिये।
कर्तव्यं च विशेषेण प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः॥ २०॥
स्नानं दानं तपो होमः सर्वमक्षयतां व्रजेत्।
तिलोदकीसरय्वोस्तु पश्चिमे तु तटे स्थिता॥ २१॥
अशोकवाटिका नाम्नी रामचन्द्रस्य शोभते।

हे प्रिये! इसी कारण सब पापोंको हरण करनेवाला तिलोदकीका स्नान धर्मकी कामनावालोंको विशेष रूपसे करना चाहिये। यहाँपर किये गये स्नान, दान, तप, होम आदि समस्त सत्कर्म अक्षय हो जाते हैं। तिलोदकी-सरयू-संगमके पश्चिमदिग्वर्ती तटपर ही महाराज श्रीरामकी अशोकवाटिका विराजमान है॥ २०—२१$^{1}/_{2}$॥

चन्दनागुरुचूतैश्च तुंगकालेयकैरपि॥ २२॥
देवदारुवनैश्चापि समन्तादुपशोभिता।
चम्पकागुरुपुन्नागमधूकपनसासनैः॥ २३॥

इस (वाटिका)-में चन्दन, अगर, आम्र, तुंग (नारियल), कालेयक (पीतवर्ण एवं सुगन्धित वृक्षविशेष), देवदारु, चम्पा, पुन्नाग, महुवा, कटहल, असन (साल) आदि वृक्षोंके समूह विशेष शोभा बढ़ा रहे हैं॥ २२-२३॥

शोभिता पारिजातैश्च विधूमज्वलनप्रभैः।
लोध्रनीपार्जुनैर्नागैः सप्तपर्णातिमुक्तकैः॥ २४॥
मन्दारकदलीगुल्मलताजालसमावृता।
प्रियंगुभिः कदम्बैश्च तथा बकुलकैरपि॥ २५॥

वह वाटिका धूमरहित अग्निके समान कान्तिवाले पारिजात (हरसिंगार), लोध्र, कदम्ब, अर्जुन, नागवृक्ष, अतिशय फूले हुए सप्तपर्ण, मन्दार, कदली, प्रियंगु, बकुल तथा नानाविध वनस्पतियों एवं लता-वल्लियोंसे शोभायमान है॥ २४-२५॥

जम्बूभिर्दाडिमैश्चैव कोविदारैश्च शोभिता।
सर्वदा कुसुमै रम्यैः फलवद्भिर्मनोरमैः॥ २६॥
दिव्यगन्धरसोपेतैस्तरुणांकुरपल्लवैः।
तथैव तरुभिर्दिव्यैः शिल्पिभिः परिकल्पितैः॥ २७॥
चारुपल्लवपुष्पाढ्यैर्मत्तभ्रमरसंकुलैः।
कोकिलैर्भृंगराजैश्च नानावर्णैश्च पक्षिभिः॥ २८॥

वह अशोकवाटिका जामुन, अनार, कोविदार आदि वृक्षोंसे शोभायमान है। नित्य रमणीक पुष्पों एवं फलोंसे लदे मनोरम वृक्षोंसे समन्वित है। उन वृक्षोंके नये एवं पुराने पत्ते दिव्य गन्ध तथा रससे परिपूर्ण हैं और इसी प्रकारके [सुवर्ण-रत्नादिसे] शिल्पियोंके द्वारा बनाये गये कृत्रिम वृक्ष भी वहाँ स्थित हैं, जो सुन्दर पल्लव, पुष्प, मतवाले भ्रमर, कोकिल, भृंगराज आदि प्राणियों और नानाविध रूप-रंगवाले पक्षियोंसे युक्त और बड़े ही अलौकिक जान पड़ते हैं॥ २६—२८॥

शोभिता शतशश्चित्रैश्चूतवृक्षावतंसकैः।
शातकुम्भनिभाः केचित्केचिदग्निशिखोपमाः॥ २९॥
नीलांजननिभाः केचिद् भान्ति तत्र स्म पादपाः।
सुरभीणि च पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च॥ ३०॥
दीर्घिका विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा।
माणिक्यकृतसोपानाः स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः॥ ३१॥
फुल्लपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः।
दात्यूहशुकसंघुष्टा हंससारसनादिताः॥ ३२॥

वह वाटिका सैकड़ों उत्तम-उत्तम जातिके और विलक्षण स्वरूपके कारण आभूषण-से प्रतीत होनेवाले आम्रवृक्षोंसे सुशोभित है। उस अशोकवाटिकामें कुछ वृक्ष तो चमकते हुए सुवर्णके समान, कुछ वृक्ष अग्निशिखाके समान और कुछ नीले अंजनके समान

वर्णवाले हैं। अनेक प्रकारके सुगन्धित फूलों तथा चित्र-विचित्र मालाओंसे अशोकवाटिका सजायी गयी है। स्थान-स्थानपर अनेक प्रकारकी जलसे परिपूर्ण बावलियाँ हैं, जिनकी सीढ़ियाँ माणिक्य रत्नोंसे बनी हुई हैं। उन बावलियोंका अन्तस्तल (फर्श) स्फटिकसे निर्मित है। उन बावलियोंमें लाल, सफेद रंगके कमल फूले हुए हैं और चक्रवाक, जलकुक्कुट, शुक, हंस, सारस आदि अनेक पक्षीगण वहाँपर मनोहर कूजन कर रहे हैं॥ २९—३२॥

तरुभिः पुष्पशबलैस्तीरजैरुपशोभिताः।
प्राकारैर्विविधाकारैः शोभिताश्च शिलातलैः॥ ३३॥

उन बावलियोंके तटोंपर उगे तथा [सघन छायावाले] फूलोंसे लदे वृक्ष हैं और अनेक प्रकारके घेरे एवं बहुत-से पत्थरोंके सुन्दर आसन वहाँ बने हुए हैं, इनसे उन बावलियोंकी शोभा बढ़ रही है॥ ३३॥

तत्रैव च नगादेशे वैडूर्यमणिसन्निभैः।
शाद्वलैः परमैर्युक्ताः पुष्पितद्रुमकाननाः॥ ३४॥

उन्हीं वृक्षोंके समीपमें वैदूर्यमणिके समान हरी-हरी घासोंसे युक्त हरे-हरे बगीचे बने हुए हैं, जो फूलोंसे लदे वृक्षोंके कारण सुशोभित हो रहे हैं॥ ३४॥

तत्र संघर्षजातानां वृक्षाणां पुष्पशालिनाम्।
प्रस्तराः पुष्पशबला नभस्तारागणैरिव॥ ३५॥

वहाँ फूलोंसे लदे हुए वृक्ष [वायुके कारण] जब आपसमें टकराते हैं, तो उनके फूल उन शिलातलोंमें झरने लगते हैं। बिखरे फूलोंसे युक्त वे शिलातल तब वैसे ही जान पड़ते हैं, जैसे ताराओंसे खचित निर्मल आकाश॥ ३५॥

नन्दनं हि यथेन्द्रस्य वनं चैत्ररथं यथा।
तथाभूतं हि रामस्य काननं तन्निवेशितम्॥ ३६॥

श्रीरामका पुष्पोद्यान वैसे ही सजा-सँवरा है, जैसे देवराज

इन्द्रका नन्दनवन हो अथवा [यक्षराज कुबेरका] चैत्ररथ नामक उद्यान हो॥ ३६॥

बह्वासनगृहोपेतां लतापादपशोभिताम्।
अशोकवाटिकां स्फीतां प्रविश्य रघुनन्दनः॥ ३७॥

जहाँ अनेक प्रकारके बैठनेके आसन तथा अनेक प्रकारके विलासभवन बने हुए हैं, जिसमें अनेक प्रकारके लता, वृक्ष, पुष्पादि सुशोभित हो रहे हैं, ऐसी उस सजी हुई दिव्य अशोकवाटिकामें श्रीरघुनन्दनने प्रवेश किया॥ ३७॥

आसने च शुभाकारे पुष्पप्राकारशोभिते।
कुशास्तरणसंस्तीर्णे रामः सन्निषसाद ह॥ ३८॥

जिसके चारों ओर फूलोंकी दीवार-सी बनी थी और जिसमें उत्तम कुशासन बिछाया गया था, ऐसे रमणीक स्वरूपवाले आसनपर श्रीरामभद्र भलीभाँति विराजमान हो गये॥ ३८॥

सीतामादाय हस्तेन मधु मैरेयकं शुचि।
पाययामास काकुत्स्थः शचीमिव पुरन्दरः॥ ३९॥

वहाँपर श्रीरामने अपने हाथोंसे मधुर एवं पवित्र पेय सीताजीको वैसे ही पिलाया, जैसे देवी शचीको इन्द्रदेव [अमृतद्रवका] पान कराते हैं॥ ३९॥

भोजनानि सुमिष्टानि फलानि विविधानि च।
रामस्याभ्यवहारार्थं किङ्करास्तूर्णमाहरन्॥ ४०॥

[उस समय] श्रीराम [तथा देवी सीता]-के भोजनहेतु शीघ्र ही सेवकोंने मधुर खाद्य एवं विविध भाँतिके फल प्रस्तुत किये॥ ४०॥

अप्सरोगणसङ्घाश्च किन्नरीणां गणास्तथा।
दक्षिणा रूपवत्यश्च स्त्रियः पानवशं गताः॥ ४१॥

[महारानी सीता एवं महाराज श्रीरामके मनोरंजनार्थ वहाँ उपस्थित] उत्तम नायिकाओंके गुणोंसे युक्त सौन्दर्यशालिनी एवं

[ललितकलाओंमें] निपुण अप्सराओं और किन्नरियोंने स्पृहापूर्वक उस मधुर पेयका पान किया॥ ४१॥

उपनृत्यन्ति राज्ञस्ता नृत्यगीतविशारदाः।
मनोऽभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः॥ ४२॥
रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताः।
स तया सीतया सार्धमासीनो विरराज ह॥ ४३॥
अरुन्धत्या सहासीनो वसिष्ठ इव तेजसा।

नाच-गानमें निपुण वे मनोहर दिव्य रमणियाँ महाराजके समीप नृत्य करने लगीं और अखिल विश्वके एकमात्र आह्लादक श्रीरामने [पारितोषिक आदिके द्वारा] उन नृत्यांगनाओंका सत्कार किया। देवी सीताके साथ विराजमान उन धर्ममूर्ति श्रीरामने अलौकिक अलंकारादिसे सुन्दरियोंका अलंकरण करवाया। उस समय सीताके साथ अवस्थित वे प्रभु अरुन्धतीदेवीके साथ बैठे तेजस्वी महर्षि वसिष्ठके समान जान पड़ते थे॥ ४२—४३ $^{1}/_{2}$ ॥

एवं रामो मुदायुक्तः सीतां सुरसुतोपमाम्॥ ४४॥
रमयामास वैदेहीमहन्यहनि देववत्।
तथा तयोर्विहरतोः सीताराघवयोश्चिरम्॥ ४५॥
तस्यां तु वाटिकायां तु सीताकुण्डं विराजते।
सीतया किल तत्कुण्डं स्वयमेव विनिर्मितम्॥ ४६॥
रामस्य वरदानेन महाफलनिधीकृतम्।

इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक महाराज श्रीराम देवकन्यासदृश सौन्दर्यशालिनी विदेहकन्या सीताका देवताओंकी भाँति नित्य-प्रति चित्तरंजन करते थे। वे दोनों सुदीर्घकालतक उस वाटिकामें आनन्दविहार करते रहे, तब एक दिन स्वयं सीताजीने [अपने ही हाथोंसे वहाँ लीलापूर्वक] एक कुण्ड बनाया। उस वाटिकामें वह सीताकुण्ड [आज भी] विद्यमान है और श्रीरामके वरदानके कारण वह मनोरथोंका परमाश्रय बना हुआ है [सीताके द्वारा निर्मित कुण्डको

देखकर श्रीराम सीताजीसे कहने लगे—] ॥ ४४—४६१/२ ॥

श्रीराम उवाच

शृणु सीते प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भुवि यादृशम्॥ ४७॥

श्रीरामने कहा—हे सीते! सुनो, पृथिवीतलपर सीताकुण्डकी जैसी महिमा होगी, उसे मैं कह रहा हूँ॥ ४७॥

तव कुण्डस्य सुभगे त्वत्प्रीत्या कथयाम्यहम्।
अत्र स्नानं च दानं च जपो होमस्तपस्तथा॥ ४८॥
सर्वमक्षयतां याति विधानेन शुचिस्मिते।
मार्गकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानं विशेषतः॥ ४९॥

हे सुन्दर रूपवाली! हे पवित्र हासवाली! तुम्हारे उत्कट प्रेमके कारण तुम्हारे इस कुण्डकी विशेषता मैं कह रहा हूँ। इस कुण्डमें किया हुआ स्नान, जप, होम, तप आदि पुण्य-कार्य—ये सभी विधानपूर्वक करनेसे अक्षय हो जायँगे। विशेषकर मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्दशीको यहाँके स्नानका महत्त्व होगा॥ ४८-४९॥

सर्वपापहरं देवि सर्वदा स्नायिनां नृणाम्।

हे देवि! यह तीर्थ नित्यप्रति स्नान करनेवाले मनुष्योंके सब पापोंको हरण करनेवाला है॥ ४९१/२ ॥

इति रामो वरान् दत्वा सीतायै तु प्रजाप्रियः॥ ५०॥

प्रजाके प्रिय श्रीरामने इस प्रकार श्रीसीताको सीताकुण्डके सम्बन्धमें वरदान दिया॥ ५०॥

तदाप्रभृति सर्वत्र तत्तीर्थं भुवि पप्रथे।
सीताकुण्डमिति ख्यातं तीर्थेषु परमाद्भुतम्॥ ५१॥

उसी समयसे सीताकुण्ड नामक वह तीर्थ भूतलपर सर्वत्र विख्यात हुआ। इसे सभी तीर्थोंमें सर्वाधिक अद्भुत माना गया है॥ ५१॥

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा रामचन्द्रमवाप्नुयात्।
तत्र स्नानेन दानेन तपसा च विशेषतः॥ ५२॥

धूपैर्दीपैः सनैवेद्यैर्नानाविभवविस्तरैः।
रामं ससीतं सम्पूज्य मुक्तः स्यान्नात्र संशयः॥ ५३॥

इस तीर्थमें मनुष्य स्नानकर श्रीरामको पा लेता है। इस तीर्थमें स्नान, दान, तप तथा अपने वैभवके अनुसार धूप, दीप नैवेद्य आदि उपचारोंसे श्रीसीतासहित श्रीरामका विशेष रूपसे पूजनकर मनुष्य भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ५२-५३॥

मार्गमासे नरः स्नात्वा गर्भवासाद् विमुच्यते।
अन्यदापि नरः स्नात्वा विष्णुलोकं स गच्छति॥ ५४॥

मार्गशीर्षमें सीताकुण्डमें स्नान करनेवाला गर्भवाससे छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य किसी भी समय स्नान करता है, वह भी विष्णुलोकगामी होता है॥ ५४॥

श्रीशङ्कर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यच्छुभावहम्।
सीताकुण्डात् पश्चिमे तु महाविद्याभिधं महत्।
वसिष्ठाद् रामचन्द्रस्य विद्याः प्राप्ताश्चतुर्दश॥ ५५॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—अब इसके पश्चात् कल्याणकारी, दूसरे तीर्थका वर्णन करता हूँ। सीताकुण्डसे पश्चिम दिशामें महाविद्या नामक महान् तीर्थ है, जहाँपर महर्षि वसिष्ठसे भगवान् श्रीरामने चतुर्दश विद्याओंको अधिगत किया था॥ ५५॥

तस्य दर्शनमात्रेण सिद्धयः स्युः करे स्थिताः।
तदग्रे सरसि स्नात्वा महाविद्यां तु यो नरः॥ ५६॥
पश्यति श्रद्धया युक्तः स याति परमां गतिम्।
सिद्धपीठमिति ख्यातं सर्वप्रत्ययकारकम्॥ ५७॥

उस तीर्थके दर्शनमात्रसे सिद्धियाँ करतलगत हो जाती हैं। महाविद्या देवीके सामने ही विद्याकुण्ड नामक तीर्थमें स्नानकर जो मनुष्य श्रद्धासे विद्यादेवीका दर्शन करता है, वह उत्तम गतिको

प्राप्त होता है। वहींपर सिद्धपीठ नामसे विख्यात स्थल भी विद्यमान है, जो सबको विश्वास दिलानेवाला तीर्थ है॥ ५६-५७॥

धूपं दीपं च नैवेद्यं मन्त्रेणानेन कारयेत्।
आदौ प्रणवमुच्चार्य नमः पश्चात्तु कीर्तयेत्॥ ५८॥
चतुर्थ्यन्ता महाविद्या ततः स्तोत्रमुदीरयेत्।
भक्त्या परमया देवि स्तुतिं कुर्यात् समाहितः॥ ५९॥

महाविद्या देवीका धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे तथा इस मन्त्रसे पूजन करना चाहिये। [महाविद्याका मन्त्रोद्धार करते समय] पहले ॐकार बोले, पीछे नमः यह पद बोले, पुनः चतुर्थी विभक्तियुक्त महाविद्या पद बोले। अर्थात् **ॐ नमो महाविद्यायै** यही महाविद्याका मन्त्र है। इससे पूजन करके [अग्रिम स्तोत्रसे] स्तुति करे। हे देवि! सावधान होकर उत्कट भक्तिके साथ स्तुतिपाठ करे॥ ५८-५९॥

ये त्वां देवि महेश्वरि
प्रतिदिनं ध्यायन्ति पूजापरा-
स्ते ते मत्तगजा
मदच्युतिहतद्वारान्तधूलीचयाः ।
ये त्वन्मन्त्रवरं जपन्ति-
विधिवत् ते देवि लोकेश्वराः
ये निष्कामतया भजन्ति भवतीं-
ते मुक्तिभाजोऽचिरात्॥ ६०॥

हे महेश्वरि! हे देवि! जो भक्त प्रतिदिन आपका ध्यान करते हैं तथा आपके पूजनमें संलग्न रहते हैं, वे मतवाले हाथियोंके अधिपति बन जाते हैं, उनके दरवाजेकी धूलियाँ हाथियोंके मदसे भीगी रहती हैं। जो विधिपूर्वक तुम्हारे इस मन्त्रराजका जप करते हैं, वे इस लोकमें नरेश हो जाते हैं और जो भक्त निष्कामभावसे आपका भजन करते हैं, वे शीघ्र ही मुक्तिके भाजन हो जाते हैं॥ ६०॥

मन्त्रं यः श्रद्धया देवि शैवं शाक्तमथापि वा।
गाणपत्यं वैष्णवं च तत्र यः प्रयतो नरः॥ ६१॥
एकाग्रमानसो भूत्वा ह्याराध्यैव तु तान् सुरान्।
तस्य सिद्धिर्भवेन्नूनं चमत्कारो भवेन्नरः॥ ६२॥

हे देवि पार्वती! जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर वहाँपर शिवमन्त्र, शक्तिमन्त्र, गणेशमन्त्र अथवा विष्णु आदि देवोंके मन्त्रोंका जप करता है और एकाग्रचित्त होकर उन-उन इष्ट देवताओंकी आराधना करता है; उसको निश्चित रूपसे सिद्धि प्राप्त होती है तथा वह मनुष्य विलक्षण चमत्कारवाला हो जाता है॥ ६१-६२॥

तस्मादत्र प्रकर्तव्यं जपादिकमतन्द्रितैः।
प्रतिमासस्य चाष्टम्यां यात्रा स्यात् प्रातिमासिकी॥ ६३॥

इसलिये आलस्यादि विकारोंको छोड़कर यहाँपर मनुष्योंको जप-तप, देवाराधना आदि करना चाहिये। प्रत्येक मासकी अष्टमीको यहाँकी मासिक यात्रा की जाती है॥ ६३॥

देयान्यन्नानि बहुशो नानाविधफलानि च।
क्षीरेण स्नपनं कार्यं पूजनीया प्रयत्नतः॥ ६४॥

[महाविद्यादेवीको उद्देश्य करके] यहाँ अनेक प्रकारके अन्नों-फलोंका दान करना चाहिये। [विद्यादेवीको] गोदुग्धसे स्नान कराये तथा प्रयत्नपूर्वक उनका पूजन करे॥ ६४॥

उच्चाटनं मोहनं च स्तम्भनं च विशेषतः।
अत्र प्रजप्तो यत्नेन मन्त्रः सर्वोऽपि सिद्ध्यति॥ ६५॥

इस पीठमें अभिचारपरक मन्त्र प्रयोग सिद्ध होते हैं। साथ ही सब प्रकारके मन्त्र प्रयत्नपूर्वक जप कर लेनेपर सिद्ध हो जाते हैं॥ ६५॥

सिद्धिपीठे परो मोक्षो वशीकरणमुत्तमम्।
जपो होमस्तथा दानं सर्वमक्षयतां व्रजेत्॥ ६६॥

इस सिद्धपीठमें उत्तम मोक्ष तथा उत्तम मनोनियमन सिद्ध होता है तथा यहाँपर किया हुआ जप, होम, दान आदि समस्त सत्कर्म अक्षय हो जाता है॥ ६६॥

आश्विने शुक्लपक्षस्य नवरात्रिषु यत्नतः।
तत्र गत्वा नरो देवि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ६७॥

आश्विनमासके शुक्लपक्षके नवरात्रमें प्रयत्न करके प्रतिदिन विद्यादेवीकी यात्रा अवश्य करनी चाहिये। हे देवि! यहाँकी यात्रा करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है॥ ६७॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके शिव-पार्वती-सम्वादके अन्तर्गत अयोध्याखण्डका बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

खर्जूकुण्ड, मणिपर्वत, गणेशकुण्ड, दशरथकुण्ड, कौसल्याकुण्ड, सुमित्राकुण्ड, भरतकुण्ड, दुर्भर-महाभर-कुण्ड, योगिनीकुण्ड तथा उर्वशीकुण्ड—इन तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य

श्रीशङ्कर उवाच

विद्याकुण्डाद् दक्षिणे तु खर्जूकुण्डं च विद्यते।
यत्र स्नात्वा नरो रोगात् कण्ड्वादिभ्यो विमुच्यते॥ १॥

श्रीशंकरजीने कहा—विद्याकुण्डसे दक्षिण दिशामें खर्जूकुण्ड नामक तीर्थ है, जहाँपर स्नान करनेसे मनुष्य खाज-दाद आदि चर्मरोगोंसे छूट जाता है॥ १॥

रविवारे तस्य यात्रा कर्तव्या सुविचक्षणैः।
विद्याकुण्डात् पश्चिमे च पर्वतो राजते प्रिये॥ २॥

हे प्रिये! बुद्धिमानोंको रविवारको उस कुण्डकी यात्रा करनी चाहिये। विद्याकुण्डसे पश्चिम दिशामें मणिपर्वत नामक तीर्थस्थल शोभायमान है॥ २॥

नानावृक्षलतागुल्मैः परितः परिवारितः।
तिलोदकी परिसरे यत्र वाति सदा नदी॥ ३॥
एकदा जानकी भद्रं रामं वचनमब्रवीत्।
प्रसन्नमानसं ज्ञात्वा क्रीडितुं कृतमानसा॥ ४॥

वह पर्वत अनेक प्रकारके वृक्षों, लताओं तथा वनस्पतियोंसे घिरा हुआ है, जिसके किनारेपर सदा तिलोदकी नदी बहा करती है। एक समय क्रीडाविहारके लिये उत्कण्ठित मनवाली श्रीजानकीने मंगलमय श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्नचित्त जानकर कहा—॥ ३-४॥

श्रीजानक्युवाच

राघवेन्द्र महाराज यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो।
क्रीडार्थं पर्वतं दिव्यं समानय रघूत्तम॥ ५॥

श्रीजानकीजीने कहा—हे रघुवंशभूषण! हे महाराज! हे प्रभो! यदि मुझपर आप प्रसन्न हैं, तो क्रीडा करनेके लिये दिव्य पर्वतका प्रबन्ध कीजिये॥ ५॥

सस्मार गरुडं रामः शीघ्रमागत्य पक्षिराट्।
उवाच वचनं श्रेष्ठं किं कार्यं तद् वद प्रभो॥ ६॥

श्रीरामभद्रने उसी समय पक्षियोंके राजा गरुड़का स्मरण किया। स्मरण करते ही गरुड़जीने आ करके नम्रतापूर्वक कहा—'हे प्रभो! किस कार्यके लिये मेरा स्मरण आपने किया है, आज्ञा दीजिये, मैं उसका सम्पादन करूँ'॥ ६॥

श्रीराम उवाच

वैनतेय त्वया गत्वा कौबेर्यां दिशि शीघ्रतः।
आनेतव्यः खगश्रेष्ठ मणिपर्वतकः शुभः॥ ७॥

श्रीरामने कहा—हे विनतापुत्र! हे खगश्रेष्ठ! आप कौबेरी अर्थात् उत्तर दिशामें जाकर शीघ्र ही मंगलमय मणियोंका पर्वत ले आइये॥ ७॥

वैनतेयस्ततो गत्वा पर्वतं मणिना युतम्।
आनीय रामचन्द्राय नमस्कृत्य पुरः स्थितः॥ ८॥

गरुड़जी श्रीरामकी आज्ञासे कौबेरी (उत्तर) दिशामें गये और मणियोंसे युक्त पर्वतको लेकर रघुनन्दनके समीप आये तथा उन्हें प्रणामकर सामने खड़े हो गये॥ ८॥

गरुड उवाच

आनीतः पर्वतो दिव्यः स्थापनार्थं स्थलं वद।
रामचन्द्र महाबाहो जानकीप्रीतिवर्धनम्॥ ९॥

गरुड़जीने कहा—हे महाबाहो श्रीरामचन्द्र! जानकीजीकी प्रीतिको बढ़ानेवाला दिव्य [मणिमय] पर्वत मैं ले आया हूँ, इसे रखनेके लिये स्थान बतलाइये॥ ९॥

श्रीराम उवाच

विद्याकुण्डात् पश्चिमे तु समीपे स्थाप्यतां गिरिः।
जानकीप्रीतिजननः पर्वतो मणिसंज्ञकः॥ १०॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा स्थापयामास पर्वतम्।
तार्क्ष्यो रामं नमस्कृत्य परिक्रम्य दिवं ययौ॥ ११॥

श्रीरामने कहा—हे गरुड़जी! विद्याकुण्डसे समीप ही पश्चिम दिशामें इस पर्वतको स्थापित कीजिये। यह मणि नामक पर्वत जानकीके प्रेमको बढ़ानेवाला है। श्रीरामभद्रके वचनको सुनकर गरुड़जीने निर्दिष्ट स्थानपर मणिपर्वतको स्थापित किया तथा श्रीरामभद्रको प्रणाम एवं परिक्रमा करके वे स्वर्ग चले गये॥ १०-११॥

राघवो जानकीं प्राह दृश्यतां मणिपर्वतः।
सखीभिः क्रीड्यतां सार्धं त्वया जनकनन्दिनि॥ १२॥

श्रीरघुनाथने श्रीजानकीजीसे कहा कि हे जनकनन्दिनी! यह मणियोंका पर्वत आ गया, इसे देखो तथा सखियोंके साथ इसपर क्रीडा करो॥ १२॥

जानकी पर्वतं दृष्ट्वा ततश्चालिभिरागता।
चकार क्रीडां सा नित्यं सखीभिर्जनकात्मजा॥ १३॥

तब पर्वतको देखकर जनकसुता देवी जानकी वहाँ आयीं और तबसे नित्यप्रति सखियोंके साथ वे वहाँ विहार करने लगीं॥ १३॥

मेरुमन्दरतुल्योऽपि राशिः पापस्य कर्मणः।
तत्क्षणान्नाशमायाति मणिपर्वतदर्शनात्॥ १४॥
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं समुपार्जितम्।
तत्सर्वं नाशमायाति मणिपर्वतदर्शनात्॥ १५॥

सुमेरु तथा मन्दराचलपर्वतके तुल्य पापकर्मोंकी राशि भी मणिपर्वतका दर्शन करनेसे तत्क्षण ही नष्ट हो जाती है। हजारों जन्मोंमें उपार्जित समस्त पाप मणिपर्वतके दर्शनमात्रसे नष्ट हो जाते हैं॥ १४-१५॥

पर्वताद् दक्षिणे भागे गाणेशं कुण्डमुत्तमम्।
तत्र स्नानेन दानेन वाञ्छितं फलमाप्नुयात्॥ १६॥

मणिपर्वतसे दक्षिण भागमें गणेशकुण्ड नामक उत्तम तीर्थ है। वहाँपर स्नान-दान करनेसे मनुष्य वांछित फलको प्राप्त करता है॥ १६॥

माघे मासि चतुर्थ्यां तु कृष्णपक्षे वरानने।
यात्रा साम्वत्सरी कार्या सर्वपापप्रणाशिनी॥ १७॥

हे वरानने! माघमासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको यहाँकी वार्षिकी यात्रा की जानी चाहिये, वह सभी पापोंको दूर करनेवाली है॥ १७॥

गणेशं पूजयेत् तत्र व्रती तु सुविचक्षणः।
धूपं दीपं च नैवेद्यं मन्त्रेणानेन कारयेत्॥ १८॥

अनुष्ठानी विद्वान् व्रती इस कुण्डपर गणेशजीका पूजन करे और धूप, नैवेद्य, दीप आदि उपचारोंको अग्रिम मन्त्रसे समर्पित करे॥ १८॥

ओं नमः श्रीगणेशाय पूजा कार्या यतात्मना।
स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या तस्य प्रीतये॥ १९॥

इन्द्रियोंको वशमें करके '**ॐ नमः श्रीगणेशाय**' इस मन्त्रसे पूजन करे तथा गणेशजीकी प्रसन्नताके लिये प्रसन्न चित्तसे निम्नोक्त स्तुति करे॥ १९॥

सिन्दूरपूरारुणवारणास्यो दास्योद्यतानां सकलार्थदाता।
विद्याब्धिमज्जज्जनतावलम्बो लम्बोदरो मे हृदये सदाऽस्तु॥ २०॥

सिन्दूरसे परिपूर्ण लालवर्ण, हाथीके सदृश मुखवाले, अपने भक्तोंके समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले तथा विद्या-वारिधिमें डूबनेवाले [ज्ञानाभिलाषी] जनोंको अवलम्ब देनेवाले लम्बोदरदेव मेरे हृदयमें सदा निवास करें॥ २०॥

नीलांजनाभं गजतुण्डवक्त्रं शत्रुं गृहीत्वा निजपुष्करेण।
उच्छालयन्तं गगने गणेशं ध्यायेच्च नित्यं विधिवन्मनुष्यः॥ २१॥

नील अंजनके तुल्य, हाथीके समान मुख एवं शुण्डवाले तथा भक्तोंके शत्रुओंको अपनी सूँड़से आकाशमें फेंकते हुए श्रीगणेशजीका नित्यप्रति ध्यान मनुष्योंको विधिवत् करना चाहिये॥ २१॥

गणेशात् पश्चिमे भागे राज्ञो दशरथस्य हि।
कुण्डं मनोहरं रम्यं मणिसोपाननिर्मितम्॥ २२॥
तस्मात् पश्चिमदिग्भागे कौसल्याकुण्डमुत्तमम्।
तत्र स्नानेन दानेन सर्वसौख्यं प्रजायते॥ २३॥

गणेशकुण्डसे पश्चिम भागमें मणियोंकी सीढ़ियोंवाला मनोहर एवं रमणीक दशरथकुण्ड है। उससे पश्चिम दिशामें उत्तम

कौसल्याकुण्ड है। इन दोनों कुण्डोंमें स्नान-दानादि करनेसे सब प्रकारके सुख मिलते हैं॥ २२-२३॥

भाद्रे मासि पूर्णिमायां द्वयोर्यात्रा शुभावहा।
सुमित्रायास्तथा कुण्डं पश्चिमे शुभदायकम्॥ २४॥

भाद्रपदमासकी पूर्णमासीको दोनों कुण्डोंकी यात्रा कल्याणकारी है। कौसल्याकुण्डसे पश्चिम भागमें श्रीसुमित्राजीका शुभदायक कुण्ड है॥ २४॥

भरतेन कृतं कुण्डं दक्षिणे पापनाशनम्।
यात्रा कुण्डद्वये कार्या भाद्रदर्शे शुभावहा॥ २५॥

भरतजीने भी पापका नाश करनेवाले कुण्डको अपने नामसे दक्षिण भागमें स्थापित किया। सुमित्राकुण्ड तथा भरतकुण्डकी यात्रा भाद्रपदकी अमावस्याको करनी चाहिये, वह कल्याणप्रदायिनी है॥ २५॥

तस्मान्नैर्ऋत्यदिग्भागे दुर्भराख्यं सरः शुभम्।
महाभरे परे तीर्थे तथा दुर्भरसंज्ञके॥ २६॥
भाद्रे कृष्णचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छ्रद्धयान्वितः।
शिवपूजां विष्णुपूजां द्विजपूजां विशेषतः॥ २७॥
यः करोति नरो भक्त्या वाञ्छितार्थमिहाप्नुयात्।
विष्णुरुद्रौ च तस्यास्तां सुप्रसन्नौ सनातनौ॥ २८॥

सुमित्राकुण्ड तथा भरतकुण्डसे नैर्ऋत्यकोणमें शुभप्रद दुर्भरसरोवर है और उसीके पासमें महाभर नामक सरोवर भी है। जो मनुष्य श्रद्धासे भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशीको यहाँ स्नान, दान, शिवपूजा, विष्णुपूजा तथा विशेषरूपसे विप्रपूजा करता है; भक्ति-भावसे पूजा करनेवाला वह मनुष्य इसी शरीरमें अभीष्ट फलको प्राप्त करता है तथा सनातन विष्णुभगवान् एवं भगवान् शंकर उस भक्तपर अति प्रसन्न हो जाते हैं॥ २६—२८॥

तयोः स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।
महाभरो दुर्भरश्च भ्रातरौ द्वौ समागतौ॥ २९॥

उन दोनों (विष्णु एवं शिव)-के स्मरणमात्रसे मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है। महाभर तथा दुर्भर—ये दोनों भाई थे। एकबार वे साथ-साथ ही उस स्थलपर आये॥ २९॥

सदा कमलपुष्पाणां भारेण कृतजीविकौ।
पुष्पभारसमायुक्तावागतौ तत्र शोभने॥ ३०॥
यत्र विष्णुशिवौ स्यातां मन्त्रयन्तौ भुवःस्थले।
तत्रैव स्थापितौ भारौ कमलानां शुभानने॥ ३१॥

वे दोनों सदा कमलके फूलोंके भारसे अर्थात् उनका विक्रय करके अपनी जीविका चलाते थे। हे शोभने! जिस स्थलपर श्रीविष्णु और शिवजी परस्पर मन्त्रणा कर रहे थे, वहींपर एक बार सिरपर कमल-पुष्पभार लादे हुए वे दोनों आ गये। हे शुभानने! उसी स्थलपर उन दोनोंने अपने कमल-पुष्पोंके भारको रख दिया॥ ३०-३१॥

तेन तुष्टौ तु तौ देवावूचतुः प्रीतमानसौ।
नाम्ना तु युवयोरत्र तीर्थे पुण्ये भविष्यतः॥ ३२॥

उस कमलपुष्पभारको वहाँ रखनेसे उन दोनोंके ऊपर वे विष्णु और शंकर प्रसन्न हो उठे और उनसे बोले कि तुम दोनोंके नामसे यहाँपर दुर्भरसर तथा महाभरसर नामवाले दो पावन तीर्थ प्रसिद्ध होंगे॥ ३२॥

नरो वा यदि वा नारी स्नानमत्र करिष्यतः।
वाञ्छितार्थसमायुक्तौ द्वावप्यत्र भविष्यतः॥ ३३॥

इन दोनों तीर्थोंमें जो नर-नारी स्नान-दानादि करेंगे, वे सभी यहाँके पुण्यप्रभावसे समस्त मनोभिलाषाओंको प्राप्त करेंगे॥ ३३॥

महाभरात्तु वायव्ये योगिनीकुण्डमुत्तमम्।
यत्रासते चतुष्षष्टिर्योगिन्यो जलसंस्थिताः॥ ३४॥
सर्वार्थसिद्धिदं नृणां स्त्रीणां चैव विशेषतः।
संस्नातव्यं प्रयत्नेन योगिनीप्रीतये नृभिः॥ ३५॥

महाभरसरसे वायुकोणमें उत्तम योगिनीकुण्ड है, जहाँपर चौंसठ योगिनियाँ जलमें निवास करती हैं। यह तीर्थ पुरुषोंको सर्वविध मनोरथोंकी सिद्धि देनेवाला है तथा यह स्थान स्त्रियोंको विशेष रूपसे सिद्धि देनेवाला है। योगिनियोंकी प्रसन्नताके लिये यत्नपूर्वक मनुष्योंको इस कुण्डमें सविधि स्नान करना चाहिये॥ ३४-३५॥

अत्र स्नानं तथा दानं सर्वं सफलतां व्रजेत्।
यक्षिणी प्रथमं सिद्धा भवत्यत्र न संशयः॥ ३६॥

इस योगिनीकुण्डमें स्नान-दानादि सत्कर्म सफलताको प्राप्त होते हैं। यहाँपर विशेष रूपसे यक्षिणी सिद्धि होती है, इसमें संशय नहीं है॥ ३६॥

योगिनीकुण्डतः पूर्वमुर्वशीकुण्डमुत्तमम्।
यत्र स्नात्वा चोर्वशी तु देवलोकं समागता॥ ३७॥

योगिनीकुण्डसे पूर्व दिशामें उत्तम उर्वशीकुण्ड है, जिस कुण्डमें उर्वशी अप्सराने स्नान करके देवलोकको यथोचित रूपसे [पुनः] प्राप्त कर लिया था॥ ३७॥

पुरा किल मुनिर्धीरो रैभ्यो नाम तपोधनः।
चचार हिमवत्पार्श्वे निराहारो जितेन्द्रियः॥ ३८॥

पूर्वकालमें धीर, तपस्वी रैभ्यमुनि इन्द्रियोंको जीतकर और आहार छोड़कर हिमालयके समीप [-वर्तीवन]-में तप करने लगे॥ ३८॥

तत्तपो विपुलं दृष्ट्वा भीतः सुरपतिस्तदा।
उर्वशीं प्रेषयामास तपोविघ्नाय चादरात्॥ ३९॥

उस समय मुनिके उत्कृष्ट तपको देखकर भयभीत हुए इन्द्रदेवने तपमें विघ्न करनेके लिये उर्वशी अप्सराका सत्कारकर उसे उनके पास भेजा॥ ३९॥

ततः सा प्रेषितेन्द्रेण जगाम गजगामिनी।
उवास हिमवत्पार्श्वे रैभ्याश्रमविलक्षणे॥ ४०॥

इन्द्रदेवके द्वारा भेजी गयी वह गजगामिनी उर्वशी हिमालयपर स्थित रैभ्यमुनिके सर्वश्रेष्ठ आश्रममें रहने लगी॥ ४०॥

वने फुल्ललताकुंजे मत्तकूजद्विहङ्गमे।
किन्नरीकेलिसमितस्मितपाण्डुकुरङ्गके॥ ४१॥

उस वनमें लताओंके कुंज फूले हुए थे, मतवाले पक्षीगण मधुर-मधुर बोल रहे थे, किन्नर-किन्नरियोंकी भाँति पाण्डुर कान्तिवाले हिरण क्रीड़ा कर रहे थे॥ ४१॥

पुन्नागकेशराशोकक्लिन्नकिंजल्कपिंजरे।
कल्पिते काञ्चनगिरौ द्वितीय इव वेधसा॥ ४२॥

पुन्नाग, केसर, अशोक आदि वृक्षोंसे झरते परागसे धूसरित होनेसे पीत आभावाला वह पर्वत ऐसा जान पड़ता था, मानो विधाताने एक और ही सुमेरुपर्वत बना दिया हो॥ ४२॥

सा बभौ कान्तिसर्वस्वकोशः कुसुमधन्वनः।
उर्वश्यप्सरसां श्रेष्ठा लावण्यामृतवाहिनी॥ ४३॥

सौन्दर्यकी सुधाधारा बहानेवाली वह श्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी कामदेवकी सुन्दरताका सर्वस्वकोश अर्थात् खजाना थी॥ ४३॥

अङ्गप्रभासुवर्णेन सितमौक्तिकशोभिता।
तारुण्यरुचिरत्वेन तारुण्येन विभूषिता॥ ४४॥

उसके अंगोंकी कान्ति सुवर्णतुल्य थी, श्वेत रंगके मोतियोंका हार उसने पहन रखा था और उसका श्रृंगार मानो यौवनोचित सौन्दर्यके द्वारा स्वयं युवावस्थाने ही किया हो—ऐसा जान पड़ता था॥ ४४॥

विलोललोचनापाङ्गतरङ्गधवलोज्ज्वलाम्।
कल्पयन्तीमेव मुहुः कर्णोत्पलदलावलीम्॥ ४५॥

वह अपने चंचल नेत्रोंसे कटाक्षपात करती हुई उस नदीके समान प्रतीत हो रही थी, जिसकी उछलती हुई धवल तरंगें शुभ्रताका प्रसार कर रही हों। उसने अपने कर्ण-युगलमें उत्पलदलावलीको धारण किया था॥ ४५॥

कान्तस्तनस्तबकिनीमरुणाधरपल्लवाम्।
सुधागर्भसमुद्भूतां पारिजातलतां यथा॥ ४६॥

सुन्दर पुष्पगुच्छके सदृश वक्षःस्थल एवं लाल रंगके नवीन पल्लवोंके तुल्य अधरोंवाली वह उर्वशी अमृतसे उत्पन्न पारिजात लताके तुल्य प्रतीत होती थी॥ ४६॥

तनुमध्यां पृथुश्रोणीं पीनोन्नतपयोधराम्।
निःशेषितशरस्येव शक्तिं कुसुमधन्वनः॥ ४७॥

क्षीण कटिदेश एवं गुरुतापूर्ण श्रोणिदेशवाली तथा सुपुष्ट और उन्नत वक्षःस्थलसे युक्त वह उर्वशी शरविहीन कामदेवकी अमोघ शक्तिके समान प्रतीत होती थी॥ ४७॥

अपश्यदाश्रमे तस्मिन् मुनिरायतलोचनाम्।
नयनानलदग्धेन विरोधेन मनोभुवा॥ ४८॥
त्रिनेत्रवंचनायैव कल्पितो ललितां तनुम्।
तामाश्रमलतापुष्पकांचीरचितकुन्तलाम्॥ ४९॥
विलोक्य तां विशालाक्षीं मुनिर्व्याकुलितेन्द्रियः।
बभूव रोषसन्तप्तः शशाप च बहुच्छलात्॥ ५०॥

भगवान् रुद्रकी नेत्राग्निसे दग्ध होनेपर उनको ठगनेके लिये मानो साक्षात् कामदेवने ही द्वेषवश स्त्रीका रूप धारण किया हो—ऐसे लोकोत्तर सौन्दर्यवाली उस दीर्घलोचना अप्सराको महर्षि रैभ्यने आश्रमपरिसरमें देखा। आश्रमके पुष्पों और लताओंसे निर्मित करधनी, जूड़ा आदि अलंकारोंको धारण की हुई उस

विशालाक्षी अप्सराको देखकर महर्षि रैभ्य विह्वल हो उठे और उसके इस उत्कट कपटव्यापारसे कोपाकुल होकर उन्होंने उसे शाप दे दिया— ॥ ४८—५० ॥

रैभ्य उवाच

कुरूपतां याहि क्षिप्रं या त्वं सौन्दर्यगर्विता।
समागता तपोविघ्नहेतवे मम सन्निधौ॥ ५१ ॥

रैभ्यमुनिने कहा—जो तुम अपनी सुन्दरताके गर्वसे तपमें विघ्न करनेहेतु मेरे पास आयी हो, अतः शीघ्र ही कुरूप हो जाओ॥ ५१ ॥

श्रीशङ्कर उवाच

इति शप्ता रुषा तेन मुनिना सा शुभेक्षणा।
उवाच प्रांजलिर्भूत्वा विनता मुनिमादरात्॥ ५२ ॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—जब क्रोधातुर उन रैभ्यमुनिने उस सुलोचना उर्वशीको इस प्रकार शाप दे दिया तो उर्वशीने हाथ जोड़कर विनम्र हो बड़े आदरके साथ मुनिसे कहा— ॥ ५२ ॥

उर्वश्युवाच

भगवन् मे प्रसीद त्वं पराधीना यतस्त्वहम्।
मच्छापस्य कथं मुक्तिर्भवित्री नियतव्रत॥ ५३ ॥

उर्वशीने कहा—हे भगवन्! मेरे ऊपर आप प्रसन्न हो जायँ; क्योंकि मैं पराधीन हूँ। हे दृढ़व्रत मुनिवर! इस शापसे मेरी मुक्ति कैसे होगी?॥ ५३ ॥

रैभ्य उवाच

अयोध्यायामस्ति तीर्थं तद्धाम परमं महत्।
तत्र स्नानं कुरुष्वाद्य सौन्दर्यं परमाप्नुहि॥ ५४॥
त्वन्नाम्नैव च विख्यातिं तत्तोयं यास्यति ध्रुवम्।

रैभ्यमुनिने कहा—अयोध्यापुरीमें एक विशाल और पूजनीय

तीर्थ है। आज ही उस तीर्थमें तुम स्नान करो, उससे तुम्हें परम सुन्दरता प्राप्त हो जायगी तथा तुम्हारे ही नामसे उस उर्वशीकुण्ड नामक तीर्थका जल भूतलपर प्रसिद्ध होगा, यह निश्चित जानो॥ ५४१/२ ॥

श्रीशङ्कर उवाच

एवं सा विप्रवचनाद् विदधे सर्वमादरात्॥ ५५॥

श्रीशंकरजीने कहा—तब उस उर्वशीने ब्राह्मणके कथनानुसार बड़े आदरसे सब कुछ सम्पन्न किया॥ ५५॥

सुन्दरी साभवत् क्षिप्रं तत्स्थानं ख्यातिमाययौ।
अत्र स्नानं तु यः कुर्याद् भो देवि विधिवन्नरः॥ ५६॥
सौन्दर्यं परमं तस्य भवेत्तत्र न संशयः।
भाद्रशुक्लतृतीयायां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्॥ ५७॥
विष्णुस्तत्र जनैः पूज्यः सर्वकामार्थसिद्धये।
एवं कुर्वन् नरो नारी विष्णुलोके वसेत् सदा॥ ५८॥

हे देवि! वह उर्वशी उसी समय सुरूपताको प्राप्त हो गयी और वह तीर्थ उर्वशीकुण्डके नामसे प्रसिद्ध हो गया। जो मनुष्य विधिपूर्वक उसमें स्नान करता है, वह परम सौन्दर्यको प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। भाद्रपद शुक्ल तृतीयाको यहाँकी वार्षिकी यात्रा होती है। समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये विष्णुका पूजन यहाँ अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेवाले नर-नारी सदा विष्णुलोकमें निवास करते हैं॥ ५६—५८॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके शिव-पार्वती-सम्वादके अन्तर्गत अयोध्याखण्डका तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

बृहस्पतिकुण्ड, रुक्मिणीकुण्ड, क्षीरोदकतीर्थ तथा धनयक्षकुण्डका इतिहास एवं माहात्म्य

श्रीशङ्कर उवाच

पूर्वस्मिन्नुर्वशीकुण्डात् तीर्थं चातिमनोहरम्।
ख्यातं बृहस्पतेः कुण्डं पङ्कजैरुपशोभितम्॥ १॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—उर्वशीकुण्डसे पूर्व दिशामें कमलोंसे सुशोभित अतिमनोहर बृहस्पतिकुण्ड नामसे प्रसिद्ध तीर्थ है॥ १॥

सर्वपापप्रशमनं पुण्यामृततरङ्गकम्।
यत्र साक्षात् सुरगुरुर्निवासं किल निर्ममे॥ २॥

जो सब पापोंको दूर करनेवाला है, जिसमें पुण्यामृतमय तरंगें उठा करती हैं और जहाँपर साक्षाद् देवगुरु बृहस्पतिने अपना निवास बनाया था॥ २॥

यज्ञं च विधिवच्चक्रे बृहस्पतिरुदारधीः।
नानामुनिगणैर्जुष्टं रम्यं बहुफलप्रदम्॥ ३॥

जहाँ उत्कृष्ट बुद्धिवाले बृहस्पतिजीने विधिपूर्वक यज्ञ किया, जहाँपर बहुत-से मुनिगण निवास करते हैं और जो तीर्थ अतिरम्य तथा प्रचुर फल देनेवाला है॥ ३॥

इन्द्रादयोऽपि विबुधा यत्र स्नाताः प्रयत्नतः।
मनोऽभीष्टफलप्राप्तिसौन्दर्योदयतुन्दिलाः॥ ४॥

इन्द्र आदि देवताओंने भी जहाँ विधिपूर्वक बड़े यत्नसे स्नान किया था। इस तीर्थमें स्नान करनेसे व्यक्ति इच्छित फलकी प्राप्ति करते हैं और वे सौन्दर्यसे युक्त तथा अतिशय हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं॥ ४॥

यत्र स्नानेन दानेन नरो मुच्येत किल्बिषात्।
भाद्रे शुक्ले च पंचम्यां यात्रा यत्र फलप्रदा॥ ५॥

देवगुरुके इस तीर्थमें मनुष्य स्नान-दान करके पापोंसे छूट जाता है। भाद्रपद शुक्ल पंचमीको यहाँकी यात्रा विशेष फल देनेवाली है॥ ५॥

अन्यदापि गुरोर्वारे स्नानं बहुफलप्रदम्।
बृहस्पतेस्ततो विष्णोः पूजां तत्र समाचरेत्॥ ६ ॥

इसके अतिरिक्त कभी भी बृहस्पतिके दिन यहाँका स्नान बहुत फल देनेवाला है। यहाँपर स्नान करके बृहस्पतिजीकी तथा विष्णुभगवान्‌की पूजा अवश्य करे॥ ६॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके वसेत्सदा।
भवेद् बृहस्पतेः पीडा यस्य गोचरवेधतः॥ ७ ॥
तेनात्र विधिवत् स्नानं गुरुवारे सनामकम्।
कर्तव्यं सुप्रयत्नेन तस्य पीडा न संचरेत्॥ ८ ॥

ऐसा करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे छूटकर सदा विष्णुलोकमें निवास करता है। जिसके गोचरमें बृहस्पति अनिष्ट स्थानपर हों, वह मनुष्य सप्रयत्न गुरुवारके दिन अपने नामसे संकल्प करके विधिपूर्वक स्नान करे तो उसे बृहस्पतिजन्य पीड़ा नहीं होगी॥ ७-८॥

तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं विधिपुरस्सरम्।
होमं बृहस्पतेः मूर्तिं सुवर्णेन विनिर्मिताम्॥ ९ ॥
स्नात्वा दत्वा प्रयत्नेन पीताम्बरयुतां जले।
वेदज्ञायातिशुचये स्नात्वा पीडापनुत्तये॥ १०॥

इसलिये यहाँ विधिपूर्वक [पहले] स्नान करना चाहिये, तदुपरान्त होम करके बृहस्पतिकी स्वर्णनिर्मित प्रतिमाका [पूजनादि करके] उसे पीतवस्त्रोंसे आच्छादितकर अतिपवित्र वेदज्ञ ब्राह्मणको प्रदान करे। तदनन्तर बृहस्पतिजन्य पीडाकी निवृत्तिहेतु पुनः तीर्थजलसे स्नान करे॥ ९-१०॥

होमं च कारयेत् तत्र ग्रहजाप्यं विधानतः।
एवं कृते न सन्देहो ग्रहपीडा विनश्यति॥ ११॥

तत्पश्चात् विधानपूर्वक बृहस्पति-मन्त्रका जप तथा होमादि करवाये। ऐसा करनेपर निस्सन्देह बृहस्पतिजनित पीड़ाका शमन हो जाता है॥ ११॥

तद्दक्षिणे च भो देवि रुक्मिणीकुण्डमुत्तमम्।

हे देवि! बृहस्पतिकुण्डसे दक्षिण भागमें रुक्मिणीकुण्ड नामक उत्तम तीर्थ है॥ ११$^{१}/_{२}$॥

श्रीपार्वत्युवाच

कथं वै रुक्मिणी देवी श्रीकृष्णस्य प्रिया सती॥ १२॥
द्वारकानिलया सा तु चकार कुण्डमुत्तमम्।

श्रीपार्वतीजीने पूछा—जो रुक्मिणीदेवी श्रीकृष्णचन्द्रकी पतिव्रता प्रिया हैं और द्वारकामें निवास करती हैं, उन्होंने कैसे अयोध्यापुरीमें आकर अपने नामसे कुण्डकी स्थापना की?॥ १२$^{१}/_{२}$॥

श्रीशङ्कर उवाच

एकदा यादवेन्द्रस्तु ह्ययोध्यामाजगाम ह॥ १३॥

श्रीशंकरजी बोले—एक बार यदुवंशविभूषण श्रीकृष्णचन्द्र अयोध्यापुरीमें आये॥ १३॥

रुक्मिणीसहितो देवः श्रीसत्यादिभिरन्वितः।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन स्नात्वा श्रीसरयूजले॥ १४॥
मासमात्रं स्थितिं चक्रे स्वावतारमनुस्मरन्।
चकार यत्स्वयं देवी रुक्मिणी कुण्डमुत्तमम्॥ १५॥

वे सत्या, सत्यभामा, रुक्मिणी आदि पटरानियोंके सहित तीर्थयात्राके प्रसंगसे अयोध्यापुरीमें आये और सरयूजलमें स्नान किया। 'यह मेरे पूर्वावतार अर्थात् रामावतारकी भूमि है'—ऐसा स्मरणकर उन्होंने एक मासतक यहाँ [प्रीतिवश] निवास किया। उसी समय रुक्मिणीदेवीने यहाँपर अपने नामका एक कुण्ड

स्थापित किया था॥ १४-१५॥

तत्र विष्णुः स्वयं चक्रे निवासं सलिले सदा।
वरप्रदानात् स्नेहेन भार्यायाः प्रगुणीकृतम्॥ १६॥

श्रीकृष्ण उस कुण्डमें स्वयं ही विष्णुरूपसे नित्य निवास करने लगे और धर्मपत्नी रुक्मिणीके स्नेहके कारण वर प्रदानकर उस कुण्डकी महिमाको उन्होंने विशेष रूपसे बढ़ा दिया॥ १६॥

तत्र स्नानं तथा दानं होमं वैष्णवमन्त्रकम्।
द्विजपूजां विष्णुपूजां कुर्वीत प्रयतो नरः॥ १७॥

इसलिये जितेन्द्रिय होकर मनुष्य यहाँपर स्नान, दान, होम, वैष्णव मन्त्रोंका जप, विप्रपूजा तथा विष्णुपूजा अवश्य करे॥ १७॥

तत्र साम्वत्सरी यात्रा कर्तव्या सुप्रयत्नतः।
ऊर्जे कृष्णनवम्यां तु सर्वपापापनुत्तये॥ १८॥

सभी पापोंको दूर करनेके लिये विधिपूर्वक कार्तिक कृष्ण नवमीको इस रुक्मिणीकुण्डकी वार्षिकी यात्रा अवश्य करे॥ १८॥

पुत्रवान् जायते वन्ध्यो लक्ष्मीवान् नात्र संशयः।
नारीभिर्वा नरैर्वापि कर्तव्यं स्नानमादरात्॥ १९॥

ऐसा करके पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवाला हो जाता है और [निर्धन व्यक्ति] लक्ष्मीवाला हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। स्त्री हो या पुरुष हो; उसे इस कुण्डमें श्रद्धापूर्वक स्नान-पूजन अवश्य करना चाहिये॥ १९॥

भुक्त्वा भोगान् समग्रांश्च विष्णुलोके स मोदते।
लक्ष्मीकामनया तत्र स्नातव्यं च विशेषतः॥ २०॥
सर्वान् कामानवाप्नोति तत्र स्नानेन मानवः।
रुक्मिणीश्रीपतिप्रीत्यै दातव्यं च विशेषतः॥ २१॥

वह समस्त सांसारिक सुखोंको भोगकर विष्णुलोकमें आनन्द

लाभ करता है। विशेषकर लक्ष्मीकी कामनावाला मनुष्य यहाँ रुक्मिणीकुण्डमें अवश्य स्नान करे। इस कुण्डमें स्नान करनेसे मनुष्य सभी कामनाओंको पूर्ण कर लेता है। श्रीरुक्मिणीजी तथा श्रीपति विष्णुभगवान्‌की प्रसन्नताके लिये विशेष रूपसे यहाँ दान करना चाहिये॥ २०-२१ ॥

ध्येयो लक्ष्मीपतिस्तत्र शंखचक्रगदाधरः।
पीताम्बरधरः शार्ङ्गी नारदादिभिरीडितः॥ २२॥
तार्क्ष्यासनो मुकुटवान् हेमाङ्गदविभूषितः।
सर्वकामफलप्राप्तौ वक्षोल्लसितकौस्तुभः॥ २३॥
अतसीकुसुमश्यामः कमलायतलोचनः।
एवं कृते न सन्देहः सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ २४॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा हरिलोके च मोदते।

उस तीर्थमें सभी मनोरथोंकी सिद्धिके लिये लक्ष्मीपति श्रीहरिका [निम्नोक्त रूपमें] ध्यान करना चाहिये। पीताम्बर-विभूषित उन श्रीहरिने अपने हाथोंमें शंख, चक्र, गदा एवं शार्ङ्ग नामक धनुषको धारण कर रखा है। नारद आदि मुनिगण उनका स्तवन कर रहे हैं। उनकी भुजाओंमें सोनेके बाजूबन्द एवं मस्तकपर मुकुट है। वे गरुड़पर आरूढ़ हैं। उनकी देहकान्ति अलसीके फूलकी भाँति श्याम है और आँखें कमलके समान खिली हुई तथा विशाल हैं। उनका वक्षःस्थल कौस्तुभमणिसे उद्भासित है। इस प्रकारसे विष्णुरूपका अनुध्यान करनेपर मनुष्य निस्सन्देह सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुलोकमें आनन्दलाभ करता है॥ २२—२४½ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदघापहम्॥ २५॥

उत्तरे रुक्मिणीकुण्डात् क्षीरोदकमिति स्मृतम्।
क्षीरोदकमिति स्थानं सर्वदुःखौघनाशनम्॥ २६॥

अब इसके पश्चात् मैं पापोंको दूर करनेवाले एक अन्य तीर्थका वर्णन कर रहा हूँ। रुक्मिणीकुण्डसे उत्तर दिशामें क्षीरोदक नामक तीर्थ है। वह क्षीरोदकतीर्थ सम्पूर्ण दुःखसमूहका नाश करनेवाला है॥ २५-२६॥

पुरा दशरथो राजा पुत्रेष्टिं नाम नामतः।
चकार विधिवद् यज्ञं पुत्रार्थं यत्र चासकृत्॥ २७॥

यहाँपर त्रेतायुगमें महाराज दशरथने पुत्रप्राप्तिके लिये अनेक बार विधिपूर्वक पुत्रेष्टि नामक यज्ञको किया था॥ २७॥

क्रतुं समापयामास सानन्दो भूरिदक्षिणम्।
यज्ञान्ते क्रतुभुक् तत्र मूर्तिमान् समदृश्यत॥ २८॥

उन्होंने बड़े आनन्दसे प्रचुर दक्षिणा देकर पुत्रेष्टियज्ञको समाप्त किया। यज्ञके अन्तमें यज्ञभोक्ता अग्निदेवने मूर्तिमान् होकर महाराजको दर्शन दिया॥ २८॥

हस्ते हि हेमपात्रं च हविःपूर्णमनुत्तमम्।
तस्मिन् हविषि सङ्क्रान्तं वैष्णवं तेज उत्तमम्॥ २९॥

वे अग्निदेव अत्युत्तम हविष्यसे पूर्ण सुवर्णपात्रको हाथमें लिये हुए थे। इस हविष्यमें उत्तम वैष्णव तेज ओत-प्रोत था॥ २९॥

चतुर्विधं विभज्यैव पत्नीभ्योऽदात् स पार्थिवः।
यत्र तत्क्षीरसम्प्राप्तिर्जाता परमदुर्लभा॥ ३०॥
क्षीरोदकमिति ख्यातं तत्तीर्थं भुवि पप्रथे।
उदकेनाभिषिक्तं च सर्वोत्तमफलप्रदम्॥ ३१॥

महाराज दशरथने उस [अग्निप्रदत्त हविष्य]-को चार भाग करके यथाविधि अपनी तीनों रानियोंको दे दिया। जहाँपर उस

परम दुर्लभ खीरकी प्राप्ति हुई थी, वहीं क्षीरोदक नामक तीर्थ प्रकट हुआ और महीतलपर प्रसिद्ध हुआ। यहाँके जलसे अभिषेक (स्नान) करना सर्वोत्तम फलको देनेवाला है॥ ३०-३१॥

तत्र स्नात्वा नरो धीमान् विजितेन्द्रिय आत्मवान्।
सर्वान् कामानवाप्नोति पुत्रांश्च बहुविश्रुतान्॥ ३२॥

जितेन्द्रिय बुद्धिमान् मनुष्य इस तीर्थमें श्रद्धापूर्वक स्नान करके सभी कामनाओं एवं कीर्तिशाली पुत्रोंको प्राप्त करता है॥ ३२॥

आश्विने शुक्लपक्षस्य चैकादश्यां सुलोचने।
तत्र स्नात्वा विधानेन दत्वा शक्त्या द्विजन्मने॥ ३३॥
विष्णुं सम्पूज्य विधिवत् सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
पुत्रानवाप्नुयाद् विद्यां धर्मांश्च विविधान् नरः॥ ३४॥

हे सुलोचने! आश्विन शुक्ल एकादशीको विधानपूर्वक इस तीर्थमें स्नानकर ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दान दे और श्रीविष्णु-भगवान्का विधिवत् पूजन करे। ऐसा करनेसे मनुष्य पुत्रोंको, विद्याको, सभी मनोरथोंको तथा अनेक प्रकारके धर्मोंको प्राप्त करता है॥ ३३-३४॥

क्षीरोदकात् पश्चिमे तु नाम्ना क्षीरेश्वरः स्मृतः।
राज्ञा दशरथेनैव स्थापितोऽहं पुरा प्रिये॥ ३५॥

उस क्षीरोदकसे पश्चिम दिशामें क्षीरेश्वर नामक तीर्थ है, हे प्रिये! प्राचीन समयमें महाराज दशरथने [वहाँ क्षीरेश्वर नामसे] मेरी स्थापना की थी॥ ३५॥

पूजा तस्य प्रकर्तव्या धूपदीपपुरःसरा।
स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या तु मनीषिणा॥ ३६॥

विद्वान् मनुष्य [वहाँ स्थित] क्षीरेश्वरलिंगका धूप-दीपादि उपचारोंके द्वारा सविधि पूजन करके प्रसन्न चित्तसे [इस प्रकार]

स्तुति करे॥ ३६॥

कैलासो निलयः सखा धनपतिर्मौलौ सुधादीधिति-
र्मूर्ध्नि स्वर्गतरङ्गिणी विहरणं कल्पद्रुमाणां वनम्।
तद् विश्वेश्वर नः क्षमस्व सगण त्वाहूय पीठे स्थितं
द्वित्रैर्बिल्वदलैर्जलाक्षतफलैर्यद् वञ्चयामो वयम्॥ ३७॥
एवं सम्पूज्य विधिवत् सर्वान् कामानवाप्नुयात्।

जिनका निवासस्थान कैलास है, जिनके मित्र साक्षात् धनाधीश कुबेर हैं, अमृतांशु चन्द्रमा ही जिनका शिरोभूषण है, जिनके मस्तकपर देवनदी गंगा विराजमान हैं और जो कल्पवृक्षोंके वनमें क्रीडाविहार करते हैं, हे विश्वेश्वर! ऐसे [महामहिमामय] आपको पार्षदोंसहित बुलाकर और पूजापीठपर बिठाकर [पूजाके बहाने] जो दो-तीन बिल्वदल, जल-अक्षत और [धतूर आदि अभक्ष्य] फल अर्पितकर हमलोग आपको ठग रहे हैं, उस अपराधको आप क्षमा कीजियेगा। भक्त इस प्रकार श्रीक्षीरेश्वरका पूजन [तथा स्तवन] करके सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ३७ $^1/_2$॥

तस्मात् क्षीरेश्वरस्थानान्नैर्ऋत्ये तीर्थमुत्तमम्॥ ३८॥
कलिकिल्बिषसंहारकारकं प्रत्ययात्मकम्।
परं पवित्रमतुलं सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥ ३९॥
धनयक्ष इति ख्यातं परं प्रत्ययकारणम्।
हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेरासीत् तत्र धनं महत्॥ ४०॥
तस्य रक्षार्थमत्यर्थं स्थापितो यक्ष उच्चकैः।

उस क्षीरेश्वरतीर्थसे नैर्ऋत्यकोणमें एक अन्य उत्तम तीर्थ है। वह कलियुगके पापोंका संहार करनेवाला, विश्वास दिलानेवाला, उत्कृष्ट, अनुपम, अतिपवित्र, समस्त कामनाओंकी सिद्धि देनेवाला

और उत्कृष्ट चमत्कार दिखानेवाला धनयक्ष नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। राजर्षि हरिश्चन्द्रका वहाँपर विशाल कोष [रखा गया] था। उस कोषकी सावधानीसे रक्षा करनेके लिये विश्वामित्रजीने यत्नपूर्वक एक यक्षको नियुक्त किया था॥ ३८—४०१/२॥

विश्वामित्रो मुनिवरो याजयामास तं नृपम्॥ ४१॥
हरिश्चन्द्रं नरपतिं राजसूयकरं परम्।
राज्यं जग्राह सकलं चतुरङ्गबलान्वितम्॥ ४२॥

मुनिवर विश्वामित्रजीने उन महाराज हरिश्चन्द्रके यज्ञमें आचार्यकर्म किया और नरपति हरिश्चन्द्रके राजसूय-यज्ञको सम्पन्न कराकर उन्होंने उसकी दक्षिणामें महाराजकी चतुरंगिणी सेनाके सहित सम्पूर्ण राज्य ले लिया था॥ ४१-४२॥

धनं संस्थापयामास भुवि तत्र न संशयः।
तद्रक्षायै प्रयत्नेन यक्षं स्थापितवानसौ॥ ४३॥

उन्होंने महाराजके समस्त धनको उसी भूमिमें स्थापित कर दिया, इसमें सन्देह नहीं है। उसी धनकी रक्षाके लिये विश्वामित्रजीने यक्षको भी प्रयत्नपूर्वक नियुक्त किया था॥ ४३॥

प्रमन्थर इति ख्यातं प्रमोदानन्दमन्दिरम्।
रक्षां विदधतस्तस्य बहुयत्नेन सर्वशः॥ ४४॥

प्रसन्नता और आनन्दसे परिपूर्ण मनवाले उस यक्षका नाम प्रमन्थर था। उस यक्षने बड़े यत्नोंसे तथा हर प्रकारसे विश्वामित्रजीके धनकी रक्षा की॥ ४४॥

तुतोष स मुनिर्धीमान् कदाचिद् विजितेन्द्रियः।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रीत्या परमया युतः॥ ४५॥

धनकी रक्षा करनेवाले उस यक्षके ऊपर जितेन्द्रिय, बुद्धिमान् विश्वामित्रजी किसी समय अतिप्रसन्न हुए और अतीव प्रीतिपूर्वक मधुर वाणीमें उससे बोले—॥ ४५॥

विश्वामित्र उवाच

वरं वरय धर्मात्मन् यस्ते मनसि वर्तते।
भक्त्या परमया वीर तुभ्यं दास्यामि ते प्रियम्॥ ४६॥

विश्वामित्रजीने कहा—हे धर्मात्मन्! हे वीर! जो तुम्हारे मनमें हो, वह वर मुझसे माँग लो। तुम्हारी परम भक्तिके कारण तुम्हारा प्रिय वर मैं तुम्हें अवश्य दूँगा॥ ४६॥

यक्ष उवाच

प्रयच्छसि वरं मह्यं प्रयच्छ मनसेप्सितम्।
ममाङ्गमतिदुर्गन्धं शापाद् धनपतेरभूत्॥ ४७॥
सुगन्धचौर्याद् ब्रह्मर्षे प्रसीद परमेश्वर।

यक्षने कहा—हे ब्रह्मर्षे! हे परमेश्वर! यदि आप मुझे वर दे रहे हैं, तो मुझे मनचाहा वर दीजिये। कुबेरके शापसे मेरा शरीर अतिशय दुर्गन्धमय हो गया है। अतः आप मुझपर प्रसन्न होइये। सुगन्धित वस्तुकी चोरी करनेसे मेरी ऐसी गति हुई है॥ ४७$^{१}/_{२}$॥

श्रीशङ्कर उवाच

एवमुक्ते तु यक्षेण मुनिर्ध्यानस्थलोचनः॥ ४८॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—यक्षके ऐसा कहनेपर विश्वामित्रजी नेत्र मूँदकर ध्यानमें स्थित हो गये॥ ४८॥

तं विचिन्त्यानया भक्त्या त्वभिषेकं चकार सः।
तीर्थोदकेन विधिना विश्वामित्रो महातपाः॥ ४९॥

महातपस्वी विश्वामित्रजीने उस [-के पाप और पापके प्रायश्चित्त]-पर विचार करके यक्षकी वैसी उत्कृष्ट भक्तिसे प्रसन्न होकर उसी तीर्थके जलसे विधिपूर्वक यक्षका अभिषेक कर दिया॥ ४९॥

ततः सोऽभूत् क्षणेनैव सुगन्धतरविग्रहः।
तथाभूतः स मधुरं प्रोवाच प्रांजलिर्वचः॥ ५०॥

अभिषेकके बाद उसी क्षण वह यक्ष अतिसुगन्धित शरीरवाला हो गया। तत्पश्चात् वह अंजलि बाँधकर मधुर वाणीमें महर्षिसे बोला॥ ५०॥

मुनेः पुरः स्थितो धीमान् विनयावनतः सदा।
नाथास्म्यहं त्वत्कृपया जातः सुरभिविग्रहः॥ ५१॥

मुनिके सामने विनयसे सिर झुकाये खड़े होकर उस बुद्धिमान् यक्षने कहा—हे नाथ! आपकी कृपासे मैं सदाके लिये सुगन्धित शरीरवाला हो गया॥ ५१॥

एतत् स्थानं यथा ख्यातिं याति सर्वज्ञ तत्कुरु।
त्वत्प्रसादेन विप्रेन्द्र तथा यत्नं विधेहि मे॥ ५२॥

हे सर्वज्ञ! आपके प्रसादसे यह स्थान जैसे प्रसिद्ध हो जाय, वैसा कीजिये। हे ब्रह्मर्षे! मेरे निवेदनसे इस प्रकारका यत्न कीजिये॥ ५२॥

श्रीशङ्कर उवाच

एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा ध्यानस्तिमितलोचनः।
यक्षं प्रति प्रसन्नात्मा ह्युवाच श्लक्ष्णया गिरा॥ ५३॥

श्रीशंकरजी बोले—यक्षके ऐसा कहनेपर मुनि नेत्रोंको बन्द करके ध्यानमें मग्न हो गये और थोड़ी देरतक ध्यान करनेके बाद उन्होंने प्रसन्न चित्तसे स्नेहमयी वाणीमें यक्षसे कहा—॥ ५३॥

विश्वामित्र उवाच

प्रसिद्धिमतुलां यक्ष तव स्थानं गमिष्यति।
धनयक्ष इति ख्यातं नाम्ना तीर्थं भविष्यति॥ ५४॥

विश्वामित्रजीने कहा—हे यक्ष! यह तुम्हारा स्थान अनुपम

प्रसिद्धिको प्राप्त होगा। धनयक्षकुण्डके नामसे इस तीर्थकी विख्याति होगी॥ ५४॥

सौन्दर्यदं शरीरस्य परं प्रत्ययकारकम्।
यत्र स्नात्वा विधानेन दौर्गन्ध्यं त्यजति क्षणात्॥ ५५॥

जिसमें विधानपूर्वक स्नान करनेसे उसी समय शरीरकी दुर्गन्ध छूट जाती है, ऐसा यह तीर्थ शरीरकी सुन्दरताको देनेवाला और [इस तीर्थके प्रति] अटल विश्वास करानेवाला होगा॥ ५५॥

दानं श्रद्धास्वशक्तिभ्यां लक्ष्मीपूजा विशेषतः।
तत्र स्नानेन दानेन लक्ष्मीप्राप्तिर्भवेन्नृणाम्॥ ५६॥

इस तीर्थमें अपनी शक्ति तथा श्रद्धाके अनुसार दान करना चाहिये। यहाँ लक्ष्मीकी पूजा विशेष रूपसे करनी चाहिये। यहाँपर स्नान-दान करनेसे मनुष्योंको लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है॥ ५६॥

पूजां कुर्यान्निधीनां च नवानामपि सुव्रतः।
इह लोके सुखं भुक्त्वा परलोके स मोदते॥ ५७॥

सुन्दर व्रतको धारणकर इस तीर्थमें नौ निधियोंका भी पूजन करना चाहिये। नौ निधियोंके पूजनसे मनुष्य यावज्जीवन सुख भोगकर अन्तमें परलोकमें आनन्द-लाभ करता है॥ ५७॥

महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव॥ ५८॥

नव निधियोंके नाम इस प्रकार हैं—१. महापद्म, २. पद्म, ३. शंख, ४. मकर, ५. कच्छप, ६. मुकुन्द, ७. कुन्द, ८. नील, ९. खर्व॥ ५८॥

एतेषामपि कुण्डेऽत्र सन्निधिर्वर्ततेऽनघ।
एतेषां तु विशेषेण पूजा बहुफलप्रदा॥ ५९॥

हे पापरहित यक्ष! इन नौ निधियोंका इस तीर्थमें नित्य निवास रहता है, अतः इनकी विशेष रूपसे की गयी पूजा प्रचुर फल देनेवाली है॥ ५९॥

जलमध्ये प्रकर्तव्यं निधिलक्ष्मीप्रपूजनम्।
अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधानि च॥ ६०॥

इसी तीर्थजलमें नौ निधियों एवं लक्ष्मीजीका [अथवा निधिलक्ष्मी नामक देवशक्तिका] पूजन करे तथा अनेक प्रकारके अन्नका और वस्त्रोंका दान यहाँ करे॥ ६०॥

सुवर्णादि यथाशक्त्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।
गुप्तदानं प्रयत्नेन कर्तव्यं च विधानतः॥ ६१॥

सुवर्ण आदिका दान कंजूसी छोड़कर करे तथा विधानके अनुसार बड़े यत्नसे यहाँ गुप्तदान अवश्य करे॥ ६१॥

फलान्यत्र सुवर्णानि देयानि च विशेषतः।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं बहुफलप्रदम्॥ ६२॥
श्रद्धया परया युक्तैः कर्तव्यं श्रद्धयाधिकम्।
माघे कृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्॥ ६३॥

यहाँपर सुन्दर-सुन्दर फलोंका दान विशेष रूपसे करे। प्रत्येक मासकी कृष्ण चर्तुदशीको यहाँका स्नान प्रचुर फल देनेवाला है, अतः उत्तम भावनासे युक्त होकर श्रद्धापूर्वक प्रचुर मात्रामें स्नानादि सत्कर्म यहाँपर करे। माघ कृष्ण चतुर्दशीको यहाँकी वार्षिकी यात्रा होती है॥ ६२-६३॥

तत्र स्नानं पितॄणां तु तर्पणं च विशेषतः।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् तृप्यतु मे जलैः॥ ६४॥

इस तिथिमें यहाँपर स्नान तथा विशेष रूपसे पितरोंका तर्पण करे। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त समस्त जगत् मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हो, ऐसा तर्पणवाक्य उस समय कहे॥ ६४॥

अपसव्येन विधिना तर्पयेदंजलित्रयम्।
एवं कुर्वन्नरो यक्ष न मुह्यति कदाचन॥ ६५॥

दाहिने कन्धेपर जनेऊ करके अपसव्य होकर तीन अंजलि जल प्रदान करे। ऐसा करनेसे हे यक्ष! मनुष्य मोहसागरमें कभी भी निमग्न नहीं होता है॥ ६५॥

अत्र स्नातो दिवं याति ह्यत्र स्नातः सुखी भवेत्।
अत्र स्नानेन ते यक्ष कर्तव्यं पूजनं त्विह॥ ६६॥

यहाँ स्नान करनेवाला स्वर्गको जाता है। यहाँपर स्नान करनेवाला सर्वदा सुखी रहता है। हे यक्ष! यहाँ स्नान करनेके साथ ही मनुष्य इस तीर्थमें तुम्हारा पूजन अवश्य करे॥ ६६॥

त्वत्पूजनेन विधिना नृणां पापक्षयो भवेत्।
नमः प्रमन्थरायेति पूजामन्त्रोऽप्युदाहृतः॥ ६७॥

तुम्हारे सविधि पूजनसे मनुष्योंके पापोंका क्षय हो जायगा। '**ॐ नमः प्रमन्थराय**' यही तुम्हारे पूजनका मन्त्र [मेरेद्वारा] बतलाया गया है॥ ६७॥

तीर्थमध्ये प्रकर्तव्यं पूजनं श्रद्धयान्वितैः।
निधिलक्ष्म्योस्तथा यक्ष तव पूजा विशेषतः॥ ६८॥

इस तीर्थके मध्यमें श्रद्धायुक्त होकर मनुष्यको नौ निधियोंका, श्रीलक्ष्मीजीका तथा हे यक्ष! तुम्हारा भी पूजन विशेष रूपसे करना चाहिये॥ ६८॥

एवं यः कुरुते धीरः सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
धर्मार्थी धर्ममाप्नोति पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात्॥ ६९॥
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति सर्वकाम इहाप्यते।
यस्तु मोहान्नरो यक्ष स्नानं न कुरुते किल॥ ७०॥
तस्य साम्वत्सरं पुण्यं त्वं ग्रहीष्यसि सर्वशः।

जो धीर पुरुष ऐसा करता है, वह सब कामनाओंको प्राप्त करता है। धर्मको चाहनेवाला धर्मको, पुत्रका इच्छुक पुत्रको तथा मोक्षकामी मोक्षको पा जाता है। यहाँतक कि ऐसा करनेवाला सभी कामनाओंको इस तीर्थमें पा लेता है। जो मनुष्य मोहवश इस तीर्थमें स्नान-दानादि नहीं करता, हे यक्ष! उस मनुष्यके वर्षभरके संचित पुण्यको तुम प्राप्त कर सकोगे॥ ६९—७०१/२ ॥

श्रीशङ्कर उवाच

इति दत्वा वरांस्तस्मै विश्वामित्रो मुनीश्वरः॥ ७१ ॥
अन्तर्दधे मुनिवरस्तदैव तपसो निधिः।
तदाप्रभृति तत्स्थानं परमां ख्यातिमाययौ॥ ७२ ॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—इस प्रकार उस यक्षको अनेक वर प्रदान करके तपोनिधि मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी अन्तर्धान हो गये। उसी समयसे वह धनयक्षतीर्थ परमप्रसिद्धिको प्राप्त हुआ॥ ७१-७२ ॥

तस्य तीर्थस्य सकला भूमिः स्वर्णविनिर्मिता।
दिव्यरत्नौघरचिता समन्तादुपशोभिता॥ ७३ ॥

उस तीर्थकी सम्पूर्ण भूमि सुवर्णमयी है तथा मध्यमें दिव्य रत्न-समूहोंसे जटित अन्तःस्थल सब ओरसे अतिमनोहर प्रतीत होता है॥ ७३ ॥

एवं यः कुरुते विद्वान् स याति परमां गतिम्।
तस्मात् पश्चिमदिग्भागे नाम्ना विष्णुहरिः स्मृतः॥ ७४ ॥
देवो दृष्टप्रभावोऽसौ प्राधान्येन वसत्यपि।

जो विद्वान् इस प्रकार [धनयक्षतीर्थका सेवन] करता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है। इस तीर्थसे पश्चिम भागमें विष्णुहरि नामक तीर्थ है। वहाँपर प्रकट प्रभाववाले वे देवदेव

भगवान् विष्णु 'विष्णुहरि' नामसे मुख्य रूपसे निवास भी करते हैं॥ ७४१/२ ॥

श्रीपार्वत्युवाच

भगवन् किंप्रभावोऽसौ योऽयं विष्णुहरिः स्मृतः॥ ७५ ॥
कीर्तितो देवशार्दूल प्रसिद्धिं गतवान् कथम्।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण ममाग्रतः॥ ७६ ॥

श्रीपार्वतीजीने पूछा—हे भगवन्! हे देवेश्वर! आपने जो इन विष्णुहरिजीका वर्णन किया है, उनकी क्या महिमा है? और उनकी प्रसिद्धि कैसे हुई? मेरे सामने विस्तारपूर्वक इन सभी बातोंका वर्णन कीजिये॥ ७५-७६ ॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसंवादे अयोध्याखण्डे चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके पार्वती-शंकर-सम्वादके अन्तर्गत अयोध्याखण्डका चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

विष्णुहरितीर्थ, वसिष्ठकुण्ड एवं वामदेवतीर्थका इतिहास-माहात्म्यादि

श्रीशङ्कर उवाच

विष्णुशर्मेति विख्यातः पुराऽभूद् ब्राह्मणोत्तमः।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धर्मकर्मसमन्वितः॥ १॥

श्रीशंकरजी बोले—प्राचीनकालमें वेद-वेदांगोंके तत्त्ववेत्ता धर्मकर्मनिष्ठ और विष्णुशर्मा नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे॥ १॥

योगध्यानरतो नित्यं विष्णुभक्तिपरायणः।
स कदाचित् तीर्थयात्रां कुर्वन् वैष्णवसत्तमः॥ २॥
अयोध्यामागतो विप्रो विष्णुं द्रष्टुमनाः स्वयम्।
तपसा तोषितो विष्णुः साक्षाद् दृश्यो भवेदिति॥ ३॥
चिन्तयन् मनसा धीरस्तपः कर्तुं समुद्यतः।
स वै तत्र तपस्तेपे शाकमूलफलाशनः॥ ४॥

वे सर्वदा योगाभ्यासमें निरत तथा विष्णुभक्तिमें लीन रहते थे। वे वैष्णवश्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णुभगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शनहेतु तीर्थयात्रा करते हुए किसी समय अयोध्यापुरीमें आये। 'तपसे प्रसन्न होकर विष्णुभगवान् प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं'—ऐसा मनमें सोचकर वे धीर ब्राह्मण तप करनेको उद्यत हो गये और फल तथा कन्द-शाक आदिका भोजन करते हुए उसी स्थलपर वे तप करने लगे॥ २—४॥

ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो नयन् कालं महामनाः।
वार्षिके च निरालम्बो हेमन्ते च सरोवरे॥ ५॥

गर्मीमें वे महामना पंचाग्निके मध्यमें रहकर, वर्षा-ऋतुमें छायारहित स्थानमें बैठकर और हेमन्त-ऋतुमें तालाबके जलमें प्रविष्ट होकर समय बिताते थे॥ ५॥

स्नात्वा यथोक्तविधिना कृत्वा विष्णोस्तथार्चनम्।
हृदि कृतेन्द्रियग्रामो विशुद्धेनान्तरात्मना॥ ६॥
मनो विष्णौ समावेश्य विधाय प्राणसंयमम्।
ओंकारोच्चारणाद् धीमान् हृदि पद्मं विकाशयन्॥ ७॥
तन्मध्ये रविसोमाग्निमण्डलानि यथाक्रमम्।
कल्पयित्वा हरेः पीठं तस्मिन् देशे सनातनम्॥ ८॥
पीताम्बरधरं विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम्।
तं च पुष्पैः समभ्यर्च्य मनस्तस्मिन् निवेश्य च॥ ९॥

वे विधिपूर्वक स्नानकर तथा मनसे अपनी इन्द्रियोंको संयमित करके विशुद्ध अन्तःकरणसे विष्णुभगवान्‌का पूजन करते रहे। उन्होंने मनको विष्णुस्वरूपमें लगाकर तथा प्राणवायुको रोककर ऊँकारका जप करते हुए हृदयदेशमें एक उज्ज्वल कमलकी अवधारणा की और उसके ऊपर क्रमसे सूर्य, चन्द्र तथा अग्निके मण्डलोंको कल्पित करके उसमें भगवान् श्रीहरिके सनातन योगपीठकी भावना की। उस योगपीठमें पीताम्बरधारी शंख-चक्र-गदाधर विष्णुका ध्यान करके, उनकी भावनात्मक पुष्पोंसे पूजा करते हुए विष्णुशर्माने उन श्रीहरिमें अपने मनको लगा दिया॥ ६—९॥

ब्रह्मरूपं हरिं ध्यात्वा जपन् वै द्वादशाक्षरम्।
वायुभक्षः स्थितस्तत्र विप्रस्त्रीनयुतान् समाः॥ १०॥

वहाँपर ब्रह्मरूपमें विष्णुका ध्यान एवं द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते हुए वे ब्राह्मणदेव तीस हजार वर्षपर्यन्त वायु पीकर तपमें स्थित रहे॥ १०॥

ततो द्विजवरो ध्यात्वा स्तुतिं चक्रे हरेरिमाम्।
प्रणिपत्य जगन्नाथं चराचरगुरुं हरिम्॥ ११॥
विष्णुशर्माथ तुष्टाव नारायणमतन्द्रितः।

तदुपरान्त वे श्रेष्ठ ब्राह्मणदेव जगत्पति, चराचरगुरु भगवान् श्रीहरिका ध्यान एवं वन्दन करके उनका स्तवन करने लगे। विष्णुशर्माने निरालस्य भावसे नारायणका इस प्रकार स्तवन आरम्भ किया॥ ११$^{1}/_{2}$॥

विष्णुशर्मोवाच

प्रसीद भगवन् विष्णो प्रसीद पुरुषोत्तम॥ १२॥
प्रसीद देवदेवेश प्रसीद कमलेक्षण।
जय कृष्ण जयाचिन्त्य जय विष्णो जयाव्यय॥ १३॥

विष्णुशर्मा बोले—हे सर्वव्यापक विष्णो! आप मुझपर प्रसन्न हों। हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ! आप प्रसन्न हों। हे देवोंके स्वामी, हे देव! आप प्रसन्न हों। हे कमलनेत्र! आप प्रसन्न हों। हे कृष्ण! आपकी जय हो, हे अचिन्त्य! आपकी जय हो। हे विष्णो! हे अविनाशी! आपकी जय हो, जय हो॥ १२-१३॥

जय यज्ञपते नाथ जय विश्वपते विभो।
जय पापहरानन्त जय जन्मदुरापहन्॥ १४॥

हे यज्ञपते! हे नाथ! हे विश्वपते! हे व्यापक! हे पापहारी! हे अनन्त! हे जन्म-मृत्युरूप दुःखोंसे बचानेवाले! आपकी जय हो, जय हो, जय हो!॥ १४॥

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने।
नमः सर्वेश भूतेश नमः कैटभमर्दिने॥ १५॥

जिनकी नाभिमें कमल है, जो कमलमाला धारण करते हैं, उनके लिये नमस्कार है, नमस्कार है। हे सबके स्वामी! हे जीवमात्रके स्वामी! आपको नमस्कार है। कैटभासुरके संहारकको नमस्कार है॥ १५॥

नमस्त्रैलोक्यनाथाय चतुर्मूर्ते जगत्पते।
नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय च॥ १६॥

हे चारों वेदोंकी मूर्ति [अथवा वैष्णव चतुर्व्यूहरूप]! हे जगत्‌के स्वामी! तीनों लोकोंके नाथ आपके लिये नमस्कार है। देवोंके अधिष्ठाता आप नारायणके लिये नमस्कार है, नमस्कार है॥ १६॥

नमः कृष्णाय रामाय नमश्चक्रायुधाय च।
त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता॥ १७॥

श्रीकृष्णके लिये, श्रीरामके लिये, चक्रधारीके लिये नमस्कार है। आप ही समस्त जीवोंकी माता हैं, सम्पूर्ण जगत्‌के पिता भी आप ही हैं॥ १७॥

भयार्तानां सुहृन्मित्रं प्रियस्त्वञ्च पितामहः।
त्वं हविस्त्वं वषट्कारस्त्वं प्रभुस्त्वं हुताशनः॥ १८॥

आप ही भयपीड़ित जीवोंके सुहृत् मित्र हैं, आप ही प्रिय हैं, आप ही पितामह हैं। आप ही हविष् हैं और आप ही वषट्कार हैं, आप ही प्रभु हैं, आप ही अग्नि भी हैं॥ १८॥

करणं कारणं कर्ता त्वमेव परमेश्वरः।
शङ्खचक्रगदापाणे मां समुद्धर माधव॥ १९॥

आप ही करण हैं, आप ही कारण हैं, आप ही कर्ता तथा सबके स्वामी हैं। हे शंखचक्रगदाधर! हे माधव! मेरा भलीभाँति उद्धार कीजिये॥ १९॥

प्रसीद मन्दरधर प्रसीद मधुसूदन।
प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद भुवनाधिप॥ २०॥

हे मन्दराचलधारी! हे मधुसूदन! हे लक्ष्मीपते! हे समस्त भुवनाधिप! मुझपर प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये॥ २०॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्येवं स्तुवतस्तस्य मुनेर्भक्त्या महात्मनः।
आविर्बभूव विश्वात्मा विष्णुर्गरुडवाहनः॥ २१॥
शंखचक्रगदापाणिः पीताम्बरधरोऽच्युतः।
उवाच स प्रसन्नात्मा विष्णुशर्माणमव्ययः॥ २२॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—इस प्रकार भक्तिसे स्तुति करते हुए उन महात्मा मुनिके सामने विश्वात्मा गरुड़वाहन विष्णुभगवान् प्रकट हो गये॥ २१॥

हाथोंमें शंख, चक्र, तथा गदा लिये हुए, पीताम्बरधारी, अविनाशी, वे अच्युत भगवान् प्रसन्न होकर विष्णुशर्मासे बोले॥ २२॥

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽस्मि भवतो वत्स महता तपसाधुना।
स्तोत्रेणानेन सुमते नष्टपापोऽसि साम्प्रतम्॥ २३॥
वरं वरय विप्रेन्द्र वरदोऽहं तवाग्रतः।
नातप्ततपसा द्रष्टुं शक्यः केनाप्यहं द्विज॥ २४॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे वत्स! इस समय मैं तुम्हारे कठोर तपसे अति प्रसन्न हूँ। हे सुमते! इस स्तोत्रके कारण अब तुम पापरहित हो गये॥ २३॥

हे द्विजश्रेष्ठ! वर माँग लो। वर देनेवाला मैं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ। हे विप्र! बिना तपश्चर्याके मुझे इस प्रकार कोई भी नहीं देख सकता॥ २४॥

विष्णुशर्मोवाच

भगवन् कृतकृत्योऽस्मि साम्प्रतं तव दर्शनात्।
स्वभक्तिमचलामेकां मह्यं देहि जगत्पते॥ २५॥

विष्णुशर्माने कहा—हे भगवन्! अब आपके दर्शनसे मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। हे जगन्नाथ! आप केवल अपनी अचल भक्ति ही मुझे प्रदान कीजिये॥ २५॥

श्रीभगवानुवाच

भक्तिरस्त्वचला मे ते वैष्णवी मुक्तिदायिनी।
इदं स्थानं महाभाग त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति॥ २६॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे द्विज! तुम्हें मुक्ति देनेवाली अचला वैष्णवी भक्ति प्राप्त होगी तथा हे महाभाग! यह स्थान तुम्हारे नामसे भूमितलपर प्रसिद्धिको प्राप्त होगा॥ २६॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशश्चक्रेणोत्खाय भूतलम्।
जलं प्रकटयामास गाङ्गं पातालतः क्षणात्॥ २७॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—देवोंके देव श्रीविष्णुभगवान्‌ने उनसे ऐसा कहकर अपने चक्रसे भूतलका खनन किया और क्षणभरमें पातालसे गंगाजलको प्रकट कर दिया॥ २७॥

जलेन तेन भगवान् पवित्रेण दयानिधिः।
विरजस्कं गतमलं क्षणाच्चक्रे कृपावशात्॥ २८॥

दयानिधान भगवान्‌ने करुणावश उसी क्षण उस पवित्र जलके द्वारा विष्णुशर्माको [अभिषिक्त करके उन्हें] रजोगुण एवं समस्त विकारोंसे रहित कर दिया॥ २८॥

चक्रतीर्थमिति ख्यातं ततः प्रभृति पार्वति।
जातं त्रैलोक्यविख्यातमघौघध्वंसकृच्छुभम्॥ २९॥
तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोकं व्रजेन्नरः।

हे पार्वती! तभीसे पापपुंजका ध्वंस करनेवाला वह मंगलमय तीर्थ 'चक्रतीर्थ' इस नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो गया। वहाँपर स्नान-दान करनेसे मनुष्य विष्णुलोकको गमन करता है॥ २९१/२॥

ततस्तु भगवान् भूयो विष्णुशर्माणमच्युतः॥ ३०॥
कृपया परया युक्त उवाच द्विजवत्सलः।

इसके पश्चात् द्विजवत्सल अच्युतभगवान् पुनः उत्कट कृपासे युक्त होकर विष्णुशर्मासे बोले—॥ ३०१/२॥

श्रीभगवानुवाच

त्वन्नामपूर्विका विप्र मूर्तिरिह तु तिष्ठतु॥ ३१॥
विष्णुहरिरिति ख्याता भक्तानां मुक्तिदायिनी।

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे विप्र! पूर्वमें तुम्हारे एवं बादमें मेरे नामसे संयुक्त संज्ञावाली 'विष्णुहरि' इस नामसे विख्यात और भक्तोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली मेरी मूर्ति यहाँ विराजमान रहे॥ ३१ १/२ ॥

श्रीशङ्कर उवाच

इति श्रुत्वा वचो विप्रो वासुदेवस्य बुद्धिमान्॥ ३२॥
स्वनामपूर्विकां मूर्तिं स्थापयामास चक्रिणः।
ततः प्रभृति भो देवि शङ्खचक्रगदाधरः॥ ३३॥
पीतवासाश्चतुर्बाहुर्नाम्ना विष्णुहरिः स्मृतः।
कार्तिके शुक्लपक्षस्य प्रारभ्य दशमीतिथिम्॥ ३४॥
पूर्णिमामवधिं कृत्वा यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३५॥
बहुवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।

श्रीशंकरजी कहते हैं—भगवान् वासुदेवके ऐसे वचनको सुनकर बुद्धिमान् विप्र विष्णुशर्माने चक्रधर भगवान् श्रीहरिकी अपने नामसे संयुक्त नामवाली मूर्ति स्थापित कर दी, तभीसे वे शंख, चक्र, गदा [एवं पद्म] धारण करनेवाले पीतवासा चतुर्भुज भगवान् श्रीहरि 'विष्णुहरि' नामसे प्रसिद्ध हुए। कार्तिक शुक्ल दशमी तिथिसे ले करके पूर्णमासीतक यहाँकी वार्षिकी यात्रा होती है। चक्रतीर्थमें मनुष्य स्नान करके सब पापोंसे छूट जाता है और अनेक सहस्र वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है॥ ३२—३५ १/२ ॥

पितॄनुद्दिश्य यस्तत्र पिण्डान्निर्वापयिष्यति॥ ३६॥
तृप्तास्तत्पितरो यान्ति विष्णुलोकं न संशयः।
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा विष्णुहरिं विभुम्॥ ३७॥

सर्वपापक्षयं प्राप्य नाकपृष्ठे स मोदते।
स्वशक्त्या तत्र दानानि दत्वा निष्कल्मषो भवेत्॥ ३८॥

पितरोंके उद्देश्यसे यहाँ जो मनुष्य पिण्डदान करता है, उसके पितर तृप्त होकर विष्णुलोकमें गमन करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। चक्रतीर्थमें स्नानकर सर्वव्यापक विष्णुहरिका दर्शन करके मनुष्य अपने सभी पापोंका नाशकर स्वर्गलोकमें आनन्दलाभ करता है। मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार वहाँ दान करके पापरहित हो जाता है॥ ३६—३८॥

विष्णुलोके वसेद्धीमान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
अन्यदापि नरः स्नात्वा तत्र तीर्थे जितेन्द्रियः॥ ३९॥
दृष्ट्वा विष्णुहरिं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं मया प्रोक्तं तव प्रिये॥ ४०॥

चौदह इन्द्रोंके स्थितिकालतक [चक्रतीर्थस्नायी] बुद्धिमान् मनुष्य विष्णुलोकमें निवास करता है। कार्तिकसे अतिरिक्त किसी भी समय इन्द्रियोंको वशमें करके वहाँ स्नानकर विष्णुहरिका दर्शन करनेपर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। हे प्रिये! इस प्रकार चक्रतीर्थकी महिमा तुमसे मैंने कही है॥ ३९-४०॥

ईशाने चक्रतीर्थात्तु तीर्थं चान्यन्मनोहरम्।
वसिष्ठकुण्डमाख्यातं सर्वपापहरं सदा॥ ४१॥

चक्रतीर्थसे ईशानकोणमें एक दूसरा मनोहर तीर्थ है, जो कि सर्वदा सब पापोंको हरनेवाला और 'वसिष्ठकुण्ड' इस नामसे विख्यात है॥ ४१॥

वसिष्ठस्य सदा तत्र निवासस्तु तपोनिधेः।
अरुन्धती सदा तस्य वर्तते निर्मलप्रभा॥ ४२॥

तपोनिधि वसिष्ठजीका वहाँ सदा निवास रहता है। उनके साथ वहींपर निर्मल प्रभावाली उनकी अर्धांगिनी अरुन्धतीजी भी सदा निवास करती हैं॥ ४२॥

अत्र स्नानं विशेषेण श्रद्धापूर्वमतन्द्रितः।
यः कुर्यात् प्रयतो धीमान् तस्य पुण्यमनुत्तमम्॥ ४३॥

जो आलस्य छोड़कर श्रद्धापूर्वक विशेष रूपसे यहाँ स्नान करता है, वह बुद्धिमान् जितेन्द्रिय मनुष्य अनुपम पुण्यका भागी होता है॥ ४३॥

वामदेवस्य तत्रैव सन्निधिर्वर्ततेऽनघे।
वसिष्ठवामदेवौ च पूजनीयौ प्रयत्नतः॥ ४४॥

हे अनघे! इन वसिष्ठजीके पासमें ही वामदेवजीका भी स्थान है। यहाँ इन दोनों महर्षियों वसिष्ठ तथा वामदेवका पूजन विधानपूर्वक करना चाहिये॥ ४४॥

पतिव्रता पूजनीयारुन्धती च विशेषतः।
स्नातव्यं विधिना सम्यग् दातव्यं च स्वशक्तितः॥ ४५॥

विशेष रूपसे पतिव्रता अरुन्धतीजीका पूजन अवश्य करे। विधिपूर्वक कुण्डमें स्नानकर शक्तिके अनुसार विहित रीतिसे दान भी करना चाहिये॥ ४५॥

सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः।
अत्र यः कुरुते स्नानं स वसिष्ठसमो भवेत्॥ ४६॥

यहाँ स्नानादि करनेसे सभी कामनाओंके फलकी प्राप्ति होती है। यहाँ जो स्नान करता है, वह वसिष्ठजीके समान (ज्ञानवान्) हो जाता है॥ ४६॥

भाद्रे मासि सिते पक्षे पंचम्यां नियतव्रतैः।
तस्य साम्वत्सरी यात्रा कर्तव्या विधिपूर्विका॥ ४७॥

भाद्रपदमासकी शुक्ल पंचमीको नियम-संयमका व्रत लेकर विधिपूर्वक यहाँकी वार्षिकी यात्रा करनी चाहिये॥ ४७॥

विष्णुपूजा प्रयत्नेन कर्तव्या श्रद्धयान्वितैः।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके वसेत् सदा॥ ४८॥

श्रद्धासे युक्त होकर विधिपूर्वक यहाँ विष्णुकी पूजा अवश्य

करे। ऐसा करनेवाला सभी पापोंसे छूटकर सदा विष्णुलोकमें निवास करता है॥ ४८॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके शिव-पार्वती-सम्वादके अन्तर्गत अयोध्याखण्डका पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

सागरकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, ऋणमोचनतीर्थ एवं पापमोचनतीर्थ नामक पुण्यस्थलोंकी उत्पत्ति एवं महिमाका वर्णन

श्रीशङ्कर उवाच

वसिष्ठकुण्डाद् भो देवि ईशाने दिग्दले स्थितम्।
विख्यातं सागरं कुण्डं सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥ १॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—हे देवि! वसिष्ठकुण्डसे ईशान कोणमें सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाला सागरकुण्ड नामक प्रसिद्ध तीर्थ है॥ १॥

यत्र स्नानेन दानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
पूर्णिमायां समुद्रस्य स्नानाद् यत्पुण्यमाप्नुयात्॥ २॥
तत्पुण्यं पर्वणि स्नाने नरश्चाक्षयमाप्नुयात्।
तस्मादत्र विधानेन स्नातव्यं पुत्रकांक्षया॥ ३॥

जहाँपर स्नान-दान करनेसे मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। पूर्णमासीको समुद्रमें स्नान करनेसे जो पुण्य मिलता है, वही पुण्य यहाँ पर्वतिथिपर स्नान करके मनुष्य अक्षयरूपसे प्राप्त करता है। अतः पुत्र चाहनेवाला मनुष्य विधानपूर्वक यहाँ स्नान अवश्य करे॥ २-३॥

आश्विने पौर्णमास्यान्तु विशेषात् स्नानमाचरेत्।
एवं कुर्वन्नरो धीमान् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४॥

आश्विनमासकी पूर्णमासीको यहाँ विशेष रूपसे स्नान करना चाहिये। ऐसा करके बुद्धिमान् मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है॥ ४॥

अत्र स्नात्वा नरो दत्वा यथाशक्त्या दिवं व्रजेत्।
सागराद् वायुकोणे तु ब्रह्मकुण्डं मनोरमम्॥ ५॥

इस सागरकुण्डमें स्नानकर यथाशक्ति दान करके मनुष्य स्वर्गकी प्राप्ति करता है। सागरकुण्डसे वायव्य कोणमें ब्रह्मकुण्ड नामक मनोहर तीर्थ है॥ ५॥

पुरा ब्रह्मा जगत्सृष्ट्वा विज्ञाय हरिमच्युतम्।
अयोध्यावासिनं देवं तत्र चक्रे स्थितिं स्वयम्॥ ६॥

प्राचीनकालमें ब्रह्माजीने संसारकी रचना करके पापहारी अच्युत देव श्रीरामको अयोध्यामें स्थित हुआ जानकर स्वयं भी आकर वे अयोध्यापुरीमें रहने लगे॥ ६॥

आगत्य कृतवाँस्तत्र यात्रां ब्रह्मा यथाविधि।
यज्ञं च विधिवच्चक्रे नानासम्भारसम्भृतम्॥ ७॥

ब्रह्माजीने यहाँ आकर विधिके अनुसार इस पुरीकी यात्रा की तथा विधिपूर्वक अनेक सामग्रियोंसे परिपूर्ण यज्ञको सम्पन्न किया॥ ७॥

ततः स कृतवाँस्तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः।
कुण्डं स्वनाम्ना विपुलं नानादेवसमन्वितम्॥ ८॥

तत्पश्चात् लोकपितामह ब्रह्माजीने इस पुरीमें अपने नामसे तीर्थरूप विशाल कुण्ड (ब्रह्मकुण्ड) स्थापित किया, जहाँ समस्त देवगण निवास करने लगे॥ ८॥

विस्तीर्णजलकल्लोलकलितं कलुषापहम्।
कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीककुलाकुलम् ॥ ९॥

यह कुण्ड अतिविस्तीर्ण जललहरियोंसे शोभायमान, पापोंका नाश करनेवाला, कुमुद, उत्पल, कह्लार, पुण्डरीक आदि जातियोंके कमलोंसे सुशोभित था॥ ९ ॥

हंससारसचक्राह्वविहंगममनोहरम्।
तटान्तविटपच्छायं सुच्छायममलं सदा॥ १०॥

वह ब्रह्मकुण्ड हंस, सारस, चक्रवाक आदि पक्षियोंसे सुशोभित, निर्मल तथा तटभूमिमें स्थित वृक्षोंकी सघन शीतल छायासे नित्य युक्त रहता था॥ १० ॥

तत्र कुण्डे सुराः स्नात्वा सर्वे श्रद्धासमन्विताः।
बभूवुः सद्यो विगतरजस्का विमलत्विषः॥ ११॥

उस ब्रह्मकुण्डमें श्रद्धासे युक्त समस्त देवताओंने स्नान किया और उसी क्षण वे रजोगुणसे रहित तथा निर्मल कान्तिसे युक्त हो गये॥ ११ ॥

तदाश्चर्यं महद् दृष्ट्वा ते सर्वे सहसा सुराः।
ब्रह्माणं प्रणिपत्योचुर्भक्त्या प्रांजलयस्तथा॥ १२॥

इस महान् आश्चर्यमयी घटनाको एकाएक घटी हुई देखकर सभी देवोंने हाथ जोड़कर भक्तिसे ब्रह्माजीको प्रणाम किया और उनसे पूछा॥ १२ ॥

देवा ऊचुः

भगवन् ब्रूहि तत्त्वेन माहात्म्यं कमलासन॥ १३॥
अत्र स्नानेन सर्वेषामस्माकं विगतं रजः।
महदाश्चर्यमेतस्य दृष्ट्वा कुण्डस्य विस्मिताः॥ १४॥
सर्वे वयं सुरश्रेष्ठ कृपया त्वमतो वद।

देवगण बोले—हे भगवन्! हे कमलासन! [अपने इस ब्रह्मकुण्डकी] महिमाका तत्त्वपूर्ण वर्णन कीजिये। इस कुण्डमें स्नान करनेसे हम सभीका जो रजोगुण था, वह नष्ट हो

गया, अतः इस कुण्डके ऐसे महान् आश्चर्यमय फलको देखकर हमसब देवगण अतिचकित हो गये हैं। हे देवशिरोमणे! इसलिये कृपा करके आप अवश्य ही इसकी महिमाका वर्णन कीजिये॥ १३—१४१/२ ॥

ब्रह्मोवाच

शृण्वन्तु त्रिदशाः सर्वे सावधानाः सुविस्मिताः॥ १५॥

ब्रह्माजी बोले—[कुण्डके आश्चर्यकारी पुण्यफलको देखकर] अतिविस्मित देवगण! आप सब सावधान होकर सुनें॥ १५॥

कुण्डस्य ह्यस्य माहात्म्यं नानाफलसमन्वितम्।
अत्र स्नानेन विधिवत् पापात्मानो हि जन्तवः॥ १६॥
विमानं हंससंयुक्तमास्थाय रुचिराम्बराः।
निवसन्ति ब्रह्मलोके यावदागतसम्प्लवम्॥ १७॥

अनेक फलोंको देनेवाले इस कुण्डकी महिमा ऐसी है कि कितने भी पापी प्राणी क्यों न हों, वे इसमें विधिवत् स्नान कर लेनेपर हंससे युक्त विमानपर बैठकर तथा मनोहर वस्त्रोंसे विभूषित हो महाप्रलयपर्यन्त ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं॥ १६-१७॥

अत्र स्नानेन दानेन यथाशक्त्या सुरोत्तमाः।
तुलाश्वमेधयोः पुण्यं प्राप्नुयान्मानवो भुवि॥ १८॥

हे देवश्रेष्ठो! इस तीर्थमें स्नान तथा यथाशक्ति दान करनेसे लोकमें मनुष्य तुलादान एवं अश्वमेध-यज्ञके फलको प्राप्त करता है॥ १८॥

ममास्मिन् सरसि श्रीमाञ्जायते स्नानतो नरः।
कन्यादानाधिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः॥ १९॥

मेरे इस कुण्डमें स्नानकर प्राणी श्रीसे सम्पन्न हो जाता है तथा कन्यादानसे भी अधिक पुण्यका भागी होता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १९॥

सर्वमक्षयतां याति महापातकनाशनम्।
ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातिं क्षितौ यास्यत्यनुत्तमाम्॥ २०॥

इसमें स्नानका फल है—सम्पूर्ण महापातकोंका नाश तथा यहाँ आचरित पुण्योंके फलकी अक्षयप्राप्ति। यह ब्रह्मकुण्ड इस पृथ्वीतलपर अनुपम प्रसिद्धिको प्राप्त होगा॥ २०॥

अस्मिन् कुण्डे च सान्निध्यं भविष्यति सदा मम।
कार्तिके शुक्लपक्षस्य चतुर्दश्यां सुरोत्तमाः॥ २१॥
यात्रा भविष्यति सदा सुराः साम्वत्सरी मम।
पुण्यप्रदा महापापराशिनाशकरी सदा॥ २२॥

हे देवगण! इस कुण्डमें मेरी उपस्थिति सदा रहेगी। कार्तिक शुक्ल चतुर्दशीको यहाँकी वार्षिकी यात्रा महान् पुण्योंको देनेवाली तथा पापराशिका नाश करनेवाली होगी॥ २१-२२॥

स्वर्णपात्रं महद्देयं वासांसि विविधानि च।
निजशक्त्या प्रकर्तव्या सुरास्तृप्तिर्द्विजन्मनाम्॥ २३॥

हे देवगण! यहाँपर उत्तम सुवर्णपात्र तथा अनेक प्रकारके वस्त्रोंको देना चाहिये एवं यहाँ ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार अवश्य ही तृप्त करना चाहिये॥ २३॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशो ब्रह्मा लोकपितामहः।
अन्तर्दधे सुरैः सार्धं तीर्थं दृष्ट्वा च सुन्दरि॥ २४॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—हे सुन्दरी! देवोंके स्वामी लोकपितामह ब्रह्माजी ऐसा कहकर उस तीर्थका दर्शन करके देवगणोंके साथ अन्तर्धान हो गये॥ २४॥

तदाप्रभृति तत्कुण्डं विख्यातिं परमां गतम्।
अन्यच्छृणु महाभागे तीर्थं दुष्कृतिदुर्लभम्॥ २५॥

हे महाभागे! तभीसे यह तीर्थ परम प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ। अब पापियोंके लिये दुर्लभ दूसरे तीर्थका वर्णन सुनो॥ २५॥

ऋणमोचनसंज्ञं तु सरयूतीरसङ्गतम्।
ब्रह्मकुण्डात्तु भो देवि धनुःसप्तशतेन च॥ २६॥
पूर्वोत्तरदिशाभागे संस्थितं सरयूजले।
तत्र पूर्वं मुनिवरो लोमशो नाम नामतः॥ २७॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन स्नानं चक्रे विधानतः।
ततः स ऋणनिर्मुक्तो बभूव गतकल्मषः॥ २८॥

हे देवि! ब्रह्मकुण्डसे सात सौ धनुषकी दूरीपर ईशानकोणमें सरयूतटसे लगा हुआ और सरयूजलके मध्यमें स्थित ऋणमोचन नामक तीर्थ है। प्राचीन कालमें उस तीर्थमें लोमशजीने तीर्थयात्राके प्रसंगसे आकर विधिपूर्वक स्नान किया। वे लोमशजी इस ऋणमोचनतीर्थके स्नानसे पापरहित तथा [देव, पितृ, ऋषि—इन तीनों] ऋणोंसे निर्मुक्त हो गये॥ २६—२८॥

तदाश्चर्यं महद् दृष्ट्वा मुनिः सानन्दमब्रवीत्।
पश्यन् तीर्थस्य महतो गुणान् माहात्म्यमुच्चकैः॥ २९॥
भुजावूर्ध्वौ तथा कृत्वा हर्षात् साश्रुविलोचनः।

तब उस परमाश्चर्यमय प्रभावको देखकर लोमशमुनि आनन्दविह्वल हो गये और तीर्थके महान् गुणों तथा महत्त्वको देखते हुए हर्षके अश्रुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंवाले वे मुनिवर हाथ ऊपर उठाकर उच्च स्वरसे कहने लगे—॥ २९½॥

लोमश उवाच

ऋणमोचनसंज्ञं तु तीर्थमेतदनुत्तमम्॥ ३०॥
अत्र स्नानेन जन्तूनामृणनिर्यातनं भवेत्।
ऐहिकं पारलौक्यं च यद्दशात्रितये भवेत्॥ ३१॥

लोमशजी बोले—ऋणमोचन नामवाला यह तीर्थ सर्वोत्तम है। इसमें स्नान करनेसे लोक-परलोककी चिन्ताओंका ध्वंस

होता है, तीनों दशाओं (जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति)-के समय अनुभूयमान दुःख-शोकादिकी तथा तीनों ऋणोंकी निवृत्ति हो जाती है॥ ३०-३१॥

तत्सर्वं स्नानमात्रेण तीर्थे नश्यति तत्क्षणात्।
सर्वतीर्थोत्तमं चैतत् सद्यः प्रत्ययकारकम्॥ ३२॥
मया चास्य फलं सम्यगनुभूतं क्षणादिह।
तस्मादत्र विधानेन स्नानं चैव स्वशक्तितः॥ ३३॥
कर्त्तव्यं श्रद्धया युक्तैः सर्वदा फलकांक्षिभिः।
दातव्यं तु सुवर्णं च देयमन्नादि शक्तितः॥ ३४॥

[केवल इस तीर्थमें स्नानमात्रसे उसी क्षण सब प्रकारके ऋण नष्ट हो जाते हैं] यह तीर्थ तो सभी तीर्थोंमें सर्वतोविशिष्ट एवं तत्काल विश्वास दिलानेवाला है। मैंने भलीभाँति एक क्षणमें ही इस तीर्थके फलका अनुभव कर लिया, इसलिये इन फलोंके इच्छुक श्रद्धालुजन श्रद्धासे युक्त होकर अपनी शक्तिके अनुसार यहाँपर विधानपूर्वक सर्वदा स्नान करें और शक्तिके अनुसार सुवर्ण-अन्नादि दान करें॥ ३२—३४॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्युक्त्वा तीर्थमाहात्म्यं लोमशो मुनिसत्तमः।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठः स्तुवन् तीर्थगुणान् मुदा॥ ३५॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ लोमशजी बड़े हर्षसे इस प्रकार ऋणमोचनतीर्थकी महिमाका वर्णन करके तीर्थगुणोंकी स्तुति करते हुए अन्तर्धान हो गये॥ ३५॥

एतत्ते कथितं देवि ऋणमोचनसंज्ञकम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा तत्र स्नानेन मानवः॥ ३६॥
जायते तत्क्षणादेव नात्र कार्या विचारणा।
ऋणमोचनतीर्थात्तु पूर्वतः सरयूजले॥ ३७॥

धनुर्विंशत्प्रमाणेन पापमोचनसंज्ञकम्।

हे पार्वती! इस प्रकारसे ऋणमोचन नामक तीर्थकी महिमाको मैंने कहा। यहाँपर मानव स्नान करते ही उसी क्षण समस्त पापोंसे विशुद्ध अन्तःकरणवाला हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। ऋणमोचनतीर्थसे पूर्व भागमें बीस धनुषकी दूरीपर सरयूजलके भीतर पापमोचन नामक उत्तम तीर्थ है॥ ३६—३७१/२ ॥

पापमोचनतीर्थस्य दृष्टं माहात्म्यमुत्तमम्॥ ३८॥

पांचालदेशे सम्भूतो नाम्ना नरहरिर्द्विजः।
असत्सङ्गप्रभावेण पापात्मा समजायत॥ ३९॥

इस पापमोचनतीर्थका उत्तम माहात्म्य प्रत्यक्ष है। पांचाल देशका निवासी नरहरि नामक ब्राह्मण दुराचारियोंके संगसे पापी हो गया था॥ ३८–३९॥

नानाविधानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
कृतवान् पापसङ्गेन त्रयीमार्गविनिन्दकः॥ ४०॥

उसने ब्रह्महत्यादि अनेकविध पापोंको किया था और वह पापियोंके संगसे वेदों तथा वेदानुगामियोंकी निन्दामें तत्पर रहता था॥ ४०॥

सः कदाचित् साधुसङ्गात् तीर्थयात्राप्रसङ्गतः।
अयोध्यामागतो देवि महापातककृद् द्विजः॥ ४१॥

हे देवि! वह महापातकी ब्राह्मण किसी समय तीर्थयात्राके प्रसंगसे साधुजनोंके साथ अयोध्यापुरीमें आ गया॥ ४१॥

पापराशिं विनाश्यैव निष्पापः समभूत् क्षणात्।
दिवः पपात तन्मूर्ध्नि पुष्पवृष्टिश्च पार्वति॥ ४२॥

हे पार्वती! वह [उस पापमोचनतीर्थमें स्नान करते ही] अपनी पापराशिको विनष्ट करके क्षणभरमें निष्पाप हो गया। तब उसके ऊपर आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी॥ ४२॥

दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोकं गतो द्विजः।
तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं तीर्थस्य नगनन्दिनि॥ ४३॥
श्रद्धया परया तत्र कुर्यात् स्नानं विशेषतः।
माघकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानं प्रशस्यते॥ ४४॥

हे पार्वती! वह ब्राह्मण दिव्य विमानपर बैठकर विष्णुलोकको चला गया। अतः पापमोचनतीर्थके इस प्रकारके आश्चर्यजनक फलको देखकर मनुष्य अधिकाधिक श्रद्धाके साथ विशेष रूपसे इस तीर्थमें स्नान करे। माघ कृष्ण चतुर्दशी को यहाँके स्नानका विशेष महत्त्व है॥ ४३-४४॥

दानं च मनुजैः कार्यं सर्वपापविशुद्धये।
अन्यदापि कृते स्नाने सर्वपापक्षयो भवेत्॥ ४५॥

अपने सभी पापोंको दूर करनेके लिये मनुष्योंको यहाँपर शक्तिके अनुसार दान भी करना चाहिये। इस पर्वसे अतिरिक्त कालमें कभी भी स्नान करनेसे समस्त पापोंका क्षय होता है॥ ४५॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके शंकर-पार्वती-सम्वादके अन्तर्गत अयोध्याखण्डका सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

सहस्रधारातीर्थका इतिहास एवं वहाँ करनेयोग्य सत्कृत्योंका निरूपण

श्रीशङ्कर उवाच

पापमोचनतीर्थात्तु पूर्वतः सरयूजले।
धनुःशतप्रमाणेन वर्तते तीर्थमुत्तमम्॥ १॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—पापमोचनतीर्थसे पूर्व भागमें सरयू जलमें सौ धनुषकी दूरीपर एक उत्तम तीर्थ विद्यमान है॥ १॥

सहस्रधारासंज्ञं तु सर्वकिल्बिषनाशनम्।
यस्मिन् रामाज्ञया वीरो लक्ष्मणः परवीरहा॥ २॥
प्राणानुत्सृज्य योगेन ययौ शेषात्मतां पुरा।
शृणु प्रिये कथामेतां कथ्यमानां मयाऽनघे॥ ३॥
सहस्रधारातीर्थस्य समुत्पत्तिं महोदयाम्।

सहस्रधारा नामक वह तीर्थ सभी पापोंको नष्ट करनेवाला है। प्राचीनकालमें जिस तीर्थमें शत्रुसेनाका हनन करनेवाले वीर लक्ष्मणजीने श्रीरामकी आज्ञासे योगविधिके द्वारा प्राणोंको छोड़कर अपने शेषनाग स्वरूपको प्राप्त किया था। हे प्रिये! हे पापरहिते! मेरे द्वारा कही जाती हुई यह कथा सुनो। सहस्रधारातीर्थकी उत्पत्तिकी कथा महान् अभ्युदय देनेवाली है॥ २—३½ ॥

पुरा रामो रघुपतिर्देवकार्यं विधाय वै॥ ४॥
कालेन सह सङ्गम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः।
आवां मन्त्रयमाणौ हि यः पश्येदन्तिकागतः॥ ५॥
त्वया त्याज्यो भवेत् क्षिप्रमित्थं चक्रे स संविदम्।
तस्मिन् मन्त्रयमाणे हि द्वारि तिष्ठति लक्ष्मणे॥ ६॥

प्राचीनकालमें देवकार्योंको सम्पन्न करके महाराज श्रीराम कालके साथ बैठकर एकान्तमें मन्त्रणा कर रहे थे। उस समय कालके द्वारा ऐसा अनुबन्ध किया गया था कि 'जो व्यक्ति हम दोनोंकी मन्त्रणाके मध्यमें आकर हमें देख ले, उसे आप शीघ्र ही त्याग दें।' कालके साथ मन्त्रणा करते समय लक्ष्मणजी द्वारपाल बने थे॥ ४—६ ॥

आगतः स तपोराशिर्दुर्वासास्तेजसां निधिः।
आगत्य लक्ष्मणं शीघ्रमित्यवोचत् क्षुधाकुलः॥ ७॥

उसी समय तेजोनिधि, तपोमूर्ति दुर्वासाजी आ गये। वे भूखसे व्याकुल होकर वहाँ आये और लक्ष्मणजीसे शीघ्रतापूर्वक ऐसा कहने लगे— ॥ ७॥

दुर्वासा उवाच

सौमित्रे गच्छ शीघ्रं त्वं रामाग्रे मां निवेदय।
कार्यार्थिनमिदं वाक्यं नान्यथा कर्तुमर्हसि॥ ८॥

दुर्वासाजीने कहा—हे सुमित्रानन्दन! कार्यवश उपस्थित हुए मुझ दुर्वासाके विषयमें श्रीरामको शीघ्र सूचित करो! मेरी इस आज्ञाका उल्लंघन तुम नहीं कर सकते॥ ८॥

श्रीशङ्कर उवाच

शापाद् भीतः स सौमित्रिर्द्रुतं गत्वा तयोः पुरः।
मुनिं निवेदयामास रामाग्रे दर्शनार्थिनम्॥ ९ ॥
दुर्वाससं तपोराशिमत्रिनन्दनमागतम्।
रामोऽपि कालमामन्त्र्य प्रस्थाप्य च बहिर्ययौ॥ १०॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—लक्ष्मणजीने दुर्वासाजीके शापके भयसे शीघ्र ही श्रीराम तथा कालके पास जाकर दर्शनके लिये आये हुए दुर्वासाजीका समाचार निवेदित किया कि अत्रिपुत्र तेजःपुंज दुर्वासाजी आये हुए हैं। ऐसा जानकर श्रीरामने कालके साथ होनेवाली मन्त्रणाको समाप्त किया तथा कालको विदाकर स्वयं बाहर आ गये॥ ९-१०॥

दृष्ट्वा मुनिं तं प्रणतः सम्भोज्य प्रभुरादरात्।
दुर्वाससं मुनिवरं प्रस्थाप्य स्वयमादरात्॥ ११॥
सत्यभङ्गभयाद् वीरो लक्ष्मणं त्यक्तवांस्तदा।
लक्ष्मणोऽपि तदा वीरः कुर्वन्नवितथं वचः॥ १२॥
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य सुमतिः सरयूतीरमाययौ।
तत्र गत्वा च योगज्ञो ध्यानमास्थाय सत्त्वरम्॥ १३॥
चिदात्मनि मनः शान्तं संनियम्य व्यवस्थितः।
ततः प्रादुरभूत्तत्र सहस्रफणमण्डितः॥ १४॥
शेषश्चक्षुःश्रवःश्रेष्ठः क्षितिं भित्त्वा सहस्रधा।
सुरलोकात् सुरेन्द्रोऽपि समगादमरैः सह॥ १५॥

मुनिको देखकर प्रभु रामने आदरपूर्वक प्रणाम करके उन्हें भोजन कराया और बड़े समादरसे विदा कर दिया। तदुपरान्त वीर श्रीरामने सत्य न छूटे इस विभीषिकासे लक्ष्मणजीको उसी क्षण त्याग दिया। तब उत्तम बुद्धिवाले वीर लक्ष्मणजी भी बड़े भाईके वचनको सत्य करते हुए सरयूके किनारे आ गये। वहाँ पहुँचकर शीघ्र ही योगवेत्ता लक्ष्मणजीने ध्यान लगाकर मनको शान्त किया और नियन्त्रित हुए मनको चिदात्मामें व्यस्थित कर दिया। तदुपरान्त वहाँ पीछे सहस्त्र फणोंसे सुशोभित सर्पराज शेष अपने फणमण्डलसे पृथ्वीको हजारों छिद्रोंके रूपमें विदीर्ण करके प्रकट हो गये। उसी समय देवोंके साथ इन्द्रदेव भी स्वर्गलोकसे आ गये॥ ११-१५॥

ततः शेषात्मतां यातं लक्ष्मणं सत्यसङ्गरम्।
उवाच मधुरं शक्रः सुरसङ्घनिषेवितः॥ १६॥

देवताओंसे सुसेवित इन्द्रदेव शेषरूपको धारण किये हुए सत्यप्रतिज्ञ लक्ष्मणजीसे मधुर वचनोंसे कहने लगे—॥ १६॥

इन्द्र उवाच

लक्ष्मणोत्तिष्ठ शीघ्रं त्वमारुहस्व पदं स्वयम्।
देवकार्यं कृतं वीर त्वया रिपुनिषूदन॥ १७॥

इन्द्रदेवने कहा—हे शत्रुसूदन वीर लक्ष्मण! उठिये तथा शीघ्र ही आप स्वयं अपने पदपर आरोहण कीजिये, देवताओंका कार्य आप कर चुके हैं॥ १७॥

वैष्णवं परमं स्थानं प्राप्नुहि त्वं सनातनम्।
भवन्मूर्तिः समायातः शेषोऽपि विलसत्फणः॥ १८॥

आप सनातन उत्तम वैष्णव स्थानको प्राप्त करें। आपकी मूर्ति शेषनाग भी फणोंसे शोभित होकर यहाँ आये हैं॥ १८॥

सहस्त्रधा क्षितिं भित्त्वा सहस्त्रफणमण्डितः।
क्षितेः सहस्त्रच्छिद्रेषु यस्माद् भेदाः समुद्गताः॥ १९॥

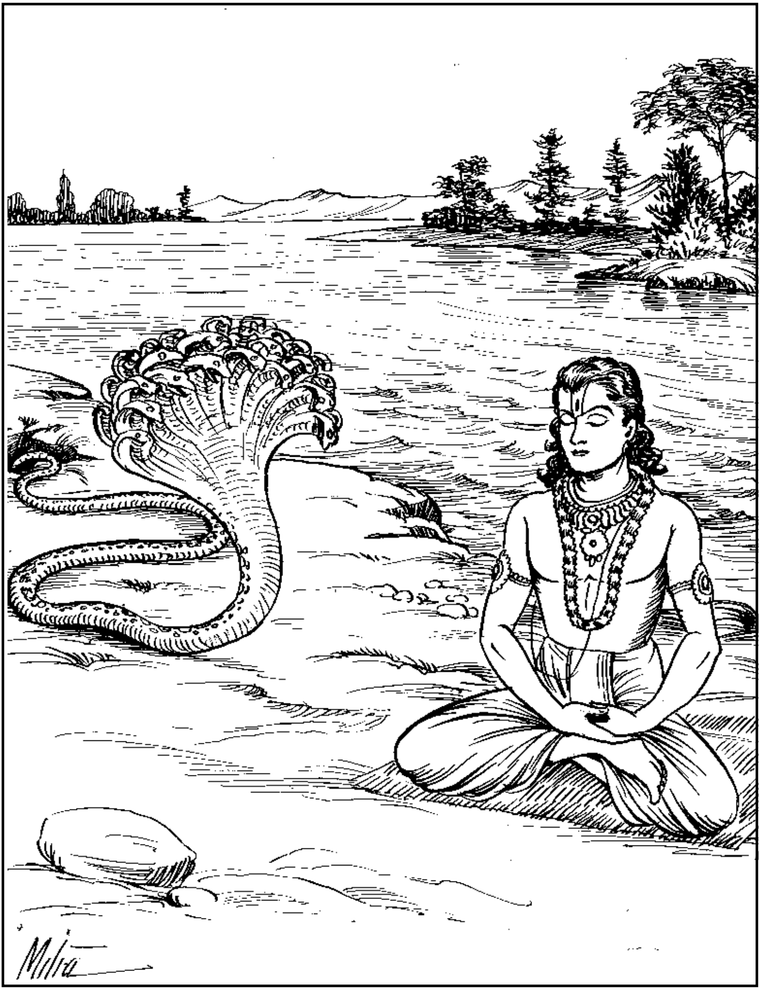

प्राणोत्सर्गके समय लक्ष्मणजीके समक्ष शेषनागका प्राकट्य

तस्मादेतन्महातीर्थं सरयूतीरगं शुभम्।
ख्यातं सहस्रधारेति भविष्यति न संशयः॥ २०॥

उनके सहस्र फण भूमिके सहस्र स्थानोंको फोड़कर प्रत्यक्ष हुए, जिसके कारण भूमिमें सहस्र छिद्र हो गये हैं, इसलिये सरयूतटपर स्थित यह मंगलमय महातीर्थ सहस्रधारा नामसे प्रसिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ १९-२०॥

एतत्क्षेत्रप्रमाणन्तु धनुषां पंचविंशतिः।
अत्र स्नानेन दानेन श्राद्धेन श्रद्धयान्वितः॥ २१॥
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं व्रजेन्नरः।
अत्र स्नातो नरो धीमान् शेषरूपिणमीश्वरम्॥ २२॥
तीर्थे सम्पूज्य विधिवद् विष्णुलोकमवाप्नुयात्।
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं विधिपुरःसरम्॥ २३॥
शेषरूपी हरिर्ध्येयः पूज्या विप्रा विशेषतः।
स्वर्णं चान्नं च वासांसि देयानि श्रद्धयान्वितैः॥ २४॥

इस सहस्रधारातीर्थका परिमाण पच्चीस धनुष है। यहाँपर जो मनुष्य श्रद्धासे स्नान, दान तथा श्राद्ध करता है, वह समस्त पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। यहाँ जो बुद्धिमान् मनुष्य स्नानकर शेषरूपी ईश्वरका सविधि पूजन करता है, उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। अतः यहाँपर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये, शेषरूपी नारायणका ध्यान करना चाहिये और विशेषरूपसे ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये। यहाँपर श्रद्धालुजनोंको चाहिये कि वे सोना, अन्न, वस्त्र आदिका दान करें॥ २१—२४॥

स्नानं दानं हरेः पूजा सर्वमक्षय्यतां व्रजेत्।
तस्मादेतन्महातीर्थं सर्वकामफलप्रदम्॥ २५॥
क्षितौ भविष्यति सदा नात्र कार्या विचारणा।
श्रावणे शुक्लपक्षस्य या तिथिः पंचमी भवेत्॥ २६॥

तस्यामत्र प्रकर्तव्यो नागानुद्दिश्य यत्नतः।
उत्सवो विपुलः सद्भिः शेषपूजापुरःसरः॥ २७॥

इस तीर्थमें किया हुआ स्नान-दान-भगवत्पूजा आदि समस्त पुण्यकर्म अक्षयरूपताको प्राप्त होता है, अतः यह महातीर्थ भूतलपर सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला प्रसिद्ध होगा, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। श्रावणमासके शुक्लपक्षकी पंचमी तिथिमें शेषकी पूजाके साथ-साथ नागोंको उद्देश्य करके सज्जनोंको विशेष उत्सवका भी आयोजन करना चाहिये॥ २५—२७॥

उत्सवे तु कृते सद्भिस्तीर्थे महति मानवैः।
सन्तोष्य च द्विजान् भक्त्या नागपूजापुरःसरम्॥ २८॥
सन्तुष्टाः फणिनः सर्वे पीडयन्ति न मानुषम्।
वैशाखे मासि ये स्नानं कुर्वन्त्यत्र समाहिताः।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ २९॥

जो सज्जन इस महान् तीर्थमें उत्सव करके भक्तिके साथ नागोंका पूजनकर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करते हैं, उनपर समस्त सर्प प्रसन्न हो जाते हैं और कभी भी उन्हें पीड़ा नहीं पहुँचाते। वैशाखमासमें जो मनुष्य सावधान होकर यहाँ स्नान करते है, उन्हें सैकड़ों-करोड़ों कल्पोंतक पुनरावृत्तिका भय नहीं रहता॥ २८-२९॥

तस्मादत्र प्रकर्तव्यं माधवे यत्नतो नरैः।
स्नानं दानं हरेः पूजा ब्राह्मणस्य विशेषतः।
तीर्थे कृतात्र मनुजैः सर्वकामफलप्रदा॥ ३०॥

अतः मनुष्योंको इस तीर्थमें, वैशाखमें अवश्य ही स्नान-दान, भगवत्पूजा तथा विशेषरूपसे ब्राह्मणपूजा करनी चाहिये। यहाँपर ऐसा करनेसे समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं॥ ३०॥

विष्णुमुद्दिश्य यो दद्यात् सालङ्कारां पयस्विनीम्।
सवत्सामत्र सत्तीर्थे सत्पात्राय द्विजन्मने॥ ३१॥

तस्य वासो भवेन्नित्यं विष्णुलोके सनातने।
अक्षयं स्वर्गमाप्नोति तीर्थस्नानेन मानवः॥ ३२॥

जो इस उत्तम तीर्थमें भगवान् विष्णुको उद्देश्य करके अलंकारों तथा बछड़ेके सहित दूध देनेवाली गौको सुपात्र ब्राह्मणके लिये दान करता है, उसे सनातन विष्णुलोकमें नित्य निवास प्राप्त होता है तथा इस तीर्थमें स्नान करनेवालेको अक्षय स्वर्ग मिलता है॥ ३१-३२॥

अत्र पूज्यौ विशेषेण नरैः श्रद्धासमन्वितैः।
वैशाखे मास्यलङ्कारैर्वस्त्रैश्च द्विजदम्पती॥ ३३॥
लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै लक्ष्मीप्रीत्यै विशेषतः।
वैशाखे मासि तीर्थानि पृथिवीसंस्थितानि वै।
सर्वाण्यपि च संसृत्य स्थास्यन्त्यत्र न संशयः॥ ३४॥
तस्मादत्र विधानेन वैशाखे स्नानतो नृणाम्।
सर्वतीर्थावगाहस्य भविष्यति महाफलम्॥ ३५॥

इस तीर्थमें वैशाखमासमें लक्ष्मीनारायणकी और विशेषकर देवी महालक्ष्मीकी प्रीतिके लिये श्रद्धायुक्त मनुष्य विशेष रूपसे अलंकारों तथा वस्त्रादिसे द्विजदम्पतीका पूजन करें। भूतलपर विद्यमान जितने तीर्थ हैं, वे सभी वैशाखमासमें यहाँपर एकत्र होकर निवास करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। अतः यहाँपर वैशाखमासमें विधानपूर्वक केवल स्नान कर लेनेसे भी मनुष्योंको समस्त तीर्थोंके स्नानका महान् फल प्राप्त होगा॥ ३३—३५॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्युक्त्वा सुरराजेन्द्रो लक्ष्मणं सुरसङ्गतम्।
शेषं प्रस्थाप्य पाताले भूभारधरणे क्षमम्॥ ३६॥
लक्ष्मणं यानमारोप्य प्रतस्थे दिवमादरात्।
तदाप्रभृति तत्तीर्थं विख्यातिं परमां ययौ॥ ३७॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—देवराज इन्द्रने देवभावको प्राप्त हुए लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहकर भूमिभारको वहन करनेमें समर्थ

शेषजीको पाताल भेजकर, लक्ष्मणजीको विमानमें बैठाया और प्रीतिपूर्वक स्वर्गको प्रस्थान किया, तभीसे यह तीर्थ परम प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ॥ ३६-३७॥

वैशाखे मासि तीर्थस्य माहात्म्यं परमं स्मृतम्।
पंचम्यामपि शुक्लायां श्रावणस्य विशेषतः॥ ३८॥
अन्यदा पर्वणि श्रेष्ठं विशेषात् स्नानमाचरेत्।
सहस्रधारातीर्थे च नरः स्वर्गमवाप्नुयात्॥ ३९॥

वैशाखमें इस तीर्थका परम महत्त्व है और वैसे ही श्रावण शुक्ल पंचमीको भी विशेष महत्त्व है। अन्य पर्वदिनोंमें भी यहाँ स्नान करना अतिश्रेष्ठ है, अतः तब भी स्नान करे। इस सहस्रधारातीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है॥ ३८-३९॥

सहस्रधारायाः पूर्वं सर्वपापहरं शुभम्।
स्वर्गद्वारं च वै तीर्थं वर्तते सरयूजले॥ ४०॥

सहस्रधारातीर्थसे पूर्वभागमें सरयूजलमें सर्वपापसंहारक स्वर्गद्वार नामक मंगलमय तीर्थ स्थित है॥ ४०॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे अन्तःपुर-प्रदक्षिणा-वर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके शंकर-पार्वती-संवादके अन्तर्गत अयोध्याखण्डमें 'अन्तर्गृहीप्रदक्षिणावर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

वैतरणीतीर्थ, घोषार्कतीर्थ, रति-कुसुमायुधकुण्ड आदि तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य

श्रीपार्वत्युवाच

भगवन्नत्यद्भुतमिदं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्।
श्रुत्वा त्वत्तो मम मनः परमानन्दमाययौ॥ १॥

अन्यत् तीर्थान्तरं ब्रूहि तत्त्वेन मम साम्प्रतम्।
न तृप्तिरस्ति मनसः शृण्वन्त्या मम सुव्रत॥ २॥

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे भगवन्! इस अतिशय अद्भुत उत्तम तीर्थमहिमाको आपसे सुनकर मेरा मन परमानन्दको प्राप्त हुआ॥ १॥

हे सुव्रत! रहस्यनिरूपणके साथ दूसरे तीर्थका वर्णन अब मुझसे कीजिये। [तीर्थोंकी महिमाको] सुनते हुए मेरे मनको तृप्ति नहीं हो रही है॥ २॥

श्रीशङ्कर उवाच

विद्याकुण्डाद् दक्षिणे तु वैतरणी विराजते।
वैतरण्यां कृतस्नानो यमलोकं न पश्यति॥ ३॥
भाद्रे मासि पूर्णिमायां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
घोषार्कतीर्थं परमं वैतरण्यास्तु दक्षिणे।
सूर्यकुण्डमिति ख्यातं सर्वकामार्थदायकम्॥ ४॥

श्रीशंकरजीने कहा—विद्याकुण्डसे दक्षिणमें वैतरणी नामक तीर्थ विराजमान है। वैतरणीतीर्थमें स्नान करनेवाला यमलोकको नहीं देखता। भाद्रपदमासकी पूर्णिमाको यहाँकी वार्षिकी यात्रा होती है। वैतरणीसे दक्षिण भागमें घोषार्क नामक उत्तम तीर्थ है। सभी वांछित प्रयोजनोंको पूर्ण करनेवाला यह तीर्थ 'सूर्यकुण्ड' इस नामसे [भी] प्रसिद्ध है॥ ३-४॥

वर्तते सुन्दरं देवि सर्वपापापहं सदा।
यत्र स्नानेन दानेन सूर्यलोके महीयते॥ ५॥

हे देवि! यह शोभन तीर्थ पापोंका सर्वदा हरण करनेवाला है, जहाँ स्नान, दान करनेसे मनुष्य सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ५॥

एतत् तीर्थस्य सदृशं नापरं विद्यते क्वचित्।
व्रणी कुष्ठी दरिद्रो वा दुःखाक्रान्तोऽपि यो नरः॥ ६॥

करोति विधिवत् स्नानं सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
रविवारे विशेषेण कर्तव्यं स्नानमादरात्॥ ७॥

इस तीर्थके समान दूसरा तीर्थ कहीं नहीं है। [किसी भी प्रकारके] व्रणवाला, कोढ़ी, दरिद्र या किसी दुःखसे दुखी व्यक्ति यहाँ विधिपूर्वक स्नान करनेसे सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। यहाँ रविवारके दिन विशेष रूपसे आदरपूर्वक स्नान करना चाहिये॥ ६-७॥

भाद्रे मासि तथा माघे शुक्लषष्ठ्यां विशेषतः।
कर्तव्यं विधिवत् स्नानं सूर्यलोकाभिकाङ्क्षया॥ ८॥

सूर्यलोकको प्राप्त करनेकी इच्छासे भाद्रपद तथा माघमासमें एवं शुक्लपक्षकी प्रत्येक षष्ठीको प्रयत्न करके विधिपूर्वक यहाँ स्नान करना चाहिये॥ ८॥

पौषे मासि तथा स्नानं सूर्यवारे विशेषतः।
सप्तम्यां रवियुक्तायां स्नानं बहुफलप्रदम्॥ ९॥

विशेषकर पौषमासमें रविवारको तथा सप्तमीयुक्त किसी भी रविवारको यहाँका स्नान प्रचुर फल देनेवाला है॥ ९॥

घोषाभिधोऽभवत्पूर्वं सूर्यवंश्यो नरेश्वरः।
समुद्रमेखलामेकः पृथिवीं समपालयत्॥ १०॥

पूर्वकालमें सूर्यवंशमें घोष नामक एक नरपति हुए, जिन्होंने समुद्रपर्यन्त पृथिवीका भलीभाँति पालन किया था॥ १०॥

यद् यशांसि प्रकाशन्ते त्रिलोकीमण्डलेषु वै
यत्प्रतापः स्फुरन् भाति प्रभाकर इवापरः॥ ११॥

तीनों लोकोंमें जिनकी कीर्ति व्याप्त थी और जिनका प्रताप दूसरे सूर्यके समान चमकता हुआ फैला था॥ ११॥

प्रचण्डतरदोर्दण्डखण्डितारातिमण्डलः।
स कदाचित् प्रजाः सर्वा मन्त्रिषु न्यस्य भूतलम्॥ १२॥

बभ्राम मृगयासक्तो वनेऽतिगहने द्रुमैः।
स राजा पूर्वजन्मोत्थैः पापैरशुभसूचकैः॥ १३॥
कृमिव्याप्तकराम्भोजः सुन्दरोऽपि गतस्मयः।

जिन्होंने अपने अतिशय प्रचण्ड भुजदण्डोंसे समस्त शत्रुओंको उन्मूलित कर दिया था, वे महाराज घोष किसी समय प्रजाजनों [-का दायित्व] तथा पृथ्वीपालनका भार मन्त्रियोंपर रखकर मृगयासक्तिके कारण अत्यन्त सघन वृक्षोंवाले वनमें घूमने लगे। वे राजा पूर्वजन्मके अमंगलसूचक पापोंके उदयके कारण शरीरसे सुन्दर होते हुए भी कमलोपम सुन्दर हाथोंमें कीड़ोंके लगनेसे अपने सौन्दर्यका अभिमान खो बैठे थे॥ १२—१३$^{1}/_{2}$॥

मृगयायां भवेदेकः कदाचित् पर्यटन् वने॥ १४॥
वराहसिंहहरिणान् निघ्नन् धावन्नितस्ततः।
तृषाक्रान्तो म्लानतनुः सरोऽपश्यत्पुरो नृपः॥ १५॥
ददर्श पाणिं प्रक्षाल्य निष्कृमिं जलगौरवात्।
ततो विधिवदाचम्य स्नानं चक्रे नरेश्वरः॥ १६॥

एक बार आखेटके प्रसंगमें वे अकेले ही वनमें भ्रमण करते हुए तथा सूकर, सिंह, हरिण आदि जीवोंको मारते हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे। [श्रमकी अधिकताके कारण] प्यासससे व्याकुल हुए तेजोहीन देहवाले राजाने सामने एक तालाबको देखा। उन्होंने उस जलाशयमें जाकर हाथ धोया तो जलके प्रभावके कारण उनके हाथका रोग तथा कीड़े नष्ट हो गये। वहाँके जलके गुणोंसे प्रभावित होकर उन भूपतिने आचमन करके उसमें विधिवत् स्नान किया॥ १४—१६॥

ततो देवशरीरोऽभूदानन्दामलमानसः।
मुनिभिस्तीर्थमाज्ञाय चक्रे सूर्यस्तुतिं प्रियाम्॥ १७॥

इससे उनका शरीर देवताओंके समान दिव्य तथा मन

निर्विकार और हर्षित हो गया। उन्होंने मुनियोंसे तीर्थका परिचय जानकर प्रीतिपूर्ण वचनोंसे सूर्यदेवका स्तवन किया॥ १७॥

राजोवाच

भगवन् देवदेवेश नमस्तुभ्यं चिदात्मने।
नमः सवित्रे सूर्याय जगदानन्ददायिने॥ १८॥

हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे चैतन्यरूप! आपको नमस्कार है। जीवोंके उत्पादक तथा जगत्को आनन्द देनेवाले सूर्यरूप आपको नमस्कार है॥ १८॥

प्रभागेहाय देवाय त्रयीमूर्तिमते नमः।
विवस्वते नमस्तुभ्यं योगज्ञाय सदात्मने॥ १९॥

प्रकाशके सदन, वेदत्रयीमूर्ति (अथवा ब्रह्मा-विष्णु-रुद्ररूप) आपको नमस्कार है। योगके ज्ञाता, सत्तारूप आत्मावाले आप विवस्वान् देवको नमस्कार है॥ १९॥

पराय पररूपाय त्रिलोकीतिमिरच्छिदे।
अचिन्त्याय सदा तुभ्यं नमो भास्वरतेजसे॥ २०॥

सबसे परे, श्रेष्ठ रूपवाले, तीनों लोकोंके अन्धकारके नाशक, अचिन्त्य तथा देदीप्यमान तेजवाले आपको सर्वदा नमस्कार है॥ २०॥

योगप्रियाय योगाय योगज्ञाय सदा नमः।
ओंकाराय वषट्काररूपिणे व्रतधारिणे॥ २१॥

योगप्रिय, योगरूप, योगज्ञाता, ओंकाररूप, वषट्काररूप तथा व्रतधारी आपको सदा नमस्कार है॥ २१॥

यज्ञाय यजमानाय हविष ऋत्विजे नमः।
रोगघ्नाय सुरूपाय कमलानन्ददायिने॥ २२॥

यज्ञरूप, यजमानरूप, हविष्‌रूप, ऋत्विज्‌रूप, रोगनाशक, सुन्दर रूपवाले तथा कमलोंको आनन्द देनेवाले आपको नमस्कार है॥ २२॥

अतिसौम्यातितीक्ष्णाय ग्रहाणां पतये नमः।
सत्रेशाय नमस्तुभ्यं भक्तत्राय प्रियात्मने॥ २३॥

अतिसौम्य और अतितीक्ष्ण रूपवाले, ग्रहोंके अधिपति, यज्ञपति, भक्तरक्षक और प्रिय रूपवाले आपको नमस्कार है॥ २३॥

प्रकाशकाय सततं लोकानां प्रियकारिणे।
प्रसीद प्रणतायाथ मह्यं भक्तिकृते स्वयम्॥ २४॥

समस्त लोकोंको प्रकाश देकर निरन्तर सबका प्रिय करनेवाले, प्रणाम करते हुए मुझ भक्तपर आप स्वयं प्रसन्न हो जायँ॥ २४॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्येवं स्तुवतस्तस्य सुप्रसन्नो रविः स्वयम्।
आविर्बभूव सहसा भक्तस्य प्रियकाम्यया॥ २५॥
उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयानतमूर्धकम्।

श्रीशंकरजीने कहा—इस प्रकार स्तुति करते हुए राजापर भगवान् सूर्य अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और स्वयं भक्तका प्रिय करनेहेतु एकाएक प्रकट हो गये। भक्तिके कारण मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हुए राजासे सूर्यदेव मधुर वाक्योंमें कहने लगे॥ २५१/२॥

रविरुवाच

वरं वरय राजेन्द्र प्रसन्नोऽस्मि तवाग्रतः॥ २६॥
ददामि तद् वरं तेऽद्य यत् त्वया मनसेप्सितम्।

सूर्यदेव बोले—'हे राजेन्द्र! मैं तुमपर प्रसन्न होकर तुम्हारे समक्ष उपस्थित हूँ, वर माँगो। आज मैं तुम्हारा मनचाहा वर तुम्हें दूँगा'॥ २६१/२॥

राजोवाच

भगवन् भास्करानन्त प्रयच्छसि वरं यदि॥ २७॥
मन्नाम्ना कृतमूर्तिस्त्वं तिष्ठस्वात्र सदा विभो।

राजाने कहा—हे अनन्त! हे भास्करदेव! यदि आप वर देते

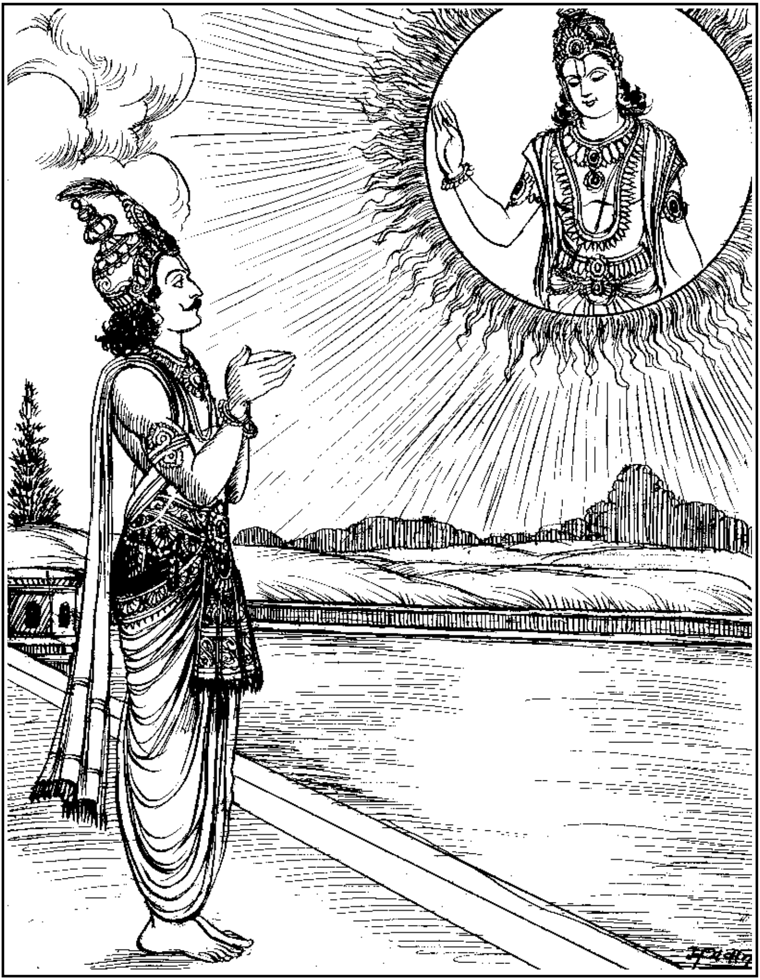

भगवान् सूर्यका राजा घोषके निकट प्रकट होकर वरदान देना

हैं तो हे विभो! मेरे नामसे युक्त मूर्तिरूपमें आप यहाँ सदा निवास कीजिये॥ २७१/२ ॥

रविरुवाच

एवमस्तु मनुष्येन्द्र तव वाञ्छा मनोहरा॥ २८ ॥

श्रीसूर्यदेवने कहा—हे नरेन्द्र! यह तुम्हारी अतिसुन्दर कामना तुम्हारे कथनानुसार ही परिपूर्ण हो॥ २८ ॥

एतत् स्तोत्रं त्वया प्रोक्तं ये पठिष्यन्ति मानवाः।
तेषां तुष्टः प्रदास्यामि सर्वान् कामान् नरेश्वर॥ २९ ॥

हे नरेन्द्र! जो मनुष्य इस तुम्हारे बनाये हुए स्तोत्रका पाठ करेंगे, उन भक्तोंकी सभी कामनाओंको मैं प्रसन्न होकर पूर्ण करूँगा॥ २९ ॥

एतत् स्थानं परां ख्यातिं त्वन्नाम्ना यास्यति क्षितौ।
सर्वान् कामानवाप्नोति योऽत्र स्नानं समाचरेत्॥ ३० ॥

यह सूर्यकुण्ड तुम्हारे नामसे (घोषार्ककुण्ड नामसे) भूमितलपर प्रसिद्ध होगा तथा जो यहाँ स्नान करेगा, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण होंगी॥ ३० ॥

मद्भक्तेन सदा राजन् कर्तव्यं स्नानमत्र वै।
यं यं काममिहेच्छेत तं तं काममवाप्नुयात्॥ ३१ ॥

हे राजन्! मेरे भक्तको यहाँपर सर्वदा स्नान करना चाहिये। वह जिन-जिन कामनाओंको मनमें रखकर इस तीर्थमें स्नान करेगा, उन-उन मनोरथोंको प्राप्त करेगा॥ ३१ ॥

श्रीशङ्कर उवाच

इति दत्वा वरं देवः कृपया परया युतः।
भास्वान्सहस्रकिरणस्ततोऽन्तर्धानमाययौ ॥ ३२ ॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—सहस्र किरणोंवाले परमकृपामय भास्करदेव इस प्रकार राजाको वर देकर अन्तर्धान हो गये॥ ३२ ॥

राजा भास्करदेहोत्थं रवितेजस्त्वनुत्तमम्।
प्रणम्य दण्डवद् भक्त्या जगाम स्वगृहं ततः॥ ३३ ॥

तदुपरान्त राजा भी सूर्यदेवके शरीरसे निकले हुए अनुपम तेजोरूप घोषार्कविग्रहको [वहाँ स्थापितकर तथा उसे] भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करके अपने घर चले गये॥ ३३॥

सूर्यकुण्डे नरः स्नात्वा सूर्यलोके वसेत् सदा।
घोषार्ककुण्डाद् भो देवि पश्चिमे दिग्दले स्थितम्॥ ३४॥
रतिकुण्डमिति ख्यातं सर्वपापापहं सदा।

हे देवि! सूर्यकुण्डमें स्नान करनेवाला मनुष्य सदा सूर्यलोकमें निवास करता है। उस घोषार्ककुण्डसे पश्चिम दिशामें रतिकुण्ड नामक प्रख्यात तीर्थ विद्यमान है, जो निरन्तर पापोंका नाश करनेवाला है॥ ३४$^{1}/_{2}$॥

यत्र स्नानेन दानेन परां कान्तिमवाप्नुयात्॥ ३५॥
तत्पश्चिमदिशाभागे कुसुमायुधनामकम्।
कुण्डं प्रसिद्धमतुलं सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥ ३६॥

जहाँ स्नान-दानादि करनेसे उत्तम सौन्दर्य मिलता है। रतिकुण्डसे पश्चिम दिशामें कुसुमायुध नामक कुण्ड प्रसिद्ध है। यह तीर्थ सभी कामनाओंको देनेवाला और अनुपम है॥ ३५-३६॥

यत्र स्नानेन दानेन कन्दर्पेण समाकृतिः।
भवेन्नरो विधानेन प्रिये नास्त्यत्र संशयः॥ ३७॥

हे प्रिये! जहाँ शास्त्रीय विधिके अनुसार स्नान-दानादि करनेसे मनुष्य कामदेवके समान शोभन आकृतिवाला हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३७॥

रतिकुण्डे तथा देवि कुसुमायुधकुण्डके।
श्रद्धया कुरुते स्नानं स सौख्यं परमाप्नुयात्॥ ३८॥

हे देवि! रतिकुण्ड तथा कुसुमायुधकुण्ड*में जो व्यक्ति श्रद्धासे

* रतिकुण्ड तथा कुसुमायुधकुण्ड कुसुमाहे गाँवमें हैं।

स्नान करता है वह सब प्रकारसे सुखोंको प्राप्त करता है ॥ ३८ ॥

कुण्डद्वयेऽत्र मिथुनं यत् स्नानं कुरुते सदा।
रतिकामाविवाख्यातौ सदा तौ सुन्दरौ तथा॥ ३९ ॥

इन दोनों कुण्डोंमें जो पति-पत्नी सदा साथ-साथ स्नान करते हैं, वे दम्पती सदैव रति और कामदेवके तुल्य सुन्दर बने रहते हैं ॥ ३९ ॥

श्रद्धया च तयोः कुण्डे स्नातव्यं धर्मकांक्षिभिः।
दानं देयं यथाशक्त्या रतिकन्दर्पतुष्टये॥ ४० ॥

धर्माभिलाषी जनोंको इन दोनों कुण्डोंमें रति-कामदेवकी प्रसन्नताके लिये श्रद्धापूर्वक स्नान तथा यथाशक्ति दान करना चाहिये ॥ ४० ॥

भवेतां नियतं तस्य सन्तुष्टौ रतिमन्मथौ।
माघे विशुद्धपंचम्यामत्र स्नानं शुभप्रदम्॥ ४१ ॥

[यहाँ स्नान, दान करनेवाले] जनोंपर निश्चय ही रति-कामदेव सदा सन्तुष्ट रहते हैं। माघ शुक्ल पंचमी (वसन्तपंचमी)-को यहाँका स्नान शुभप्रद है॥ ४१ ॥

रतिकुण्डे नरः स्नात्वा पश्चात् कन्दर्पकुण्डके।
स्नातव्यं तद्दिने देवि मिथुनेन प्रयत्नतः॥ ४२ ॥

हे देवि! स्त्री-पुरुष साथ रहकर [ग्रन्थिबन्धन करके] पहले रति-कुण्डमें, पीछे कामदेवकुण्डमें उसी दिन प्रयत्नपूर्वक स्नान करें॥ ४२ ॥

रतिकन्दर्पयोः पूजा विधातव्या विशेषतः।
वस्त्रादिभिरलङ्कारैः सम्पूज्यौ द्विजदम्पती॥ ४३ ॥

तदुपरान्त विशेष रूपसे रति-कामदेवकी पूजा तथा वस्त्र-भूषणादिसे सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करें॥ ४३ ॥

सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुंकुमादिभिः ॥ ४४ ॥

वासोभिः विविधैः पुष्पैरर्चयेद् द्विजदम्पती।
एवं कृते न सन्देहो रतिकन्दर्पतुष्टिकृत्॥ ४५॥

ऐसा करनेसे कर्ता सब कामनाओंको प्राप्त करता है। चन्दन, अगर, कपूर, कस्तूरी, केशर [आदिसे निर्मित गन्धानुलेपन], अनेक वस्त्रों तथा विविध पुष्पोंसे सपत्नीक ब्राह्मणका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेसे रति-कामदेव कर्तापर सन्तुष्ट रहते हैं, इसमें सन्देह नहीं॥ ४४-४५॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे
अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके शंकरपार्वतीसम्वादके अन्तर्गत अयोध्याखण्डका अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

गिरिजाकुण्ड, मन्त्रेश्वर तीर्थ, शीतलास्थान, बन्दीस्थान, चुटकीस्थान, इन्द्रकुण्ड, निर्मलीकुण्ड, गुप्तहरिपीठ आदि तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य

श्रीशङ्कर उवाच

कुसुमायुधकुण्डात्तु प्रतीच्यां दिशि संस्थितम्।
तीर्थं गिरिजाकुण्डाख्यं जनाभीष्टफलप्रदम्॥ १॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—कुसुमायुधकुण्डसे पश्चिम दिशामें प्राणियोंके अभीष्ट फलको देनेवाला गिरिजाकुण्ड नामक तीर्थ विद्यमान है॥ १॥

तत्पश्चिमे प्रिये दिव्यं तीर्थं चातिमनोहरम्।
मन्त्रेश्वरमिति ख्यातं तत् स्थानं भुवि दुर्लभम्॥ २॥

हे प्रिये! गिरिजाकुण्डसे पश्चिममें अति मनोहर, दिव्य और भूमितलपर दुर्लभ मन्त्रेश्वर नामक तीर्थ है॥ २॥

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा मन्त्रेश्वरं शिवम्।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ ३॥

जो मनुष्य इस तीर्थमें स्नानकर मन्त्रेश्वरका दर्शन करता है, उसको सैकड़ों, करोड़ों कल्पोंतक आवागमनसे मुक्ति मिल जाती है॥ ३॥

पुरा रामो देवकार्यं विधायामलकर्मकृत्।
कालेन सह सङ्गम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः॥ ४॥

प्राचीनकालमें निर्मल कर्म करनेवाले महाराज श्रीरामने देवकार्योंको सम्पन्न करके कालदेवताके साथ यहींपर मन्त्रणा की थी॥ ४॥

स्वर्गं प्रति प्रयाणाय यात्राकाले नरेश्वरः।
तत्रैव स्थापितं लिङ्गं मन्त्रेश्वर इति श्रुतम्॥ ५॥

नरपति श्रीरामने स्वलोकगमनकालमें यहींपर मन्त्रेश्वर नामसे शिवलिंगको स्थापित किया था, ऐसा सुना जाता है॥ ५॥

तदुत्तरे सरो रम्यं कुमुदोत्पलमण्डितम्।
तत्र स्नानेन दानेन ब्राह्मणानां च पूजनैः॥ ६॥
अक्षयं स्वर्गमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।
मन्त्रेश्वरस्य महिमा नहि केनापि शक्यते॥ ७॥
सम्यग् वर्णयितुं देवि यदुत्तमफलप्रदम्।
मन्त्रेश्वरसमं लिङ्गं न भूतं न भविष्यति॥ ८॥

मन्त्रेश्वरके समीप ही उत्तरकी ओर कुमुद, नील कमल आदिसे सुशोभित मनोहर सरोवर है, वहाँपर स्नान, दान और ब्राह्मणपूजन करनेसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं है। मन्त्रेश्वरकी महिमाका ठीक-ठीक कोई वर्णन नहीं कर सकता। उत्तम फल देनेमें समर्थ उन मन्त्रेश्वरके समान दूसरा शिवलिंग न हुआ है और न होगा॥ ६-८॥

सुगन्धपुष्पधूपादिकुङ्कुमाद्यनुलेपनैः।
पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः॥ ९॥

चन्दन, फूल, धूप, केशरमिश्रित गन्धानुलेपन आदि अनेक उपचारोंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक सब कामनाओंको सिद्ध करनेवाले मन्त्रेश्वरका पूजन करना चाहिये॥ ९॥

एवं कृते न सन्देहो मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।
तस्य चोत्तरभागे तु शीतला वर्ततेऽनघे॥ १०॥

ऐसा करनेपर पूजकके हाथमें मुक्ति आ जाती है, इसमें शंका नहीं है। हे अनघे! मन्त्रेश्वरसे उत्तरभागमें शीतलादेवीका स्थान है॥ १०॥

तां सम्पूज्य नरो विद्वान् सर्वपापैः प्रमुच्यते।
सर्वदा पूजनं तस्याः सोमवारे विशेषतः॥ ११॥

उन शीतलादेवीका पूजन करके विद्वान् व्यक्ति सब पापोंसे छूट जाता है। सदा इनका पूजन-दर्शन करना चाहिये, सोमवारको इनका विशेष पर्वदिन है॥ ११॥

कर्तव्यं तु प्रयत्नेन नृभिः सर्वार्थसिद्धये।
विस्फोटरोगादिभये नैरस्तु समुपस्थिते॥ १२॥
कर्तव्यं पूजनं सम्यग् रोगादिभयनाशनम्।
तदुत्तरे तु तत्रैव बन्दीदेवीति विश्रुता॥ १३॥

इस दिन मनुष्योंको सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये उनका दर्शन-पूजनादि करना चाहिये। विस्फोटक (चेचक) रोगमें या किसी प्रकारका संकट आनेपर प्रयत्नसे इनका पूजन करनेसे रोग, भय, संकट आदि दूर हो जाते हैं। उन शीतलादेवी [देवकाली]-से उत्तर दिशामें वहींपर श्रीबन्दी (जालिपा)-देवीका स्थान है॥ १२-१३॥

यस्याः स्मरणमात्रेण निगडादिभयं नहि।
राज्ञा क्रुद्धेन ये बद्धाः शृङ्खलानिगडादिभिः॥ १४॥

बन्दीं संस्मृत्य ते देवीं मुक्तिं यान्ति क्षणान्नराः।
यात्रा तस्याः प्रयत्नेन कर्तव्या फलकाङ्क्षिभिः॥ १५॥
मङ्गले हि विशेषेण सर्वकामार्थसिद्धये।
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैरपि च सुव्रते॥ १६॥
नैवेद्यैर्विविधैर्वापि पूजनीया विशेषतः।
बन्दीप्रीत्यै महादेवि देयं ब्राह्मणभोजनम्॥ १७॥
एवं कृते न सन्देहः सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
तदुत्तरदिशाभागे चुटकीति प्रकीर्तिता॥ १८॥

जिन बन्दीदेवीके केवल स्मरणसे ही कारागारका भय नहीं रह जाता। राजाके क्रोधके कारण जो मनुष्य हथकड़ी-बेड़ीसे बाँधे गये हैं, वे भी बन्दीदेवीका स्मरण-आराधन करके अतिशीघ्र मुक्त हो जाते हैं। [इन] फलोंके अभिलाषियोंको सभी कामनाओं-प्रयोजनोंकी सिद्धिहेतु विशेष रूपसे मंगलवारको बन्दीदेवीकी यात्रा करनी चाहिये। चन्दन, फूल, धूप, दीप, अनेक प्रकारके नैवेद्य-फलादिसे विशेष रूपसे उनकी पूजा करनी चाहिये। बन्दीदेवीकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणोंको भोजन भी कराना चाहिये। ऐसा करनेसे सब मनोरथ सिद्ध होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। बन्दीदेवीसे उत्तर दिशामें चुटकीदेवीका स्थान है॥ १४—१८॥

वर्तते परमा सिद्धिरूपिणी स्मरणान्नृणाम्।
सुसन्दिग्धेषु कार्येषु भये वा समुपागते॥ १९॥
यस्याः स्मरणतो नृणां सर्वसिद्धिः प्रजायते।

वे चुटकीदेवी साक्षात् परम सिद्धिरूपा हैं, सन्दिग्ध सफलतावाले कार्योंमें तथा भय उपस्थित होनेपर भक्तोंके स्मरणमात्रसे उन्हें वे सर्वविध सिद्धि देनेवाली हैं॥ १९½॥

अग्रे तस्याः सदा कार्यो नृभिरङ्गुलितो ध्वनिः॥ २०॥
दीपदानं प्रयत्नेन कर्तव्यं नियतात्मभिः।
सर्वाभीष्टप्रदं नृणां दीपदानं प्रशस्यते॥ २१॥

इन देवीके समक्ष सर्वदा उपासक जनोंको चुटकी बजाना चाहिये तथा एकाग्र चित्तसे प्रयत्नपूर्वक मनुष्योंको यहाँ दीपदान करना चाहिये। चुटकीदेवीके निमित्त किया गया दीपदान अत्यन्त प्रशस्त और सभी अभीष्टोंको पूर्ण करनेवाला है॥ २०-२१॥

चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तस्या यात्रा विनिर्मिता।
तत्पश्चिमे दिशाभागे कुण्डमस्ति शतक्रतोः॥ २२॥

प्रत्येक चतुर्दशी तिथिपर इनकी यात्राका पर्व निश्चित किया गया है। चुटकीदेवीसे पश्चिम दिशामें इन्द्रदेवका कुण्ड है॥ २२॥

कार्तिके कृष्णपक्षस्य त्वमायां च विशेषतः।
तत्र स्नानेन दानेन स्वर्गलोकमवाप्नुयात्॥ २३॥

मनुष्य इन्द्रकुण्डमें कार्तिकमासमें और विशेष करके कृष्णपक्षकी अमावास्या (दीपावली)-के अवसरपर स्नान-दानादि करनेसे स्वर्गलोकको प्राप्त करता है॥ २३॥

ततः पश्चिमदिग्भागे निर्मलीकुण्डमुत्तमम्।
ब्रह्महत्याभयाद् भीतो वृत्रं हत्वा शतक्रतुः॥ २४॥
यत्रागत्य पुरा देवि वज्री निर्मलतां गतः।
अन्ये च मनुजाः पापाः सुरापा गुरुतल्पगाः॥ २५॥
अत्र स्नानेन दानेन निर्मलाः स्युर्न संशयः।
अन्यानि यानि पापानि ब्रह्महत्यासमानि च॥ २६॥
तानि सर्वाणि नश्यन्ति निर्मलीकुण्डमज्जनात्।
कुण्डस्य वार्षिकी यात्रा श्रावणे पूर्णिमातिथौ॥ २७॥

इन्द्रकुण्डसे पश्चिम दिशामें उत्तम निर्मलीकुण्ड है, जहाँपर प्राचीन कालमें इन्द्रदेव वृत्रासुरको मारकर ब्रह्महत्याके भयसे

आये और स्नानादि करके निर्मल (पापरहित) हो गये थे। इस प्रकारके दूसरे भी पापी मनुष्य—मद्यपी, गुरुपत्नीगामी आदि यहाँ स्नान-दान करके पापोंसे रहित, निर्मल हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। दूसरे भी ब्रह्महत्याके समान जितने पाप हैं, वे सबके सब निर्मलीकुण्डके स्नानसे नष्ट हो जाते हैं। इस निर्मलीकुण्डकी वार्षिक यात्रा श्रावणकी पूर्णमासीको होती है॥ २४—२७॥

तीर्थं तदुत्तरे श्रेष्ठं गोप्रताराभिधं महत्।
विष्णुस्थानं च तत्रैव नाम्ना गुप्तहरिः स्मृतः॥ २८॥

निर्मलीकुण्डसे उत्तर दिशामें गोप्रतार नामक अत्युत्तम महातीर्थ है। वहींपर गुप्तहरि नामसे प्रसिद्ध विष्णुभगवान्‌का स्थान है॥ २८॥

पुरा देवासुरे युद्धे सङ्ग्रामे भृशदारुणे।
दैत्यैर्वरमदोत्सिक्तैर्देवा युधि पराजिताः॥ २९॥

प्राचीनकालमें अतिभयंकर देवासुरसंग्राममें वरके कारण मदोन्मत्त दैत्योंने देवताओंको युद्धमें पराजित कर दिया था॥ २९॥

तेषां पलायमानानां देवानामग्रणीर्हरः।
पुरस्कृत्य च तान् सर्वान् तथा वै कमलासनम्॥ ३०॥
क्षीरोदशायिनं विष्णुं शेषपर्यङ्कशायिनम्।
लक्ष्म्योपविष्टया पार्श्वे चरणाम्बुजहस्तया॥ ३१॥
नारदाद्यैर्मुनिगणैरुद्गीतगुणगौरवम्।
गरुडेन पुरःस्थेनानिशं प्रांजलिना स्तुतम्॥ ३२॥
बिभ्रन्तं कुण्डले शुभ्रे कर्णाभ्यां मौक्तिकोज्ज्वले।
शङ्खचक्रधरं देवं श्वेतद्वीपनिवासिनम्॥ ३३॥
किरीटिनं पद्महस्तं वनमालाविभूषितम्।
शरणं स जगामाशु विनीतात्मा स्तुवन्निति॥ ३४॥
तस्मिन्नवसरे देवि सर्वदेवगणैरहम्।

उन भागते हुए देवताओंका अग्रणी होकर मैं शंकर उन

देवताओं तथा ब्रह्माजीको भी आगे करके श्रीविष्णुके समीप गया। [देवताओंसहित मैंने वहाँ जाकर देखा कि] भगवान् श्रीविष्णु क्षीरसागरमें शेषरूपी पर्यंकपर शयन कर रहे हैं। उनके पार्श्वभागमें अवस्थित देवी महालक्ष्मी अपने हाथोंसे श्रीहरिके चरणकमलोंकी सेवा कर रही हैं। नारद आदि मुनिगण भगवान्के गौरवपूर्ण गुणोंका गान कर रहे हैं। श्रीहरिके समक्ष अवस्थित गरुड़देव हाथ जोड़कर निरन्तर स्तवन कर रहे हैं। उन श्वेतद्वीपाधिपति श्रीहरिने अपने कानोंमें झिलमिलाते मोतियोंवाले शुभ्र कुण्डलोंको तथा हाथोंमें शंख, चक्र, [गदा] और कमलको धारण कर रखा है। मुकुट और वनमालासे शोभायमान उन श्रीहरिकी शरणमें देवताओंसहित मैं (शिव) शीघ्र ही उपस्थित हुआ तथा विनयपूर्वक स्तवन करने लगा। हे देवि! उस समय समस्त देवताओंके साथ मैंने [उन परमपुरुषका स्तवन इस प्रकारसे किया—] ॥ ३०—३४$^{1}/_{2}$ ॥

ईश्वर उवाच

नमस्तस्मै यमीक्षन्ते योगिनो गतमृत्यवः ॥ ३५ ॥
परमं पुरुषं पारे तमसां महतां तथा।

ईश्वर (शिव) बोले—मृत्युका अतिक्रमण करनेवाले योगिजन जिनका साक्षात्कार करते हैं, जो महदादि तत्त्वों एवं तमोगुणसे परे हैं, उन परमपुरुषको नमस्कार है ॥ ३५$^{1}/_{2}$ ॥

यज्ञाय यज्ञहविषे ऋग्यजुःसाममूर्तये ॥ ३६ ॥

यज्ञरूप, यज्ञसाधनभूत हविष्यरूप तथा ऋग्-यजुः-सामवेद-स्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ३६ ॥

नमः सरस्वतीवास हंसायाक्षररूपिणे।
सत्याय धर्मनिधये क्षेत्रज्ञायामृतात्मने ॥ ३७ ॥

साङ्ख्ययोगप्रतिष्ठाय नमो मोक्षैकहेतवे।
घोराय मायानिधये सहस्रशिरसे नमः॥ ३८॥

हे सरस्वतीके अधिष्ठान! हंसरूप, अविनाशी, धर्मनिधि, अमृतरूप, सांख्ययोगमें प्रतिष्ठित, मोक्षके एकमात्र हेतु, घोर रूपवाले, मायाके निधान तथा सहस्र सिरोंवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है॥ ३७-३८॥

योगनिद्रात्मने नाभिपद्मोद्भूतजगत्सृजे।
नमः सलिलरूपाय कारणाय जगत्सृजे॥ ३९॥

योगनिद्राका आश्रय लेनेवाले, नाभिकमलसे उत्पन्न होकर संसारको रचनेवाले ब्रह्मारूप, जगत्-रचनाके कारण आप जलरूपको नमस्कार है॥ ३९॥

कार्यघ्नायाथ बलिने जीवाय परमात्मने।
गोप्त्रे प्राणाय भूतानां नमो विश्वाय वेधसे॥ ४०॥

[संसाररूप] कार्यका नाश करनेवाले, सबसे बलवान्, जीवरूप परमात्मा, समस्त प्राणियोंके रक्षकरूप, जगत्रूप तथा ब्रह्मारूप आपको नमस्कार है॥ ४०॥

दृप्ताय सिंहवपुषे दैत्यसंहारकारिणे।
वीर्यायानन्तमनसे जगद्भावभृते नमः॥ ४१॥

प्रचण्ड सिंहरूप धारण करनेवाले, दैत्योंके संहारक, शक्तिरूप, अनन्त मनोरूप तथा स्वयं जगद्रूपमें परिणमित होनेवाले आपको नमस्कार है॥ ४१॥

संसारहन्त्रे मोहाय ज्ञानाय तिमिरच्छिदे।
अचिन्त्यधाम्ने गुप्ताय रुद्राय च द्विजाय च॥ ४२॥

संसारका संहार करनेवाले, मोहरूप, मायान्धकारके नाशक ज्ञानरूप, अचिन्त्य तेजवाले, गुप्तरूप, रुद्ररूप तथा द्विजरूपको स्वीकार करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ४२॥

शान्ताय सुखकल्लोलकैवल्यपददायिने।
सर्वभावातिरिक्ताय नमः सर्वात्मने तथा॥ ४३॥

शान्तरूप, सुखकी लहरियोंसे पूर्ण कैवल्यपदप्रदायक, समस्त भावोंसे परे सर्वात्मारूप आपको नमस्कार है॥ ४३॥

इन्दीवरदलश्यामं स्फुरत्किंजल्कविभ्रमे।
बिभ्राणं वाससी विष्णुं नौमि नेत्ररसायनम्॥ ४४॥

नीलकमलदलके तुल्य श्याम वर्णवाले, कमलकिंजल्क-सी आभावाले, कान्तिमय पीत वस्त्रोंको धारण किये हुए तथा नेत्रोंको रसायन अर्थात् अमृतवत् प्रतीत होनेवाले श्रीविष्णुको नमस्कार है॥ ४४॥

श्रीशङ्कर उवाच

मया स्तुतः प्रसन्नात्मा वरदो गरुडध्वजः।
दृशा सर्वान् विधायाथ कृतकृत्यान् कृपान्वितः॥ ४५॥
उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयावनतान् सुरान्।

श्रीशंकरजी कहते हैं—इस प्रकार मेरे द्वारा स्तुति किये जानेपर वर देनेवाले करुणामय गरुड़ध्वज भगवान् श्रीहरिने कृपापूर्ण कटाक्षोंसे सभी देवोंको कृतकृत्य कर दिया और विनयसे नतमस्तक देवोंके प्रति मधुर वाक्योंसे श्रीभगवान् कहने लगे—॥ ४५ १/२॥

श्रीभगवानुवाच

जानामि विबुधाः सर्वमभिप्रायं समाधितः॥ ४६॥

श्रीभगवान् बोले—हे देवतागण! मैंने ध्यान-समाधिसे ही आप सभीके अभिप्रायोंको जान लिया है॥ ४६॥

दैत्येन्द्रैर्विक्रमाक्रान्तं पदं समरदर्पितैः।
सबलैर्बलहीनानां प्रतापविजिताखिलैः॥ ४७॥

युद्धमें उन्मत्त होकर प्रबल प्रतापसे सबको जीतनेवाले बलिष्ठ दैत्यनायकोंने आप बलहीन लोगोंका पद अपने विक्रमसे छीन लिया है॥ ४७॥

साम्प्रतं तु विधास्यामि तपो युष्मद्बलाय वै।
अयोध्यानगरीं गत्वा करिष्ये तप उत्तमम्।
गुप्तो भूत्वा भवत्तेजोविवृद्ध्यै दैत्यशान्तये॥ ४८॥

अब आप सबके तेज तथा बलकी वृद्धिके लिये और दैत्योंको शमित करनेके लिये मैं अवश्य ही तपस्याका आश्रय लूँगा तथा अयोध्यानगरीमें जाकर गुप्त होकर मैं उत्तम तप करूँगा॥ ४८॥

भवन्तश्च तपस्तीव्रं कुर्वन्त्वमलमानसाः।
अयोध्यां प्राप्य तां मेध्यां दैत्यनाशाय सत्वरम्॥ ४९॥

हे देवतागण! निर्मल मनवाले आप लोग भी उस पवित्रतम अयोध्यापुरीमें जाकर दैत्योंके नाशके लिये कठिन तपस्यामें शीघ्र ही लग जाइये॥ ४९॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके शंकर-पार्वती-सम्वादके अन्तर्गत अयोध्याखण्डका उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

गुप्तहरि तथा चक्रहरि नामक तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य, गोप्रतारतीर्थकी महिमा एवं श्रीरामके महाप्रयाणका उपक्रम

श्रीशङ्कर उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवान् देवो गरुडवाहनः।
अयोध्यामागतः क्षिप्रं चकार तप उत्तमम्॥ १॥

श्रीशंकरजीने कहा—गरुड़वाहन भगवान् नारायणदेव इस प्रकार देवताओंको कहकर अन्तर्धान हो गये तथा अयोध्यापुरीमें आकर शीघ्र ही उत्तम तप करने लगे॥ १ ॥

गुप्तो भूत्वा यदा विष्णुः सुरतेजोविवृद्धये।
तेन गुप्तहरिर्नाम देवो विख्यातिमागतः॥ २ ॥

जब विष्णुभगवान् देवताओंकी तेजोवृद्धिके हेतु तपके लिये गुप्त हुए, इसी कारण तबसे उनका नाम 'गुप्तहरि' ऐसा प्रसिद्ध हो गया॥ २ ॥

आगतस्य हरेः पूर्वं यत्र हस्ततलाच्च्युतम्।
सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं तेन चक्रहरिः स्मृतः॥ ३ ॥

श्रीहरिके तपके लिये आनेपर जिस स्थानमें सबसे पहले उनके हाथसे उनका सुदर्शनचक्र भूमिपर गिरा, इसी कारण [वहाँ स्थित दूसरे विग्रहका] नाम 'चक्रहरि' ऐसी प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ॥ ३ ॥

तयोर्दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।
हरेस्तेन प्रभावेण देवाः प्रबलतेजसः॥ ४ ॥
जित्वा दैत्यान् रणे सर्वान् सम्प्राप्य स्वपदान्यथ।
रेजिरे विपुलानन्दाः सुरा आनन्दसम्पदम्॥ ५ ॥

इन दोनों गुप्तहरि और चक्रहरिके केवल दर्शनसे ही मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है। भगवान्‌के उस तपोबलके प्रभावसे देवता लोग प्रबल तेजसे युक्त हो गये तथा दैत्योंको युद्धमें जीतकर अपने-अपने पदोंको प्राप्त करके विपुल आनन्दसे पूर्ण होकर सुख-सम्पत्तियोंका भोग करने लगे॥ ४-५ ॥

ततः सर्वे समेत्याशु बृहस्पतिपुरःसराः।
देवाः सेन्द्रा नमन्मौलिमालार्चितपदाम्बुजम्॥ ६ ॥

हरिं द्रष्टुमथागच्छन्नयोध्यां तु समुत्सुकाः।
आगत्य च पुनः स्तुत्वा नानाविधिगुणादरम्॥ ७॥
भावपुष्पैः समभ्यर्च्य नत्वा प्रांजलयस्तदा।
हरिमेकाग्रमनसा ध्यायन्तो ध्याननिष्ठिताः॥ ८॥

इसके पश्चात् शीघ्र ही बृहस्पतिजीको आगे करके इन्द्रसहित सभी देवगण प्रणाम करते भक्तोंकी शिरोमालाओंसे पूजित चरण-कमलवाले श्रीहरिके दर्शनार्थ बड़ी उत्कण्ठासे अयोध्यापुरीमें आ गये। देवगण वहाँ आकर अनेकविध गुणोंका आदरपूर्वक स्तवन-वर्णन करने लगे और भावपुष्पोंसे भलीभाँति पूजा करके उन्होंने अंजलि बाँधकर प्रणाम किया, तदुपरान्त ध्याननिष्ठ होकर वे देवता एकाग्र मनसे श्रीहरिका अनुचिन्तन करने लगे॥ ६—८॥

ज्ञात्वागतान् समालोक्य भक्त्या परमया सुरान्।
प्रत्यक्षं प्राह विश्वात्मा पीतवासा जनार्दनः॥ ९॥

जगत्के आत्मा पीताम्बरधारी जनार्दन भगवान् उत्कट भक्तियुक्त देवोंको [दर्शनहेतु] आया हुआ जानकर प्रत्यक्ष होकर उनसे कहने लगे— ॥ ९॥

श्रीभगवानुवाच

भो भो देवा जितारातिबला दिष्ट्या हि संगताः।
अधुना भवतामिष्टं किं करोमि सुरा अहम्॥ १०॥
तद् ब्रूथ यूयं त्वरिताः किं विलम्बेन निर्भयाः।

श्रीभगवान् बोले—हे देवगण! आप सबने परस्पर मिलकर शत्रुसेनाको जीत लिया और भाग्यवश हम लोग आज साथ-साथ हैं। हे देवताओ! अब मैं आप लोगोंका क्या अभीष्ट सिद्ध करूँ, निर्भय होकर शीघ्रताके साथ तुम लोग अपना मनोरथ बताओ, विलम्ब मत करो॥ १०१/२॥

देवा ऊचुः

भगवन् देवदेवेश त्वयि पश्यति सर्वशः॥ ११॥

सर्वं समभवत्कार्यं यत्र त्वं नो जगद्गुरो।
तथापि सर्वदा भाव्यं निस्तन्द्रेण त्वया विभो॥ १२॥
अस्मद्रक्षार्थमात्रेण विजितेन्द्रियवर्त्मना।
एवमेव सदा कार्यं शत्रुपक्षविनाशनम्॥ १३॥

देवगण बोले—हे देवोंके स्वामी! हे भगवन्! आपके अवलोकनमात्रसे हम लोगोंका समस्त कार्य सब प्रकारसे सिद्ध हो गया। हे जगद्गुरो! हमारे सहायक यदि आप हैं, तो हम लोगोंको और क्या चाहिये? तो भी हे प्रभो! इन्द्रियजित् आप हम लोगोंकी रक्षाहेतु सावधानीपूर्वक सदा सन्नद्ध रहें और इसी प्रकार हमारे शत्रुपक्षका सदा संहार करते रहें॥ ११-१३॥

श्रीभगवानुवाच

एवमेतद् विधास्यामि भवतामरिसंक्षयम्।
श्रीमतां तेजसो वृद्धिं करिष्यामि महासुराः॥ १४॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे देवशिरोमणियो! आप लोगोंके शत्रुओंका संहार ऐसे ही मैं [निरन्तर] करता रहूँगा तथा आप श्रीमान् देवताओंके तेजकी वृद्धि करता रहूँगा॥ १४॥

कथेयं च सदा ख्यातिं लोके यास्यति चोत्तमा।
अहं नाम्ना गुप्तहरिर्देवो भुवनविश्रुतः॥ १५॥

संसारमें यह उत्तम कथा सदा प्रसिद्ध रहेगी तथा मैं 'गुप्तहरि' इस नामसे जगत्‌में विख्यात होऊँगा॥ १५॥

मदीयं परमं गुह्यं स्थानं ख्यातिं समेष्यति।
अत्र यः प्राणिनां श्रेष्ठः पूजां गुप्तहरेर्मम॥ १६॥
करोति परया भक्त्या स याति परमां गतिम्।
अत्र यः कुरुते दानं यथाशक्त्या जितेन्द्रियः॥ १७॥
स स्वर्गमतुलम्प्राप्य न शोचति कदाचन।

मेरा यह गुप्त स्थान भी भली-भाँति प्रसिद्ध होगा। यहाँ जो

उत्तम जन 'गुप्तहरि' रूपमें स्थित मेरी पूजा परमभक्तिके साथ करेंगे, वे उत्तम गतिको प्राप्त होंगे। यहाँ जो जितेन्द्रिय होकर यथाशक्ति दान करेगा, वह अनुपम स्वर्गको पाकर कभी भी शोक-ग्लानिका अनुभव नहीं करेगा॥ १६—१७१/२ ॥

अत्र मत्प्रीतये देवाः प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः॥ १८॥
दातव्या गौः प्रयत्नेन सवत्सा विधिपूर्वकम्।
स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरा वस्त्रद्वयसमावृता॥ १९॥
काँस्योपदोहना ताम्रपृष्ठी बहुगुणान्विता।
रत्नपुच्छा च नव्या च घण्टाभरणभूषिता॥ २०॥

हे देवताओ! धर्माभिलाषी जनोंको चाहिये कि वे यहाँपर मेरी प्रसन्नताके लिये प्रयत्नपूर्वक विधिके अनुसार सवत्सा गौका दान करें। उस गौके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े हों। घण्टा आदि अलंकरणों एवं दो वस्त्रोंसे उसे विभूषित करना चाहिये। उसकी पीठको ताम्र एवं पूँछको रत्नोंसे मण्डित करना चाहिये। वह नूतन अर्थात् पहले न दी गयी हो तथा बहुत-से उत्तम लक्षणों (दुग्धप्राचुर्यादि)-से युक्त हो। गौके साथ काँसेका दोहनपात्र भी दिया जाना चाहिये॥ १८—२० ॥

अर्चिता गन्धपुष्पाद्यैः सुप्रसन्ना च निर्व्रणा।
द्विजाय वेदविदुषे गुणिने निर्मलात्मने॥ २१॥

इस प्रकारके लक्षणों और उपकरणोंसे समन्वित, व्रणशून्य तथा प्रसन्न मनवाली गौकी गन्ध-पुष्पादिसे पूजा करके उसे वेदवेत्ता, सद्गुणसम्पन्न तथा निर्मल चित्तवाले द्विजको प्रदान करना चाहिये॥ २१ ॥

विष्णुभक्ताय विदुषे त्वानृशंस्यरताय च।
ब्राह्मणाय तु गौर्देया सर्वत्र सुखभाग्भवेत्॥ २२॥

दयाधर्मका आचरण करनेवाले, विद्वान् एवं विष्णुभक्त ब्राह्मणको ही गौ प्रदान करे, ऐसा करनेपर देनेवालेको सर्वत्र सुखकी प्राप्ति

होती है॥ २२॥

न देया द्विजमात्राय दातारं सोऽप्यधो नयेत्।
मत्प्रीतयेऽत्र दातव्या निर्मलेनान्तरात्मना॥ २३॥

जो केवल जातिसे ही ब्राह्मण हो, [ब्राह्मणोचित सदाचार जिसमें न हो]— ऐसे व्यक्तिको गोदान न करे, क्योंकि वह तो देनेवालेको भी नीच गति देगा। यहाँ मेरी प्रसन्नताहेतु शुद्ध चित्तसे गोदान करना चाहिये॥ २३॥

सर्वकामविशुद्ध्यर्थं यैर्वा मद्भक्तितत्परैः।
तेषां स्वर्गोऽक्षयो नित्यं मुक्तिः करतले स्थिता॥ २४॥

समस्त कामनाओंकी विशुद्धिहेतु अर्थात् चित्तको निर्मल बनानेके लिये, मेरी भक्तिमें तत्पर जिन लोगोंने यहाँपर गोदान किया है, उनको तो अक्षय स्वर्गसुख नित्य सुलभ है तथा मुक्ति मानो उनके हाथमें ही स्थित है॥ २४॥

तथा चक्रहरेः पीठे मत्प्रीत्यै दानमुत्तमम्।
जपहोमादिकं चापि कर्तव्यं यत्नतो नरैः॥ २५॥

वैसे ही चक्रहरिपीठमें भी मेरी प्रसन्नताके लिये उत्तम दान, जप, होमादि सत्कार्य मनुष्योंको यत्नपूर्वक करना चाहिये॥ २५॥

भवन्तोऽपि विधानेन यात्रां कुरुत सत्तमाः।
अत्र स्नात्वा विधानेन द्रष्टव्यो हि प्रयत्नतः॥ २६॥
देवो गुप्तहरिर्नाम सर्वकामार्थसिद्धिदः।

आप श्रेष्ठ देवगण भी विधानपूर्वक इन दोनों गुप्तहरि और चक्रहरि तीर्थोंकी यात्रा करें तथा यहाँ विधिवत् स्नान करके समस्त कामनाओंको सिद्धि प्रदान करनेवाले गुप्तहरिदेवका प्रयत्नपूर्वक दर्शन करें॥ २६½॥

श्रीशङ्कर उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः पीताम्बरधरोऽच्युतः॥ २७॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—पीताम्बरधारी अच्युतभगवान् देवगणोंसे ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये॥ २७॥

देवा अपि विधानेन कृत्वा यात्रां प्रयत्नतः।
अयोध्यायां स्वसान्निध्यं चक्रुर्गुणविमोहिताः॥ २८॥

[श्रीगुप्तहरि–चक्रहरिदेवके] गुणोंसे मोहित देवगण भी विधानपूर्वक यत्नसे यात्रा करके अयोध्यापुरीमें निवास करने लगे॥ २८॥

तदाप्रभृति तत्स्थानं भो देवि भुवि पप्रथे।
कार्तिक्यां तु विशेषेण यात्रा साम्वत्सरी भवेत्॥ २९॥

हे देवि! तभीसे यह स्थान भूमितलपर प्रसिद्ध हुआ। कार्तिकमासकी पूर्णमासीको विशेष रूपसे यहाँकी वार्षिकी यात्रा होती है॥ २९॥

स्नात्वा देवोऽर्चनीयोऽत्र सर्वकामफलप्रदः।
एवं यः कुरुते यात्रां विष्णुलोके स मोदते॥ ३०॥

यहाँ स्नान करके समस्त कामनाओंको फलीभूत करनेवाले देव (गुप्तहरि)-की अर्चना करनी चाहिये। इस प्रकारसे जो मनुष्य यात्रा करता है, वह विष्णुलोकमें सुखी होता है॥ ३०॥

तस्माद् गुप्तहरेः स्थानादुत्तरे वर्तते महत्।
गोप्रताराभिधं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्॥ ३१॥

उन गुप्तहरिदेवके स्थानसे उत्तर दिशामें सब पापोंका उन्मूलन करनेवाला गोप्रतार (गुप्तारघाट) नामक महान् तीर्थ है॥ ३१॥

यत्र स्नानेन दानेन न शोचति नरः क्वचित्।
गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥ ३२॥

जहाँ स्नान कर लेनेसे तथा दान दे देनेसे मनुष्यको कोई शोक नहीं रहता है। गोप्रतारके समान दूसरा तीर्थ न तो हुआ है और न होगा॥ ३२॥

वाराणस्यां यथा देवि वर्तते मणिकर्णिका।
उज्जयिन्यां यथा चैव महाकालनिकेतनम्॥ ३३॥
नैमिषे चक्रवापी तु यथा तीर्थोत्तमा स्मृता।
अयोध्यायां तथा देवि गोप्रताराभिधं महत्॥ ३४॥

हे देवि! काशीमें जैसे मणिकर्णिका, उज्जैनमें महाकालेश्वर-क्षेत्र तथा नैमिषारण्यमें चक्रवापी सर्वोत्तम तीर्थ है, उसी प्रकार अयोध्यापुरीमें गोप्रतार नामक महातीर्थ सर्वश्रेष्ठ है॥ ३३-३४॥

यत्र रामाज्ञया देवि साकेतनगरीजनः।
जगाम स्वर्गमतुलं निमज्य परमाम्भसि॥ ३५॥

हे देवि! जहाँपर साकेतनगरीके समस्त जन (कीट-पतंगादितक) श्रीरामकी आज्ञासे अत्युत्तम जलमें गोता लगाकर अनुपम स्वर्ग [सान्तानिक]-लोकको चले गये॥ ३५॥

श्रीपार्वत्युवाच

कथं जगाम स स्वर्गं साकेतनगरीजनः।
कथं च राघवो विद्वान्नेतत् कथय सुव्रत॥ ३६॥

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे सुव्रत! अयोध्यापुरीके वे समस्त जन तथा विद्वान् श्रीरामचन्द्रजी किस प्रकार स्वर्गको गये?॥ ३६॥

श्रीशङ्कर उवाच

सावधाना कथामेतां प्रिये शृणु सविस्तरम्।
यथा जगाम रामोऽसौ स्वर्गं स च पुरीजनः॥ ३७॥

श्रीशंकरजीने कहा—हे प्रिये! सावधान होकर विस्तारवाली इस कथाको सुनो! जिस प्रकार कि श्रीराम तथा अयोध्यापुरीके निखिल जनोंने स्वर्गारोहण किया॥ ३७॥

पुरा रामो विधायैव देवकार्यमतन्द्रितः।
स्वर्गं गन्तुं मनश्चक्रे भ्रातृभ्यां सह धीरधीः॥ ३८॥

पूर्वकालमें आलस्यरहित होकर देवकार्योंको सम्पन्न करके

सुस्थिर निश्चयवाले श्रीरामने भाइयोंके साथ स्वर्ग जानेकी इच्छा की॥ ३८॥

ततो निश्चित्य चारेण वानराः कामरूपिणः।
ऋक्षगोपुच्छरक्षांसि समुत्पेतुरनेकशः॥ ३९॥

स्वेच्छित रूप धारण करनेवाले वानरोंने गुप्तचरोंद्वारा जब [रामके स्वर्गारोहणको] निश्चित रूपसे जान लिया तो वे सभी भालू, लम्बी पूँछवाले वानर तथा राक्षसगण उछलते-कूदते आ पहुँचे॥ ३९॥

देवगन्धर्वपुत्राश्च त्वष्टपुत्राश्च वानराः।
रामक्षयं विदित्वा तु सर्व एव समागताः॥ ४०॥

देवों, गन्धर्वों तथा त्वष्टाके पुत्र, जो समस्त वानरगण थे, वे श्रीरामके स्वर्गारोहणके समाचारको सुनकर [श्रीरामके पास] आ गये॥ ४०॥

ते राममनुगत्योचुः सर्वे वानरयूथपाः।
तवानुगमने राजन् सम्प्राप्ताः स्म त्विहानघ॥ ४१॥

उन वानरसेनापतियोंने अनुगत भावसे श्रीरामसे कहा—हे राजन्! हे अनघ! आपका अनुगमन करनेके लिये हम लोग आये हैं॥ ४१॥

यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषर्षभ।
सर्वे खलु हताः स्यामो दण्डेन महता नृप॥ ४२॥

हे पुरुषोत्तम राम! यदि आप हम लोगोंको विना साथ लिये ही चले जायँगे तो हे प्रजापालक! हम सभी [इस उपेक्षारूप] महादण्डसे ही प्राण छोड़ देंगे॥ ४२॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषामृक्षवानररक्षसाम्।
विभीषणमुवाचाथ राघवः श्लक्ष्णया गिरा॥ ४३॥

तब रघुनन्दनने भालू, वानर तथा राक्षसोंकी ऐसी कठोर प्रतिज्ञा सुनकर स्नेहभरी वाणीसे विभीषणसे कहा—॥ ४३॥

यावत्प्रजा धरिष्यन्ति तावदेव विभीषण।
कारयस्व महद्राज्यं लंकां त्वं परिपालय॥ ४४॥

हे विभीषण! जबतक इस लोकमें प्रजागण रहेंगे, तबतक आप इस महान् राज्यका उपभोग कीजिये और लंकापुरीका पालन कीजिये॥ ४४॥

स्थापितस्त्वं सखित्वेन नान्यत् कुर्याद् वचो मम।
प्रजां त्वं रक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि॥ ४५॥

आपको मैंने सखाभावसे स्थापित किया है, अतः मेरी आज्ञाका उल्लंघन मत कीजिये। धर्मपूर्वक प्रजाजनोंकी रक्षा कीजिये, अब [प्रतिकूल] उत्तर मत दीजियेगा॥ ४५॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो हनूमन्तमथाब्रवीत्।
वायुपुत्र चिरंजीव मा प्रतिज्ञां वृथा कुरु॥ ४६॥

विभीषणसे ऐसा कहकर श्रीरामने श्रीहनुमान्‌जीसे कहा—हे चिरंजीवी वायुपुत्र! मेरी प्रतिज्ञाको वृथा मत करो॥ ४६॥

यावल्लोका वदिष्यन्ति मत्कथां वानरर्षभ।
तावत् त्वं धारय प्राणान् प्रतिज्ञां परिपालय॥ ४७॥

हे वानरश्रेष्ठ! जबतक मेरी कथा [लोकचर्चाके माध्यमसे] संसारमें प्रचलित रहे, तबतक आप भी अपने प्राणोंको धारण कीजिये और मेरी इस प्रतिज्ञाका पालन कीजिये॥ ४७॥

मैन्दश्च द्विविदश्चैव त्वमृतप्राशिनावुभौ।
यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदेतौ धरिष्यतः॥ ४८॥

अमृतका पान करनेवाले दोनों वानर मैंद तथा द्विविद भी, जबतक संसारके प्राणी रहेंगे, तबतक [यहाँ] रहेंगे॥ ४८॥

पुत्रपौत्राश्च येऽस्माकं तान् रक्षन्त्विह वानराः।
एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थः सर्वांस्तान् ऋक्षवानरान्॥ ४९॥
मया सार्धं प्रयातेति तदान्यान् राघवोऽब्रवीत्।
प्रभातायान्तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महाभुजः॥ ५०॥

रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाब्रवीत्।
अग्निहोत्राणि यान्त्वग्रे दीप्यमानानि सर्वशः॥ ५१॥
वाजपेयान्यतन्त्राणि निर्यान्तु च ममाग्रतः।
ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निरवशेषतः।
चकार विधिवत् कर्म महाप्रास्थानिकं विधिम्॥ ५२॥

हे वानरगण! यहाँ मेरे पुत्रों तथा पौत्रोंकी रक्षा आप लोग करते रहें। इस प्रकार श्रीरामने उन भालुओं तथा वानरोंको कहकर साथ चलनेवाले अन्य (वानरों तथा प्रजाजनों आदि)-से कहा कि मेरे साथ आप लोग चलिये। रात्रिके पिछले प्रहरमें विशाल वक्षःस्थल तथा महान् भुजाओंवाले, कमलनेत्र श्रीरामने पुरोहित वसिष्ठजीसे कहा—मेरे अग्निहोत्रकी साधनभूत समस्त प्रज्वलित अग्नियाँ सबसे आगे चलें, उनके पीछे वाजपेय, राजसूय प्रभृति समस्त यज्ञ-यागादि सत्कर्म मेरे आगे चलें। ऐसा सुनकर वसिष्ठजीने ठीक-ठीक सब कुछ [श्रीरामके] कथनानुसार ही करके महाप्रयाणकालिक कर्म विधिपूर्वक सम्पादित कर दिया॥ ४९—५२॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके शंकर-पार्वती-सम्वादके अन्तर्गत अयोध्याखण्डका बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

भाइयोंसहित भगवान् श्रीरामका महाप्रयाण एवं उनके अनुगत प्रजाजनों तथा ऋक्ष-वानरादिको भगवदनुग्रहसे सन्तानक आदि लोकोंकी प्राप्ति

श्रीशङ्कर उवाच

ततः क्षौमाम्बरधरो ब्रह्मचर्यसमन्वितः।
कुशानादाय पाणिभ्यां महाप्रस्थानमुद्यतः॥ १॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—तदुपरान्त भगवान् श्रीराम रेशमी वस्त्र धारणकर ब्रह्मचर्यपूर्वक अर्थात् प्रणवाभ्यासमें तत्पर होकर हाथोंमें कुशोंको लिये हुए महाप्रस्थानके लिये तैयार हो गये॥ १॥

न व्याहरच्छुभं किंचिदशुभं वा नरेश्वरः।
निश्चक्राम स्वनगरात् सागरादिव चन्द्रमाः॥ २॥

वे महाराज राम उचित-अनुचित कुछ भी न बोलते हुए; जिस प्रकार चन्द्रमा समुद्रसे निकलते हैं, उसी प्रकार अपने नगरसे निकले॥ २॥

रामस्य सव्यपार्श्वे तु सपद्मा श्रीः समागता।
दक्षिणे ह्रीर्विशालाक्षी व्यवसायस्तथाग्रतः॥ ३॥
नानाविधान्यायुधानि धनुश्च ज्यासमन्वितम्।
अन्वव्रजँश्च काकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहाः॥ ४॥

श्रीरामके वाम भागमें कमलधारिणी श्रीलक्ष्मीजी स्थित हुईं, दक्षिण भागमें विशाल नेत्रोंवाली श्रीलज्जादेवी (या कि भगवती पृथ्वी) और सामने समस्त व्यवहार-व्यापार मनुष्योचित रूप धारणकर चल पड़े। अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र, प्रत्यंचाके सहित धनुष आदि भगवदायुध शरीरधारी होकर सबके-सब महाराज श्रीरामके पीछे-पीछे चले॥ ३-४॥

वेदा ब्राह्मणरूपेण सावित्री सव्यदक्षिणे।
ओंकारोऽथ वषट्कारः सर्वे रामं तदाव्रजन्॥ ५॥

चारों वेद ब्राह्मणरूप धारणकर तथा गायत्री, ओंकार, वषट्कार आदि भी [मूर्तिमान् होकर] श्रीरामके दाहिने-बायें भागमें साथ चले॥ ५॥

ऋषयश्च महात्मानः सर्वे चैव महीधराः।
अनुगच्छन्ति काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥ ६॥

महात्मा ऋषिगण और सभी महीधर अर्थात् ब्राह्मण स्वर्गद्वारपर उपस्थित श्रीरामके पीछे-पीछे चले॥ ६॥

तथानुयान्ति काकुत्स्थमन्तःपुरगताः स्त्रियः।
सवृद्धबालदासीकाः पार्षदा द्वाररक्षकाः॥ ७॥

उसी प्रकार वृद्ध, बालक, सेवक, पार्षद तथा द्वारपालोंके सहित रनिवासकी स्त्रियाँ श्रीरामके पीछे-पीछे चलीं॥ ७॥

सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ।
रामं व्रजन्तमागम्य रघुवंशमनुव्रताः॥ ८॥

शत्रुघ्नजीके सहित अनुगामी भरतजी भी वहाँ पहुँचकर अपने रनिवासके साथ महाप्रयाणार्थ उद्यत रघुनन्दनके पीछे चले॥ ८॥

ततो विप्रा महात्मानः साग्निहोत्राः समन्ततः।
सपुत्रदाराः काकुत्स्थमनुगच्छन्ति सर्वशः॥ ९॥

इसके अनन्तर चारों ओरसे अपनी-अपनी अग्नियों तथा पुत्र-पत्नी, परिवारके सहित सब प्रकारसे महात्मा विप्रगण उनके पीछे चले॥ ९॥

मन्त्रिणो भृत्यवर्गाश्च सपुत्राः सहबान्धवाः।
सर्वे ते सानुगाश्चैव त्वनुगच्छन्ति राघवम्॥ १०॥

पुत्र, बन्धु-बान्धव एवं अनुगामियोंके साथ मन्त्रिगण तथा भृत्यवर्ग—ये सभी श्रीरामके पीछे-पीछे चले॥ १०॥

ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः।
राघवस्यानुगा आसन् हृष्टा विगतकल्मषाः॥ ११॥

हृष्ट-पुष्ट जनोंसे घिरे हुए, प्रसन्नचित्त एवं पापरहित समस्त प्रजागण श्रीरामका अनुगमन करने लगे॥ ११॥

स्नात्वा शुक्लाम्बरधराः सर्वे प्रयतमानसाः।
कृत्वा किलकिलाशब्दमनुयाताश्च राघवम्॥ १२॥

श्रीरामके समस्त अनुयायियों (वानरों)-ने मनको वशमें करके स्नानकर श्वेत वस्त्र धारण किये और किलकिला शब्द करते हुए वे श्रीरघुनन्दनका अनुगमन करने लगे॥ १२॥

न तत्र कश्चिद्दीनोऽभून्न भीतो नापि दुःखितः।
हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे बभूवुः परमाद्भुताः॥ १३॥

उस समय वहाँपर कोई भी दीन-दुखी अथवा भयभीत नहीं था। सभी लोग हर्षित, आनन्दसे परिपूर्ण तथा विलक्षण अवस्थाको प्राप्त थे॥ १३॥

द्रष्टुकामाश्च निर्याणं राज्ञो जनपदास्तथा।
सम्प्राप्तास्तेऽपि दृष्ट्वैवं मनः स्वर्गाय चक्रिरे॥ १४॥

जनपदके जो लोग महाराज श्रीरामके निर्याण अर्थात् महाप्रयाणको देखनेकी इच्छासे आये थे, वे लोग भी ऐसा समारोह देखकर स्वर्ग जानेकी इच्छा करने लगे॥ १४॥

ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः।
आगत्य परया भक्त्या पृष्ठतः सुसमाहिताः॥ १५॥

रीछ, वानर, राक्षस और अयोध्यामें रहनेवाले लोग—ये सभी वहाँ आये और भक्तिपूर्वक [श्रीरामके] पीछे स्थित हो गये॥ १५॥

यानि भूतानि नगरे ह्यन्तर्धानं गता अपि।
राघवं तेऽप्यनुययुः स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥ १६॥

जो प्राणी नगरमें अन्तर्धान होकर रहते थे, वे भी स्वर्गारोहणार्थ उद्यत श्रीरामके पीछे-पीछे चल पड़े॥ १६॥

नासीत् सत्वमयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि किंचन।
यद्राघवं नानुयातं स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥ १७॥

अयोध्याका सूक्ष्म [अणु-परमाणुरूप] भी कोई जीव नहीं रह गया था, जो स्वर्गद्वारमें उपस्थित श्रीरामके साथ न गया हो॥ १७॥

अध्यर्धयोजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखो ययौ।
सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः॥ १८॥

श्रीरघुनन्दन पुण्यसलिला सरयूके किनारेसे प्रायः डेढ़ योजन दूर तक चलते गये, फिर पश्चिम दिशाके अभिमुख होकर उन्होंने

सरयूजीका दर्शन किया॥ १८॥

अथ तस्मिन् मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः।
सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः॥ १९॥
आययौ तत्र काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपस्थितम्।
विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिः सर्वतो वृतः॥ २०॥

इसके अनन्तर स्वर्गारोहणके अवसरपर उस तीर्थमें उपस्थित श्रीरघुनन्दनके स्वागतहेतु लोकपितामह ब्रह्माजी भी समस्त महात्मा ऋषियों एवं देवगणोंके साथ दिव्य सैकड़ों-करोड़ों विमानोंसे घिरे हुए वहाँ आ पहुँचे॥ १९-२०॥

दीपयन् सर्वतो व्योम ज्योतिर्भूतमनुत्तमम्।
स्वयम्प्रभैः सुतेजोभिर्महद्भिः पुण्यकर्मभिः॥ २१॥

ब्रह्माजी अतीव ज्योतिर्मय उस आकाश-मण्डलको और भी अधिक दीप्तिमय बना रहे थे। पुण्यकर्म करनेवाले [स्वर्गनिवासी] महापुरुष स्वयं प्रकाशित होनेवाले अपने तेजसे उस स्थानको उद्भासित कर रहे थे॥ २१॥

पुण्यवाता ववुस्तत्र गन्धवन्तः सुखप्रदाः।
सुपुष्पवृष्टिवर्षं च वायुमुक्तं महाजवम्॥ २२॥

उस समय सुगन्धित सुखप्रद पवित्र वायु बहने लगी और वायुदेवके द्वारा बड़े वेगसे सुन्दर पुष्पवर्षा की गयी॥ २२॥

गन्धर्वैरप्सरोभिश्च तस्मिन् काल उपस्थिते।
सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां समुपचक्रमे॥ २३॥

उस स्वर्गारोहणकालके आनेपर गन्धर्वों और अप्सराओंके [द्वारा भी की जाती हुई पुष्पवृष्टिके] साथ श्रीरामने अपने चरणोंसे अर्थात् बिना नाव आदिके ही सरयूजलमें प्रवेश किया॥ २३॥

पितामहस्तदा वाक्यमन्तरिक्षादभाषत।
आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद॥ २४॥

उस समय अन्तरिक्षमें विद्यमान ब्रह्माजीने श्रीरामसे कहा— हे विष्णो! आइये, आपका कल्याण हो। हे सबको मान देनेवाले! बड़े भाग्यसे आप मिले हैं॥ २४॥

भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्वकां तनुम्।
वैष्णवीं त्वं महातेजा यद् वान्यां मनसेप्सिताम्॥ २५॥

हे महातेजस्वी! देवतुल्य भाइयोंके साथ अब आप अपने वैष्णव विग्रहमें या मनमें इच्छित अन्य शरीरमें प्रवेश कीजिये॥ २५॥

त्वं हि लोकगतिर्देव न त्वां कश्चन वेत्ति वै।
ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्वपरिग्रहम्॥ २६॥
त्वमचिन्त्यमहद्भूतमक्षयं लोकसंग्रहम्।
यामिच्छसि महावीर्य तां तनुं प्रविश स्वकाम्॥ २७॥

हे देव! आप ही सम्पूर्ण लोकोंके आश्रय हैं। आपकी पुरातन पत्नी, विशाल नेत्रोंवाली भगवती महामाया (श्रीसीता)-के अतिरिक्त आपको दूसरा कोई भी परमार्थतः नहीं जान पाता; क्योंकि आप अचिन्त्य अविनाशी परम सत्तारूप हैं। अतएव हे महापराक्रमी! लोकमर्यादाके निर्वाहार्थ आप जिसमें चाहें, अपने उसी स्वरूपमें प्रवेश करें॥ २६-२७॥

पितामहस्य वचनाद् दिवमेवाविशत् स्वयम्।
दिव्यं तद् वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः॥ २८॥

पितामहके कथनसे अनुजोंके साथ सशरीर श्रीरामने अन्तरिक्षवर्ती उस दिव्य वैष्णव तेजमें ही प्रवेश किया॥ २८॥

ततो विष्णुतनुं देवाः पूजयन्तः सुरोत्तमाः।
साध्या मरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः॥ २९॥

तब अग्निदेव एवं इन्द्रदेवके सहित सभी देवगण, साध्यगण, मरुद्गण आदि श्रेष्ठ देवता—इन सभीने विष्णुरूप हुए श्रीरामका पूजा-सत्कार किया॥ २९॥

ये च दिव्या ऋषिगणाः गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
सुपर्णा नागयक्षाश्च दैत्या दानवराक्षसाः॥ ३०॥
देवाः प्रहृष्टमुदिताः सर्वे पूर्णमनोरथाः।
साधु साध्विति ते सर्वे त्रिदिवस्था बभाषिरे॥ ३१॥

अन्तरिक्षमें स्थित जो दिव्य ऋषि, गन्धर्व, अप्सराएँ, गरुड़कुल, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस, देवता आदि थे, वे सभी पूर्णमनोरथ, अतिहर्षित तथा आनन्दपूर्ण होकर साधुवाद करने लगे॥ ३०-३१॥

अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह।
एभ्यो लोकं जनौघेभ्यो दातुमर्हसि सुव्रत॥ ३२॥

इसके अनन्तर महातेजस्वी विष्णुरूप श्रीरामने ब्रह्माजीसे कहा—'हे सुव्रत! मेरे साथ आये हुए इन समस्त प्राणियोंको [यथोचित] लोकमें निवास दीजिये॥ ३२॥

इमे तु सर्वे मत्स्नेहादागताः सहबान्धवाः।
भक्ताश्च प्रीतिमन्तश्च त्यक्तात्मानोऽपि सर्वशः॥ ३३॥

ये सभी भक्त तथा प्रीतियुक्त हैं। इन्होंने अपने लौकिक सुखोंका मोह सब प्रकारसे त्यागकर अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ मेरा स्नेहवश अनुगमन किया है'॥ ३३॥

तच्छ्रुत्वा विष्णुकथितं सर्वं लोकेश्वरोऽब्रवीत्।
लोकं सन्तानकं नाम संस्थास्यन्तीह मानवाः॥ ३४॥

विष्णुके इस कथनको भलीभाँति सुनकर लोकोंके स्वामी ब्रह्माजीने कहा—'ये आपके स्नेही समस्त मनुष्य सन्तानक नामक लोकमें निवास करेंगे'॥ ३४॥

यश्च तिर्यग्गतोऽप्यत्र राममेवानुचिन्तयन्।
प्राणांस्त्यजति भक्त्या वै स सन्तानफलं लभेत्॥ ३५॥
सर्वे सन्तानकं नाम ब्रह्मलोकादनन्तरम्।

जो पशु-पक्षी आदि तिर्यक् योनियोंमें भी स्थित जीव हैं, वे भी केवल श्रीरामका ही भक्तिभावसे चिन्तन करते हुए यदि प्राणोंका त्याग करेंगे, तो वे सब भी सन्तानक-लोकको प्राप्त कर लेंगे। यह सन्तानक-लोक ब्रह्मलोकका ही निकटवर्ती है॥ ३५$^{1}/_{2}$॥

वानराश्च स्वकां योनिं राक्षसाश्चापि राक्षसीम्॥ ३६॥
यस्या विनिःसृता ये वै सुराश्च स्वतनूद्भवाः।
आदित्यतनयश्चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम्॥ ३७॥

तदनन्तर वानर [एवं रीछ] अपनी योनिमें प्रवेश कर गये अर्थात् जो जिस देवताके अंशसे उत्पन्न हुए थे, वे पुनः उसी देवरूपमें समाविष्ट हो गये। [भगवल्लीलार्थ आये] राक्षसोंने अपने पूर्व स्वरूपको प्राप्त किया। जो जिस योनि (देवस्वरूप)-से निकलकर लीलाहेतु भूमितलपर आये थे, वे उस-उस योनि अर्थात् देवस्वरूपमें प्रवेश कर गये। सूर्यपुत्र सुग्रीवने सूर्यमण्डलमें प्रवेश किया॥ ३६-३७॥

ऋषयो नागयक्षाश्च तान् सर्वान् प्रतिपेदिरे।
तथा ब्रुवति देवेशे गोप्रतारमुपस्थिताः॥ ३८॥
स जनः सरयूं भेजे परिपूर्णेन वैष्णवः।
अवगाह्य जलं सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वा प्रहृष्टवत्॥ ३९॥
मानुषं देहमुत्सृज्य ते विमानान्यथारुहन्।
तिर्यग्योनिगता ये तु प्रविश्य सरयूं तदा॥ ४०॥
देहत्यागाच्च ते सर्वे दिव्यदेववपुर्धराः।
तथान्यान्यपि सत्त्वानि स्थावराणि चराणि च॥ ४१॥
प्राश्य तत्तोयममलं देवलोकमुपागताः।
तस्मिंस्तत्र समापन्ने वानरा ऋक्षराक्षसाः॥ ४२॥
तेऽपि प्रविविशुः सर्वे देहानाक्षिप्य वै तदा।
ततः स्वर्गगताः सर्वे स्मृत्वा लोकगुरुं विभुम्॥ ४३॥
जगाम त्रिदशैस्सार्धं रामो हृष्टो महामतिः।
अतस्तद् गोप्रताराख्यं तीर्थं विख्यातिमागतम्॥ ४४॥

ऋषिगण, नाग, यक्ष आदि सबने अपनी-अपनी पूर्व योनिमें प्रवेश किया। देवोंके स्वामी ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर अर्थात् अपनी-अपनी योनिमें प्रविष्ट होकर तत्तल्लोकोंमें जानेकी अनुज्ञा मिलते ही गोप्रतारतीर्थमें उपस्थित विष्णुभक्त जनसमूहने सरयू (की धारा)-में प्रवेश किया और वे सभी परिपूर्ण वैष्णव स्वरूपमें लीन हो गये। वे सभी लोग सरयूजलमें डुबकी लगाकर हर्षपूर्वक पार्थिव देहको छोड़ करके [दिव्य देहसे] स्वर्गीय विमानोंपर आरूढ़ हो गये तथा पशु-पक्षी योनिवाले जीव सरयूमें प्रवेशकर देह त्यागनेसे दिव्य शरीरवाले हो गये। इसी प्रकार दूसरे भी स्थावर-जंगम जीव उस सत्त्वमय जलका पानकर दिव्य देहसे देवलोकगामी हुए। वहाँपर ऐसी घटना होती देखकर वानर, भालू और राक्षस भी अपने-अपने शरीरको सरयूजलमें छोड़कर लोकगुरु विभु श्रीरामका स्मरण करते हुए स्वर्ग चले गये। महाबुद्धिशाली श्रीरामने हर्षपूर्वक देवोंके साथ [यहींसे] स्वधामगमन किया था, इसलिये यह तीर्थ गोप्रतार नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ॥ ३८—४४॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे
एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-सम्वादरूप अयोध्याखण्डके
अन्तर्गत इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

गोप्रतारतीर्थकी महिमा, वहाँ अनुष्ठेय सत्कर्म एवं उनके फल तथा राजर्षि हरिश्चन्द्र एवं राजर्षि रुक्मांगदका संक्षिप्त चरित्र

श्रीशङ्कर उवाच

गोप्रतारे परो मोक्षस्तादृक् तीर्थं न विद्यते।
जन्मान्तरशतैर्वापि योगोऽयं यदि लभ्यते॥ १॥

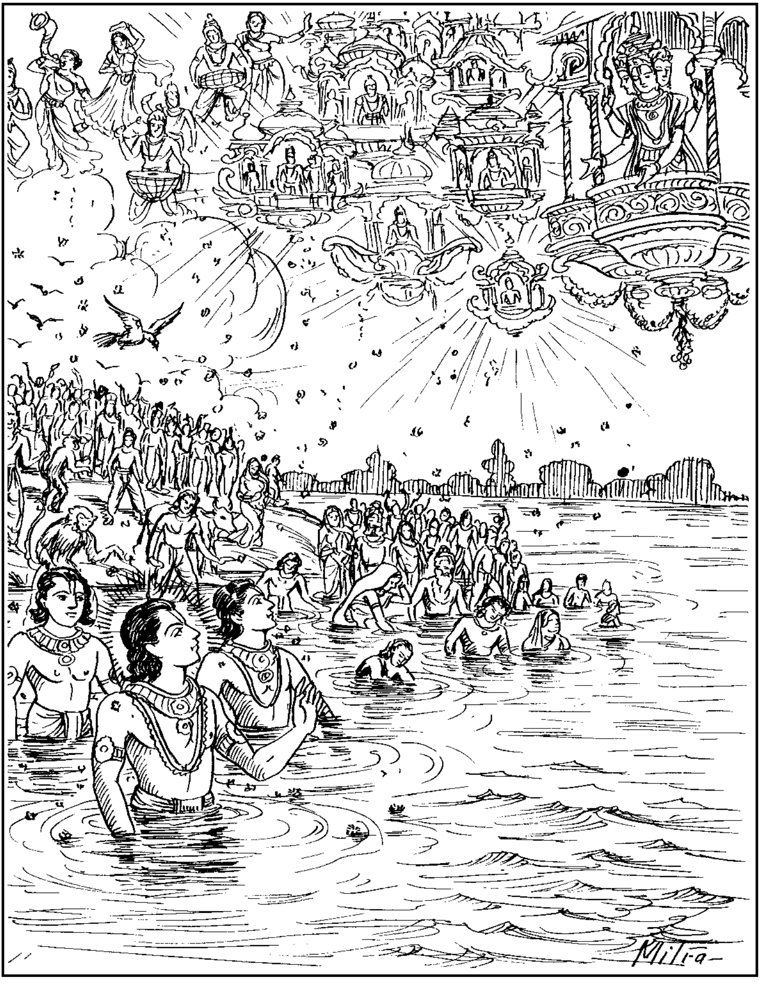

गोप्रतार-घाटपर अयोध्यावासियोंके सहित
भगवान् श्रीरामका महाप्रयाण

श्रीशंकरजी कहते हैं—गोप्रतारतीर्थमें सर्वोत्तम मोक्ष मिल जाता है। ऐसा तीर्थ भूमितलपर नहीं है। सैकड़ों जन्मोंके अनन्तर ही कदाचित् ऐसा योग [किसी] पुण्यशालीको मिल सकता है॥ १॥

तीर्थं सहस्त्रशतशो जन्मना लभ्यतेऽनघे।
गोप्रतारं न सन्देहो हरिभक्त्या स्वनुष्ठितैः॥ २॥
एकेन जन्मनाऽन्योऽपि योगं मोक्षं च विन्दति।

हे अनघे! सैकड़ों-हजारों जन्मोंतक [अपने वर्णाश्रमोचित धर्मोंका] भलीभाँति अनुष्ठान करनेपर तथा श्रीहरिकी भक्तिके प्रभावसे ही गोप्रतारतीर्थ प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है। गोप्रतारतीर्थको प्राप्त हुआ पुरुष यदि योगी अथवा मोक्षसाधक न हो, तो भी एक ही जन्ममें वह योगसिद्धि एवं मोक्षको प्राप्त कर लेता है॥ २१/२॥

गोप्रतारे नरो देवि यः स्नाति सुविनिश्चितम्॥ ३॥
स याति परमं स्थानं योगिनामपि दुर्लभम्।
कार्तिक्याञ्च विशेषेण स्नातव्यं विजितेन्द्रियैः॥ ४॥

हे देवि! यह बात सर्वथा निश्चित ही है कि गोप्रतारतीर्थमें जो स्नान करता है, उसे योगियोंके लिये भी दुर्लभ परमपदकी प्राप्ति होती है। इन्द्रियसंयमी जनोंको तो कार्तिकी पूर्णिमाके अवसरपर यहाँ विशेष रूपसे स्नान करना चाहिये॥ ३-४॥

आश्विने शुक्लपूर्णायां पितृदेवा नरास्तथा।
स्नानार्थं तु समायान्ति कल्पवासमभीप्सवः॥ ५॥

आश्विनमासकी पूर्णमासी (शरत्पूर्णिमा)-को [महीनेभरके] कल्पवासकी इच्छा रखनेवाले देवता, पितर तथा मनुष्य [इस तीर्थमें] स्नानहेतु आ जाते हैं॥ ५॥

कार्तिके मासि भो देवि सर्वे देवाः सवासवाः।
स्नातुमायान्त्ययोध्यायां गोप्रतारे विशेषतः॥ ६॥

हे देवि! कार्तिकमासमें इन्द्रके सहित समस्त देवगण अयोध्यामें और विशेषकर गोप्रतारतीर्थमें स्नानके लिये आते हैं॥ ६॥

गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।
यत्र वै तीर्थराजोऽपि स्नातुमायाति कार्तिके॥ ७॥

गोप्रतारके तुल्य तीर्थ न हुआ है, न होगा, जहाँपर कार्तिक-मासमें तीर्थराज प्रयाग भी स्नानहेतु आते हैं॥ ७॥

निष्पापः कलुषं त्यक्त्वा शुभांगः सितकंचुकः।
शुद्ध्यर्थं साधुकामोऽसौ प्रयागो नगनन्दिनि॥ ८॥

हे नगनन्दिनि! कलुषको त्यागकर निष्पाप, श्वेतवस्त्रविभूषित तथा सुन्दर कलेवर पानेके लिये तीर्थराज प्रयाग भी यहाँ आनेकी इच्छा करते हैं॥ ८॥

यानि कानि च तीर्थानि भूमौ दिव्यानि सर्वशः।
कार्तिक्यां तानि सर्वाणि गोप्रतारे वसन्ति वै॥ ९॥

इस भूमिपर सर्वत्र जितने भी दिव्य तीर्थ हैं, वे सभी कार्तिकपूर्णिमाके अवसरपर गोप्रतारमें ही निवास करते हैं॥ ९॥

गोप्रतारे जपो होमः स्नानं दानं च शक्तितः।
सर्वमक्षयतां याति श्रद्धया नियतव्रते॥ १०॥

हे दृढ व्रतधारिणी पार्वती! गोप्रतारमें श्रद्धापूर्वक शक्तिके अनुसार किये गये जप-होम, स्नान-दान आदि सभी पुण्यकर्म अक्षय हो जाते हैं॥ १०॥

कार्तिकीं प्राप्य गर्जन्ति तीर्थानि सकलान्यपि।
गोप्रतारं गमिष्यामः पापं नश्यति तत्क्षणात्॥ ११॥

सभी तीर्थ कार्तिकपूर्णिमाके अवसरपर गर्जना करते हैं कि हम गोप्रतारतीर्थमें जा रहे हैं; क्योंकि वहाँ पहुँचते ही तत्काल सब पाप नष्ट हो जाते हैं॥ ११॥

गोप्रतारे कृतं स्नानं सर्वपापौघनाशनम्।
गोप्रतारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा गुप्तहरिं विभुम्॥ १२॥
सर्वपापैः प्रमुच्येत नात्र कार्या विचारणा।
विष्णुमुद्दिश्य विप्राणां पूजनं च विशेषतः॥ १३॥
कर्तव्यं श्रद्धया युक्तैः स्नानपूर्वं यतव्रतैः।

गोप्रतारमें स्नान करनेसे सभी पापसमूह नष्ट हो जाते हैं। गोप्रतारमें स्नानकर विभु गुप्तहरिका दर्शन कर लेनेपर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। मनुष्यको चाहिये कि वह विशेष रूपसे भगवान् विष्णुके निमित्त व्रतका निष्ठासे पालन करते हुए सर्वप्रथम [गोप्रतारतीर्थमें] स्नान करे, फिर श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणपूजन करे॥ १२—१३ $^{१}/_{२}$ ॥

पयस्विनी तु गौर्देया सालङ्कारा च शक्तितः॥ १४॥
विप्राय वेदविदुषे नियमव्रतशालिने।
ब्राह्मणायातिशुचये विष्णुप्रीत्या कृतव्रतैः॥ १५॥

[गोप्रतारतीर्थमें स्नानादि करनेके उपरान्त] व्रती व्यक्ति विष्णुभगवान्‌की प्रसन्नताके लिये वेदवेत्ता, अत्यन्त पवित्र तथा शास्त्रोचित नियम-व्रतका निर्वाह करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणको यथाशक्ति अलंकृत दुधारू गायका दान करे॥ १४-१५॥

अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधान्यपि।
दातव्यानि हरेः प्रीत्यै भक्त्या परमया युतैः॥ १६॥

[व्रतशील जन] परम भक्तिभावसे युक्त होकर [गोप्रतारतीर्थमें] विष्णुकी प्रसन्नताके लिये अनेक प्रकारके अन्न और विविध वस्त्रोंका दान करे॥ १६॥

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे नर्मदायां शशिग्रहे।
तुलादानेन यत्पुण्यं तत्फलं दीपदानतः॥ १७॥

सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें तथा चन्द्रग्रहणके अवसरपर नर्मदामें तुलादान करनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्यफल

गोप्रतारमें दीपदानसे होता है॥ १७॥

घृतेन दीपकं यस्तु तिलतैलेन वा पुनः।
ज्वालयन् यत्नतो देवि हयमेधफलं लभेत्॥ १८॥

हे देवि! [यहाँ] यत्नपूर्वक घी या तेलका दीपदान करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है॥ १८॥

नानाविधानि तीर्थानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि वै।
गोप्रतारस्य तान्युच्चैः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ १९॥

भुक्ति और मुक्ति देनेवाले अनेक प्रभावशाली तीर्थ हैं, किंतु वे गोप्रतारकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नही हैं॥ १९॥

स्वर्णमालां तु यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे।
शुभां गतिमवाप्नोति त्वग्निवच्चैव दीप्यते॥ २०॥

जो व्यक्ति यहाँपर वेदज्ञ ब्राह्मणको सुवर्णमालाका दान करता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है तथा अग्निके समान तेजोदीप्त हो जाता है॥ २०॥

गोप्रताराभिधे तीर्थे त्रिलोक्यां विश्रुते प्रिये।
दत्वान्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते॥ २१॥

हे प्रिये! तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध गोप्रतारतीर्थमें विधानपूर्वक अन्नदान करनेके बाद पुनर्जन्मसे मुक्ति मिल जाती है॥ २१॥

तत्र स्नानं तु यः कुर्याद् विप्रान् सन्तर्पयेन्नरः।
सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ २२॥

जो मनुष्य वहाँ स्नान करके ब्राह्मणोंको [भोजनादिके द्वारा] सन्तुष्ट करता है, उसे सौत्रामणी यज्ञका फल मिलता है॥ २२॥

एकाहारी तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः।
यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति॥ २३॥

नियमपूर्वक कार्तिकमासभर यहाँ जो एक बार ही भोजन करके निवास करता है, उसके जीवनभरके पाप उसी समय नष्ट हो जाते हैं॥ २३॥

अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्गोप्रतारे विशेषतः।
ते विशन्ति पदं विष्णोर्निस्सन्दिग्धं च पार्वति॥ २४॥

हे पार्वती! विशेष रूपसे गोप्रतारतीर्थमें जो लोग अग्निमें प्रवेश करते हैं, वे विष्णुपदको प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २४॥

तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम्।
दीपदानं कृतं येन कार्तिके केशवाग्रतः॥ २५॥

जिसने कार्तिकमासमें भगवान् केशवके समक्ष दीपदान किया है, उसने मानो सभी यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया और सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया॥ २५॥

कुर्वन्त्यनशनं येऽत्र विष्णुभक्ताः सुनिश्चिताः।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ २६॥

जो लोग इस [तीर्थभूमि]-में अनशन व्रतका अनुष्ठान करते हैं, वे निश्चय ही विष्णुभक्त हैं और उनको सैकड़ों कल्पपर्यन्त जन्म नहीं लेना पड़ता॥ २६॥

अर्चयेद् यस्तु गोविन्दं गोप्रतारे हि मानवः।
दश सौवर्णिकं पुण्यं जायते नात्र संशयः॥ २७॥

जो मनुष्य इस गोप्रतारतीर्थमें गोविन्दका पूजन करता है, उसे दस सुवर्णमुद्राओंके दानका पुण्य मिलता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७॥

अग्निहोत्रसमो धूपो गन्धदानेन तच्छृणु।
भूमिदानेन तत्तुल्यं गन्धदानफलं स्मृतम्॥ २८॥

इस तीर्थमें धूपदान करनेसे अग्निहोत्रानुष्ठानका फल मिलता है। चन्दन-इतर आदि चढ़ानेसे जो फल मिलता है, उसे सुनो! भूमिदानके समान यहाँ गन्धदानका फल माना गया है॥ २८॥

अत्यद्भुतमिदं विद्धि स्थानमेतत् प्रकीर्तितम्।
कार्तिक्यां तु विशेषेण तत्र स्नात्वा शुचिस्मिते॥ २९॥

हे शुचिस्मिते! यह स्थान अतिविलक्षण बतलाया गया है, ऐसा जानो! कार्तिक-पूर्णिमामें यहाँके स्नानकी विशेषता है॥ २९॥

स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दशस्वर्णफलं स्मृतम्।
ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां रात्रौ जागरणं चरेत्॥ ३०॥

स्वर्गके द्वारभूत इस तीर्थमें स्नान करके मनुष्यको दस सुवर्णमुद्राओंके दानका फल मिलता है। कार्तिक शुक्ल चतुर्दशीको रातमें यहाँ जागरण करना चाहिये॥ ३०॥

उपोषितः शुचिः स्नातो विष्णुपूजनतत्परः।
दीपं दद्यात् प्रयत्नेन नानाफलविधायिनम्॥ ३१॥

मनुष्यको चाहिये कि वह पवित्र होकर स्नान करे और उपवासका नियम लेकर विष्णुका पूजन करे तथा प्रयत्नपूर्वक नानाविध फलोंको देनेवाला दीपदान करे॥ ३१॥

तावद् गर्जन्ति पुण्यानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले।
यावन्न ज्वालयेद् दीपं कार्तिके केशवाग्रतः॥ ३२॥

स्वर्गमें, मृत्युलोकमें और रसातलमें पुण्यसमूह तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक मनुष्य कार्तिकमें भगवान् केशवके समक्ष दीपक नहीं जलाता॥ ३२॥

पौर्णमास्यां प्रभाते तु स्नात्वा निर्मलमानसः।
हरिं सम्पूज्य विधिवद् विधाय श्राद्धमादरात्॥ ३३॥

[कार्तिकी] पूर्णिमाके अवसरपर निर्मल चित्तवाला [उपासक] प्रातःकाल स्नान करके विधिपूर्वक श्रीहरिका पूजनकर श्रद्धासे श्राद्ध करे॥ ३३॥

दत्वान्नं च यथाशक्त्या सन्तोष्य ब्राह्मणांस्तथा।
वस्त्रादिभिरलंकारैः सम्पूज्यौ द्विजदम्पती॥ ३४॥

तदुपरान्त यथाशक्ति अन्नदान करके ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करे

और वस्त्रादि तथा अलंकारोंसे ब्राह्मणदम्पतीका पूजन करे॥ ३४॥

विभुं गुप्तहरिं दृष्ट्वा सम्पूज्य च विशेषतः।
नमस्कृत्य तु तत्तीर्थे शुचिस्तद्गतमानसः॥ ३५॥

तदुपरान्त गुप्तहरिजीका दर्शन करे, फिर उनका विशेष पूजनकर, शुद्ध हृदयसे श्रीहरिमें मन लगाये हुए तीर्थको तथा गुप्तहरिको प्रणाम करे॥ ३५॥

स्वर्गद्वारे च विधिवन्मध्याह्ने स्नानमाचरेत्।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते॥ ३६॥

इसके अनन्तर स्वर्गके द्वारभूत इस तीर्थमें विधिवत् मध्याह्नमें स्नान करे, ऐसा करनेपर सभी पापोंसे विशुद्ध होकर वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ३६॥

यत्राशास्मो वयं सर्वे वस्तुं सुकृतकोटिभिः।
यत्रेयं सरयूर्दिव्या नदीनामुत्तमा नदी॥ ३७॥

जहाँपर सभी नदियोंमें श्रेष्ठ यह दिव्य नदी सरयू बह रही है, जहाँपर हम लोग करोड़ों पुण्योंके प्रभावसे वास करनेकी इच्छा करते हैं॥ ३७॥

यस्या दर्शनमात्रेण पापराशिर्विनश्यति।
ब्रह्मद्रवमिदं भद्रे नास्त्यस्या उपमा क्वचित्॥ ३८॥

हे कल्याणि! जिसके दर्शनमात्रसे पापराशि विनष्ट हो जाती है और जिसकी कहीं भी समानता नहीं है, यह [वही] ब्रह्मद्रव अर्थात् ब्रह्मस्वरूप जलराशि है॥ ३८॥

यस्य पादतलाज्जाता गंगा भागीरथी क्षितौ।
स्नानार्थं तु सरय्वाश्च गच्छतो वै जनस्य च॥ ३९॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य न फलं दुर्लभं भवेत्।
महिम्नः क्वापि गंगायाः पारः शास्त्रे न दृश्यते॥ ४०॥
सरय्वा महिमानं को वेत्ति लोके च पण्डितः।
यत्र नारायणो नाम्ना रामः स्नास्यति सर्वदा॥ ४१॥

जिस विष्णुरूपी ब्रह्मके चरणतल (के निर्णेजन)-से भागीरथी गंगा पृथ्वीतलमें अवतीर्ण हुई हैं, [उसी ब्रह्मके नेत्रसे उत्पन्न] सरयूमें स्नानके लिये गमन करनेवाले मनुष्यको प्रत्येक पदमें अश्वमेधका फल दुर्लभ नहीं रहता। जब गंगाजीकी ही महिमाका पार शास्त्रोंने नहीं पाया, तो सरयूजीकी महिमाको संसारमें कौन पण्डित जान सकता है, जिसमें रामनामवाले नारायण सर्वदा स्नान करते हैं॥ ३९—४१ ॥

ब्रह्मद्रवं पुनश्चात्र चिक्रीडे राघवः स्वयम्।
कैरस्य लभ्यते पारः शास्त्रतः स्थूलदृष्टिभिः॥ ४२॥

इस ब्रह्मरूपी जलमें तो स्वयं श्रीराघवने बार-बार जलक्रीडा की है, ऐसेमें स्थूल दृष्टिवाला कौन पुरुष शास्त्रोंद्वारा इसकी महिमाका पार पा सकता है!॥ ४२ ॥

पार्वत्युवाच

शंकराव्यय देवेश अयोध्या च महापुरी।
हरिश्चन्द्रेण राज्ञा तथा रुक्मांगदेन च॥ ४३॥
स्वर्गं नीता पुरी चेयं तन्मे ब्रूहि महेश्वर।

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे अविनाशी! हे देवेश! हे शंकर! [कहा जाता है कि] यह महानगरी अयोध्या महाराज हरिश्चन्द्र तथा रुक्मांगदके द्वारा स्वर्गमें पहुँचायी गयी थी। हे महेश्वर! यह कथा मुझसे कहिये॥ ४३१/२ ॥

श्रीशङ्कर उवाच

ऐक्ष्वाकवो हरिश्चन्द्रो ह्यासीत् त्रेतायुगे पुरा॥ ४४॥
धर्मात्मा पृथिवीपालः प्रोल्लसत्कीर्तिवर्धनः।
न दुर्भिक्षं न वै व्याधिर्नाकाले मरणं नृणाम्॥ ४५॥
नाधर्मरुचयः पौरास्तस्मिन् शासति पार्थिवे।
नाधयो व्याधयश्चैव नान्यायैरर्जितं धनम्॥ ४६॥

श्रीशंकरजीने कहा—पूर्वकालकी बात है, त्रेतायुगमें इक्ष्वाकुवंशी हरिश्चन्द्र [अयोध्यापुरीके महाराज] हुए, वे बड़े धर्मात्मा, पृथ्वीके

पालक तथा [अपने पूर्वजोंकी] उदार कीर्तिको बढ़ानेवाले थे। उनके राज्यमें कभी भी अन्नका अभाव, व्याधि और अकालमें मनुष्योंका मरण नहीं होता था। उनके शासनकालमें नागरिकोंकी रुचि अधर्ममें नहीं होती थी तथा शारीरिक, मानसिक रोग नहीं होते थे, अन्यायसे धनार्जन नहीं होता था॥ ४४—४६ ॥

हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेरेवं राज्यं बभूव ह।
तेन राज्ञा पुरी चेयं नीता स्वर्गं वरानने॥ ४७॥
हरिश्चन्द्रो महातेजाः सत्यधर्मसमन्वितः।
अयोध्या नगरी चेयं नरनारीसमावृता॥ ४८॥
हरिश्चन्द्रस्य सत्येन स्वर्गं नीता वरानने।
तथा रुक्माङ्गदेनापि स्वर्गं नीता तथा शृणु॥ ४९॥

राजर्षि हरिश्चन्द्रका इस प्रकारका राज्यशासन था। हे सुमुखि! वे महाराज इस पुरीको स्वर्ग ले गये। महातेजस्वी हरिश्चन्द्र सत्यधर्मपर अटल थे। हे वरानने! जैसे हरिश्चन्द्रके सत्यबलसे नर-नारियोंसे परिपूर्ण समस्त अयोध्यापुरी स्वर्गको गयी, उसी प्रकार राजा रुक्मांगद भी अयोध्यापुरीको स्वर्ग ले गये, उसे सुनो॥ ४७—४९ ॥

राजा रुक्मांगदो वीरो विष्णुव्रतपरायणः।
अयोध्यायां महापुर्यां पालयामास स प्रजाः॥ ५०॥

राजा रुक्मांगद वीर एवं विष्णुभक्तिमें परिनिष्ठित थे। उन्होंने महापुरी अयोध्याका प्रजाजनोंके सहित पालन किया॥ ५० ॥

पुत्रो धर्माङ्गदस्तस्य सर्वधर्मसमन्वितः।
शूरश्च कृतविद्यश्च पितृभक्तिसमन्वितः॥ ५१॥

उनका पुत्र धर्मांगद सभी धर्मोंसे सम्पन्न, महावीर, बड़ा विद्वान् तथा पितृभक्त था॥ ५१ ॥

पत्नी पतिव्रता तस्य सौभाग्यगुणसंयुता।
भुक्त्वा तु सुचिरं राज्यं पुत्रदारैः समावृतः॥ ५२॥

जगाम विष्णुसान्निध्यं विष्णुभक्तिदृढो नृपः।
नारदस्योपदेशेन कृतमेकादशीव्रतम्॥ ५३॥
तेन राज्ञा महादेवि पौरैः सार्धं सभक्तिकम्।
तेन पुण्यप्रभावेण कौसलास्त्रिदिवं गताः॥ ५४॥

उनकी पत्नी पतिव्रता, सौभाग्यशालिनी और गुणोंसे सम्पन्न थी। पुत्र-परिवारादिसे युक्त महाराज सुदीर्घ कालपर्यन्त राज्य करनेके बाद विष्णुभक्तिनिष्ठ होकर, विष्णुके सामीप्यको प्राप्त हुए। नारदजीके उपदेशसे उन्होंने प्रजाजनोंके साथ भक्ति-भावसे एकादशी व्रतको किया। हे महादेवि! उन महाराजके पुण्यके प्रभावसे कोसल अर्थात् अयोध्याकी सारी प्रजा स्वर्गको गयी॥ ५४॥

विमानस्थास्तदा देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि।
रुक्मांगदोऽपि राजर्षिः सिद्धगन्धर्वसेवितम्॥ ५५॥
विमानवरमारुह्य पत्नीपुत्रसमन्वितः।
सह पौरजनैर्हृष्टो वैष्णवो नृपसत्तमः॥ ५६॥
जगाम वैष्णवं स्थानं योगिनामपि दुर्लभम्।
एतत्ते कथितं देवि किमन्यत् परिपृच्छसि॥ ५७॥

उस समय अन्तरिक्षसे विमानारूढ़ देवोंने पुष्पवृष्टि की। सिद्धगन्धर्वोंसे सेवित उत्तम विमानपर पत्नी-पुत्र तथा नागरिकोंके सहित विष्णुभक्त राजशिरोमणि राजर्षि रुक्मांगद प्रसन्नतापूर्वक आरूढ़ हुए और उन्होंने योगियोंके लिये भी दुर्लभ विष्णुलोकको गमन किया। हे देवि! यह कथा मैंने तुमसे कही, अब दूसरी कौन-सी बात पूछना चाहती हो?॥ ५५-५७॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-सम्वादके अन्तर्गत अयोध्याखण्डका बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

दुर्गाकुण्ड, नरग्राम, नारायणग्राम, त्रिपुरारितीर्थ, बिल्वहरितीर्थ, वाल्मीकतीर्थ, पुण्यहरितीर्थ तथा भरतकुण्ड आदि तीर्थोंकी महिमा एवं इतिहास

श्रीपार्वत्युवाच

देवदेव महादेव तीर्थान्यन्यानि मे वद।
अयोध्यायाः परिसरे तीर्थानि निवसन्ति च॥ १॥

श्रीपार्वतीजीने पूछा—हे देवदेव! महादेव! अयोध्यापुरीकी बाहरी सीमामें विद्यमान जो अन्य तीर्थ हैं, उनका वर्णन मुझसे कीजिये॥ १॥

श्रीशङ्कर उवाच

सूर्यकुण्डात् पश्चिमे तु दुर्गाकुण्डमनुत्तमम्।
तत्र स्नानेन दानेन श्रद्धया द्विजभोजनैः॥ २॥
अष्टम्यां मंगले वापि यात्रा स्यात् सार्वकालिकी।
सूर्यकुण्डादग्निकोणे नरग्रामो विराजते॥ ३॥

श्रीशंकरजीने कहा—सूर्यकुण्डसे पश्चिम दिशामें उत्तम [तीर्थ] दुर्गाकुण्ड है। वहाँ भक्तियुक्त होकर स्नान, दान और ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे उत्तम फल प्राप्त होता है। अष्टमी तथा मंगलवारको यहाँकी यात्रा प्रत्येक समय होती है। सूर्यकुण्डसे अग्निकोणमें नरग्राम नामक तीर्थ विराजमान है॥ २-३॥

नरकुण्डमिति ख्यातं सर्वपापापहं सदा।
तस्माद् दक्षिणदिग्भागे ग्रामो नारायणाह्वयः॥ ४॥
नारायणस्य तीर्थं च वर्तते परमं महत्।
कार्तिके शुक्लपक्षस्य चैकादश्यां शुचिस्मिते॥ ५॥
तयोर्यात्रा प्रकर्तव्या सर्वकाममभीप्सुभिः।
सूर्यकुण्डात् पूर्वभागे त्रिपुरारिर्विराजते॥ ६॥

सर्वदा सभी पापोंका हरण करनेवाला नरकुण्ड नामक तीर्थ उसी नरग्राम [-के उत्तरभाग]-में है। नरकुण्डसे दक्षिणमें नारायणग्राम है। वहीं श्रीनारायणका अतिमहत्त्वपूर्ण तीर्थ है। हे शुचिस्मते! कार्तिक शुक्ल एकादशीको इन दोनों तीर्थोंकी यात्रा सर्वविध मनोरथोंके अभिलाषी जनोंको करनी चाहिये। सूर्यकुण्डसे पूर्वभागमें त्रिपुरारितीर्थ विराजमान है॥ ४—६॥

सरयूसलिले स्नात्वा कृत्वा सन्ध्याजपादिकम्।
पूजयेत् त्रिपुरारिं च कार्तिके पूर्णिमातिथौ॥ ७ ॥
सर्वान् कामानवाप्नोति त्रिपुरारेः प्रसादतः।
तस्मात् पूर्वदिशाभागे नाम्ना बिल्वहरिः स्मृतः॥ ८ ॥

कार्तिक पूर्णमासीको सरयूजलमें स्नानकर सन्ध्या-जप आदि करनेके पश्चात् त्रिपुरारिका पूजन करे। त्रिपुरारिके प्रसादसे सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। त्रिपुरारिदेवसे पूर्वभागमें बिल्वहरिदेव स्थित माने गये हैं॥ ७-८॥

यं दृष्ट्वा मानवो लोके सर्वपापातिगो भवेत्।
बिल्वनामाऽभवत्पूर्वं गन्धर्वो रूपवानिति॥ ९ ॥

जिनका दर्शन करके मनुष्य इस लोकमें सब पापोंसे रहित हो जाता है। [इसका इतिहास इस प्रकार है—]पूर्वकालमें एक बिल्व नामक अतिसुन्दर गन्धर्व था॥ ९॥

उपहासपरो नित्यं रूपयौवनगर्वितः।
विषयासक्तचित्तस्तु स्वैरः परमगर्वितः॥ १०॥
ऋषींस्तपस्विनः सर्वान् जगर्हे ब्राह्मणान् मुहुः।
तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं नारदो शप्तवान्मुनिः॥ ११॥

लोगोंका उपहास करनेवाले उसको अपने रूप और यौवनका बड़ा अभिमान था। विषयोंमें आसक्त चित्तवाला वह गन्धर्व मनमाना आचरण करता रहता था। [एक बार] उसने अत्यधिक गर्वित होकर तपस्वी ऋषियों और ब्राह्मणोंका बार-बार तिरस्कार

किया। तब उसके ऐसे अतीव आश्चर्यजनक अपकृत्यको देखकर नारदमुनिने उसे शाप दे डाला॥ १०-११॥

शशाप नारदस्तस्मै बिल्व त्वं महिषो भव।
सहस्त्रयुगपर्यन्तं माहिषीं योनिमाप्नुहि॥ १२॥

नारदजीने उसे शाप देते हुए कहा—हे बिल्व! तुम भैंसा हो जाओ तथा सहस्त्र युगपर्यन्त भैंसेकी योनिमें रहो॥ १२॥

अनुग्रहं ततः कृत्वा नारदो मुनिसत्तमः।
अयोध्यां गच्छ दुर्बुद्धे यत्र वै सरयूनदी॥ १३॥

पुनः करुणावशात् मुनिश्रेष्ठ नारदजीने उससे कहा—'हे दुर्बुद्धे! तुम अयोध्यापुरीमें, जहाँ सरयू नदी है, वहाँ चले जाओ॥ १३॥

तत्र गत्वा स्थिरो भूत्वा स्थीयतां रामजन्मतः।
रामदर्शनमात्रेण मुच्यते पापजाद् भयात्॥ १४॥

उस अयोध्यापुरीमें जबतक भगवान् श्रीरामका जन्म न हो जाय, तबतक दृढ़ होकर निवास करो। श्रीरामका दर्शन करने-मात्रसे पापोंके कारण उत्पन्न हुए इस भयसे छूट जाओगे'॥ १४॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा माहिषं रूपमास्थितः।
उवास सरयूतीरे प्रतीक्षन् रामजन्मतः॥ १५॥

इस प्रकार नारदजीके कथनको सुनकर वह भैंसेके शरीरमें स्थित होकर सरयूके तटपर श्रीरामके जन्मकालकी प्रतीक्षा करता हुआ रहने लगा॥ १५॥

एवं बहुगते काले ह्युत्पन्नो रघुनन्दनः।
इति वाक्यं तदा श्रुत्वा मुमुचे शापजाद् भयात्॥ १६॥
चतुर्भुजस्तदा जातो रामनामप्रसादतः।
दिव्यं विमानमारुह्य जगाम हरिमन्दिरम्॥ १७॥

इस प्रकार बहुत-सा समय बीत जानेपर 'रघुनन्दनने जन्म लिया,' ऐसा समाचार सुन करके ही वह पापोंसे छूट गया तथा

रामनामके प्रभावसे चतुर्भुज विष्णुरूप होकर दिव्य विमानपर बैठकर भगवान्के धामको चला गया॥ १६-१७॥

तेनैव स्थापिता मूर्तिरात्मनो नामपूर्विका।
तस्माद् बिल्वहरिर्नाम दर्शनात् पापनाशनः॥ १८॥

[धाम जाते समय] उसी गन्धर्वने अपना नाम पहले तथा पीछे हरिका नाम रखकर अर्थात् 'बिल्वहरि' इस नामसे श्रीहरिकी मूर्ति स्थापित की, उन भगवान् बिल्वहरिके दर्शनसे पापोंका नाश होता है॥ १८॥

तत्र स्नात्वा नरो देवि मुच्यते च ऋणत्रयात्।
न दौर्भाग्यं न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम्॥ १९॥
शत्रुतो न भयं तस्य बिल्वतीर्थस्य दर्शनात्।
तस्मिँस्तीर्थे नरः स्नात्वा नरो राममवाप्नुयात्॥ २०॥

हे देवि! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य देवऋण, पितृऋण तथा ऋषिऋण—इन तीनों ऋणोंसे छूट जाता है। बिल्वतीर्थका दर्शन कर लेनेपर मनुष्यको दुर्भाग्य, दरिद्रता, प्रियवियोग और शत्रुभय नहीं होता। उस तीर्थमें स्नान-दर्शनादि करनेसे मनुष्यको श्रीरामकी प्राप्ति हो जाती है॥ १९-२०॥

तत्र स्नानेन दानेन जपेन च विशेषतः।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नानाविभवविस्तरैः॥ २१॥
रामः पूज्यः ससीतश्च मुक्तिः स्यान्नात्र संशयः।
अमायां माधवे मासि स्नात्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥ २२॥

इस तीर्थमें स्नान, दान, विशेष रूपसे जप और अपने वैभवके अनुरूप पूजासामग्रियों तथा धूप-दीप, नैवेद्य आदिसे श्रीसीतासहित श्रीरामका पूजन करके प्राणी मुक्ति पा जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। वैशाखकी अमावस्याको [केवल] स्नानकर [मनुष्य] मोक्षका भागी हो जाता है॥ २१-२२॥

अन्यदापि नरः स्नात्वा विष्णुलोकं च गच्छति।
तत्तीर्थात् पूर्वभागे तु वाल्मीकं तीर्थमुत्तमम्॥ २३॥

इसके अतिरिक्त कभी भी स्नानादि करके मनुष्य विष्णुलोकका भागी हो जाता है। इस बिल्वहरितीर्थसे पूर्वभागमें वाल्मीक नामक उत्तम तीर्थस्थान है॥ २३॥

किरातो डिंडिरो नाम पूर्वमत्र हिमाचलात्।
आगतो मृगयूथेन ह्ययोध्यां सरयूतटे॥ २४॥

पूर्वकालमें डिंडिर नामक एक किरात हिमालयसे हरिणोंके झुण्डके साथ, यहाँ अयोध्यापुरीके समीपवर्ती सरयूतटपर आया॥ २४॥

ऋषीणामाश्रमं दृष्ट्वा क्षणं विश्रम्य डिंडिरः।
ऋषिसंगप्रभावेण तदा ज्ञानं बभूव ह॥ २५॥

[यहाँ आकर] उसने ऋषियोंके आश्रमोंको देखकर थोड़े समयतक विश्राम किया। ऋषियोंके संसर्गके प्रभावसे उसको ज्ञान हो गया॥ २५॥

स त्रिरात्रं स्थितो भूत्वा पीत्वा च तीर्थजं जलम्।
शुद्धोऽभवच्च देवेशि धर्मे मतिरजायत॥ २६॥

वह तीन राततक वहाँ रह गया और तीर्थरूपा सरयूके जलका पान करता रहा। हे देवेशि! इससे वह विशुद्ध हो गया और उसकी बुद्धि धर्म-कर्ममें लीन हो गयी॥ २६॥

सरयूजलपुण्येन दानधर्मपरायणः।
तपस्तेपे तदा देवि किरातो डिंडिरस्तु सः॥ २७॥

सरयूजलके प्रभावसे वह डिंडिर नामक किरात दान तथा धर्ममें परायण होकर उस समय वहीं तप करनेमें लग गया॥ २७॥

दिव्यवर्षसहस्रेण तपस्तेपे सुदारुणम्।
शरीरं जर्जरीभूतं तपसा दग्धकल्मषम्॥ २८॥

उसने दिव्य हजार वर्षपर्यन्त अतिघोर तप किया। उसका शरीर

जीर्ण-शीर्ण हो गया और तपसे उसके सभी पाप जल गये॥ २८॥

अस्थिमात्रं शरीरं च वल्मीकमभवत् तदा।
एतस्मिन्नन्तरे देवि रामो दाशरथिः प्रभुः॥ २९॥
क्रीडामाश्रित्य वेगेन ह्यागतः सरयूतटे।
वल्मीकं तत्र वै दृष्टवा विचार्य मनसा प्रभुः॥ ३०॥
किमिदं पृथुका बाला वल्मीकं दृश्यते पुरः।
एवं वाचमुवाचेदं हस्तस्पर्शं चकार वै॥ ३१॥
रामस्पर्शनमात्रेण दिव्यदेहोऽभवत्तदा।
दिव्यं विमानमारुह्य सोऽगमद् राममन्दिरम्॥ ३२॥

उसके शरीरमें केवल अस्थियाँ ही शेष रह गयीं थीं तथा ऊपरसे वल्मीक अर्थात् मिट्टीने शरीरको ढक लिया था। इसी समय दशरथनन्दन प्रभु श्रीराम क्रीड़ा करते हुए शीघ्रतापूर्वक सरयूतटपर स्थित उसी वल्मीकके पास आ गये। उसको देखकर प्रभुने मनमें सोचकर बालकोंसे कहा—'हे बालको! यह जो सामने वल्मीक दीख रहा है, यह क्या है?' ऐसा कहकर अपने हाथोंसे वे उसे छूकर देखने लगे। श्रीरामके स्पर्शमात्रसे वह उसी समय दिव्य देहवाला हो गया और विमानपर बैठकर राममन्दिर अर्थात् साकेतलोक जाने लगा॥ २९—३२॥

श्रीराम उवाच

कस्त्वं तापसवेषेण वर्तसे सरयूतटे।
दिव्यदेहं समापन्नो दृश्यसे साम्प्रतं वद॥ ३३॥

श्रीरामने कहा—तपस्वीके वेषमें सरयूतटपर रहनेवाले तुम कौन हो और इस समय [किस प्रकार] दिव्यदेहधारी हो गये? इस प्रश्नका उत्तर दो॥ ३३॥

तापस उवाच

किरातो डिंडिरो नाम चाश्रमो मे हिमाचले।
मृगयूथप्रसंगेन ह्यागतः सरयूतटे॥ ३४॥

तपस्वीने कहा—मैं डिंडिर नामक किरात हूँ। मेरा निवास-स्थान हिमालयमें है। हरिणोंके झुण्डके साथ मैं [कुछ समय पहले] सरयूतटपर आया था॥ ३४॥

दृष्ट्वा तापसवेषांश्च ऋषीनत्र तपोधनान्।
तेषां दर्शनमात्रेण पूतोऽहं राम नान्यथा॥ ३५॥

हे श्रीराम! यहाँ तापसवेषधारी तपोधन ऋषियोंका दर्शन करते ही मैं पवित्र हो गया, यह बात झूठी नहीं है॥ ३५॥

निष्पापोऽथ तदा जातः तप आस्थितवांस्ततः।
तपसस्तु प्रभावेण प्राप्तं दर्शनमुत्तमम्॥ ३६॥

तब मैं पापरहित होकर तपश्चर्यामें लीन हो गया और उस तपके प्रभावसे मुझे आपका मंगलमय दर्शन हुआ॥ ३६॥

तव रूपं महाबाहो न मया वर्णितं पुरा।
नमस्ते भगवँस्तुभ्यं पुनरेव नमो नमः॥ ३७॥

हे महाबाहो! इससे पहले मुझे आपका दर्शन कभी नहीं हुआ। हे भगवन्! आपको नमस्कार है, बार-बार नमस्कार है॥ ३७॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा उवाच रघुनन्दनः।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते आरोह स्वविमानकम्॥ ३८॥

ऐसी उस तापसकी वाणी सुनकर श्रीरघुनन्दनने कहा—[तपस्विन्!] उठो-उठो, तुम्हारा कल्याण हो। अब अपने विमानपर आरूढ़ हो जाओ॥ ३८॥

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा रामाय परमात्मने।
विमानारूढं तं दृष्टवा सर्वे विस्मितमानसाः॥ ३९॥

वह तपस्वी परमात्मा श्रीरामकी परिक्रमा करके विमानपर आरूढ़ हो गया। उसे विमानारूढ़ देखकर सभी लोग चकित हो गये॥ ३९॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुः खात् पेतुः पुष्पवृष्टयः।
दिव्यं विमानमारुह्य स यातः शाश्वतं पदम्॥ ४०॥

स्वर्गमें नगारे बजने लगे, आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। वह दिव्य विमानपर बैठकर नित्यलोकमें पहुँच गया॥ ४०॥

तत्तीर्थं हि नरो दृष्ट्वा मुच्यते च ऋणत्रयात्।
वल्मीकदर्शनाज्जन्तुर्जनलोकमवाप्नुयात् ॥ ४१॥

ऐसे वाल्मीकतीर्थको देखकर [तथा स्नान-दानादि कर]-के मनुष्य तीनों ऋणोंसे छूट जाता है और जनलोकको प्राप्त करता है॥ ४१॥

तत्र स्नात्वा नरो याति वैष्णवं पदमुत्तमम्।
तत्र श्राद्धं प्रकुर्वीत तर्पणं च नरो यदि॥ ४२॥
पितॄणामक्षया तृप्तिर्गयाश्राद्धाधिकं फलम्।
ततः पूर्वदिशाभागे स्थानं वै लोकपावनम्॥ ४३॥

वहाँपर मनुष्य स्नानकर उत्तम वैष्णव पदको प्राप्त होता है। यदि मनुष्य इस तीर्थमें पितरोंके निमित्त श्राद्ध-तर्पणादि भी करे, तो पितरोंकी अक्षय तृप्ति होती है तथा गयाश्राद्धसे भी अधिक फल मिलता है। इस तीर्थसे पूर्व दिशामें विश्वको पवित्र करनेवाला [शृंगी ऋषिका तीर्थरूप तपस्या-] स्थल है॥ ४२-४३॥

यत्र शृङ्गी ऋषिर्नाम शान्तया सह भार्यया।
तपः करोति धर्मात्मा लोकानां सुखहेतवे॥ ४४।

जिस पवित्र तीर्थमें अपनी धर्मपत्नी शान्ताके साथ धर्मात्मा शृंगी ऋषि प्राणियोंके कल्याणहेतु तप किया करते हैं॥ ४४॥

सरयूसलिले स्नात्वा पूजयेत् तं मुनीश्वरम्।
सर्वान् कामानवाप्नोति तस्यर्षेश्च प्रपूजनात्॥ ४५॥

वहाँ सरयूजलमें स्नानकर शृंगी ऋषिका पूजन करे।

[सपत्नीक] उन मुनीश्वरका पूजन करनेसे सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं॥ ४५॥

कार्तिके शुक्लपूर्णायां यात्रा तस्य तु वार्षिकी।
चैत्रशुक्लनवम्यान्तु यात्रा तस्य फलप्रदा॥ ४६॥

कार्तिक शुक्ल पौर्णमासीको वहाँकी वार्षिकी यात्रा होती है। चैत्र शुक्ल नवमीको भी की गयी वहाँकी यात्रा [विशेष] फल देनेवाली होती है॥ ४६॥

तस्मान्नैर्ऋत्यभागे तु नाम्ना पुण्यहरिः स्मृतः।
तस्मिन् कुण्डे नरः स्नात्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ ४७॥
रविवारे विशेषेण यात्रा तस्य विधीयते।
स्नात्वा दत्वा च विधिवत् पाण्डुरोगो न जायते॥ ४८॥
तत्पश्चिमे महापुण्यं रम्यं भरतकुण्डकम्।
कुमुदोत्पलकह्लारैः पुष्पैरन्यैश्च मण्डितम्॥ ४९॥

शृंगी ऋषिके तीर्थसे नैर्ऋत्यकोणपर पुण्यहरि नामक तीर्थ है। इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। विशेष रूपसे रविवारको यहाँकी यात्रा होती है। विधिपूर्वक यहाँ स्नान-दान करनेसे पाण्डु रोग नष्ट हो जाता है॥ ४७-४८॥

पुण्यहरिसे पश्चिमकी ओर कुमुद, नीलकमल, लालकमल आदिसे तथा दूसरे भी अनेक पुष्पोंसे सुशोभित रमणीय तथा महापुण्यप्रद भरतकुण्ड है॥ ४९॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसंवादे अयोध्याखण्डे त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-सम्वादरूप अयोध्याखण्डके अन्तर्गत तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

नन्दिग्राम, कालिकापीठ, जटाकुण्ड, अजितपीठ, शत्रुघ्नकुण्ड, गयाकुण्ड, पिशाचमोचनतीर्थ, मानसतीर्थ एवं तमसा नदी—इन पुण्यस्थलोंकी महिमा एवं यात्राविधि आदि

श्रीशङ्कर उवाच

संस्नाय भारते कुण्डे सर्वपापैः प्रमुच्यते।
तत्र स्नानं तथा दानं सर्वमक्षयतां व्रजेत्॥ १॥
अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधानि च।
यत्नतो दम्पती पूज्यौ वस्त्रादिभिरलङ्कृतौ॥ २॥

श्रीशंकरजीने कहा—भरतकुण्डमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। मनुष्योंद्वारा किया गया यहाँका स्नान, दान आदि समस्त सत्कर्म अक्षय हो जाता है॥ १॥

यहाँ अनेक प्रकारका अन्न-वस्त्रादिदान करना चाहिये और बड़े यत्नसे ब्राह्मणदम्पतीको वस्त्र-भूषणादिकोंसे भूषितकर उनकी पूजा करनी चाहिये॥ २॥

तस्मादुत्तरदिग्भागे नन्दिग्रामो वरानने।
नन्दिग्रामेऽवसत्पूर्वं भरतो रघुवंशजः॥ ३॥

हे वरानने! भरतकुण्डसे उत्तरमें नन्दिग्रामतीर्थ है, जहाँपर पूर्वकालमें रघुवंशज भरतजीने [चौदह वर्षोंतक घोर तप करते हुए] निवास किया था॥ ३॥

रामचन्द्रं हृदि ध्यायन् निर्मलात्मा जितेन्द्रियः।
तत्र स्थित्वा प्रजाः सर्वा अरक्षत् क्षितिमण्डलम्॥ ४॥

श्रीरामका हृदयमें ध्यान करते हुए, निर्मल चित्तवाले जितेन्द्रिय भरतजीने उसी नन्दिग्राममें रहकर सारी प्रजा एवं भूमण्डलकी रक्षा की थी॥ ४॥

मन्वन्तरसहस्रैस्तु काशीवासेन यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति नन्दिग्रामस्य दर्शनात्॥ ५॥

हजारों मन्वन्तरोंतक काशीवाससे जो फल होता है, वही फल केवल नन्दिग्रामके दर्शनसे मनुष्य प्राप्त करता है॥ ५॥

प्रयागे यो नरो गत्वा माघान् द्वादशकं वसेत्।
तत्फलं समवाप्नोति नन्दिग्रामस्य दर्शनात्॥ ६॥

जो मनुष्य प्रयागमें जाकर माघमासके बारह कल्पवास करता है, उसका जो फल है, वही फल नन्दिग्रामके दर्शनसे होता है॥ ६॥

गयाश्राद्धं कृतं येन पुरुषोत्तमदर्शनम्।
तत्फलं समवाप्नोति नन्दिग्रामस्य दर्शनात्॥ ७॥

जिसने गयाश्राद्ध किया तथा गदाधरभगवान्‌का दर्शन किया, उसे जो पुण्य मिलता है, वही पुण्य नन्दिग्रामके दर्शनसे मिलता है॥ ७॥

भरतस्य महाकुण्डं नानापुष्पैः समन्वितम्।
कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीकसमन्वितम्॥ ८॥
हंससारसचक्राह्वविहंगमविराजितम्।
उद्यानपादपच्छायं सुच्छायं समलंकृतम्॥ ९॥

[उस नन्दिग्राममें] कुमुद, उत्पल, कह्लार, पुण्डरीक आदि विविध जातियोंके कमलों एवं भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे युक्त, हंस, सारस, चकोर आदि पक्षियोंसे सुशोभित और बगीचेके वृक्षोंकी सुन्दर छायासे शोभायमान भरतजीका विशाल कुण्ड है॥ ८-९॥

तत्र स्नानं महापुण्यं प्रमोदानन्दनिर्मलम्।
तत्र स्नानं तथा श्राद्धं पितॄनुद्दिश्य कुर्वतः॥ १०॥
पितरस्तस्य तुष्यन्ति तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः।
स्वर्णं चान्नं विधानेन दातव्यं च द्विजन्मने॥ ११॥

श्राद्धपूर्वकमेतत्तु कर्तव्यं यत्नतो नरैः।
कुण्डस्य पश्चिमे देवि कालिका नाम राजते॥ १२॥

भरतकुण्डमें किया गया स्नान महान् पुण्यमय है और [शरीरको] हर्षित, [आत्माको] आनन्दित और [अन्तःकरणको] निर्मल करनेवाला है, पितरोंके उद्देश्यसे जो यहाँ स्नान तथा श्राद्ध करता है, उसके पितर तथा समस्त देवगण उससे प्रसन्न हो जाते हैं। यहाँ ब्राह्मणोंको सुवर्ण, अन्नादिका विधानसे दान करना चाहिये। हे देवि! मनुष्योंको यत्नपूर्वक श्राद्धके साथ इन (दानादि सत्कर्मों)-को यहाँ करना चाहिये। कुण्डसे पश्चिमभागमें कालिकादेवीका स्थान है॥ १०—१२॥

तस्याः पूजनमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते।
तस्याः पश्चिमतो देवि जटाकुण्डमनुत्तमम्॥ १३॥

उन कालिकादेवीके केवल पूजनसे सब प्रकारकी कामनाएँ सिद्ध होती हैं। श्रीकालिकादेवीसे पश्चिमदिशामें उत्तमोत्तम जटाकुण्ड नामक तीर्थ है॥ १३॥

यत्र रामादिभिः सर्वैर्जटाः परिहृता निजाः।
जटाकुण्डमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्॥ १४॥

इस कुण्डपर श्रीराम आदिने [वनवाससे लौटनेपर] जटाओंका मुण्डन कराया था, अतः वह स्थान जटाकुण्ड नामसे प्रसिद्ध तीर्थ हुआ। यह स्थान तीर्थस्थलोंमें सर्वोत्तम तीर्थ है॥ १४॥

यत्र स्नानेन दानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
भरतो भारते कुण्डे सम्पूज्यः स्त्रीसमन्वितः॥ १५॥

इस जटाकुण्डमें स्नान तथा दान करनेसे सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं। भरतकुण्डमें उनकी पत्नी श्रीमाण्डवीके सहित श्रीभरतका सम्यग् रूपसे पूजन करना चाहिये॥ १५॥

जटाकुण्डे हि सम्पूज्यौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ।
चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां तयोर्यात्रा तु वार्षिकी॥ १६॥

जटाकुण्डमें श्रीसीता-लक्ष्मणके सहित श्रीरामका पूजन करे। चैत्र कृष्ण चतुर्दशीको इन दोनों तीर्थोंकी वार्षिकी यात्रा होती है॥ १६॥

जटाकुण्डात् पश्चिमे तु ह्यजितोऽपि विराजते।
निराहारो नरो भूत्वा क्षीराहारोऽपि वा पुनः॥ १७॥
अजितं पूजयेद् यस्तु तस्य सिद्धिः करे स्थिता।
महोत्सवस्तु कर्तव्यो गीतवादित्रसंयुतः॥ १८॥
एवं यः कुरुते धीमान् सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
तस्मात् पूर्वदिशाभागे नाम्ना शत्रुघ्नकुण्डकम्॥ १९॥

जटाकुण्डसे पश्चिम भागमें अजितदेवका स्थान है। जो मनुष्य यहाँ निराहार रहकर या दुग्धाहार करते हुए अजितदेवका पूजन करता है, उसके हाथमें सभी सिद्धियाँ निवास करती हैं। गायन-वादनके साथ यहाँ महान् उत्सव करना चाहिये। जो बुद्धिमान् ऐसा करता है, वह सब कामनाओंको पा जाता है। अजितदेवसे पूर्वदिशामें शत्रुघ्नकुण्ड नामक तीर्थ है॥ १७—१९॥

तत्र स्नात्वा च दत्वा च सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
कृष्णपक्षे तु चैत्रस्यैकादश्यां स्नानमाचरेत्॥ २०॥

उस शत्रुघ्नकुण्डमें स्नान-दान करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। चैत्र कृष्ण एकादशीको यहाँ स्नान करना चाहिये॥ २०॥

तस्मादुत्तरदिग्भागे भरतस्य तु दक्षिणे।
गयाकुण्डमिति ख्यातं सर्वाभीष्टफलप्रदम्॥ २१॥

अजितदेवसे उत्तर तथा भरतकुण्डसे दक्षिणभागमें सभी अभीष्टोंको देनेवाला गयाकुण्ड नामक तीर्थ है॥ २१॥

अत्र स्नात्वा च दत्वा च यथाशक्त्या जितेन्द्रियः।
सर्वान् कामानवाप्नोति श्राद्धं कृत्वा च पार्वति॥ २२॥

हे पार्वती! जितेन्द्रिय होकर यहाँ स्नान करके यथाशक्ति दान तथा श्राद्ध करनेपर मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त करता है॥ २२॥

नरकस्थाश्च ये केचित् पितरश्च पितामहाः।
विष्णुलोकं तु गच्छन्ति तत्र श्राद्धे कृते तु वै॥ २३॥

वहाँपर श्राद्ध करनेसे नरकमें पड़े हुए पिता-पितामह आदि समस्त पितर भी विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं॥ २३॥

तत्र श्राद्धे कृते देवि पितॄणामनृणो भवेत्।
सक्तुभिः पिण्डदानं च संयावैः पायसेन च॥ २४॥

हे देवि! यहाँपर सत्तू, हलवा या खीरसे श्राद्ध करनेसे मनुष्य पितृऋणसे छूट जाता है॥ २४॥

कर्तव्यमृषिभिर्दिष्टं पिण्याकेन गुडेन वा।
श्राद्धं तत्तीर्थके प्रोक्तं पितॄणां तुष्टिकारकम्॥ २५॥

अथवा ऋषियोंके बतलाये हुए पिण्याक (एक प्रकारकी खली) या गुड़से उस तीर्थमें किया गया श्राद्ध-पिण्डदान पितरोंको सन्तोषप्रद होता है॥ २५॥

अतः श्राद्धं प्रकर्तव्यं नरैः श्रद्धासमन्वितैः।
पितरस्तस्य तुष्यन्ति तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः॥ २६॥
तुष्टेषु पितृषु श्रीमान् जायते पुत्रवांस्तथा।
श्राद्धेन पितरस्तुष्टाः प्रयच्छन्ति सुतान् बहून्॥ २७॥
श्रियं च विपुलान् भोगान् श्राद्धकृन्निर्मलाशयः।
तस्मादत्र विधानेन विधातव्यं प्रयत्नतः॥ २८॥
श्राद्धं श्रद्धायुतैः सम्यगभीष्टफलकांक्षिभिः।
गयाकुण्डे विशेषेण पितॄणां दत्तमक्षयम्॥ २९॥
अमा वै सोमवारेण तत्र श्राद्धं विधानतः।
पितृसन्तोषदं नित्यं तत्र दत्वाक्षयं भवेत्॥ ३०॥

अतः इस गयाकुण्डपर श्रद्धायुक्त होकर मनुष्योंको श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। श्राद्ध करनेसे उसके समस्त पितृगण और देवगण अति सन्तुष्ट हो जाते हैं। पितरोंके सन्तुष्ट होनेपर मनुष्य समृद्ध और पुत्रवान् हो जाता है। श्राद्धसे प्रसन्न पितृगण बहुत-से पुत्र, धन, ऐश्वर्य आदि समस्त भोगोंको देते हुए श्राद्धकर्ताको निर्मलहृदय बना देते हैं, अतः यहाँपर विधिपूर्वक यत्नसे श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। अभीष्ट फल चाहनेवाले लोग श्रद्धायुक्त होकर भलीभाँति गयाकुण्डपर श्राद्ध करें। यहाँपर पितरोंको दिया हुआ श्राद्ध-पिण्डदान विशेष रूपसे तृप्तिजनक तथा अक्षय होता है। सोमवारको यदि अमावस्या आ जाय, तो [उस समय] गयाकुण्डपर किया गया श्राद्ध पितरोंको नित्य सन्तोष देनेवाला तथा अक्षय हो जाता है॥ २६—३०॥

तस्मात् पूर्वदिशाभागे तीर्थं सर्वोत्तमोत्तमम्।
पिशाचमोचनं नाम विद्यते च फलप्रदम्॥ ३१॥

गयाकुण्डसे पूर्व दिशामें [प्रत्यक्ष] फलप्रद पिशाचमोचन नामक सर्वोत्तमोत्तम तीर्थ विद्यमान है॥ ३१॥

तत्र स्नात्वा च दत्वा च पिशाचो नैव जायते।
तत्र स्नानं तथा दानं श्राद्धं चैव विशेषतः॥ ३२॥
कर्तव्यं तु प्रयत्नेन नरैः श्रद्धासमन्वितैः।
मार्गशीर्षे चतुर्दश्यां शुक्लपक्षे विशेषतः॥ ३३॥
तत्र स्नानं प्रकर्तव्यं श्राद्धं चैव विशेषतः।
श्राद्धे कृते तदा देवि पिशाचत्वं न जायते॥ ३४॥

वहाँपर स्नान और दान करनेसे पिशाचयोनिमें नहीं जाना पड़ता। वहाँपर श्रद्धासहित प्रयत्नपूर्वक मनुष्योंको विशेष रूपसे स्नान, दान तथा श्राद्ध करना चाहिये। मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशीको वहाँका पर्वदिन है। हे देवि! उस समय विशेष रूपसे वहाँ स्नान

और श्राद्ध करनेसे पिशाचत्वकी प्राप्ति नहीं होती॥ ३२—३४॥

तत्सन्निधौ पूर्वभागे मानसं नाम नामतः।
तीर्थं पुण्यनिवासाख्यं स्नातव्यं तत्र मानवैः॥ ३५॥
तत्र स्नानेन दानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
नानाविधानि पापानि मेरुतुल्यानि वै पुनः॥ ३६॥
तत्र स्नानात् क्षयं यान्ति नात्र कार्या विचारणा।
यत् किंचिद् विद्यते पापं मानसं कायिकं तथा॥ ३७॥
वाचिकं च तथा पापं स्नानतो विलयं व्रजेत्।
प्रौष्ठपद्यां तथा कार्या पौर्णमास्यां विशेषतः॥ ३८॥
यात्रा तस्य नृभिर्देवि पुण्यवद्भिः कृपापरैः।

पिशाचमोचनतीर्थके समीप पूर्व भागमें मानस नामक तीर्थ है। यह पुण्योंका सदन कहा गया है। यहाँ तीर्थयात्री जनोंको अवश्य स्नान करना चाहिये। यहाँ स्नान तथा दान करनेसे सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। सुमेरुपर्वतके तुल्य भी अनेकविध पापोंकी राशियाँ यहाँ स्नान करनेसे नाशको प्राप्त होती हैं, इसमें सन्देह नहीं है। जितने भी कायिक, वाचिक, मानसिक पाप हैं, वे सब यहाँ स्नान करनेसे नष्ट हो जाते हैं। हे देवि! पुण्यात्मा, दयालु मनुष्योंको भाद्रपद शुक्ल पूर्णमासीको यहाँकी यात्रा करनी चाहिये॥ ३५—३८$^{१}/_{२}$॥

तस्माद् दक्षिणदिग्भागे वर्तते सुकृतैकभूः॥ ३९॥
तमसा नाम तटिनी महापातकनाशिनी।
यत्र स्नानं तथा दानं सर्वपापापहं सदा॥ ४०॥
यस्यास्तीरे महारम्ये सर्वाभीष्टप्रदानि वै।
नानाविधानि स्थानानि मुनीनां भावितात्मनाम्॥ ४१॥
विलसन्ति च पुण्यानि सर्वपापहराणि वै।
माण्डव्यस्य मुनेः स्थानं वर्तते पापनाशनम्॥ ४२॥

इस मानसतीर्थसे दक्षिण दिशामें पुण्योंकी एकमात्र स्थली तथा महापापोंका नाश करनेवाली तमसा नामक नदी है, जहाँ किसी भी समय स्नान-दान करनेसे सभी पापोंका क्षय हो जाता है। जिसके परम मनोहर तटपर आत्मदर्शी मुनिजनोंके सर्वाभीष्टप्रद विविध स्थान शोभित हो रहे हैं। वे [अत्यन्त] पुण्यमय एवं समस्त पापोंका हरण करनेवाले हैं। वहींपर माण्डव्यमुनिका पापनाशक आश्रम भी है॥ ३९—४२॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीखण्डे अयोध्याखण्डे चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-सम्वादरूप अयोध्याखण्डके अन्तर्गत चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

माण्डव्याश्रम, गौतमादि मुनियोंके आश्रम, तमसातटवर्ती तीर्थ, रामकुण्ड, सीताकुण्ड, दुग्धेश्वर महादेव एवं भैरवपीठ—इन तीर्थोंकी महिमा

श्रीशङ्कर उवाच

तमसायास्तटं देवि सर्वत्र सुमनोहरम्।
तत्राश्रमो महापुण्यो माण्डव्यस्य च पार्वति॥ १॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—हे देवि पार्वती! तमसा नदीका तट सभी ओरसे अतिरम्य है। वहींपर माण्डव्यमुनिका परमपवित्र आश्रम स्थान है॥ १॥

यस्मात् स्थानात् समुद्भूता तमसा सुतरंगिणी।
तद् वनं पुण्यमधिकं नानावृक्षमनोहरम्॥ २॥

जिस स्थानसे तमसा नामक श्रेष्ठ नदी निकली है, वह वन अनेक वृक्षोंके कारण मनोहर और अधिकाधिक पवित्र है॥ २॥

नाम्ना प्रमोदकं लोके पावनं पदमुत्तमम्।
यस्य दर्शनतो नृणां सर्वपापक्षयो भवेत्॥ ३॥

उस वनका नाम प्रमोदक है। वह लोकमें पवित्र करनेवाला उत्तम स्थल है। इसके दर्शनसे मनुष्योंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं॥ ३॥

प्रफुल्लनानाविधगुल्मशोभितं
लतावितानेन ततं मनोहरम्।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियंगुभिः
सुपुष्पितैः कंटकितैश्च केतकैः॥ ४॥

वह मनोहर वन लताजालसे आच्छादित, फूलती हुई नानाविध वनस्पतियोंसे शोभायमान, कण्टकाकीर्ण एवं पुष्पित केतकी वृक्षोंसे समन्वित और फूलोंसे लदी प्रियंगुलताओंसे चारों ओरसे घिरा है॥ ४॥

तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः
सकर्णिकारैर्बकुलैश्च सर्वतः।
अशोकपुन्नागवरैः सुपुष्पितै-
र्द्विरेफमालाकुलपुष्पसंचयैः॥ ५॥

महर्षि माण्डव्यका वह आश्रम सभी दिशाओंमें सुगन्धित तमालतरुओं और कर्णिकार, बकुल, अशोक, पुन्नाग आदि पुष्पित उत्तम वृक्षोंसे आच्छादित तथा फूलोंपर मँडराते हुए भौंरोंसे भरे फूलोंसे समन्वित है॥ ५॥

क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुभूषितै-
र्विहंगमैश्चारुकलाप्रवादिभिः।
निनादितं सारसलक्ष्मणादिभिः
प्रमत्तदात्यूहरुतैश्च वल्गुभिः॥ ६॥

वह आश्रम कहींपर खिले हुए कमलोंके परागसे धूसरित और मधुर कलरव करते हुए पक्षियोंसे युक्त, तो कहीं सारस, हंसादिके नादसे निनादित और कहीं मतवाले चातकोंकी मधुर ध्वनिसे गुंजित है॥ ६॥

क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं
क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम्।
क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतं
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितम्।
मदाकुलाभिर्भ्रमरीगणादिभि-
र्निषेवितं चारुसुगन्धिपुष्पितम्॥ ७॥

वहाँ कहीं तो चकवेका नाद गूँज रहा है, कहीं हंसोंका समूह विहार कर रहा है, कहीं बत्तखोंकी ध्वनि गूँज रही है और कहीं मतवाला भ्रमरवृन्द मँडरा रहा है। कहीं मतवाली भ्रमरियोंसे सेवित सुन्दर, सुगन्धित पुष्पोंवाली लताएँ हैं॥ ७॥

क्वचिच्च वृक्षैः सहकारचम्पकै-
र्लतोपगूढैस्तिलकर्दमैश्च।
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं
प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम्॥ ८॥

वह आश्रम कहींपर हर्षसे भरे नानाविध पक्षियोंसे सेवित है, तो कहीं मतवाले कबूतरोंके कलरवसे नादित है। वहाँ कहींपर आम्र, चम्पा आदि वृक्ष शोभित हो रहे हैं और कहीं लताओंसे आवृत तिलक वृक्ष विद्यमान हैं॥ ८॥

निविडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं
मदमुदितविहंगव्रातनादाभिरामम्।
कुसुमिततरुशाखानीलमत्तद्विरेफं
नवकिसलयशोभाशोभितप्राज्यशाखम्॥ ९॥

उस आश्रमको कहीं सघन बेंत वृक्षोंकी राशि श्यामल बना रही है और कहीं नीलकण्ठ पक्षिगण उसकी शोभावृद्धि कर रहे हैं। कहीं प्रसन्न पक्षियोंके कोलाहलसे वह शोभित है तो कहीं फूलोंसे लदी वृक्षशाखाओंमें मँडराते मतवाले काले भौंरोंसे भरा है। उस आश्रममें कहीं-कहीं नये-नये पल्लवोंके सौन्दर्यसे समन्वित प्रचुर शाखाओंवाले वृक्ष विद्यमान हैं॥ ९॥

इत्यादि बहुशोभाढ्यं सर्वदिक्षु मनोहरम्।
यत्र मांडव्यमुनिना तपस्तप्तं महत्किल॥ १०॥

इन प्रकारकी अपरिमित वन्य सुषमासे सुशोभित और सभी दिशाओंमें मनोहर माण्डव्यमुनिका आश्रम है, जहाँपर उन्होंने कठोर तप किया था॥ १०॥

यत्प्रभावादभूत्तीर्थं पावनं परमं महत्।
तत्पूर्वं गौतमस्यर्षेराश्रमं पावनं महत्॥ ११॥
तत्पूर्वं च्यवनस्यापि पराशरमुनेस्ततः।
तत्पूर्वं श्रवणस्यैव दर्शनात् पापनाशनम्॥ १२॥

जिनके तप:प्रभावसे यह स्थान परम पावन महातीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हुआ। इससे पूर्व भागमें गौतमजीका अतिपुनीत वन्दनीय आश्रम है, माण्डव्याश्रमसे पूर्व दिशामें ही च्यवनमुनिका तथा पराशरमुनिका आश्रम है। पराशरमुनिसे पूर्वमें श्रवणका आश्रम है, जिसके दर्शनसे पापोंका नाश हो जाता है॥ ११-१२॥

नानाविधानि तीर्थानि ह्याश्रमाश्चैव सर्वशः।
तमसायास्तु पुरतो वर्तन्ते च समन्ततः॥ १३॥

तमसा नदीके दोनों तटोंपर चारों ओर अनेकविध तीर्थ तथा आश्रम विद्यमान हैं॥ १३॥

तमसा नाम सा ज्ञेया वर्तते तटिनी शुभा।
यज्ञयूपसमुच्छ्रायशोभिता परमाद्भुता॥ १४॥

तमसा नामवाली वह मंगलमयी नदी यज्ञके लिये स्थापित किये गये ऊँचे-ऊँचे यूपों—स्तम्भोंसे शोभायमान तथा [नानाविध] लोकोत्तर आश्चर्योंसे परिपूर्ण है॥ १४॥

तत्र स्नानेन दानेन श्राद्धेन च विशेषतः।
सर्वकामार्थसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥ १५॥

इस तमसामें स्नान-दान-श्राद्ध आदि सत्कर्मोंके करनेसे सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ १५॥

मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे पंचदश्यां विशेषतः।
स्नानं तस्यां फलप्राप्तिदायकं सर्वदा नृणाम्॥ १६॥

विशेषकर मार्गशीर्ष पूर्णमासीके अवसरपर प्रत्येक समय यहाँपर किया गया स्नान मनुष्योंके लिये फलप्रद है॥ १६॥

तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं दानं च तर्पणम्।
प्रयत्नतो मुनिश्रेष्ठैः कर्तव्यं शुद्धमानसैः॥ १७॥

अतएव निर्मल मनवाले श्रेष्ठ मुनियोंको भी यहाँपर स्नान, दान, तर्पणादि सत्कृत्य प्रयत्नपूर्वक करने चाहिये॥ १७॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि तमसापारगं शुभम्।
सीताकुण्डमिति ख्यातं श्रीदुग्धेश्वरसन्निधौ॥ १८॥
भाद्रे शुक्लचतुर्दश्यां तस्य यात्रा शुभावहा।

अब मैं तमसानदीके उस पार स्थित, सीताकुण्डके नामसे प्रसिद्ध मंगलमय तीर्थका वर्णन करूँगा, जो श्रीदुग्धेश्वर महादेवके समीपमें अवस्थित है। भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशीको यहाँकी यात्रा शुभप्रद है॥ १८$^{1}/_{2}$॥

श्रीपार्वत्युवाच

रामकुण्डस्य माहात्म्यं सीताकुण्डस्य च प्रभो॥ १९॥
वद मे कृपया नाथ दीनानाथ दयाकर।

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे प्रभो! श्रीरामकुण्ड तथा श्रीसीताकुण्डका

माहात्म्य मुझसे वर्णन कीजिए। हे दीनानाथ! हे दयानिधान! हे नाथ! मुझपर कृपाकर दोनों कुण्डोंका फल अवश्य कहिये॥ १९$^{1}/_{2}$॥

श्रीशङ्कर उवाच

धन्यासि कृतकृत्यासि प्रिये प्रियतमासि मे॥ २०॥

श्रीशंकरजीने कहा—हे प्रिये! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो, मेरी अत्यन्त प्रियतमा हो॥ २०॥

राघवस्य च सीताया माहात्म्यं शृणु कुण्डयोः।
संक्षेपेण महादेवि तव प्रीत्या वदाम्यहम्॥ २१॥
तयोः स्नानफलं यत्स्यात् तस्यान्तो नैव विद्यते।
वक्तुं शक्नोति पुरुषो न च वर्षशतैरपि॥ २२॥

हे महादेवि! तुम्हारे प्रेमके कारण मैं श्रीरामकुण्ड तथा श्रीसीताकुण्डका माहात्म्य संक्षेपमें वर्णन करता हूँ। इन दोनों कुण्डोंमें किया गया जो स्नान है, उसके फलका अन्त नहीं है। इनकी महिमाका कोई भी पुरुष सैकड़ों वर्षोंमें भी वर्णन नहीं कर सकता॥ २१-२२॥

सर्वात्मना तु सततं तयोः स्नानं समाचरेत्।
वाहनादिहिरण्यैश्च ग्रामक्षेत्रादिदानतः॥ २३॥
यत्फलं जायते तस्य तत्फलं स्नानमात्रतः।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्॥ २४॥

सब प्रकारसे इन दोनों कुण्डोंमें निरन्तर स्नान करना चाहिये। वाहन, सुवर्ण, ग्राम, क्षेत्र आदिके दानसे जो फल मिलता है, वही फल केवल यहाँ स्नानसे उपलब्ध होता है। इस विषयमें एक पुराना इतिहास [मनीषीजन] कहा करते हैं॥ २३-२४॥

ब्राह्मणः श्रुतसम्पन्नो ब्रह्मदत्तो महामतिः।
विचचार महीमेतां शाकमूलफलाशनः॥ २५॥

शास्त्रज्ञानसम्पन्न ब्रह्मदत्त नामक एक महाबुद्धिशाली ब्राह्मण

शाक-फलमूल आदिका आहार करते हुए इस भूमितलपर विचरने लगे॥ २५॥

गंगां च यमुनां चैव गोमतीमथ गण्डकीम्।
शतद्रुं च पयोष्णीं च चन्द्रभागां सरस्वतीम्॥ २६॥
प्रयागं नर्मदां चैव शोणं चैव महानदम्।
गयां च विन्ध्यतीर्थं हि हिमप्रस्रवणानि च॥ २७॥
आश्रमेषु च यानि स्युर्नैमिषं पुष्कराणि च।
कुरुक्षेत्रे च यानि स्युः स चचार यथाविधि॥ २८॥

उन्होंने गंगा, यमुना, गोमती, गण्डकी, शतद्रू, पयोष्णी, चन्द्रभागा, सरस्वती, प्रयाग, नर्मदा, महानद शोणभद्र, गया, विन्ध्याचल, हिमालयके जलप्रपात, [बदरिकाश्रम आदि पवित्र] आश्रम, नैमिषारण्य, तीनों पुष्कर, कुरुक्षेत्र और उसके समीपवर्ती तीर्थ तथा दूसरे भी अनेक पुण्य-तीर्थोंकी विधिपूर्वक यात्रा की॥ २६—२८॥

अन्यानि च महातेजास्तीर्थानि सुसमाहितः।
कदाचित् प्राप्तवान् धीरो ब्रह्मदत्तोऽत्र कुण्डयोः॥ २९॥
रामकुण्डे प्रसन्नात्मा यथा नान्यत्र वै यतः।
स्नात्वा कुण्डे तु रामस्य सीताकुण्डे तथैव च॥ ३०॥
मनः प्रसादमगमत् तत्र तस्य महात्मनः।
ततो योगं समाश्रित्य विप्रस्तद्गतमानसः॥ ३१॥
प्राणायामैः स्वकं देहं परित्यज्य दिवं गतः।
विमानेनातिमहता सेवितश्चाप्सरोगणैः॥ ३२॥

वे परमतेजस्वी धैर्यशाली ब्रह्मदत्त एकाग्र चित्तसे ऐसे ही अन्य अनेक तीर्थोंकी यात्रा करते हुए किसी समय रामकुण्ड तथा सीताकुण्डके समीप आये। उनकी आत्मा रामकुण्ड आनेपर जैसी प्रसन्न-निर्मल हुई, वैसी दूसरे किसी तीर्थमें नहीं हुई। ब्रह्मदत्तने रामकुण्ड-सीताकुण्डमें स्नान किया, इससे उन महापुरुषका मन

अति प्रसन्न हो गया। तदुपरान्त वे योगका आश्रय लेकर परमात्मामें मनोनिवेश करके प्राणायामके द्वारा अपने शरीरको छोड़कर अप्सराओंसे सेवित विशाल विमानपर बैठकर स्वर्गको चले गये॥ २९—३२॥

रामकुण्डप्रभावेण ब्रह्मसायुज्यमीयिवान्।
इत्येतत् कथितं देवि माहात्म्यं कुण्डयोस्तयोः॥ ३३॥
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं स्वर्गलोकं स गच्छति।
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे भैरवो नाम नामतः॥ ३४॥

रामकुण्डके प्रभावसे वे सायुज्यमुक्तिको प्राप्त हुए। हे देवि! इस प्रकारका राम-सीताकुण्डका माहात्म्य मैंने वर्णन किया। इस आख्यानको निरन्तर पढ़ने और सुननेवाला स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। इन दोनों कुण्डोंसे दक्षिण भागमें भगवान् भैरव विराजमान हैं॥ ३३-३४॥

यं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।
रक्षितो वासुदेवेन क्षेत्ररक्षार्थमादरात्॥ ३५॥

जिनके दर्शनसे व्यक्ति सब पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। भगवान् वासुदेव (श्रीराम)-ने अपने अयोध्या-क्षेत्रकी रक्षाहेतु भैरवको आदरपूर्वक स्थापित किया था॥ ३५॥

मार्गशीर्षस्य कृष्णायामष्टम्यां तस्य निर्मिता।
यात्रा साम्वत्सरी तस्य सर्वकामार्थसिद्धये॥ ३६॥

सभी कामनाओंकी सिद्धिहेतु मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमीको भैरवजीकी वार्षिक यात्रा निश्चित की गयी है॥ ३६॥

तस्य पूजा प्रयत्नेन विधातव्या सदा नरैः।
मनोऽभीष्टफलप्राप्तिर्भैरवस्यादरात् प्रिये॥ ३७॥

हे प्रिये! भैरवदेवका सादर पूजन करनेसे मनोवांछित मनोरथोंकी प्राप्ति होती है, अतएव मनुष्योंको सदा प्रयत्नपूर्वक भैरवजीका पूजन करना चाहिये॥ ३७॥

पशूपहारसहितं कर्तव्यं पूजनं सदा।
सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः॥ ३८॥

इनके निमित्त शास्त्रोक्त नैवेद्यादि भोगोपचारोंका निवेदन करनेसे समस्त कामनाओंकी सिद्धि मिलती है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३८॥

निर्विघ्नं तीर्थवसतिः सदा तस्य प्रयत्नतः।
जायते तेन कर्तव्या पूजा तस्य महात्मनः॥ ३९॥

जो मनुष्य इन महात्मा भैरवजीका पूजन प्रयत्नसे करता है, उसीका अयोध्यावास निर्विघ्न हो पाता है, इसलिये इनकी पूजा अवश्य ही करनी चाहिये॥ ३९॥

यदा पूर्वं विनिर्जित्य रावणं लोकरावणम्।
समागतो रघुपतिः सीतालक्ष्मणसंयुतः॥ ४०॥
तत्र गत्वा यदा वीरो भरतो रामकांक्षया।
स्थितः सानुचरः श्रीमाञ्छ्रिया परमया युतः॥ ४१॥

जब पूर्वकालमें श्रीराम लोकोंको रुलानेवाले रावणको जीतकर सीता एवं लक्ष्मणके सहित अयोध्या पधारे थे, उस समय श्रीरामके आगमनहेतु पहले ही परम शोभाशाली वीर भरतजी अनुचरोंके साथ भैरवदेवके समीप स्थित हुए थे अर्थात् उनकी उपासना की थी॥ ४०-४१॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे पंचविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें पार्वती-शंकर-संवादरूप अयोध्याखण्डके अन्तर्गत पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

दुग्धेश्वरपीठ, सीताकुण्ड, सुग्रीवकुण्ड, हनुमत्कुण्ड, आस्तीकपीठ, विभीषणसरोवर, रमणकतीर्थ, घृताचीतीर्थ और संगमतीर्थ—इन पुण्यस्थलोंका इतिहास एवं माहात्म्य

श्रीशङ्कर उवाच

तत्राकस्मात् कामधेनुः प्रादुर्भूता स्त्रवत्स्तनी।
स्तनेभ्यश्च प्रसुस्त्राव दुग्धं बहुगुणान्वितम्॥ १॥
तद्भूमिपतितं दुग्धं दृष्ट्वा वानरराक्षसाः।
विस्मयं परमं जग्मुः पप्रच्छुस्ते च राघवम्॥ २॥
किमेतदिति राजेन्द्र तानुवाच रघूद्वहः।
वसिष्ठो वेत्ति तत्सर्वं पृच्छामस्तत्परा वयम्॥ ३॥

श्रीशंकरजी बोले—[जब वनवासकी अवधि पूर्णकर अपने अनुचरोंके साथ श्रीराम अयोध्याके समीप आये तो] वहाँ स्तनोंसे झरते दुग्धवाली कामधेनु सहसा प्रकट हो गयी। उसके स्तनोंसे उत्कृष्टतम दिव्य दुग्धकी धारा बह चली। भूमिपर गिरे दूधको देखकर वानर तथा राक्षसगण बड़े आश्चर्यमें पड़ गये और उन्होंने श्रीरामभद्रसे पूछा—हे राजेन्द्र! यह आश्चर्यमयी घटना क्यों और कैसे हुई? इसे बतलाइये। तब उन वानर-राक्षसोंसे रघुनन्दनने कहा—[बन्धुओ!] इन सब बातोंको वसिष्ठजी जानते हैं, अतः उन्हींके पास चलकर हम लोग पूछें॥ १—३॥

इत्युक्त्वा तु ततः सर्वे वसिष्ठप्रमुखे स्थिताः।
राममग्रेसरं कृत्वा पप्रच्छुरिदमादरात्॥ ४॥
वसिष्ठोऽपि क्षणं ध्यात्वा तमुवाच निराकुलम्।
राघवं प्रति सम्बोध्य सर्वेषामग्रतो मुनिः॥ ५॥

ऐसा निश्चयकर श्रीरामको आगे करके सब वानर-राक्षसगण महर्षि वसिष्ठके सामने गये और बड़े आदरसे इस विलक्षण घटनाके विषयमें प्रश्न किया। तब वसिष्ठजी क्षणभर ध्यान करके सबके समक्ष शान्तिपूर्वक स्थित श्रीरामको सम्बोधन करके बोले॥ ४-५॥

श्रीवसिष्ठ उवाच

शृणु राम महाबाहो कामधेनुरियं शुभा।
समागता तव स्नेहात् प्रस्त्रवन्ती स्तनात् पयः॥ ६॥

श्रीवसिष्ठजीने कहा—हे महाबाहो श्रीरामभद्र! सुनो। यह मंगलकारिणी कामधेनु स्तनोंसे दूधकी वर्षा करती हुई आपके स्नेहवश यहाँ आयी है॥ ६॥

दुग्धमध्ये समुद्भूतो रुद्रस्त्वां द्रष्टुमागतः।
निष्पन्नकार्यं देवानां निर्जितारातिमुत्तमम्॥ ७॥

देवताओंका भलीभाँति कार्य निष्पन्न करनेवाले एवं शत्रुओंपर विजय पानेवाले आपको देखनेके लिये [कामधेनुके] दुग्धके माध्यमसे [साक्षात्] रुद्रदेव ही प्रकट हुए हैं॥ ७॥

इमं सम्पूजय क्षिप्रमेतत्कुण्डस्य सन्निधौ।
सीते त्वमपि यत्नेन पूजयेमं शिवं शुभम्॥ ८॥
दुग्धेश्वरमिति ख्यातं क्षीरकुण्डं पवित्रकम्।

हे रामभद्र! इस कुण्डके समीप शीघ्र ही इन दुग्धेश्वरजीका पूजन कीजिये। हे सीते! तुम भी इन मंगलमय शिवजीका पूजन करो। इनका नाम दुग्धेश्वर होगा तथा इस पवित्र तीर्थका नाम क्षीरकुण्ड होगा॥ ८½॥

श्रीशङ्कर उवाच

ततो रघुपतिः प्रीतो वसिष्ठोक्तविधानतः॥ ९॥
पूजयामास तल्लिङ्गं दुग्धेश्वरप्रथांगतम्।
सीतया संस्कृतः पश्चात् क्षीरकुण्डस्य संगतम्॥ १०॥

सीताकुण्डमिति ख्यातिं जगाम परमां तदा।
सीताकुण्डे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा दुग्धेश्वरं शिवम्॥ ११ ॥
सर्वपापैः प्रमुच्येत नात्र कार्या विचारणा।
अत्र स्नानं जपो होमो दानं चाक्षयतां व्रजेत्॥ १२ ॥

श्रीशंकरजीने कहा—इसके पश्चात् रघुनन्दनने श्रीवसिष्ठजीके द्वारा कथित विधानानुसार दुग्धेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए उस शिवलिंगका पूजन किया। तदुपरान्त सीताजीने भी क्षीरकुण्डके समीप ही पूजन-संस्कार करके एक जलाशयकी स्थापना की, जो सीताकुण्ड नामसे परम ख्यातिको प्राप्त हुआ। सीताकुण्डमें स्नान करके श्रीदुग्धेश्वरजीका दर्शनकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं। इस तीर्थमें किया गया स्नान, जप, होम, दानादिरूप पुण्यकार्य अक्षय हो जाता है॥ ९—१२ ॥

सीताकुण्डे हि सम्पूज्यौ सीतारामौ सलक्ष्मणौ।
दुग्धेश्वरं च सम्पूज्य सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ १३ ॥
ज्येष्ठे मासि चतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
एवं यो विधिवत् कुर्याद् यात्रां धर्मविधानतः॥ १४ ॥
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति।
ततः पूर्वदिशाभागे सुग्रीवरचितं महत्॥ १५ ॥

सीताकुण्डकी सन्निधिमें लक्ष्मण-जानकीसहित श्रीराम तथा दुग्धेश्वरजीका पूजन करनेसे सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं। ज्येष्ठमासकी चतुर्दशीको यहाँकी वार्षिकी यात्रा होती है। इस प्रकार धर्मशास्त्रानुसार विधिपूर्वक जो यहाँकी यात्रा करता है, वह उस उत्तम स्थानको प्राप्त होता है, जहाँ जाकर [पुनरावृत्तिजन्य] शोक नहीं होता। इस तीर्थसे पूर्व भागमें सुग्रीवद्वारा रचित महान् [तीर्थ] है॥ १३—१५ ॥

तीर्थं चैव सुकण्ठस्य वर्तते सन्निधौ शुभम्।
यत्र स्नात्वा च दत्वा च रामं सम्पूज्य यत्नतः॥ १६ ॥

तस्मिन्नेव दिने तत्र कामान् सर्वानवाप्नुयात्।
तत्प्राच्यां दिशि संस्थाने हनुमत्कुण्डमित्यपि॥ १७॥
तस्य पश्चिमदिग्भागे विभीषणसरः शुभम्।
तयोः स्नानेन दानेन रामसम्पूजनेन च॥ १८॥
सर्वान् कामानवाप्नोति तस्मिन्नेव विधानतः।
आस्तीकस्य ततः स्थानं पश्चिमे दिग्दले स्थितम्॥ १९॥
तस्य दर्शनमात्रेण सर्पभीतिर्न जायते।
ततो रमणकं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २०॥

वह मंगलमय सुग्रीवतीर्थ [सीताकुण्डके] समीपमें ही है। उसी दिन वहाँ भी स्नान-दानकर यत्नसे श्रीरामका पूजन करनेसे सब कामनाओंकी प्राप्ति होती है। इससे पूर्व दिशामें हनुमत्कुण्ड है। इसके पश्चिम भागमें सुन्दर विभीषणसर नामक तीर्थ है। इन दोनों तीर्थोंमें स्नान-दान और श्रीरामके पूजनसे सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं। इन तीर्थोंके पश्चिम भागमें आस्तीकमुनिका स्थान है, जिसके केवल दर्शनसे सर्पका भय नहीं रहता। इनके अनन्तर रमणक-स्थली [है, जिस]-का दर्शन करके व्यक्ति सब पापोंसे छूट जाता है॥ १६—२०॥

तस्मात् पश्चिमदिग्भागे घृताचीतीर्थमुत्तमम्।
सरयूजलमध्ये तु सदा तिष्ठति सुन्दरि॥ २१॥
माहात्म्यं कथयिष्यामि शृणु तस्याः समासतः।
आसीत् किल मुनिर्धीरो वात्स्यो नाम तपोधनः॥ २२॥
चचार हिमवत्पार्श्वे निराहारो जितेन्द्रियः।
तत्तपो विपुलं दृष्ट्वा भीतः सुरपतिस्तदा॥ २३॥

हे पार्वती! रमणक-स्थलीसे पश्चिम दिग्भागमें सरयूजलमें सर्वदा अन्तर्लीन रहनेवाला घृताचीतीर्थ है। इसका माहात्म्य संक्षेपमें कहूँगा, उसे सुनो! हे सुन्दरि! हिमालयकी पार्श्वस्थलीमें वात्स्य नामके

एक धैर्यशील तपोधन मुनि रहते थे। वे जितेन्द्रिय महर्षि निराहार रहकर वहाँपर प्रबल तपश्चर्यामें निरत थे। उस समय उनकी उत्कट तपश्चर्याको देखकर इन्द्रदेव डर गये॥ २१—२३॥

घृताचीं प्रेषयामास तपोविघ्नाय सत्वरम्।
ततः सा प्रेषिता तेन जगाम गजगामिनी॥ २४॥
वसन्ते हिमवत्पार्श्वे वात्स्याश्रममनुत्तमम्।
तामाश्रमलतापुष्पकांचीरचितकुन्तलाम् ॥ २५॥
विलोक्य तां विशालाक्षीं मुनिर्व्याकुलितेन्द्रियः।
बभूव रोषसन्तप्तः शशाप च बहुच्छलाम्॥ २६॥

तब शीघ्र ही इन्द्रदेवने मुनिके तपमें विघ्नहेतु घृताची नामकी अप्सराको भेजा। वह गजगामिनी इन्द्रदेवकी आज्ञासे वसन्त-ऋतुमें हिमालयपर स्थित, वात्स्यमुनिके अत्यन्त उत्तम आश्रममें गयी। उसने आश्रमके लता-पुष्पोंसे निर्मित करधनी और शिरोभूषण धारण किये थे। छल करनेमें अतिनिपुण उस विशालनयना अप्सराको देखकर मुनिका चित्त विकल हो उठा और क्रोधसे जलते हुए उन्होंने उसे शाप दे दिया— ॥ २४—२६॥

वात्स्य उवाच

कुरूपतां याहि क्षिप्रं या त्वं सौन्दर्यगर्विता।
समागता तपोविघ्नहेतवे मम सन्निधौ॥ २७॥

वात्स्यमुनिने कहा—जो तुम सौन्दर्यके गर्वसे मेरे पास तपमें विघ्न करनेहेतु आयी हो, अतः शीघ्र तुम कुरूप हो जाओ॥ २७॥

ईश्वर उवाच

इति शप्ता रुषा तेन मुनिना सा शुभेक्षणा।
उवाच विनता भूत्वा प्रांजलिर्मुनिमादरात्॥ २८॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—वह सुन्दर नेत्रोंवाली अप्सरा मुनिके इस शापको सुनकर हाथ जोड़े हुए नम्र होकर बड़े आदरके साथ उनसे बोली॥ २८॥

घृताच्युवाच

भगवन् मे प्रसीद त्वं पराधीना यतस्त्वहम्।
मच्छापस्य कथं मुक्तिर्भवित्री निरयादतः॥ २९॥

घृताचीने कहा—हे भगवन्! मुझपर आप प्रसन्न हो जायँ; क्योंकि मैं पराधीन हूँ। इस नरकतुल्य शापसे मुझको कैसे मुक्ति मिलेगी?॥ २९॥

वात्स्य उवाच

अयोध्यायामस्ति तीर्थं सरयूमध्ये तु पावनम्।
तत्र स्नानं कुरुष्वाद्य सौन्दर्यं परमाप्नुहि॥ ३०॥
तव नाम्नैव च ख्यातिं स्थानं यास्यति तच्छुभम्।

वात्स्यमुनिने कहा—अयोध्यापुरीमें सरयूजलके मध्यमें एक परमपावन तीर्थ है। तुम वहाँ आज ही स्नान करो। [ऐसा करते ही] परम सौन्दर्यको पा जाओगी। तुम्हारे ही नामसे यह सुन्दर तीर्थ (घृताचीकुण्ड) प्रसिद्ध होगा॥ ३०$^{१}/_{२}$॥

श्रीशङ्कर उवाच

एवं सा विप्रवचनादकरोत् सर्वमादरात्॥ ३१॥

श्रीशंकरजी कहते हैं—इस प्रकार मुनिके वचनानुसार घृताचीने बड़े आदरसे [मुनिके द्वारा आदिष्ट] सब कुछ [सम्पन्न] किया॥ ३१॥

सुन्दरी साभवत् क्षिप्रं तत्स्थानं ख्यातिमाययौ।
तत्र स्नानं च देवेशि यः कुर्याद् विधिवज्जले॥ ३२॥
सौन्दर्यं परमं तस्य भवेत्तत्र न संशयः।
पौषशुक्लचतुर्दश्यां तत्र स्नानं समाचरेत्॥ ३३॥

ऐसा करनेसे वह शीघ्र ही सुन्दर रूपको प्राप्त हुई और वह स्थान [लोकमें] विख्यात हो गया। हे देवेशि! सरयूजलमें स्थित उस तीर्थमें विधिपूर्वक जो स्नान करता है, उसे उत्तम सौन्दर्य प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है। पौषमासकी शुक्ल चतुर्दशीको यहाँ स्नान करना चाहिये॥ ३२-३३॥

तत्र विष्णुर्जनैः पूज्यः सर्वकामार्थसिद्धये।
एवं कुर्वन्नरो विद्वान् विष्णुलोके वसेत्सदा॥ ३४॥
नरो वा यदि वा नारी सर्वान् कामानवाप्नुयात्।

समस्त कामनाओंकी सिद्धिहेतु लोगोंको यहाँपर विष्णुपूजन अवश्य करना चाहिये, ऐसा करनेसे विद्वान् पुरुष सर्वदा विष्णुलोकमें निवास करता है। स्त्री हो या पुरुष—कोई भी व्यक्ति यहाँ स्नानसे सब कामनाओंको प्राप्त करता है॥ ३४$^{1}/_{2}$ ॥

ततः पश्चिमदिग्भागे योजनद्वयसम्मिते॥ ३५॥
सङ्गमो वर्तते देवि सर्वपापप्रणाशनः।
तत्र स्नात्वा तु यत्पुण्यं शृणु तत्कथयामि ते॥ ३६॥

इस तीर्थसे पश्चिम भागमें दो योजनकी दूरीपर संगम-स्थल है। हे देवि! यहाँ समस्त पापोंका नाशक संगम नामक तीर्थ है। यहाँ स्नान करनेसे जो पुण्य होता है, उसे मैं कहता हूँ, तुम सुनो॥ ३५-३६॥

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च।
राजसूयसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ३७॥

सहस्रों अश्वमेध, सैकड़ों वाजपेय तथा सहस्रों राजसूय यज्ञ करनेका फल मनुष्यको यहाँ [स्नान-दर्शनादिसे] मिलता है॥ ३७॥

कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे।
यत्फलं स्नानदानाभ्यां सङ्गमे तत्समं भवेत्॥ ३८॥

महाक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहण लगनेपर स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वही फल संगममें स्नान-दानसे मिलता है॥ ३८॥

अमायां पौर्णमास्यां च द्वादश्योरुभयोरपि।
ग्रहणे च व्यतीपाते स्नानं वैष्णवलोकदम्॥ ३९॥

अमावास्या, पूर्णमासी, दोनों द्वादशी, ग्रहण, व्यतीपात आदि पर्वोंपर यहाँका स्नान (आदि सत्कृत्य) विष्णुलोकको देनेवाला है॥ ३९॥

तिष्ठेद् युगसहस्रं तु पादेनैकेन यः पुमान्।
विधिवत् सङ्गमे पौष्यां स्नानात् स च विशिष्यते॥ ४०॥

जो पुरुष एक पैरसे हजारों युग खड़ा होकर तप आदि करके जिस फलको प्राप्त करता है, वही फल पौषमासकी पूर्णमासीको संगममें विधिवत् स्नानसे मिलता है॥ ४०॥

लम्बतेऽर्वाक्शिरा यस्तु युगानामयुतं नरः।
अत्र स्नानेन दानेन पौष्यां स च विशिष्यते॥ ४१॥

जो मनुष्य सहस्र युगपर्यन्त नीचे सिर करके अर्थात् उलटा लटककर तप करनेसे जिस पुण्यको प्राप्त करता है, उससे अधिक पुण्य पौषमासकी पूर्णमासीको संगममें [विधानपूर्वक] स्नान [दान आदि]-से मिलता है॥ ४१॥

दशकोटिसहस्राणि दशकोटिशतानि च।
सरयूघर्घरे सङ्गे तीर्थानि सन्ति पार्वति॥ ४२॥

हे पार्वति! कोटि-कोटि सहस्र तथा कोटि-कोटि शत तीर्थ, सरयू-घाघराके संगममें निवास करते हैं॥ ४२॥

संगमे सलिले तस्मिन्नरः स्नात्वा विधानतः।
सन्तर्प्य पितृदेवांश्च दत्वा दानं च शक्तितः॥ ४३॥
हुत्वा वैष्णवमन्त्रेण विष्णुलोकं व्रजेन्नरः।
पौषे मासि विशेषेण स्नानं बहुफलप्रदम्॥ ४४॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सङ्गमे स्नानमाचरेत्।

उस संगमके जलमें मनुष्य विधिवत् स्नान, पितरोंका तर्पण, देवताओंका पूजन, विष्णुमन्त्रसे होम और यथाशक्ति दान करके विष्णुलोकगामी होता है। पौषमासमें यहाँका स्नान प्रचुर फल देनेवाला है], इसलिये सर्वविध प्रयत्न करके इस संगमतीर्थमें स्नान करना चाहिये॥ ४३—४४½॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसङ्कराः॥ ४५॥
ते यान्ति ब्रह्मणः स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम्।
पौषे मासि तु यो दद्याद् घृताढ्यं दीपमुत्तमम्॥ ४६॥
विधिवच्छ्रद्धया देवि शृणु तस्यापि यत्फलम्।

इस संगममें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा वर्णसंकर मनुष्य भी स्नान करके पुनरावृत्तिरहित ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। जो घीसे परिपूर्ण उत्तम दीपक विधिपूर्वक श्रद्धासे पौषमासमें जलाता है, हे देवि! उसके फलको सुनो॥ ४५—४६$^{१}/_{२}$ ॥

नानाजन्मार्जितं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु॥ ४७॥
तत्सर्वं भस्मतां याति तूलराशिर्यथानले।

अनेक जन्मोंका कमाया हुआ [मनुष्यका] थोड़ा या अधिक भी पाप वैसे ही जल जाता है, जैसे रुईके ढेरको अग्नि एक क्षणमें भस्म कर देती है॥ ४७$^{१}/_{२}$ ॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं सन्ततिं सौख्यमुत्तमम्॥ ४८॥
प्राप्नोति सकलं राज्यं दीपदानेन सुव्रते।
यस्तु शुक्लचतुर्दश्यां पौषे च संयतो व्रती॥ ४९॥
जागरं कुरुते धीरः स गच्छेद् भवनं हरेः।

हे सुव्रते! मनुष्य दीर्घायुष्य, आरोग्य, ऐश्वर्य, सन्तान, उत्तम सुख, पूर्ण राज्यादिको दीपदानसे प्राप्त करता है। जो मनुष्य पौषमासकी चतुर्दशीको व्रत धारण करके रात्रिमें जागरण करता है, वह धीर पुरुष विष्णुलोकको प्राप्त करता है॥ ४८—४९$^{१}/_{२}$ ॥

होमं च कारयेद् विप्रैर्नियतात्मा शुचिव्रतः॥ ५०॥
वैष्णवो विष्णुपूजां च कुर्वन् शृण्वन् हरेः कथाम्।
गीतवादित्रनृत्यैश्च विष्णुसन्तोषकारकैः॥ ५१॥
कथाभिः पुण्ययुक्ताभिः क्षपयेच्छर्वरीं नरः।
ततः प्रभाते विमले स्नात्वा विधिवदादरात्॥ ५२॥
विष्णुं सम्पूज्य विप्रांश्च देयं स्वर्णादि शक्तितः।

विष्णुभक्त मनुष्यको चाहिये कि वह जितेन्द्रिय तथा पवित्र व्रतधारी होकर विप्रोंद्वारा होम कराये, विष्णुपूजा, हरिकथा-श्रवण, विष्णुप्रीतिकारक नृत्य-गीत-वाद्यादिके साथ कीर्तन और पुण्यमयी कथाओंके साथ रात्रि बिता करके प्रातःकाल विधिपूर्वक श्रद्धासे उस

विमल तीर्थमें स्नान करे। तदुपरान्त विष्णुका पूजन करके विप्रोंको यथाशक्ति सुवर्ण आदिका दान करे॥ ५०—५२½ ॥

गावश्चान्नं च वासांसि तुरंगगजमुत्तमम्॥ ५३॥
संगमे विधिवद्दत्त्वा स याति परमां गतिम्।
वर्षे वर्षे तु कर्तव्या यात्रा धर्मार्थतत्परैः॥ ५४॥
सर्वतीर्थावगाहस्य फलं यादृक् स्मृतं क्षितौ।
तादृक् फलं नृणां सम्यग् भवेत् संगममज्जनात्॥ ५५॥

संगमतीर्थमें गौ, वस्त्र, घोड़ा, हाथी आदिका विधिपूर्वक दान करनेवाला परम गतिको प्राप्त होता है। प्रतिवर्ष धर्मात्मा जनोंको यहाँकी यात्रा करनी चाहिये। सब तीर्थोंके स्नानका जो फल भूमितलपर प्रसिद्ध है, वही फल मनुष्योंको भलीभाँति संगम तीर्थमें स्नान करनेसे मिलता है॥ ५३—५५॥

पुरा कृतयुगे देवि पृथिव्युद्धरणं कृतम्।
तस्मान्निष्पादितं तीर्थं वराहेण महात्मना॥ ५६॥
हत्वा दुष्टं हिरण्याक्षं पृथिवीस्थापनं कृतम्।
अत्र देवाः सगन्धर्वा हर्षनिर्भरमानसाः॥ ५७॥
समागम्य स्तुतिं चक्रुर्यज्ञवाराहतुष्टये॥ ५८॥

हे देवि! पूर्वकालमें सत्ययुगमें वराहरूपी महात्मा श्रीहरिने पृथ्वीका उद्धार किया तथा वाराह नामक तीर्थको स्थापित किया। उन्होंने हिरण्याक्ष नामक दुष्ट दैत्यका वध करके पृथ्वीका स्थापन किया, उस समय यहाँपर हर्षपूर्ण चित्तसे गन्धर्व आदिके सहित देवताओंने आ करके यज्ञवाराहकी प्रसन्नताहेतु स्तुति की॥ ५६—५८॥

देवा ऊचुः

देवाधिदेवाय नमो नमो विभो
श्रीयज्ञवाराह भयापह प्रभो।
स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं प्रवर्तिने
कृपासमुद्राय वरप्रदायिने॥ ५९॥

देवताओंने कहा—हे विभो! हे यज्ञवाराह! हे भयापहारी! हे प्रभो! हे देवोंके भी देव! आपको बार-बार नमस्कार है। आपने अपनी दाढ़ोंसे पृथ्वीका उद्धार करके उसे स्थापित किया। कृपाके समुद्र, वर देनेवाले आपको नमस्कार है॥ ५९॥

श्रीवाराह उवाच

किं वो मनसि भो देवा मत्तस्तत् प्रार्थ्यतां ध्रुवम्।
संगमेऽत्र महाक्षेत्रे भुक्तिमुक्तिप्रदायके॥ ६०॥

श्रीवाराहने कहा—हे देवगण! आप लोगोंके मनमें जो कामना हो, उसे मुझसे माँग लो; क्योंकि यह संगमतीर्थ निश्चय ही भुक्ति-मुक्ति देनेवाला महाक्षेत्र है॥ ६०॥

देवा ऊचुः

शत्रुतो न भयं तस्य न चैवेष्टवियोजनम्।
संगमे मज्जनात् पुंसो गर्भवासक्षयो भवेत्॥ ६१॥

देवताओंने कहा—हे यज्ञपते! इस संगममें स्नान करनेवालेको शत्रुओंसे भय न हो, उसकी कामना कभी विफल न हो (अथवा उसे प्रियवियोग न हो) तथा गर्भमें उसे न आना पड़े॥ ६१॥

श्रीवाराह उवाच

एवमस्तु सदा देवाः संगमः पापनाशनः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्तिस्तत्र न संशयः॥ ६२॥

श्रीवाराहने कहा—हे देवगण! जो आप लोगोंने माँगा, वह वैसा ही हो! यह संगमक्षेत्र पापोंका नाश करनेवाला है। [इसका सेवन करनेसे] निस्सन्देह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्ति होगी॥ ६२॥

श्रीशङ्कर उवाच

इति श्रुत्वा तदा देवा गन्धर्वा मुनयस्तदा।
तत्रैव निवसन्ति स्म सभां कृत्वा विधानतः॥ ६३॥

श्रीशंकरजीने कहा—इस प्रकार श्रीवाराहके कथनको सुनकर

उस समय देवता, गन्धर्व और मुनिगण सभा करके विधिपूर्वक वहींपर निवास करने लगे॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-सम्वादरूप अयोध्याखण्डके अन्तर्गत छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

जम्बुकतीर्थ, तुन्दिलाश्रम, अगस्त्यसर, पराशरस्थल, गोकुलातीर्थ श्रीकुण्डक्षेत्रस्थ महालक्ष्मीपीठ, स्वप्नेश्वरीपीठ, वरस्रोततीर्थ एवं कुटिला-संगम—इन पुण्यस्थलोंका माहात्म्य

श्रीशङ्कर उवाच

ततो गच्छेत्तु देवेशि जम्बूतीर्थमनुत्तमम्।
वाराहात् पश्चिमे भागे सर्वकामदुघं स्मृतम्॥ १ ॥

श्रीशंकरजीने कहा—हे देवेशि! तदुपरान्त वाराहतीर्थसे पश्चिम भागमें अवस्थित, सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तीर्थ-प्रवर जम्बूतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये॥ १ ॥

तस्मिँस्तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महापि विशुद्ध्यति।
देवशर्मेति विख्यातो ब्राह्मणो वेदपारगः॥ २ ॥

उस तीर्थमें स्नान करके ब्रह्महत्या करनेवाला भी विशुद्धिको प्राप्त होता है। [किसी समय वहाँपर] वेदनिष्णात देवशर्मा नामक एक प्रसिद्ध ब्राह्मण रहा करता था॥ २ ॥

तस्याश्रमे महादेवि जम्बुकोऽप्यागतस्ततः।
आश्रमदर्शनादेव दिव्यदेहमवाप्तवान्॥ ३ ॥

हे महादेवि! एक बार उन देवशर्माके आश्रमपर एक शृगाल

आ गया। वह उस आश्रमके दर्शनमात्रसे दिव्य शरीरवाला हो गया॥ ३॥

अपर्णे त्वं महाभागे शृणुष्वैकमनाः सति।
जम्बूतीर्थादुपावृत्तो गच्छेत्तु तुन्दिलाश्रमम्॥ ४॥
न दुर्गतिमवाप्नोति स्वर्गे लोके च पूज्यते।
तुन्दिलो ब्राह्मणः कश्चिज्जटावल्कलधारकः॥ ५॥
कदाचिद्दैवयोगेन रोगग्रस्तोऽभवत्तदा।
दीर्घोदरश्च सम्प्रोक्तः कष्टसाध्योऽभवत्तदा॥ ६॥

हे सती! हे अपर्णे! हे महाभागे! तुम मनको एकाग्र करके सुनो! जम्बूतीर्थसे निवृत्त होकर तीर्थयात्री व्यक्ति तुन्दिलाश्रम तीर्थमें जाय। इस तीर्थमें आनेवाला मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता और स्वर्गमें तथा इस लोकमें वह पूजित होता है। जटा-वल्कलधारी तुन्दिल नामका कोई ब्राह्मण था। किसी समय दैवयोगसे वह रोगग्रस्त हो गया। उसे असाध्य और कष्टप्रद जलोदर रोग हो गया था॥ ४—६॥

एकदा तत्र देवेशि ह्यागतः सरयूतटे।
रम्यं मनोहरं तत्र पुलिनं समदृश्यत॥ ७॥

हे देवेशि! वह एक समय [व्याकुल होकर] समीपमें प्रवाहित श्रीसरयूके तटपर आया और उसने वहाँके रमणीय मनोहर भूभागको देखा॥ ७॥

तत्राश्रमं ततः कृत्वा तुन्दिलो ब्राह्मणोत्तमः।
त्रिरात्रोपोषितस्तत्र त्वाश्चर्यं शृणु सुन्दरि॥ ८॥
त्रिरात्रान्ते समुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम्।
स्नानाच्च विधिवत् तत्र रोगान्मुक्तस्ततोऽभवत्॥ ९॥
सरयूदर्शनाद् देवि वैकुण्ठनिलयं गतः।
तत्राश्रमसमाभ्यासे स्नानं कुर्वन्ति मानवाः॥ १०॥

न तेषां पुनरावृत्ती रामचन्द्रप्रसादतः।
आश्रमाद् दक्षिणे भागे सर आगस्त्यसम्भवम्॥ ११॥

हे सुन्दरि! इसके बाद उस तुन्दिल ब्राह्मणने वहींपर आश्रम बनाकर निवास करते हुए तीन रात्रिपर्यन्त उपवास किया। इसके अनन्तर जो आश्चर्यपूर्ण घटना हुई, उसे सुनो—तीन रात्रिके पश्चात् उस ब्राह्मणने उठकर दन्तधावन [आदि] करके विधिपूर्वक स्नान किया और तीर्थके पुण्यप्रभावसे वह रोगमुक्त हो गया। हे देवि! वह ब्राह्मण सरयूदर्शनके प्रभावसे वैकुण्ठलोकको चला गया। उस आश्रमके समीप [सरयूके जलमें] स्नान करनेवालोंको श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। उस तुन्दिलाश्रमके दक्षिण भागमें अगस्त्यसर नामक तीर्थ है॥ ८—११॥

आगस्त्यसर आसाद्य पितृदेवार्चने रतः।
त्रिरात्रोपोषितस्तत्र त्वग्निष्टोमफलं लभेत्॥ १२॥

उस अगस्त्यसर तीर्थमें जाकर जो मनुष्य स्नान-तर्पण-श्राद्ध, देवार्चनके साथ तीन रात्रिका उपवास करता है, उसे अग्निष्टोमयज्ञका फल मिलता है॥ १२॥

शाकमूलफलैर्वापि कल्पयन् वृत्तिमात्मनः।
बाल्यभावे कृतं पापं यौवने वार्धके तथा॥ १३॥
तत्सर्वं नाशमायाति त्वागस्त्यदर्शनादनु।
अथातः श्रूयतां भद्रे सरय्वा उत्तरे तटे॥ १४॥
यानि तीर्थानि पुण्यानि तानि ते कथयाम्यहम्।

वैसे ही जो व्यक्ति शाक, कन्द, फल आदिसे अपना जीवन निर्वाह करता हुआ वहाँ रहता है, उसके बाल्य, युवा तथा वृद्धावस्थामें किये गये समस्त पाप अगस्त्यसरके दर्शनसे नष्ट हो जाते हैं। हे कल्याणि! इसके अनन्तर सरयूजीके उत्तर तटपर जो तीर्थ स्थित हैं, उन पवित्र तीर्थोंका तुमसे वर्णन करता हूँ, उसे

श्रवण करो॥ १३—१४१/२ ॥

सरय्वा उत्तरे तीरे पराशरमुनेः स्थलम्॥ १५॥
सरयूसलिले स्नात्वा पूजयेच्च पराशरम्।
सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ १६॥

सरयूजीके उत्तर तटपर पराशरमुनिका स्थान है। सरयूजीमें स्नानकर पराशरजीका पूजन करनेसे मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १५-१६॥

गोकुलादीनि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
तेषां वदामि माहात्म्यं तव प्रीत्या वरानने॥ १७॥

हे प्रिये! हे वरानने! गोकुल आदि जितने भी पुण्यमय तीर्थ तथा देवमन्दिर हैं, उन सबके माहात्म्यका मैं तुम्हारे प्रेमके कारण वर्णन करता हूँ॥ १७॥

गोकुलायां महातीर्थं श्रीकुण्डमिति विश्रुतम्।
श्रीकुण्डसन्निधौ देवि महालक्ष्मीर्विराजते॥ १८॥

गोकुलामें एक महान् तीर्थ है, जो श्रीकुण्डके नामसे प्रसिद्ध है। हे देवि! उसी कुण्डके समीप श्रीमहालक्ष्मी विराजमान हैं॥ १८॥

स्नात्वा श्रीकुण्डतीर्थे तु सम्पूज्य जगदम्बिकाम्।
पितॄन् संतर्प्य विधिवत् तीर्थे श्रीकुण्डसंज्ञके॥ १९॥
दत्वा दानानि विधिवदलक्ष्म्याः परिमुच्यते।
लक्ष्मीक्षेत्रं महापीठं साधकानां सुसिद्धिदम्॥ २०॥

श्रीकुण्डतीर्थमें स्नानकर जगदम्बा लक्ष्मीजीका पूजन करके और विधिपूर्वक पितृ-तर्पण तथा अनेकविध दान करके मनुष्य दरिद्रतासे छुटकारा पा जाता है। लक्ष्मीक्षेत्ररूप यह महालक्ष्मीपीठ साधकोंको उत्तम सिद्धि देनेवाला है॥ १९-२०॥

साधयंस्तत्र मन्त्रांश्च नरः सिद्धिमवाप्नुयात्।
महालक्ष्मीपीठसमं नान्यल्लक्ष्मीकरं परम्॥ २१॥

जो मनुष्य इस महालक्ष्मीपीठमें मन्त्रोंका साधन करता है, वह सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। महालक्ष्मीपीठके तुल्य [संसारमें] लक्ष्मीवर्द्धक दूसरा पीठ नहीं है॥ २१॥

महालक्ष्म्यष्टमीं प्राप्य तत्र यात्राकृतां नृणाम्।
सम्पूजितेह विधिवत् पद्मा सद्म न मुंचति॥ २२॥

महालक्ष्म्यष्टमीके अवसरपर जो श्रद्धालु यहाँकी यात्रा तथा इस पीठमें महालक्ष्मीका सविधि पूजन करता है, उसके घरको भगवती लक्ष्मी कभी नहीं छोड़तीं॥ २२॥

ततः स्वप्नेश्वरी देवी देवि पूज्या विधानतः।
भविष्यं कथयेदग्रे भक्तस्याग्रे शुभाशुभम्॥ २३॥

हे देवि! महालक्ष्मीके दर्शन-पूजनादिके अनन्तर स्वप्नेश्वरी देवीकी [यात्रा तथा] विधानपूर्वक पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे वे भावी शुभ-अशुभ परिणाम भक्तको [शयनकालमें] पहले ही बतला देती हैं॥ २३॥

अथापि प्रत्ययस्तत्र कार्य एव विजानता।
भूतं भावि भवत् सर्वं वदेत् स्वप्नेश्वरी निशि॥ २४॥

आज भी कार्य आ जानेपर प्रत्यक्ष अनुभव होनेके कारण उनपर विश्वास करना पड़ता है। भूत-भविष्यत्-वर्तमानकी सभी बातें [स्वप्नके माध्यमसे] स्वप्नेश्वरी रात्रिमें बतला देती हैं ॥ २४॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां यात्रा स्यात् प्रातिमासिकी।
ततः पूर्वदिशाभागे वरस्त्रोतो विराजते॥ २५॥

अष्टमी और चतुर्दशीको प्रत्येक मासमें इनकी यात्रा होती है। इनसे पूर्व भागमें वरस्त्रोत नामक तीर्थ है॥ २५॥

नद्या कुटिलया तस्य संगमः पापनाशनः।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत कार्तिके पूर्णिमातिथौ॥ २६॥
दानानि विधिवद् दत्वा नरः श्रद्धासमन्वितः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो देवलोकं स गच्छति॥ २७॥

कुटिला नदीके साथ जो वरस्त्रोतका संगम है, वह पापोंका नाश करनेवाला है। इस संगम-तीर्थमें कार्तिक पूर्णमासीको जो श्रद्धालु मनुष्य विधिपूर्वक स्नान-दान करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है और देवलोकको प्राप्त कर लेता है॥ २६-२७॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-सम्वादरूप अयोध्याखण्डके अन्तर्गत सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

कुटिलासंगम, मनोरमातीरवर्ती मखस्थान एवं रामरेखा तीर्थका इतिहास और माहात्म्य

श्रीशङ्कर उवाच

ततो गच्छेत्तु देवेशि तीर्थं पापप्रणाशनम्।
कुब्जायाः संगमं तीर्थं सर्वतीर्थाधिकं स्मृतम्॥ १॥

श्रीशंकरजीने कहा—हे देवेशि! वरस्त्रोतसंगमसे आगे [चलकर] पापनाशक, सरयूकुब्जा (कुटिला) संगम नामक तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। यह तीर्थ सभी तीर्थोंसे अधिक महिमावाला है॥ १॥

चम्पकाख्ये पुरे देवि गालवो नाम वै द्विजः।
तस्य शिष्यो महातेजास्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ २॥

[इसका इतिहास यह है कि] चम्पकपुरमें गालव नामक

ब्राह्मण थे। हे देवि! उनका शिष्य बड़ा तेजस्वी तथा तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध था॥ २॥

समग्राधीतविद्यस्तु गुरुशुश्रूषणे रतः।
गुरुशुश्रूषया प्राप्ताः साङ्गोपाङ्गाश्चतुर्दश॥ ३ ॥

उसने गुरुसेवामें संलग्न होकर समग्र विद्याओंका अध्ययन किया और गुरुशुश्रूषाके प्रतापसे वह सांगोपांग चौदहों विद्याओंमें निष्णात हो गया॥ ३॥

गुरुणा पुत्रिका दत्ता तस्मै शिष्याय धीमते।
अथ काल उपावृत्ते सगर्भाजायत वधूः॥ ४ ॥

उस बुद्धिमान् शिष्यको गुरुने अपनी कन्या दे दी। इसके अनन्तर समय आनेपर वह वधू सगर्भा हो गयी॥ ४॥

तस्या गर्भे समुत्पन्ने वह्निरूपे महाद्युतौ।
ततो वै मध्यरात्रान्ते स्वाध्यायमकरोत् पिता॥ ५ ॥

अग्निके समान अतिशय कान्तिवाले गर्भको धारण करके स्थित उस वधूके निकट ही गर्भस्थ शिशुके पिता एक समय मध्यरात्रिमें स्वाध्याय कर रहे थे॥ ५॥

गर्भस्थेन च पुत्रेण बोधितो वै पिता तदा।
प्रदोषेऽधीतका विद्या याऽफला सा स्मृता बुधैः॥ ६ ॥

उस समय गर्भमें स्थित उस बालकने पिताको सम्बोधित करके कहा कि आधी रातके समय अधीत विद्याको पण्डितोंने निष्फल बताया है॥ ६॥

इति गर्भवचः श्रुत्वा कोपपूर्णो द्विजोत्तमः।
गर्भस्थं शापयामास मुनिर्दिव्येन चक्षुषा॥ ७ ॥

इस प्रकार गर्भस्थ बालकके वचनको सुनकर उन मननशील द्विजश्रेष्ठने आक्षेप करनेवाले उस गर्भस्थ शिशुको दिव्य नेत्रोंसे देखकर कोपावेशके कारण शाप दे दिया॥ ७॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व नगनन्दिनि।
अथ काले तु सम्प्राप्ते सुषुवे स्म सुतं तु सा॥ ८ ॥
अष्टावक्रं ततो जातं पुत्रमानन्ददं शुभम्।
तेजसा दीप्यमानं तु वह्निकान्तिसमद्युतिम्॥ ९ ॥

हे पार्वती! इसके अनन्तर जो हुआ, वह कहता हूँ; उसे सुनो। दसवाँ महीना आनेपर वधूने आठ स्थानोंसे टेढ़े, किन्तु आनन्द देनेवाले सुन्दर पुत्रको उत्पन्न किया। अग्निके तुल्य कान्तिवाला वह पुत्र तेजसे प्रकाशित हो रहा था॥ ८-९ ॥

जातमात्रस्ततो बालः पित्रनुज्ञामवाप्य च।
जगाम तपसे धीरः शान्तो दान्तो धृतव्रतः॥ १० ॥

जन्म लेनेके अनन्तर वह शान्तचित्त, इन्द्रियनिग्रही, धीर ब्राह्मणबालक पितासे आज्ञा प्राप्त करके व्रत धारणकर तपस्याके लिये चल पड़ा॥ १० ॥

यमुनातीरमासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम्।
एतस्मिन्नन्तरे देवि मान्धाता प्रवरो नृपः॥ ११ ॥
तस्य कन्याः समायाताः शतानि च चतुर्दश।
तं च दृष्ट्वा मुनिवरं हृदा वव्रुः सुमध्यमाः॥ १२ ॥
परस्परन्तु वचसा तमृषिं वरयामहे।
द्विजपुत्रं समुत्थाप्य वरार्थं ताः कुमारिकाः॥ १३ ॥
अष्टावक्रं तु सन्दृश्य तत्त्यजुस्तास्तु तं द्विजम्।
द्विजस्य हेलनं कृत्वा निवृत्ता राजकन्यकाः॥ १४ ॥

वह यमुनाजीके तटपर जाकर घोर तप करने लगा। हे देवि! इसी समय नृपशिरोमणि मान्धाताकी चौदह सौ कन्याएँ वहाँ आयीं और उन श्रेष्ठ कन्याओंने [जलमें स्थित हो तपस्या करते हुए] उन अष्टावक्रजीको देखकर पहले मनमें वरण कर लिया, फिर आपसमें 'ऋषिवरको हमलोग पतिके रूपमें वरण करती

हैं', ऐसा निश्चय किया। तदुपरान्त उन कुमारियोंने द्विजकुमार अष्टावक्रजीसे पाणिग्रहणहेतु अनुरोध किया। जब [अष्टावक्रजी जलसे निकले तो] कन्याओंने आठ स्थानोंसे टेढ़े उनके शरीरको देखा तो वे राजकुमारियाँ उनकी अवहेलना करने लगीं और उन्हें त्यागकर चल पड़ीं॥ ११—१४॥

ऋषिः कोपसमाविष्टः शशाप राजकन्यकाः।
ऋषिणा शापिताः कन्याः कुब्जास्ता अभवन् क्षणात्॥ १५॥

[इस प्रकारके अपमानसे] ऋषिवरने क्रोधमें आकर राजकन्याओंको शाप दे दिया। ऋषिके शापसे वे कन्याएँ क्षणभरमें कूबड़वाली हो गयीं॥ १५॥

कान्यकुब्जेति विख्यातो देशस्तत्राथ सुन्दरि।
अङ्गीकृत्य ततः शापमागताः पितृसद्मनि॥ १६॥
पित्रा तु पृच्छमानास्ता कस्माज्जाताश्च कुब्जिकाः।

हे प्रिये! उस शापस्थानका नाम कान्यकुब्ज देश प्रसिद्ध हुआ। तदनन्तर कन्याएँ ऋषिशापको अंगीकारकर पिताके घर आ गयीं। वहाँ पिताने पूछा कि तुमलोग कूबड़वाली कैसे हो गयी?॥ १६$^1/_2$॥

कन्या ऊचुः

अष्टावक्रो द्विजश्रेष्ठो यमुनान्तःस्थितस्ततः॥ १७॥
अस्माभिस्तु वरार्थं च विज्ञप्तो निःससार ह।
अष्टाभिः स्थानकैर्वक्रो दृष्टोऽसौ मुनिपुंगवः॥ १८॥
मनोभङ्गस्ततोऽस्माकं निवृत्ताश्च ततो वयम्।
पूर्वकर्मविपाकेन एतत्सर्वमजायत॥ १९॥

कन्याओंने कहा—अष्टावक्र नामके एक ब्राह्मण यमुनाजलके मध्यमें तप कर रहे थे। हम लोगोंने उनसे पति बननेके लिये निवेदन किया, तो वे जलसे बाहर आ गये। बाहर निकलनेपर वे मुनिश्रेष्ठ आठ स्थानोंसे टेढ़े दीख पड़े। ऐसा देखकर हम लोगोंका मन खिन्न

हो गया और हम उनको वरण करनेसे विरत हो गयीं। पूर्वकृत कर्मके परिणामसे यह सब हो गया॥ १७—१९॥

ऋषिणा शापिताश्चैव कुब्जा जाताश्च तत्क्षणात्।
एवं जातापराधाः स्म क्षन्तुमर्हसि सुव्रत॥ २०॥

[अपमानके कारण] ऋषिने शाप दे दिया, उससे हम लोग उसी समय कूबड़युक्त कुरूप हो गयीं। हे सुव्रत! हम लोगोंसे अपराध हो गया, उसे आप क्षमा करें॥ २०॥

इति तासां वचः श्रुत्वा ह्युवाच वसुधाधिपः।
गम्यतां गम्यतां शीघ्रमयोध्यां सरयूतटे॥ २१॥

मान्धाताने कन्याओंके इस कथनको सुनकर उनसे कहा कि तुम लोग शीघ्र ही अयोध्यामें सरयूतटपर जाओ॥ २१॥

इति पित्रा ह्यनुज्ञाताः सर्वा नार्यस्सुसंस्कृताः।
आगताः सरयूतीरे ऋषेराश्रमसन्निधौ॥ २२॥

इस प्रकार पिताकी आज्ञासे वे सदाचारिणी कन्याएँ ऋषियोंके आश्रमके समीपवर्ती सरयूतटपर आ गयीं॥ २२॥

हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य स्वाचान्ताः शुद्धमानसाः।
उपस्पृष्टाः शुभाचाराः सरयूतीरसंश्रिताः॥ २३॥

शुभ आचरणवाली उन शुद्धहृदय कन्याओंने सरयूतटपर पहुँचकर हाथ-पैर धो करके आचमन और स्नान किया॥ २३॥

स्नानमात्रेण निर्मुक्ताः कुब्जकाद् दोषतः क्षणात्।
कुटिलायाः संगमे तु स्नानं कृत्वा शुचिस्मिताः॥ २४॥
सुन्दर्यश्चाभवन् क्षिप्रं राजकन्याश्च पार्वति।

हे पार्वति! वे पवित्र मुसकानवाली राजकुमारियाँ स्नानमात्रसे तत्काल ही कुबड़ेपनसे मुक्त हो गयीं। कुटिलासंगममें स्नान करते ही वे तत्क्षण सौन्दर्यशालिनी हो गयीं॥ २४$\frac{1}{2}$॥

चैत्रे मासि सिते पक्षे नवम्यां रामजन्मनि॥ २५॥

तत्र स्नात्वा च दत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते।
कुटिलासङ्गमाद्देवि ईशाने क्षेत्रमुत्तमम्॥ २६॥

चैत्र शुक्ल नवमी (रामजन्मतिथि) पर कुटिलासंगममें स्नान-दान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। हे देवि! कुटिलासंगमसे ईशान कोणपर उत्तम तीर्थ [मखस्थान] है॥ २५-२६॥

मखस्थानं महापुण्यं यत्र पुण्या मनोरमा।
नदी वहति पापघ्नी भुक्तिमुक्तिप्रदायिका॥ २७॥

जहाँपर पुण्यमयी पापनाशिनी भुक्ति-मुक्तिदात्री मनोरमा नदी बहती है, वहीं महापवित्र मखस्थान (मखौड़ा या मखोर्वरा) नामक तीर्थ है॥ २७॥

चैत्रे मासि तु राकायां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
देवैर्यक्षैस्तथा नागैः किन्नरैश्च तथा नरैः॥ २८॥
अन्यैरपि महादेवि कृता यात्रा शुभार्थिभिः।
यद् यत् कामयते तत्र तत्तदाप्नोति मानवः॥ २९॥

चैत्रमासकी पूर्णमासीको यहाँकी वार्षिकी यात्रा होती है। हे महादेवि! देवता, यक्ष, नाग, किन्नर, मनुष्य तथा अन्य प्राणियोंने भी अपने कल्याणकी कामनासे इस तीर्थकी यात्रा सम्पन्न की है। यहाँ मनुष्य जो-जो कामना करता है, उसकी वे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं॥ २८-२९॥

यत्र राजा दशरथो हयमेधं चकार वै।
तेन पुण्यप्रभावेण जाता रामादयः सुताः॥ ३०॥
बहवो भोजिता विप्रा गावो दत्ता विधानतः।

यहाँपर महाराज दशरथने अश्वमेध यज्ञ किया था। उसी पुण्यके प्रभावसे श्रीराम आदि पुत्र उनको प्राप्त हुए। दशरथजीने यहाँपर बहुत-से ब्राह्मणोंको भोजन कराया और विधानपूर्वक गौओंका दान किया था॥ ३०$^{१}/_{२}$॥

तत्र तीर्थानि सर्वाणि देवाः सर्वे सवासवाः॥ ३१॥
सदा तिष्ठन्ति भो देवि सर्वार्थफलदायकाः।

यहाँपर समस्त तीर्थ और सर्वविध अभीष्ट प्रदान करनेवाले सभी देवता इन्द्रके सहित निवास करते हैं॥ ३१ $^{1}/_{2}$ ॥

पौर्णमास्यां तु चैत्रस्य समागत्य शुभार्थिभिः॥ ३२॥
नरैर्मनोरमायां तु यैः कृतं पितृतर्पणम्।
तारिताः पितरस्तैस्तु मातृमातामहादयः॥ ३३॥

अपना कल्याण चाहनेवाले जिन मनुष्योंने मनोरमामें पितरोंके निमित्त तर्पण किया है, उन्होंने अपने पिता-पितामह, माता-मातामह आदिको तार दिया॥ ३२-३३॥

जन्मान्तरशतं साग्रं यत्किंचिद् दुष्कृतं कृतम्।
तत्सर्वं विलयं याति स्नानदानैर्न संशयः॥ ३४॥

सैकड़ों जन्मोंकी कमायी हुई समस्त पापराशि मनोरमा नदीमें स्नान-दानादिसे नाशको प्राप्त हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३४॥

यो यो मनोरथो यस्य तं तं दत्ते मनोरमा।
मनस्तु रमते यत्र तस्मात् ख्याता मनोरमा॥ ३५॥

जिसका जो-जो मनोरथ होता है, उसे-उसे मनोरमा नदी पूर्ण करती है। इसके समीप पहुँचते ही मन आह्लादित हो जाता है, इसलिये इसका नाम 'मनोरमा' है॥ ३५॥

ततोऽग्रे रामरेखाया माहात्म्यं सन्निबोध मे।
यस्या दर्शनमात्रेण यमलोकं न पश्यति॥ ३६॥

इस मनोरमा नदीके आगे रामरेखा नामक तीर्थ है, उसका श्रेष्ठ माहात्म्य मुझसे सुनो! [हे पार्वती!] जिसके दर्शनसे यमलोक नहीं देखना पड़ता॥ ३६॥

तावन्महापापचयः शरीरे
शरीरिणस्तिष्ठति निर्विशंकम्।
यावत्कृतं स्नानमथो न भद्रे
रामस्य रेखाम्प्रति चैत्रमासे॥ ३७॥

हे भद्रे! हे पार्वती! मनुष्यके शरीरमें तभीतक महापापोंका समूह निर्भय होकर रहता है, जबतक मनुष्य चैत्रमासमें रामरेखा-तीर्थमें स्नान नहीं करता॥ ३७॥

यो दिनत्रयमपि प्रयत्नतः
स्नानदानमुपयाति चैत्रके।
मासि देवि मुदितो विचारवान्
मानवोऽघनिचयैर्विमुच्यते ॥ ३८॥

हे देवि! जो विचारशील मनुष्य प्रसन्नताके साथ चैत्रमासमें रामरेखातीर्थमें यत्नपूर्वक तीन दिन [-तक भी निवास करके] स्नान-दान कर लेता है, वह पापसमूहोंसे छूट जाता है॥ ३८॥

उद्भिज्जाः स्वेदजा वापि ह्यण्डजा ये जरायुजाः।
रामरेखां समासाद्य मृता विष्णुपुरं ययुः॥ ३९॥

स्वेदज, अण्डज, उद्‌भिज्ज तथा जरायुज—ये जो चतुर्विध जीव हैं, वे यदि रामरेखामें जाकर शरीर छोड़ते हैं, तो विष्णुलोकमें जाते हैं॥ ३९॥

ये द्रक्ष्यन्ति सदा भक्त्या रामरेखां समागताः।
ते प्राप्स्यन्ति धनं धान्यमायुरारोग्यमेव च॥ ४०॥
कलत्रपुत्रपौत्रादिगुणकीर्तिसुखादिकम् ।
राजा विजयमाप्नोति शूद्रः सुखमवाप्नुयात्॥ ४१॥

जो मनुष्य वहाँ जाकर सदा भक्तिपूर्वक रामरेखाका दर्शन करते हैं, वे धन-धान्य, आयु-आरोग्य, पत्नी-पुत्र-पौत्र, सुन्दर-गुण-कीर्ति और सुख-ऐश्वर्यादिको प्राप्त करते हैं। राजा विजयको प्राप्त करते हैं और शूद्र सुखोंको प्राप्त करते है॥ ४०-४१॥

चैत्रे मासि त्रयोदश्यां शुक्लायां च विशेषतः।
यात्रा साम्वत्सरी कार्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥ ४२॥

चैत्रमासमें और विशेषरूपसे चैत्र शुक्ल त्रयोदशीको यहाँकी भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली वार्षिकी यात्रा करनी चाहिये॥ ४२॥

अन्यान्यपि च तीर्थानि सन्ति देवि सहस्रशः।
मया प्रोक्तानि संक्षेपात् पापहारीणि शृण्वताम्॥ ४३॥
पश्चिमे रामरेखायाः सरयूमुत्तीर्य यत्नतः।
स्नायान्नरो रामतीर्थे सर्वपापक्षयाय वै॥ ४४॥

हे देवि! यहाँ और भी हजारों तीर्थ विद्यमान हैं, जो श्रवणमात्रसे पापोंका नाश करनेवाले हैं। मैंने तो यहाँ [उनके विषयमें] संक्षेपमें ही वर्णन किया है॥ ४३॥

मनुष्यको चाहिये कि वह इसके अनन्तर सरयूजीको यत्नसे पार करके रामरेखासे पश्चिममें स्थित श्रीरामतीर्थ (रामघाट)-में अपने सभी पापोंके क्षयहेतु स्नान करे॥ ४४॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्या-खण्डेऽष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-सम्वादरूप अयोध्याखण्डके अन्तर्गत अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

रामतीर्थ एवं अयोध्यापुरीकी महिमाका और मानसतीर्थोंका वर्णन

रामतीर्थस्य माहात्म्यं मह्यं ब्रूहि महेश्वर।
मनो न तृप्यते देव कथां श्रुत्वा मनोहराम्॥ १॥

श्रीपार्वतीजीने पूछा—हे महेश्वर! रामतीर्थ (रामघाट)-की महिमा मुझसे कहिये; क्योंकि ऐसी मनोहर कथाके सुननेसे मेरा मन तृप्त नहीं होता॥ १॥

श्रीशङ्कर उवाच

कथयिष्यामि भो देवि माहात्म्यं रामतीर्थजम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ २॥

श्रीशंकरजीने कहा—हे देवि! मैं श्रीरामतीर्थकी महिमाको तुमसे कहूँगा, जिसको सुननेसे मनुष्य अवश्य ही सब पापोंसे छूट जाता है॥ २॥

एकदा चैत्रमासे तु नवम्यां रामजन्मनि।
सुरासुरनरा नागा यक्षगन्धर्वकिन्नराः॥ ३॥
पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः सूतमागधवन्दिनः।
आदित्यादिग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः॥ ४॥
इन्द्रादिलोकपालाश्च शेषेण सह पन्नगाः।
ब्रह्मादिदेवताः प्राप्ता रुद्रादिभूतमातृकाः॥ ५॥
ते सर्वे ह्यागता आसन्नयोध्यां सरयूतटे।

एक बार चैत्रमासकी शुक्ल नवमीको श्रीरामके जन्मका [पावन] अवसर उपस्थित हुआ, उसमें देवता, राक्षस, मनुष्य, नाग, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, सूतगण, मागध, वन्दीगण, सूर्यादि सभी ग्रह, नक्षत्र, राशियाँ, इन्द्रादि लोकपाल, समस्त सर्पोंके साथ शेषजी, ब्रह्मादि देवता, भूतगण तथा मातृगणोंके सहित रुद्रगण आदि—ये सभी अयोध्यापुरीके समीप सरयूतटपर आये हुए थे॥ ३—५$^{1}/_{2}$॥

नवमीदिवसे प्राप्ते सदेवासुरमानवाः॥ ६॥
दर्शनार्थं महादेवि रामदेवस्य जन्मनि।
बभूवुः शुद्धरूपाश्च स्नात्वा श्रीसरयूजले॥ ७॥
समन्विताः संस्थिताश्च सरयूतीरवासिनः।

हे महादेवि! इस पावन पुरीतीर्थके दर्शनार्थ उपस्थित हुए वे देवता, असुर, मनुष्यादि रामनवमी तिथिमें, रामजन्मोत्सवके अवसरपर सरयूजलमें स्नान करके निर्मल स्वरूपवाले हो गये और [वे दर्शनार्थी देवता आदि] सरयूतटपर एकत्रित होकर वहीं स्थित हो गये॥ ६—७$^{1}/_{2}$॥

एतस्मिन्नन्तरे सर्वे यात्रिणो ये समागताः॥ ८॥

वसिष्ठं मुनिशार्दूलं माहात्म्यं सरयूभवम्।
पप्रच्छुः परया भक्त्या देवागमनकारणम्॥ ९॥

इसी बीचमें [एक वृत्तान्त घटित हुआ। स्नान-दर्शनादिके लिये वहाँपर] जो और भी यात्री आये थे, उन लोगोंने वहाँपर [ब्राह्मणोंके साथ उपस्थित] मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे उत्कट भक्तिपूर्वक सरयूजीका माहात्म्य तथा देवोंके वहाँपर आनेका कारण पूछा॥ ८-९॥

जना ऊचुः

भो भूमिदेवाः शृण्वन्तु लोकानां सङ्कुलं महत्।
किमर्थमागता ह्यत्र त्वयोध्यां सरयूतटे॥ १०॥

लोगोंने पूछा—हे ब्राह्मणो! आप लोग सुनिये। यह लोकों (देवगन्धर्वादि)-का महान् समुदाय अयोध्यामें सरयूतटपर किस हेतु आया है? [तब सर्वज्ञ महर्षि वसिष्ठ कहने लगे]॥ १०॥

श्रीवसिष्ठ उवाच

चैत्रशुक्लनवम्यां तु ये पश्यन्ति रघूत्तमम्।
न तेषां पुनरावृत्तिर्महापातकिनामपि॥ ११॥

श्रीवसिष्ठजीने कहा—चैत्र शुक्ल नवमी (रामनवमी)-को जो श्रीरघुनाथजीका दर्शन करते हैं, वे यदि महापापी भी हों; तो उन्हें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता॥ ११॥

आगता एतदर्थं वै मनुष्या भो जनाः किल।
ऋषिवाक्यं जनाः श्रुत्वा सर्वे विस्मितमानसाः॥ १२॥

हे [समागत] जनो! इसी कारण यह [देवताओं आदिका तथा] मनुष्योंका समूह यहाँ तीर्थमें आया है। ऋषिके वचन सुनकर सभी लोगोंके मनमें आश्चर्य छा गया॥ १२॥

पप्रच्छू रामतीर्थस्य माहात्म्यं पुनरुत्सुकाः।
वसिष्ठः कथयामास तन्मया कथ्यतेऽधुना॥ १३॥

तदुपरान्त उन लोगोंने बड़ी उत्सुकताके साथ रामतीर्थके

माहात्म्यको पूछा और तब वसिष्ठजीने जो कहा, वही मैं इस समय तुमसे कह रहा हूँ॥ १३॥

श्रूयतां देवि माहात्म्यं रामतीर्थस्य सुन्दरम्।
एतस्मिन्नन्तरे देवि मयूरी त्वागता शुभा॥ १४॥
मुखे सर्पं गृहीत्वा तु सम्प्राप्ता रामतीर्थके।
तन्मुखात् पतितः सर्पो रामतीर्थे तदैव च॥ १५॥

हे देवि! रामतीर्थकी महिमा बड़ी मनोहारिणी है, तुम उसका श्रवण करो। वसिष्ठजीके द्वारा महिमाका वर्णन आरम्भ होते ही, एक मयूरी मुखमें साँप लिये उस रामतीर्थमें आ पहुँची। दैवयोगसे रामतीर्थमें उसके मुखसे उसी समय सर्प गिर पड़ा॥ १४-१५॥

क्षणाद्धि पश्यमानानां दिव्यदेहो व्यजायत।
तस्मात् कुण्डप्रभावात्तु सर्पदेहं विमुक्तवान्॥ १६॥

सबके देखते-देखते एक ही क्षणमें वह सर्प दिव्य शरीरवाला हो गया और उस रामतीर्थके पुण्यप्रभावसे सर्प अपनी उस [कुत्सित] योनिसे मुक्त हो गया॥ १६॥

दिव्यं विमानमारुह्य चतुर्भुजसमन्वितः।
पश्यतां सर्वजन्तूनां वैकुण्ठपदमारुहत्॥ १७॥

वह चतुर्भुज होकर तथा दिव्य विमानपर बैठकर सब प्राणियोंके देखते-ही-देखते वैकुण्ठधामको चला गया॥ १७॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुः खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः।
ऋषयस्तत्र दृष्ट्वा च विस्मयं परमं ययुः॥ १८॥

आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, अन्तरिक्षसे पुष्पवृष्टि भी हुई। ऋषिगण इस विलक्षण दृश्यको देखकर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ १८॥

ततो नारद आगत्य लोकानां हितकाम्यया।
रामतीर्थस्य माहात्म्यं जनेभ्योऽकथयद् ऋषिः॥ १९॥

इसके अनन्तर देवर्षि नारदने आकर उपस्थित जनोंकी कल्याणकामनासे रामतीर्थकी उन्हें महिमा सुनायी॥ १९॥

देवर्षेश्च वसिष्ठस्य वाक्यं श्रुत्वा तु ते जनाः।
कृत्वा स्नानं विधानेन पूजयित्वा जनार्दनम्॥ २०॥
चतुर्भुजाश्च ते सर्वे भूत्वा जग्मुर्हरेः पदम्।
दिव्यं विमानमारुह्य जग्मुः सर्वे हरेः पदम्॥ २१॥

देवर्षि श्रीनारद तथा वसिष्ठजीके द्वारा [उस तीर्थकी] ऐसी महिमाको सुनकर सभी लोगोंने सविधि स्नानकर श्रीरघुनन्दनका पूजन किया। ऐसा करते ही समस्त जन चतुर्भुज होकर श्रीरामधामको जानेके लिये दिव्य विमानमें आरूढ़ हुए और श्रीहरिके परमधामको चले गये॥ २०-२१॥

इतिहासमिमं पुण्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः।
तस्य भुक्तिश्च मुक्तिश्च पितृतृप्तिश्च जायते॥ २२॥

इस पवित्र इतिहासको श्रद्धा-भक्तिके साथ सुननेवाले जनोंको भुक्ति एवं मुक्ति प्राप्त होती है तथा उनके पितरोंकी [अक्षय] तृप्ति होती है॥ २२॥

सत्यं शौचं श्रुतं विद्या सुशीलत्वं क्षमार्जवम्।
सर्वं च निष्फलं तस्य त्वयोध्यां नागतो यदि॥ २३॥

जो व्यक्ति अयोध्यापुरीमें नहीं आ सका, उसके सत्य, पवित्रता, शास्त्र-श्रवण, विद्याध्ययन, सदाचार, क्षमा, सरलता आदि समस्त सद्गुण निष्फल हैं॥ २३॥

मनसा कामिता चैव ह्ययोध्या श्रेष्ठबुद्धिभिः।
अमरत्वं च ते यान्ति नात्र कार्या विचारणा॥ २४॥

जिन लोगोंने उत्तम भावनासे अयोध्यापुरीकी मनसे भी कामना की है, वे देवता बन जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २४॥

अयोध्या कलिकाले तु प्रातरुत्थाय कीर्तिता।
तेन पुण्यप्रभावेण स्वर्गे याति न संशयः॥ २५॥

यदि मनुष्य प्रातःकाल उठकर 'श्रीअयोध्या' ऐसा कीर्तन करता है, तो इस पुण्यके प्रभावसे इस कलियुगमें भी वह स्वर्गगामी होता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २५॥

वासरः को विना सूर्यं विना सोमेन का निशा।
तद्वन्नाभाति सत्कर्म त्वयोध्यां नागतो यदि॥ २६॥

जिस प्रकार सूर्यके बिना दिन तथा चन्द्रमाके बिना रातकी शोभा नहीं होती, उसी तरह अयोध्यामें न आनेवालेके सत्कर्मोंकी कोई महत्ता नहीं है॥ २६॥

यत्किंचित् क्रियते कर्म स्नानं देवार्चनं तथा।
दक्षिणादानतः सिद्धं सकलं सफलं व्रजेत्॥ २७॥

जो कुछ भी देवार्चन-स्नानादि शास्त्रीय कर्म किया जाता है, वह दक्षिणा-दानके द्वारा ही परिपूर्ण तथा सफल हो पाता है॥ २७॥

श्रीपार्वत्युवाच

दुर्लभः सर्वजन्तूनां कथाविस्तारतः क्रमात्।
यात्राक्रमोऽपि च मया श्रुत आगच्छतां नृणाम्॥ २८॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्षेत्रस्थानां यथाविधि।
यथाक्रममहं देव सम्यक् त्वत्तो महेश्वर॥ २९॥
फलं ब्रूहि क्रमेणैव यात्राविधिविदांवर।
करोमि त्वत्प्रसादेन तथा कुरु यतव्रत॥ ३०॥

श्रीपार्वतीजीने कहा—तीर्थयात्राके निमित्त आनेवाले लोगोंके द्वारा अनुष्ठित यात्राक्रमका इतिहाससे युक्त, सुविस्तृत एवं क्रमिक वर्णन [प्रायः] मनुष्योंके लिये दुर्लभ ही है, जिसे मैंने [आपसे] सुना। हे देव! हे महेश्वर! अब मैं इस अयोध्याक्षेत्रमें स्थित [तीर्थोंका माहात्म्यादि] तथा विधानके अनुरूप उनकी

क्रमिक यात्राके अनुष्ठानके फलको आपसे भलीभाँति सुनना चाहती हूँ। हे तीर्थयात्राविधानके मर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ! अब क्रमसे तीर्थयात्राका फल कहिये। हे दृढ़व्रत! जिसे सुनकर आपकी कृपासे इस पुरीकी मैं भी यात्रा करूँ॥ २८—३०॥

श्रीशङ्कर उवाच

शृणु वक्ष्यामि यत्नेन यात्राक्रममथोदितम्।
अयोध्यायां तु तीर्थानां यथावदनुपूर्वशः॥ ३१॥
मनोवाक्कायशुद्धेन निर्दोषेणान्तरात्मना।
यः करोति विधिं सम्यक् स तीर्थफलमश्नुते॥ ३२॥
मानसेषु सुतीर्थेषु स्नात्वा किल जितेन्द्रियः।

श्रीशंकरजीने कहा—तुम सुनो, अब अयोध्याके सब तीर्थोंका क्रमानुरूप शास्त्रवर्णित यात्राविधान यत्नपूर्वक कहता हूँ। जो व्यक्ति मन, वाणी तथा शरीरसे शुद्ध होकर और विकाररहित अन्तःकरणसे तीर्थयात्रा करता है, वही तीर्थफलको भलीभाँति प्राप्त करता है। जो जितेन्द्रिय होकर मानस तीर्थोंमें स्नान करता है, वही तीर्थफलका अधिकारी है॥ ३१—३२१/२॥

श्रीपार्वत्युवाच

मानसान्येव तीर्थानि कथयस्व महामते॥ ३३॥
येषु स्नानेन वा नृणां विशुद्धिर्मनसो भवेत्।

श्रीपार्वतीजीने कहा—हे बुद्धिशीलशिरोमणे! अब उन मानसतीर्थोंका वर्णन कीजिये; जिनमें स्नान करनेसे मनुष्योंके मनकी विशेष शुद्धि हो जाती है॥ ३३१/२॥

श्रीशङ्कर उवाच

शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे॥ ३४॥
येषु सम्यङ् नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्।

श्रीशंकरजीने कहा—हे अनघे! जिन तीर्थोंमें यथाविधि

स्नान करनेसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त करता है, उन मानस तीर्थोंका अब मैं वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो॥ ३४$^{1}/_{2}$ ॥

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः॥ ३५॥
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थानां तीर्थमादिमम्।
ज्ञानं तीर्थं व्रतं तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्॥ ३६॥

सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है और इन्द्रियनिग्रह भी तीर्थ है। समस्त जीवोंपर दया करना सभी तीर्थोंमें पहला तीर्थ है। ज्ञान तीर्थ है, व्रत तीर्थ है और तप भी तीर्थ कहा गया है॥ ३५-३६॥

सर्वभूतदयातीर्थं विशुद्धिर्मनसः शुचिः।
अजलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते॥ ३७॥

सब जीवोंपर दया तथा मनकी पवित्रता—इन दोनों मानसतीर्थोंमें अवगाहन जलसे स्नान किये बिना ही स्नानतुल्य बतलाया गया है॥ ३७॥

स स्नातो मानसे स्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः।
भौमानामपि तीर्थानां पुण्यत्वे कारणं शृणु॥ ३८॥

मानस तीर्थमें स्नान करनेवाला ही यथार्थ तीर्थस्नान करता है। वही पवित्र है तथा उसीका मनोमल धुल गया है। ऐसे ही भूतलपर विद्यमान स्थूल तीर्थ भी पावन करनेवाले हैं, इसका कारण बताता हूँ, उसका श्रवण करो॥ ३८॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसम्वादे अयोध्याखण्डे
एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-सम्वादरूप अयोध्याखण्डके
अन्तर्गत उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

भौम एवं मानस तीर्थ, अयोध्यापुरीकी विविध परिक्रमा-यात्राएँ, अयोध्यास्तोत्र, अयोध्याके द्वादश पुण्यवन, मोक्षप्रद सात नद, तीन ग्राम, सात पुरियाँ, नौ अरण्य, नौ ऊषर और चौदह गुप्तस्थल, मुक्तिके प्रत्यक्ष साधन, अयोध्या खण्डकी महिमा एवं ग्रन्थका उपसंहार

श्रीशङ्कर उवाच

यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः।
तथा पृथिव्या उद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः॥ १॥

श्रीशंकरजीने कहा—जैसे इस शरीरमें कुछ अंग मेध्यतम अर्थात् अतिपवित्र हैं, उसी प्रकार इस भूमितलके भी कुछ स्थल अतिशय पुण्यमय माने गये हैं॥ १॥

प्रभावादद्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसः।
अत्याग्रहान्मुनीनां तु तथा तीर्थानि सन्ति च॥ २॥
तस्माद् भौमेषु तीर्थेषु मानसेषु च सम्वसेत्।
उभयेषु च यः स्नाति स याति परमां गतिम्॥ ३॥

भूमिके अद्भुत प्रभावसे, जलके पावनत्वके कारण, अग्निकी दाहिका शक्तिके कारण तथा महर्षियोंके दीर्घकालीन निवासके कारण संसारमें पार्थिव तीर्थ किंवा भौमतीर्थ प्रतिष्ठित होते हैं। इसलिये [अयोध्या आदि] पार्थिव तीर्थों तथा [सत्य, क्षमा, ब्रह्मचर्य आदि] मानस तीर्थोंमें मनुष्यको अवस्थित रहना चाहिये। इन उभयविध तीर्थोंका जो भलीभाँति सेवन करता है, उसे परम गति प्राप्त होती है॥ २-३॥

तस्मात् त्वमपि देवेशि विशुद्धेनान्तरात्मना।
यात्रां कुरु विधानेन यात्रा वै कथिता मया॥ ४॥
तत्तु वक्ष्यामि भो देवि तीर्थयात्राविधिं क्रमात्।

अतः हे देवि! शुद्ध अन्तःकरणसे तुम भी मेरी बतलायी हुई यात्राको विधानपूर्वक करो। हे देवि! उस यात्राविधिको क्रमसे मैं कह रहा हूँ॥ ४१/२ ॥

जायन्ते च जलेष्वेव म्रियन्ते च जलौकसः॥ ५॥
न गच्छन्ति च ते स्वर्गमशुद्धमनसो नराः।
विषयेष्वेव संरागो मनसो मल उच्यते॥ ६ ॥
तेष्वेव हतसङ्गस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्।
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति॥ ७ ॥

जिस प्रकार [तीर्थोंके] जलमें रहनेवाले जीव जलमें ही उत्पन्न होकर उसीमें मर जाते हैं [किंतु तीर्थोंके माहात्म्यके अनुरूप सद्गति नहीं पाते], उसी प्रकार अशुद्ध मनसे तीर्थसेवन करनेवाले मनुष्य भी स्वर्गगामी नहीं होते। विषयोंकी वासनाको ही मानस मल कहा गया है और उन विषयोंसे जिनकी वासना निवृत्त है, उन्हींको निर्मलता प्राप्त होती है, क्योंकि वासनारूपी मलसे मलिन अन्तर्मन तीर्थोंमें किये गये स्नानसे शुद्ध नहीं होता॥ ५—७॥

शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमपावनम्।
दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतिस्तथा॥ ८ ॥
सर्वाण्येतानि तीर्थानि यदि भावेन निर्मलः।
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्र वै वसते नरः॥ ९ ॥
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा।

जैसे मदिराके पात्रको सैकड़ों बार जलसे धोनेपर भी वह अशुद्ध ही रहता है, इसी प्रकार मन भी केवल स्नानसे शुद्ध नहीं

होता। दान, यज्ञ, तप, शौचाचार, तीर्थसेवा और वेदाध्ययन—ये सभी सत्कर्म तीर्थस्वरूप ही हैं। यदि मनुष्यका मनोभाव निर्मल हो, उसकी इन्द्रियाँ नियन्त्रित हों, तो वह जहाँ-कहीं भी रहता है, उसके लिये वहीं-वहीं कुरुक्षेत्र, नैमिष, पुष्कर आदि तीर्थ विद्यमान रहते हैं॥ ८—९१/२ ॥

एतत्ते कथितं देवि मानसं तीर्थमुत्तमम्॥ १०॥
यस्यां सिद्धौ क्रियाः सर्वाः सफलाः स्युः क्रियावताम्।

हे देवि! इस प्रकार इन उत्तम मानसतीर्थोंका वर्णन मैंने तुमसे किया। जिस मानसतीर्थकी उपलब्धि हो जानेपर कर्मनिष्ठ जनोंकी समस्त क्रियाएँ सफल होती हैं॥ १०१/२ ॥

प्रातरुत्थाय मतिमान् स्वर्गद्वाराप्लवं चरेत्॥ ११॥
ततो धर्महरिं दृष्ट्वा जन्मस्थानं विलोकयेत्।
चक्रतीर्थे ब्रह्मकुण्डे तथा ऋणविमोचने॥ १२॥
स्नात्वा सहस्रधाराख्ये मुच्यते जन्मसङ्कटात्।
एकादश्यामेकादश्यामियं यात्रा शुभावहा॥ १३॥

[अयोध्यापुरीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें] सर्वप्रथम बुद्धिमान् व्यक्ति प्रातःकाल उठकर स्वर्गद्वारमें स्नान करे। इसके अनन्तर धर्महरि, जन्मस्थान, चक्रतीर्थ, ब्रह्मकुण्ड, ऋणमोचन, सहस्रधारा आदि तीर्थोंमें यथायोग्य दर्शन-स्नानादि करे, इससे वह जन्म-मरणरूप संकटसे छूट जाता है। दोनों पक्षोंकी एकादशी तिथियोंमें की गयी यह यात्रा मंगल देनेवाली है॥ ११—१३॥

स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा स्वर्गलोकमवाप्नुयात्।
नानाविधानि पापानि बहुजन्मकृतानि च॥ १४॥
सचैलस्नानतः शुद्धः सचैलं स्नानमाचरेत्।
एषा वै गदिता यात्रा सर्वपापहरा शुभा॥ १५॥

मनुष्य स्वर्गद्वारमें स्नान करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति करता है। सचैल अर्थात् सभी वस्त्रोंको पहने हुए ही स्नान करनेसे अनेक जन्मोंके कमाये हुए अनेक प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं, अतः सचैल स्नान ही करना चाहिये। सभी पापोंको हरनेवाली इस मंगलमयी यात्राका वर्णन मैंने किया॥ १४-१५॥

इमां यः कुरुते यात्रां नित्यं शुभफलप्रदाम्।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ १६॥

शुभ फलको देनेवाली इस यात्राको जो नित्य सम्पन्न करता है, उसे सैकड़ों-करोड़ों कल्पपर्यन्त जन्म नहीं लेना पड़ता॥ १६॥

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि प्रदक्षिणाक्रमं परम्।
प्रातरुत्थाय मतिमान् रामतीर्थाप्लवं चरेत्॥ १७॥

हे प्रिये! इससे आगे उत्तम प्रदक्षिणाक्रमका वर्णन करता हूँ, सुनो! बुद्धिमान् व्यक्ति प्रातःकाल उठकर रामघाटपर स्नान करे॥ १७॥

ततः सन्ध्यां विधायाथ श्रीरामं पूजयेन्नरः।
शुभां पुरीं प्रणम्याथ सीतारामौ स्मरन् सदा॥ १८॥
विलोकयन् व्रजेन्मार्गं हर्षनिर्मलमानसः।
प्राप्य तिलोदकीं नत्वा विद्याकुण्डं तथैव च॥ १९॥
विद्यादेवीं नमस्कृत्य गच्छेद् रत्नाचलं शुभम्।
तत्र श्रीराघवं नत्वा व्रजेत्कुण्डं विनायकम्॥ २०॥

इसके अनन्तर परिक्रमा करनेवाला व्यक्ति सन्ध्योपासन करके श्रीरामका पूजन करे। तदनन्तर मंगलमयी अयोध्यापुरीको प्रणाम करके श्रीसीतारामजीका निरन्तर स्मरण करते हुए हर्षसे मग्न, निर्मल चित्तवाला व्यक्ति सामने मार्गको देखते हुए परिक्रमा करे। वह [प्रथमतः] तिलोदकीपर जाकर प्रणाम करे। इसी तरह

विद्याकुण्डमें पहुँच करके विद्यादेवीको प्रणामकर मंगलमय मणिपर्वतपर जाय और वहाँ श्रीराघवको प्रणामकर गणेशकुण्डका दर्शन करे॥ १८—२०॥

दृष्ट्वाथ चुटकीदेवीं व्रजेद् विष्णुहरिं विभुम्।
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा जपन् मन्त्रं तु तारकम्॥ २१॥

इसके अनन्तर तारक मन्त्रका जप करते हुए चुटकीदेवी तथा विभु विष्णुहरिका दर्शन करे, फिर चक्रतीर्थमें जाकर स्नान [आदि पुण्यकृत्योंको] सम्पन्न करे॥ २१॥

आचम्य ब्रह्मघट्टेऽथ सुमित्राघट्टके तथा।
कौसल्याकैकेय्योर्घट्टे स्नात्वाथ ऋणमोचने॥ २२॥
पापमोचनमालोक्य स्नायाल्लक्ष्मणघट्टके।
श्रीलक्ष्मणं प्रणम्याथ स्वर्गद्वारे प्लवं चरेत्॥ २३॥

तदनन्तर ब्रह्माघाटमें आचमनकर सुमित्राघाट, कौसल्याघाट, कैकेयीघाट, ऋणमोचनघाट, पापमोचनघाट, लक्ष्मणघाट आदिका क्रमसे स्नान-दर्शन करके लक्ष्मणजीको प्रणामकर स्वर्गद्वार-तीर्थमें स्नान करे॥ २२-२३॥

स्नात्वा श्रीजानकीघट्टे रामघट्टं पुनर्व्रजेत्।
श्रीवासिष्ठ्यां पुनः स्नात्वा प्रीत्या सम्पूजयेत् प्रभुम्॥ २४॥
आश्रमं पुनरागच्छेत् सीतारामौ स्मरन् सदा।
प्रदक्षिणां क्रमेणैव कुर्वन्ति कवयः सदा॥ २५॥

इसके अनन्तर जानकीघाटपर स्नानकर रामघाटपर पुनः जाय। वहाँ वसिष्ठपुत्री सरयूजीमें स्नानकर प्रेमसे प्रभु श्रीरामका पूजन करे, तदनन्तर श्रीसीतारामजीका स्मरण करते हुए अपने आश्रम अर्थात् निवासस्थानमें लौट आये। कवि अर्थात् ज्ञानीजन इस क्रमसे ही अयोध्यापुरीकी [पाँच कोसवाली] परिक्रमा करते

हैं॥ २४-२५ ॥

प्रदक्षिणाफलं नैव वक्तुं शक्नोति कश्चन।
कुर्वन् प्रदक्षिणामेवमभीष्टफलमाप्नुयात्॥ २६ ॥

प्रदक्षिणाफलका कोई वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है। इस प्रकार परिक्रमा करनेवाला अभीष्ट फलको प्राप्त करता है॥ २६ ॥

शृण्वपरां प्रवक्ष्यामि साम्वत्सरीं प्रदक्षिणाम्।
ऊर्जे शुक्लनवम्यां यां कुर्वन्ति सर्वसज्जनाः॥ २७॥
प्रातरुत्थाय श्रीरामं चिन्तयेद् भक्तिभावतः।
रामघट्टमथो गत्वा कृत्वा स्नानादिकं ततः॥ २८ ॥
विलोकयन् व्रजेन्मार्गं सीतारामौ स्मरन् प्रियौ।
वैतरण्यामथाचम्य सूर्यकुण्डं ततो व्रजेत्॥ २९ ॥
तत्र स्नात्वा च दत्वा च सूर्यदेवं समर्चयेत्।
रतिकुसुमायुधयोः कुण्डं दृष्ट्वा ततः परम्॥ ३० ॥
गच्छेच्छ्रीगिरिजाकुण्डं स्नात्वा तामपि पूजयेत्।
मन्त्रेश्वरं ततो दृष्ट्वा निर्मलीकुण्डमाव्रजेत्॥ ३१ ॥

हे प्रिये! अब वर्षमें एक बार होनेवाली दूसरी परिक्रमाके विषयमें क्रमसे कहता हूँ, सुनो! जिस परिक्रमाको सभी सत्पुरुष कार्तिक शुक्ल नवमीको करते हैं। [उसका शास्त्रीय क्रम इस प्रकार है। मनुष्यको चाहिये कि वह] प्रातःकाल उठकर [सर्वप्रथम] भक्ति-भावसे श्रीरामका स्मरण करे। तदनन्तर रामघाटपर जाकर स्नानादि करके प्रीतिपूर्वक सीतारामजीका निरन्तर स्मरण करते हुए तथा केवल मार्गको ही देखते हुए परिक्रमा करे। सर्वप्रथम वैतरणी-तीर्थमें जाकर आचमन करे, तत्पश्चात् सूर्यकुण्ड जाये। वहाँ स्नान-दानादि करके सूर्यदेवका पूजन करे। तदुपरान्त रतिकुण्ड तथा कुसुमायुधकुण्डका दर्शन-

पूजन करे। फिर आगे गिरिजाकुण्डपर जाकर स्नानपूर्वक, गिरिजाजीका पूजन करे। वहाँसे आगे मन्त्रेश्वरक्षेत्रमें (जनौरा) और इसके अनन्तर निर्मलीकुण्ड जाय॥ २७—३१॥

तत्र स्नानादिकं कृत्वा गोप्रतारं पुनर्व्रजेत्।
गोप्रतारं परं प्राप्य स्नात्वा दत्वा जपन् परम्॥ ३२॥
गुप्तहरिं च सम्पूज्य विश्रम्याथ ततः परम्।
चक्रहरिं च सम्पूज्य यमस्थलं विलोकयेत्॥ ३३॥

वहाँ स्नानादि करके पुनः गोप्रतार (गुप्तार) घाटपर जाकर स्नान, दान, जपपूर्वक श्रीगुप्तहरिका पूजन करके विश्राम करे। इसके पश्चात् चक्रहरिका पूजनकर यमस्थल (यमथरा) पहुँचे और दर्शनादि करे॥ ३२-३३॥

आचम्य ब्रह्मघट्टेऽथ सुमित्राघट्टके तथा।
कौसल्याकैकेय्योर्घट्टे स्नात्वाथ ऋणमोचने॥ ३४॥
पापमोचनमाचम्य स्नायाल्लक्ष्मणघट्टके।
श्रीलक्ष्मणं प्रणम्याथ स्वर्गद्वारे प्लवं चरेत्॥ ३५॥
स्नात्वा श्रीजानकीघट्टे रामघट्टं पुनर्व्रजेत्।
श्रीसरय्वां पुनः स्नात्वा प्रीत्या सम्पूजयेत् प्रभुम्॥ ३६॥
आश्रमं पुनरागच्छेत् सीतारामौ स्मरन् सदा।
प्रदक्षिणा प्रिये चेयं चतुर्वर्गफलप्रदा॥ ३७॥

आगे ब्रह्मघाट, सुमित्राघाट, कौसल्याघाट, कैकेयीघाट, ऋणमोचनघाट, पापमोचनघाट, लक्ष्मणघाट आदि तीर्थोंमें यथायोग्य स्नान, आचमन, दर्शनादि करते हुए लक्ष्मणजीको प्रणामकर स्वर्गद्वारमें स्नान करे। तदुपरान्त जानकीघाटपर स्नानकर पुनः रामघाट जाय, वहाँ सरयूजीमें पुनः स्नानकर प्रेमसे प्रभु श्रीरामका पूजन करे। तदनन्तर श्रीसीता-रामका निरन्तर स्मरण करते हुए

अपने स्थानपर आये। हे प्रिये! यह परिक्रमा अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्षरूप—चारों पदार्थ देनेवाली है॥ ३४—३७॥

नित्यदर्शनयात्रां वै शृणु वक्ष्यामि शोभने।
प्रथमं मारुतेः स्थानं व्रजेन्निर्मलमानसः॥ ३८॥
तत्र श्रीमारुतिं नत्वा जन्मभूमिं व्रजेत् ततः।
बालरूपं च श्रीरामं नत्वा तत्र जनप्रियम्॥ ३९॥
रत्नसिंहासनं प्राप्य राजराजेशमानमेत्।
स्तुवन् रामं पुनर्नत्वा सभ्रातरं ततो व्रजेत्॥ ४०॥

हे शोभने! अब नित्य-दर्शनयात्राको कहता हूँ, उसे सुनो! [तीर्थसेवी व्यक्ति] निर्मलमन होकर सर्वप्रथम श्रीहनुमान्‌जीके स्थानपर जाय, उनको प्रणाम करके, श्रीरामजन्मभूमिस्थानकी यात्रा करे। वहाँ भक्तजनोंके प्रिय, बालकरूप, श्रीरामको प्रणाम करके, रत्नसिंहासन नामक स्थानपर जाकर भाइयोंसहित राजराजेश्वर श्रीरामको प्रणाम करे। वहाँ उनकी स्तुति करके बार-बार प्रणाम करे और फिर वहाँसे प्रस्थान करे॥ ३८—४०॥

श्रीरामं सीतया सार्धं दृष्ट्वा कनकमन्दिरे।
परमानन्दफलं लब्ध्वा मुच्यते जन्मसङ्कटात्॥ ४१॥

[इसके] अनन्तर कनक-भवनमें जाकर श्रीजानकीजीके साथ श्रीरघुनन्दनका दर्शन करे। कनकभवनमें सीतासहित श्रीरामका दर्शन करके मनुष्य परम आनन्दरूप फलका अधिकारी बनता है तथा जन्म [-मरणरूप]-संकटसे मुक्त हो जाता है॥ ४१॥

याऽयोध्या जगतीतले तु मनुना वैकुण्ठतो ह्यानिता
याचित्वा निजसृष्टिपालनपरं वैकुण्ठनाथं प्रभुम्।
या वै भूमितले निधाय विमला चेक्ष्वाकवे चार्पिता
साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा॥ ४२॥

जिस अयोध्यापुरीको महाराज मनु अपनी सृष्टिके पालनमें दत्तचित्त प्रभु वैकुण्ठनाथ श्रीहरिसे माँगकर वैकुण्ठलोकसे इस भूमितलपर लाये, जिस विमल अर्थात् रजःशून्य पुरीको इस भूमितलपर स्थापितकर [मनुने] उसे महाराज इक्ष्वाकुको समर्पण किया। ऐसी उस सभी धामोंमें श्रेष्ठ, मुक्ति देनेवाली, परमात्मा श्रीरामकी [नित्य वासस्थली] श्रीअयोध्यापुरीकी जय हो॥ ४२॥

या चक्रोपरि राजते च सततं वैकुण्ठनाथस्य वै
या वै मानवलोकमेत्य सकलान् दात्री सदा वाञ्छितान्।
या तीर्थानि पुनाति संततमहो वर्वर्ति तीर्थोपरि
साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा॥ ४३॥

जो अयोध्यापुरी वैकुण्ठनाथके चक्रके ऊपर विराजमान है, जो इस मृत्युलोकमें आकर सदा सकल इच्छित वस्तुओंको प्रदान करनेवाली है, जो समस्त तीर्थोंको निरन्तर पवित्र करती है, सब तीर्थोंमें शिरोमणि है, ऐसी उस सभी धामोंमें श्रेष्ठ, मुक्ति देनेवाली, परमात्मा श्रीरामकी [नित्यलीलास्थली] श्रीअयोध्यापुरीकी जय हो॥ ४३॥

यस्यां वैष्णवसज्जनाः सुरसिकाः स्वाचारनिष्ठाः सदा
लीलाधामसुनामरूपदयिताः श्रीरामचन्द्रे रताः।
यस्यां श्रीरघुवंशजः परिकरैः सार्धं सदा राजते
साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा॥ ४४॥

जहाँपर प्रशस्त आचरणवाले तथा निरन्तर नाम, रूप, लीला एवं धामके भेदसे समन्वित भगवत्तत्त्वमें प्रीतिभाव रखनेवाले [भक्तिरसके] परम रसिक वैष्णव सत्पुरुष श्रीरामचन्द्रका आश्रय ग्रहणकर निवास करते हैं और जहाँ रघुवंशभूषण श्रीराम अपने परिकरों (लक्ष्मण-हनुमान् आदि)-के साथ सर्वदा विराजते हैं,

ऐसी उस सभी धामोंमें श्रेष्ठ, परमात्मा श्रीरामकी [निवासस्थली] मुक्तिप्रदायिनी श्रीअयोध्यापुरीकी जय हो॥ ४४॥

यस्यां तीर्थशतं सदा निवसति ह्यानन्ददं पावनं
यस्या दर्शनलालसा मुनिवरा ध्याने रताः सर्वदा।
यस्या भूमिरजस्त्वनादि विबुधा वाञ्छन्ति स्वाभीष्टदं
साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा॥ ४५॥

जिस अयोध्यापुरीमें आनन्दप्रद तथा परम पवित्र, सैकड़ों तीर्थ निवास करते हैं, सदा ध्यानमें तल्लीन श्रेष्ठ मुनिगण जिस पुरीके दर्शनकी लालसा रखते हैं, जिस पुरीकी अनादि अर्थात् उत्पत्ति-विनाशादिसे रहित [चिन्मयी] धूलिको अभीष्ट देनेवाली समझकर ब्रह्मादि सकल देवता सदा चाहते हैं, ऐसी उस धामोंमें शिरोमणि, मुक्तिदात्री, परमात्मा श्रीरामकी [क्रीडास्थली] अयोध्यापुरीकी जय हो॥ ४५॥

यस्यां भाति प्रमोदकाननवरं रामस्य लीलास्पदं
यत्र श्रीसरितां वरा च सरयू रत्नाचलं शोभते।
ध्येया ब्रह्ममहेशविष्णुमुनिभिर्ह्यानन्ददा सर्वदा
साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा॥ ४६॥

जिस अयोध्यापुरीमें श्रीरामका अतिसुन्दर क्रीडास्थल प्रमोदवन है, जहाँपर नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीसरयू नित्य बहती हैं, जहाँ रत्नाचल [देवरूप मणिपर्वत] शोभा बढ़ा रहा है, आनन्दप्रदायिनी जिस पुरीका ब्रह्मा-विष्णु-महेश सर्वदा ध्यान करते हैं, ऐसी उस परमात्मा श्रीरामके धामोंमें शिरोमणि मुक्तदायिनी [लीलास्थली] श्रीअयोध्यापुरीकी जय हो॥ ४६॥

यः श्लोकपंचकमिदं मनुजः पठेत
ध्यात्वा हृदि प्रतिदिनं रघुनन्दनाङ्घ्री।

हित्वा बहूनि दुरितानि पुरार्जितानि
प्राप्नोत्यभीष्टधनधर्ममथापवर्गम् ॥ ४७ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन अपने हृदयमें रघुनन्दनके चरणकमलोंका ध्यानकर इन पाँचों श्लोकोंको पढ़ता है, वह पूर्व जन्मोंके अर्जित समस्त पापोंसे मुक्त होकर इच्छित धन, धर्म, मोक्ष आदिको प्राप्त करता है॥ ४७॥

श्रीशृङ्गारवनं भाति विहारवनमद्भुतम्।
तमालं च रसालं च चम्पकं चन्दनं तथा॥ ४८॥
पारिजातवनं दिव्यमशोकवनमुत्तमम्।
प्रमोदाख्यं वनं कान्तं कदम्बवनमेव च॥ ४९॥
तथानन्तवनं रम्यं वनं श्रीनागकेशरम्।
वनानि सन्त्ययोध्यायां द्वादशैतानि भामिनि॥ ५०॥

हे भामिनि! अयोध्यापुरीमें शोभामय शृंगारवन, विलक्षण विहारवन, तमालवन, रसालवन, चम्पकवन, चन्दनवन, दिव्य पारिजातवन, उत्तम अशोकवन, प्रमोदवन, शोभाशाली कदम्बवन, रमणीय अनन्तवन तथा नागकेशरवन—ये बारह वन हैं॥ ४८—५०॥

अयोध्या परमं स्थानं अयोध्या परमं महत्।
अयोध्यायाः समा काचित् पुरी नैव प्रदृश्यते॥ ५१॥
अपरं शृणु भो देवि मर्त्यमुक्तिप्रदायकम्।
शोणः सिन्धुः हिरण्याक्षः कोकलोहितघर्घराः॥ ५२॥
शतलज्जो नदाः सप्त पावना ब्रह्मसूनवः।
शालग्रामो महाग्रामः शम्भलग्राम एव च॥ ५३॥
नन्दिग्रामस्त्वयोध्यायां त्रयो ग्रामाश्च मुक्तिदाः।
अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवन्तिका॥ ५४॥

द्वारावती तथा ज्ञेया सप्तपुर्यश्च मोक्षदाः।
दण्डकं सैन्धवारण्यं जम्बूमार्गश्च पुष्करम्॥ ५५॥
उत्पलावर्तमारण्यं नैमिषं कुरुजाङ्गलम्।
हिमवानर्बुदश्चैव नवारण्याश्च मुक्तिदाः॥ ५६॥

अयोध्यानगरी परमस्थली है, अयोध्या सर्वोत्तम एवं महान् है। अयोध्यापुरीके समान कोई भी पुरी नहीं दृष्टिगोचर होती। हे देवि! मनुष्योंको मुक्तिदायक दूसरी वार्ता सुनो! शोण, सिन्धु, हिरण्याक्ष, कोक, लोहित, घाघरा और शतलज्ज—ये सात पावन नद हैं, जिन्हें ब्रह्माजीका पुत्र कहा गया है। महाग्राम शालग्राम, शम्भलग्राम तथा नन्दिग्राम—ये तीनों ही ग्राम मुक्तिदायक हैं। इनमें नन्दिग्राम तो अयोध्यापुरीमें ही है। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारावती—ये सात पुरियाँ मुक्तिदात्री हैं—ऐसा जानना चाहिये। दण्डकारण्य, सैन्धवारण्य, जम्बूमार्ग, पुष्कर, उत्पलावर्त, नैमिषारण्य, कुरुजांगल, हिमवान् तथा अर्बुद—ये [भारतके नौ] अरण्य मुक्तिदायक हैं॥ ५१—५६॥

रेणुका शूकरः काशी काली* कालवटेश्वरौ।
कालंजरो महाकाल ऊषरा नव मुक्तिदाः॥ ५७॥
कोका कुब्जार्बुदश्चैव मणिकर्णी वटस्तथा।
शालग्रामः शूकरश्च मथुरा च हरेः प्रिया॥ ५८॥
गया निष्क्रमणश्चैव यक्ष्च लोहार्गलस्तथा।
स्वयम्प्रभा मालवश्च बदरी च हरेर्गृहम्॥ ५९॥
गुह्यान्येतानि दिव्यानि मुक्तिदानि चतुर्दश।
सप्तपुर्यस्त्रयो ग्रामा नवारण्या नवोषराः॥ ६०॥

* काशीरहस्यमें कालीके स्थानपर कांची पाठ है और कालवटेश्वरौके स्थानपर काली वटेश्वरौ यह पाठ है।

चतुर्दशैव गुह्यानि मुक्तिद्वाराणि भूतले।
गङ्गास्नानं सतां संगो दानं च हरिपूजनम्॥ ६१॥
आतिथ्यं च पुराणानां श्रवणं मुक्तिसाधनम्।
वदन्ति मुनयः सर्वे साधूनां संगमं वरम्॥ ६२॥
यतो ज्ञानं हरेर्भक्तिः पापहानिश्च जायते।

रेणुकक्षेत्रद्वय, सूकरक्षेत्र, काशी, काली, कालक्षेत्र, वटेश्वर, कालंजर और महाकाल—ये नौ ऊषर* मुक्तिदायक हैं। कोका, कुब्जा, अर्बुद, मणिकर्णी, वट, शालग्राम, शूकर क्षेत्र, हरिप्रिया मथुरा, गया, निष्क्रमण, लोहार्गल, स्वयम्प्रभा, मालव तथा भगवद्धाम बदरिकाश्रम—ये चौदह गोपनीय दिव्य स्थल हैं, जो मुक्तिप्रद हैं। सात पुरी, तीन ग्राम, नौ अरण्य, नौ ऊषर और चौदह गुह्यस्थल—ये सभी स्थान भूमितलपर मुक्तिके दरवाजे हैं। गंगास्नान, सत्संग, दान, हरिपूजन, अतिथिसत्कार तथा पुराणोंका श्रवण—ये मुक्तिके [साक्षात्] साधन हैं। [इन साधनोंमें] मुनिजन साधुसंगको ही उत्तम मानते हैं; क्योंकि इस सत्संगके कारण ही आत्मविज्ञान, श्रीहरिकी भक्ति तथा पापध्वंस सिद्ध होता है॥ ५७—६२१/२॥

एतेषां दर्शनेनैव यत्फलं जायते नृणाम्॥ ६३॥
तत्फलं समवाप्नोति त्वयोध्यादर्शने कृते।
एतत्ते कथितं देवि मया पृष्टं हि यत्त्वया॥ ६४॥

इन (पुरी, अरण्य, ऊषरादि)-के दर्शनसे मनुष्योंको जो फल मिलता है, वही फल अयोध्यापुरीके दर्शनसे होता है। हे देवि!

* जिस प्रकारसे ऊषर (बंजर) भूमिमें बीजवपन निष्फल होता है, वैसे ही इन पवित्र स्थानोंमें कर्मका फल नहीं बननेसे ये क्षेत्र ऊषरभूमिके समान ऊषर क्षेत्र कहलाते हैं। इसी कारण ये मुक्तिक्षेत्र कहे गये हैं।

जो कुछ तुमने मुझसे पूछा था, वह यह अयोध्यामाहात्म्य मैंने तुमसे कहा॥ ६३-६४॥

इदं माहात्म्यमतुलं यः पठेत् प्रयतो नरः।
शृणुयाच्छ्रावयेद् वापि स याति परमां गतिम्॥ ६५॥

जो मानव इस अनुपम माहात्म्यको नियमसे पढ़ता है, सुनता है तथा दूसरोंको भी सुनाता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है॥ ६५॥

तस्मादेतत् प्रयत्नेन श्रोतव्यं च सदा नरैः।
द्विजपूजा विष्णुपूजा विधातव्या प्रयत्नतः।
दातव्यानि सुवर्णानि यथाशक्त्या द्विजन्मने॥ ६६॥

इसलिये मनुष्योंको चाहिये कि यत्न करके इसे सर्वदा सुनें, प्रयत्नपूर्वक विप्रपूजा और विष्णुपूजा सम्पन्न करें तथा यथाशक्ति ब्राह्मणोंको सुवर्ण आदि दान करें॥ ६६॥

यो वाचकाय प्रददाति वित्तं
श्रद्धायुतोऽन्नं च यथात्मशक्त्या।
गाश्चैव वस्त्राणि मनोहराणि
रौप्यं सुवर्णं स सुखी धनाढ्यः॥ ६७॥

जो भक्त श्रद्धापूर्वक वाचकको अपनी शक्तिके अनुसार धन, उत्तम वस्त्र, अन्न, गौ, चाँदी, सोना उत्तम रीतिसे देता है, वह सुखी रहता है तथा धन-धान्यसे पूर्ण रहता है॥ ६७॥

यत्किंचित् क्रियते तीर्थे स्नानं देवार्चनं तथा।
दक्षिणादानतः सिद्धिं सकलं सफलं व्रजेत्॥ ६८॥

तीर्थमें जो कुछ भी स्नान-देवपूजन आदि सत्कर्म किया जाता है, उसकी पूर्ण सिद्धि तथा सकल कार्योंकी सफलता दक्षिणा-दानसे ही होती है॥ ६८॥

वाचके परितुष्टे च सकलाः सफलाः क्रियाः।
पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात्॥ ६९॥

कथावाचकके सन्तुष्ट होनेपर ही समस्त सत्कर्म सफल होते हैं। [इस माहात्म्यको सुनने और वाचकको प्रसन्न करनेसे] पुत्र चाहनेवाला पुत्र तथा धनका इच्छुक धन प्राप्त करता है॥ ६९॥

मतिविपुलविधानैर्वर्णितं धर्ममाद्यं
कलयति परभक्त्या क्षेत्रमाहात्म्यमेतत्।
य इह नर उदारः श्रीसनाथः स सम्यक्
व्रजति हरिनिवासं सर्वभोगाँश्च भुक्त्वा॥ ७०॥

मतिके अनुसार अनेक विधानोंके साथ यह उत्तम धर्मवर्णन मैंने किया। जो उत्कट भक्तिके साथ इस अयोध्यातीर्थके माहात्म्यको उदारताके साथ सुनेगा-सुनायेगा, वह लक्ष्मीसे समृद्ध होकर इस लोकमें सब भोगोंका भोगकर बड़े आनन्दसे भगवद्धाम वैकुण्ठमें निवास करेगा॥ ७०॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले हरगौरीसंवादे अयोध्याखण्डे
क्षेत्रमहिमा-वर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलमें शंकर-पार्वती-सम्वादरूप अयोध्याखण्डके अन्तर्गत 'क्षेत्र-महिमावर्णन' नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

॥ इति श्रीरुद्रयामलोक्त श्रीअयोध्यामाहात्म्यसम्पूर्णम्॥

॥ इस प्रकार श्रीरुद्रयामलोक्त अयोध्यामाहात्म्य पूर्ण हुआ॥

॥ श्रीजानकीवल्लभो विजयते॥

श्रीस्कन्दपुराणोक्त श्रीअयोध्यामाहात्म्य

पहला अध्याय

व्यास-अगस्त्य-संवादमें अयोध्यापुरीकी संरचना, सीमा तथा माहात्म्य एवं वहाँके चक्रतीर्थ और विष्णुहरि देवका माहात्म्य-इतिहासादि

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति॥ १ ॥

जननी सत्यवतीके हृदयको आनन्दित करनेवाले तथा महर्षि पराशरजीके पुत्र श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी जयको प्राप्त हो रहे हैं, जिनके मुखारविन्दसे प्रवाहित वाङ्मय-अमृतको सम्पूर्ण जगत् पी रहा है॥ १॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥ २ ॥

नरोत्तम नर, नारायण तथा देवी सरस्वतीको प्रणामकर जय (पुराण-महाभारतादि)-का वाचन करना चाहिये॥ २॥

व्यास उवाच

हिमवद्वासिनः सर्वे मुनयो वेदपारगाः।
त्रिकालज्ञा महात्मानो नैमिषारण्यवासिनः॥ ३ ॥
येऽर्बुदारण्यनिरता दण्डकारण्यवासिनः।
महेन्द्राद्रिरता ये वै ये च विन्ध्यनिवासिनः॥ ४॥

जम्बूवनरता ये च ये गोदावरिवासिनः।
वाराणसीश्रिता ये च मथुरावासिनस्तथा॥ ५॥
उज्जयिन्यां रता ये च प्रथमाश्रमवासिनः।
द्वारावतीश्रिता ये च बदर्याश्रयिणस्तथा॥ ६॥
मायापुरीश्रिता ये च ये च कांचीनिवासिनः।
एते चान्ये च मुनयः सशिष्या बहवोऽमलाः॥ ७॥
कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे सत्रे द्वादशवार्षिके।
वर्तमाने च रामस्य क्षितीशस्य महात्मनः।
समागताः समाहूताः सर्वे ते मुनयोऽमलाः॥ ८॥

व्यासजीने कहा—वेदोंमें पारंगत, त्रिकालज्ञ महात्मा मुनिगण द्वादशवार्षिक सत्र (जिसमें सभी यजमान ब्राह्मण होते हैं और वे ऋत्विक् होते हैं)-के अनुष्ठानमें महाक्षेत्र-कुरुक्षेत्रमें उस समय पधारे, जिस समय पृथ्वीपालक महात्मा श्रीरामचन्द्रजी विराजमान थे अर्थात् त्रेतायुगका समय था। [उस सत्रमें भारतके अनेक पुण्यक्षेत्रोंसे जिनका आगमन हुआ,] वे सभी समागत निष्पाप मुनिजन हिमालय, नैमिषारण्य, अर्बुद (आबू), दण्डकारण्य, महेन्द्रपर्वत, विन्ध्य, जम्बूवन, गोदावरीतट, वाराणसी, मथुरा उज्जयिनी एवं प्रथमाश्रमके रहनेवाले थे। [उनमें कुछ] द्वारावती (द्वारका), बदरिकाश्रम, मायापुरी (हरिद्वार) तथा कांचीपुरीके निवासी थे। इसके अतिरिक्त अन्य प्रान्तोंसे भी अमलात्मा मुनिगण शिष्योंके सहित वहाँ आमन्त्रित होकर पधारे थे॥ ३—८॥

सर्वे ते शुद्धमनसो वेदवेदाङ्गपारगाः।
तत्र स्नात्वा यथान्यायं कृत्वा कर्म जपादिकम्॥ ९॥

वहाँपर उपस्थित वे सभी मुनिजन शुद्ध अन्तःकरणवाले तथा वेद-वेदांगमें पारंगत थे। उन्होंने उस कुरुक्षेत्रमें सविधि स्नान और जप आदि कर्मोंका सम्पादन किया॥ ९॥

भारद्वाजं पुरस्कृत्य वेदवेदाङ्गपारगम्।
आसनेषु विचित्रेषु वृष्यादिषु ह्यनुक्रमात्॥ १०॥
उपविष्टाः कथाश्चक्रुर्नानातीर्थाश्रितास्तदा।
कर्मान्तरेषु सत्रस्य सुखासीनाः परस्परम्॥ ११॥

[तदुपरान्त] वेद-वेदांगमें-पारंगत श्रीभरद्वाजमुनिको सम्मुख करके वे मुनिजन कुशादिसे निर्मित विचित्र आसनोंपर यथायोग्य आसीन हुए और यज्ञकार्योंसे अवकाश मिलनेपर सुखपूर्वक बैठकर परस्पर तीर्थसम्बन्धी नानाविध कथाओंका प्रवचन-श्रवण आदि करने लगे॥ १०-११॥

कथान्तेषु ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
आजगाम महातेजास्तत्र सूतो महामतिः॥ १२॥
व्यासशिष्यः पुराणज्ञो रोमहर्षणसञ्ज्ञकः।
तान् प्रणम्य यथान्यायं मुनीनुपविवेश सः।
उपविष्टो यथान्यायं मुनीनां वचनेन सः॥ १३॥
व्यासशिष्यं मुनिवरं सूतं वै रोमहर्षणम्।
तं पप्रच्छुर्मुनिवरा भारद्वाजादयोऽमलाः॥ १४॥

तदुपरान्त उन आत्मदर्शी महात्माओंके कथासमापनके अवसरपर परमतेजस्वी महामतिमान् सूतजीका वहाँ आगमन हुआ। उनका नाम रोमहर्षण था। वे समस्त पुराणोंके ज्ञाता और व्यासजीके शिष्य थे। सूतजीने वहाँ समीप जाकर उपस्थित मुनिजनोंको यथायोग्य रीतिसे प्रणाम किया और [आसनपर] विराजमान हो गये। मुनियोंके द्वारा सर्वप्रथम उन्हें आसन एवं कुशल-प्रश्नादिसे सत्कृत किया गया, तदुपरान्त भारद्वाज आदि निष्पाप मुनिवरोंने व्यासशिष्य, मुनिश्रेष्ठ रोमहर्षण सूतजीसे प्रश्न किया—॥ १२—१४॥

ऋषय ऊचुः

त्वत्तः श्रुता महाभाग नानातीर्थाश्रिताः कथाः।
सरहस्यानि सर्वाणि पुराणानि महामते॥ १५॥

साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामः सरहस्यं सनातनम्।
अयोध्याया महापुर्या महिमानं गुणोज्ज्वलम्॥ १६॥
कीदृशी सा सदा मेध्याऽयोध्या विष्णुप्रिया पुरी।
आद्या सा गीयते वेदे पुरीणां मुक्तिदायिका॥ १७॥
संस्थानं कीदृशं तस्यास्तस्यां के च महीभुजः।
कानि तीर्थानि पुण्यानि माहात्म्यं तेषु कीदृशम्॥ १८॥

ऋषियोंने कहा—हे महाभाग! महामते! सभी पुराणरहस्योंके साथ अनेकतीर्थाश्रित कथाओंको हम सभीने आपसे सुना। अब हम लोग गुणोंसे प्रकाशमान अयोध्या नामकी महापुरीकी सनातन महिमाको रहस्योंके साथ सुनना चाहते हैं। भगवान् श्रीविष्णुकी प्रिया वह अयोध्यापुरी सभी प्रकारसे पवित्र है। वह किस प्रकारकी है? वेदमें जो पुरी आद्या कही गयी है तथा सप्तपुरियोंमें [प्रमुख और] मुक्तिदायिका है, उसका संस्थान अर्थात् नगर-विन्यास लम्बाई-चौड़ाई आदि कितनी है? उस पुरीमें कौन-कौनसे महीपाल हुए? उसके अन्तर्गत कौन-कौनसे पुण्यतीर्थ हैं तथा उनका माहात्म्य किस प्रकारका है?॥ १५—१८॥

अयोध्यासेवनान्नृणां फलं स्यात् सूत कीदृशम्।
किं चरित्रं सूत तस्याः का नद्यः के च सङ्गमाः॥ १९॥
तत्र स्नानेन किं पुण्यं दानेन च महामते।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्तः सूत गुणाधिक॥ २०॥
एतत्सर्वं क्रमेणैव तथ्यं त्वं वेत्थ साम्प्रतम्।
अयोध्याया महापुर्या माहात्म्यं वक्तुमर्हसि॥ २१॥

हे सूतजी! मनुष्योंको अयोध्यापुरीके सेवनसे किस प्रकारका फल मिलता है? हे सूतजी! उस पुरीका चरित्र क्या है? उसमें कौन-कौनसी नदियाँ और कौन-कौन-से संगमस्थल हैं? हे महामते! वहाँ स्नान-दानसे किस प्रकारके पुण्यफलकी प्राप्ति

होती है? हे सद्‌गुणोंसे समृद्ध सूतजी! हमलोग इसे आपसे सुनना चाहते हैं। उपर्युक्त तीर्थस्थानोंके तथ्यको आप क्रमशः जानते हैं, अतः अब आप महापुरी अयोध्याकी महिमाको हम लोगोंके समक्ष कहें॥ १९—२१॥

सूत उवाच

व्यासप्रसादाज्जानामि पुराणानि तपोधनाः।
सेतिहासानि सर्वाणि सरहस्यानि तत्त्वतः॥ २२॥
तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भवदग्रतः।
अयोध्याया महापुर्या यथावत् सरहस्यकम्॥ २३॥

सूतजीने कहा—हे तपोधनो! सभी पुराणों और इतिहासोंको रहस्योंके सहित सम्यक् रूपसे श्रीव्यासजी महाराजकी कृपासे मैं जानता हूँ। उन्हें प्रणामकर आप सबके समक्ष महापुरी अयोध्याके माहात्म्यको यथावत् रहस्योंके साथ कहूँगा॥ २२-२३॥

विद्यावन्तं विपुलमतिदं वेदवेदाङ्गवेद्यं
श्रेष्ठं शान्तं शमितविषयं शुद्धतेजोविशालम्॥
वेदव्यासं सततविनतं विश्ववेद्यैकयोनिं
पाराशर्यं परमपुरुषं सर्वदाऽहं नमामि॥ २४॥
ॐ नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे।
यस्य प्रसादाज्जानामि ह्ययोध्यामहिमामहम्॥ २५॥

उन परमपुरुष पराशरपुत्र व्यासदेवको मैं सर्वदा प्रणाम करता हूँ, जो विद्यावान्, विपुल बुद्धिके प्रदाता, वेद-वेदांगोंद्वारा जाननेके योग्य, श्रेष्ठ, शान्त तथा इन्द्रियजित् हैं। जिनका शुद्ध और उत्कट तेज है। जो वेदोंके विभागकर्ता तथा स्वाभाविक रूपसे विनयसम्पन्न हैं और विश्वमें जाननेयोग्य जो कुछ भी ज्ञातव्य है, उसके कारण हैं—प्रचारक हैं। अमित प्रकाशसे सम्पन्न उन भगवान् श्रीव्यासजी महाराजको ॐकारके उच्चारणपूर्वक नमस्कार है, जिनकी कृपासे ही मैं अयोध्याजीकी महिमाको

जान पाया हूँ॥ २४-२५॥

श्रृण्वन्तु मुनयः सर्वे सावधानाः सशिष्यकाः।
माहात्म्यं कथयिष्यामि अयोध्याया महोदयम्॥ २६॥

हे मुनिगण! आप लोग शिष्योंके सहित सावधान होकर सुनें। महाभ्युदयकारिणी अयोध्याजीके माहात्म्यके कथनमें मैं प्रवृत्त हो रहा हूँ॥ २६॥

उदीरितमगस्त्याय स्कन्देनाऽश्रावि नारदात्।
अगस्त्येन पुरा प्रोक्तं कृष्णद्वैपायनाय तत्॥ २७॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैतन्मया प्राप्तं तपोधनाः।
तदहं वच्मि युष्मभ्यं श्रोतुकामेभ्य आदरात्॥ २८॥

[इस माहात्म्यको] प्राचीन कालमें स्कन्दजीने सर्वप्रथम नारदजीसे सुना। उनसे अगस्त्यजीने सुना तथा अगस्त्यजीने वेदव्यासजीको यह अयोध्या-माहात्म्य बतलाया। हे तपोधनो! उन श्रीकृष्णद्वैपायनसे मैंने प्राप्त किया, उसी परम्पराप्राप्त ज्ञानको मैं आदरपूर्वक आप सबको सुना रहा हूँ; क्योंकि इसके श्रवणहेतु आप उत्कण्ठित हैं॥ २७-२८॥

नमामि परमात्मानं रामं राजीवलोचनम्।
अतसीकुसुमश्यामं रावणान्तकमव्ययम्॥ २९॥

नीलकमलके समान जिनके नेत्र हैं, जिनकी शरीरकान्ति अलसीपुष्पके समान है और जिन्होंने रावणका अन्त किया है, उन अव्यय परमात्मा श्रीरामको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २९॥

अयोध्या सा परा मेध्या पुरी दुष्कृतिदुर्लभा।
कस्य सेव्या च नाऽयोध्या यस्यां साक्षाद्धरिः स्वयम्॥ ३०॥

अयोध्यापुरी दुष्कृतियों अर्थात् दुराचारियोंके लिये दुर्लभ है और जगतीतलपर सर्वाधिक पवित्र है। यह पुरी किसकी सेव्या नहीं है। अर्थात् सभी प्राणियोंकी यह आराध्या पुरी है, जिसमें कि साक्षात् श्रीहरि ही स्वयं विराजमान हैं॥ ३०॥

सरयूतीरमासाद्य दिव्या परमशोभना।
अमरावतीनिभा प्रायः श्रिता बहुतपोधनैः॥ ३१॥
हस्त्यश्वरथपत्त्याढ्या सम्पदुच्चा च संस्थिता।
प्राकाराढ्यप्रतोलीभिस्तोरणैः कांचनप्रभैः॥ ३२॥
सानूपवेषैः सर्वत्र सुविभक्तचतुष्टया।
अनेकभूमिप्रासादा बहुभित्तिसुविक्रिया॥ ३३॥

अमरावतीपुरीकी समता करनेवाली, परमशोभामयी वह दिव्य अयोध्यापुरी सरयू नदीके तटपर स्थित है और बहुत-से तपोनिष्ठ महापुरुषोंने उसका आश्रय ले रखा है। वह लोकोत्तर समृद्धिसे परिपूर्ण एवं हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल आदि सैन्यसे युक्त है। वहाँपर प्राकार, गलियाँ तथा स्वर्णिम कान्तिवाले द्वार हैं, जिनका अलंकरण अनुपमेय है। वहाँके चौराहे भलीभाँति व्यवस्थित हैं। उस पुरीके भूतलपर नानाविध [मनोरम] प्रासाद हैं और उनकी दीवालोंपर उत्तम चित्रकारी की गयी है॥ ३१—३३॥

पद्मोत्फुल्लशुभोदाभिर्वापीभिरुपशोभिता।
देवतायतनैर्दिव्यैर्वेदघोषैश्च मण्डिता॥ ३४॥
वीणावेणुमृदंगादिशब्दैरुत्कृष्टताङ्गता।
शालैस्तालैर्नालिकेरैः पनसामलकैस्तथा॥ ३५॥
तथैवाम्रकपित्थाद्यैरशोकैरुपशोभिता।
आरामैर्विविधैर्युक्ता सर्वर्तुफलपादपैः॥ ३६॥

अयोध्यापुरी खिले हुए कमलों और स्वच्छ जलसे परिपूर्ण बावलियोंसे शोभित है। वहाँ दिव्य देवमन्दिर हैं, [जहाँका] वेदघोष पुरीको अलंकृत कर रहा है। उस पुरीके उत्कर्षको मानो सूचित करते हुए वीणा, वेणु, मृदंग आदि वाद्य बज रहे हैं। अयोध्यापुरीको शाल, ताल, नारियल, कटहल, आँवला, आम, कैथा, अशोक आदिके वृक्ष अतीव शोभासम्पन्न बना रहे हैं और

सभी ऋतुओंमें फलनेवाले वृक्षोंके भाँति-भाँतिके बाग-बगीचे उस पुरीमें विद्यमान हैं॥ ३४—३६॥

मालतीजातिबकुलपाटलीनागचम्पकैः ।
करवीरैः कर्णिकारैः केतकीभिरलङ्कृता॥ ३७॥
निम्बजम्बीरकदलीमातुलुंगमहाफलैः ।

मालती, चमेली, बकुल, पाटल, नागचम्पा, कनेर, कर्णिकार तथा केतकी आदि पुष्पोंके वृक्ष और निम्बू, जम्बीरी निम्बू एवं बड़े-बड़े बिजौरा तथा केला—ये सभी फलदार वृक्ष उस पुरीका मानो शृंगार-सा कर रहे हैं॥ ३७$^{१}/_{२}$॥

लसच्चन्दनगन्धाढ्यैर्नागरैरुपशोभिता ॥ ३८॥
देवतुल्यप्रभायुक्तैर्नृपपुत्रैश्च संयुता।
सुरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देवस्त्रीभिरिवावृता ॥ ३९॥
श्रेष्ठैः सत्कविभिर्युक्ता बृहस्पतिसमैर्द्विजैः।
वणिग्जनैस्तथा पौरैः कल्पवृक्षैरिवादृता॥ ४०॥

चन्दन आदिका सुगन्धित अनुलेप धारण किये हुए वहाँके नागरिक, देवताओंके सदृश कान्तिमय राजपुत्र, देवांगनाओंके सदृश रूपलावण्यशालिनी श्रेष्ठ महिलाएँ, बृहस्पतिकी समानता करनेवाले विद्वान् ब्राह्मण, श्रेष्ठ सुकविजन, [धनाढ्य] व्यापारी एवं कल्पवृक्षके समान [आगन्तुकोंकी कामनापूर्ति करनेवाले] नगरवासीजन—इन सभीसे वह नगरी समन्वित, समादृत एवं शोभान्वित है॥ ३८—४०॥

अश्वैरुच्चैःश्रवस्तुल्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैरिव ।
इति नानाविधैर्भावैरुपेतेन्द्रपुरीसमा॥ ४१॥

वहाँ उच्चैःश्रवाके जैसे उत्तम अश्व और दिग्गजोंकी समानता करनेवाले हाथी स्थित हैं। इन सभी नानाविध समृद्धियोंसे समृद्ध वह पुरी देवराज इन्द्रकी नगरी अमरावतीकी समता कर रही है॥ ४१॥

यस्यां जाता महीपालाः सूर्यवंशसमुद्भवाः।
इक्ष्वाकुप्रमुखाः सर्वे प्रजापालनतत्पराः॥ ४२॥
यस्यास्तीरे पुण्यतोया कूजद्भृङ्गविहंगमा।
सरयूर्नाम तटिनी मानसप्रभवोल्लसा॥ ४३॥
धर्मद्रवपरीता सा घर्घरोत्तमसङ्गमा।
मुनीश्वराश्रिततटा जागर्ति जगदुच्छ्रिता॥ ४४॥

प्रजापालनमें तत्पर इक्ष्वाकु आदि सभी सूर्यवंशी नरेश उसी पुरीमें उत्पन्न हुए थे, जिसके पार्श्वदेशमें पवित्र जलवाली, गुंजन करते भौंरों एवं कलरव करते पक्षियोंसे परिपूर्ण और मानसरोवरसे निर्गत सरयू नामक महानदी शोभायमान है। घाघरा नदीके संगमसे युक्त, मुनियोंके द्वारा आश्रित तटोंवाली और मानो धर्म ही जलरूपमें परिणत होकर जिसमें स्थित हो, ऐसी वह संसारमें सर्वोच्च महिमावाली सरयू नदी वहाँपर प्रवहमान है॥ ४२—४४॥

दक्षिणाच्चरणाङ्गुष्ठान्निःसृता जाह्नवी हरेः।
वामांगुष्ठान्मुनिवराः सरयूर्निर्गता शुभा॥ ४५॥
तस्मादिमे पुण्यतमे नद्यौ देवनमस्कृते।
एतयोः स्नानमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ ४६॥

हे मुनिवरो! भगवान् श्रीहरिके दक्षिण चरणके अंगुष्ठसे भगवती श्रीगंगाजीका तथा वाम चरणके अंगुष्ठसे* श्रीसरयूजीका प्रादुर्भाव हुआ है। इसलिये ये दोनों पवित्रतम सरिताएँ देवोंद्वारा पूज्य हैं। इन दोनोंमें स्नानमात्रसे ब्रह्महत्याके दोषका विनाश हो जाता है॥ ४५-४६॥

तामयोध्यामथ प्राप्तोऽगस्त्यः कुम्भोद्भवो मुनिः।
यात्रार्थं तीर्थमाहात्म्यं ज्ञात्वा स्कन्दप्रसादतः॥ ४७॥
आगत्य तु पुनः सोऽपि कृत्वा यात्रां क्रमेण च।
यथोक्तेन विधानेन स्नात्वा सन्तर्प्य तान् पितॄन्॥ ४८॥

* अन्यान्य महात्म्य-ग्रन्थों यथा रुद्रयामलतन्त्रोक्त अयोध्यामहात्म्य (३। ३२) इत्यादिमें श्रीसरयूजीकी उत्पत्ति भगवान् श्रीविष्णुके नेत्रोंसे बतायी गयी है।

पूजयित्वा यथान्यायं देवताः सकला अपि।
सर्वाण्यपि च तीर्थानि नमस्कृत्य यथाविधि॥ ४९॥

भगवान् स्कन्दकी कृपासे तीर्थकी महिमाको जानकर कुम्भजन्मा महर्षि अगस्त्य परिक्रमा-यात्राके उद्देश्यसे उस अयोध्यापुरीमें आ पहुँचे। उन्होंने वहाँ आकर क्रमानुसार यात्रा की और शास्त्रनिर्दिष्ट विधानके अनुसार स्नान करके अपने पितरोंका तर्पण, [तीर्थमें स्थित] सभी देवताओंका शास्त्रीय रीतिसे पूजन एवं समस्त तीर्थोंका यथाविधि प्रणाम-दर्शनादि सम्पन्न किया॥ ४७—४९॥

कृतकृत्योर्जितानन्दस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात्।
अभूदगस्त्यो रूपेण पुलकांचितविग्रहः॥ ५०॥
स त्रिरात्रं स्थितस्तत्र यात्रां कृत्वा यथाविधि।
स्तुवन्नयोध्यामाहात्म्यं प्रतस्थे मुनिसत्तमः॥ ५१॥

महर्षि अगस्त्य [अयोध्याकी परिक्रमा सम्पन्नकर] कृतकृत्य हो गये, उन (के अन्तःकरण)-में मानो आनन्दकी बाढ़-सी आ गयी, तीर्थकी महिमाको [भलीभाँति] अनुभव करके उनका कलेवर रोमांचित हो गया। वे मुनिश्रेष्ठ वहाँ तीन रात्रियोंतक स्थित रहे और यथोक्त विधिसे वहाँकी तीर्थयात्रा सम्पन्न करके अयोध्याकी महिमाका स्तवन करते हुए चल पड़े॥ ५०-५१॥

तमायान्तं विलोक्याशु बहुलानन्दसुन्दरम्।
कृष्णद्वैपायनो व्यासः पप्रच्छानन्दकारणम्॥ ५२॥

आनन्दकी अधिकतासे शोभायमान महर्षि अगस्त्यको आते हुए देखकर कृष्णद्वैपायन व्यासदेवने तत्क्षण ही उनसे इस आनन्दका कारण पूछा॥ ५२॥

व्यास उवाच

कुतः समागतो ब्रह्मन् साम्प्रतं मुनिसत्तम।
परमानन्दसन्दोहः समभूत् साम्प्रतं तथा॥ ५३॥

कस्मादानन्दपोषोऽभूत्तव ब्रह्मन् वदस्व मे।
ममापि भवदानन्दात् प्रमोदो हृदि जायते॥ ५४॥

व्यासजीने कहा—हे ब्रह्मन्! हे मुनिश्रेष्ठ! इस समय आप कहाँसे पधारे हैं? हे ब्रह्मन्! मैं देख रहा हूँ कि आपके हृदयमें परमानन्दका समूह उच्छलित हो रहा है। मुझे यह बतलाइये कि आपको किस कारणसे आनन्दातिरेक हो रहा है? आपके आनन्दसे तो स्वयं मेरा हृदय भी प्रमुदित हो रहा है॥ ५३-५४॥

अगस्त्य उवाच

अहो महदथाश्चर्यं विस्मयो मुनिसत्तम।
दृष्ट्वा प्रभावं मेऽद्याभूदयोध्यायास्तपोधन॥ ५५॥
तस्मादानन्दसन्दोहः समभून्मम साम्प्रतम्।
तच्छ्रुत्वागस्त्यवचनं व्यासः प्रोवाच तं मुनिम्॥ ५६॥

अगस्त्यजीने कहा—अहो मुनिश्रेष्ठ! अयोध्याके प्रभावका दर्शनकर आज मुझे महान् आश्चर्य तथा विस्मय हो रहा है। हे तपोधन! यही कारण है कि इस समय मेरे हृदयमें आनन्दका समूह तरंगायित हो रहा है। अगस्त्यजीकी यह बात सुनकर व्यासजीने उन मुनिसे कहा— ॥ ५५-५६ ॥

व्यास उवाच

भगवन् ब्रूहि तत्त्वेन विस्तरात् सरहस्यकम्।
अयोध्याया महापुर्या महिमानं गुणाधिकम्॥ ५७॥
कः क्रमस्तीर्थयात्रायाः कानि तीर्थानि को विधिः।
किं फलं स्नानतस्तत्र दानस्य च महामुने
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तराद् वदताम्वर॥ ५८॥

व्यासजीने कहा—भगवन्! महापुरी अयोध्याकी गुण-बहुल महिमाको रहस्य और विस्तारपूर्वक आप कहिये। अयोध्या-तीर्थ-यात्राका क्रम क्या है? वहाँ कौन-कौनसे तीर्थ हैं, [उनके

सेवनकी] विधि क्या है, वहाँ स्नानसे क्या फल मिलता है तथा हे महामुने! [वहाँपर] दानका क्या फल है? हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! यह सब विस्तारसे आप कहें॥ ५७-५८॥

अगस्त्य उवाच

अहो धन्यतमा बुद्धिस्तव जाता तपोधन।
दृश्यते येन पृच्छा ते ह्ययोध्यामहिमाश्रिता॥ ५९॥

अगस्त्यजीने कहा—हे तपोधन! अहो, आपकी बुद्धि धन्यतम है। मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि अयोध्यामाहात्म्यके श्रवणहेतु आपकी तीव्र लालसा हो रही है॥ ५९॥

अकारो ब्रह्म च प्रोक्तं यकारो विष्णुरुच्यते।
धकारो रुद्ररूपश्च अयोध्या नाम राजते॥ ६०॥
सर्वोपपातकैर्युक्तैर्ब्रह्महत्यादिपातकैः।
नायोध्या शक्यते यस्मात्तामयोध्यां ततो विदुः॥ ६१॥

'अयोध्या' पदका घटक वर्ण अकार ब्रह्माका वाचक, यकार विष्णुका वाचक तथा धकार रुद्रदेवताका वाचक है। अर्थात् अयोध्या शब्दमें जगत्के कारणभूत त्रिदेवोंका समावेश है। [इस प्रकार त्रिदेवमयी] इस पुरीका 'अयोध्या' यह नाम [बड़ा ही] सुन्दर है। पुराण-धर्मशास्त्रादिमें जिन उपपातकों तथा ब्रह्महत्यादि महापातकोंका वर्णन आता है, वे सभी इस दिव्यपुरीके समक्ष युद्धकी क्षमता नहीं रखते, इस अर्थमें अयोध्या यह नाम सार्थक है॥ ६०-६१॥

विष्णोराद्या पुरी येयं क्षितिं न स्पृशति द्विज।
विष्णोः सुदर्शने चक्रे स्थिता पुण्यकरी क्षितौ॥ ६२॥
केन वर्णयितुं शक्यो महिमाऽस्यास्तपोधन।
यत्र साक्षात् स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः॥ ६३॥

हे द्विज! यह श्रीविष्णुकी आद्या (प्रथम) पुरी है। इसका

सम्पर्क भूमितलसे नहीं है। [स्थूल दृष्टिसे] भूमितलपर दृष्टिगत होनेवाली भी यह [वस्तुतः] श्रीविष्णुके सुदर्शन चक्रपर स्थित है और पृथ्वीतलपर यह पुण्योंका सम्वर्धन करती है। हे तपोधन! इसकी महिमाका वर्णन करनेमें कौन प्राणी समर्थ है? जहाँपर स्वयं साक्षात् देवदेव श्रीविष्णुभगवान् सादर निवास करते हैं॥ ६२-६३॥

सहस्रधारामारभ्य योजनं पूर्वतो दिशि।
तथैव दिक्प्रतीच्यां वै योजनं समतोऽवधिः॥ ६४॥
दक्षिणोत्तरभागे तु सरयूतमसावधिः।
एतत्क्षेत्रस्य संस्थानं हरेरन्तर्गृहं स्थितम्॥ ६५॥
मत्स्याकृतिरियं विप्र पुरी विष्णोरुदीरिता।
पश्चिमे तस्य मूर्द्धा तु गोप्रतारासिताद् द्विज।
पूर्वतः पृष्ठभागो हि दक्षिणोत्तरमध्यमः॥ ६६॥
तस्यां पुर्यां महाभाग नाम्ना विष्णुर्हरिः स्वयम्।
पूर्वं दृष्टप्रभावोऽसौ प्राधान्येन वसत्यपि॥ ६७॥

हे महाभाग! सहस्रधारा (लक्ष्मणघाट)-से लेकर पूर्वमें एक योजनतक, उसी प्रकार पश्चिम दिशामें सम नामक स्थानसे लेकर एक योजनकी इसकी सीमा शास्त्रसम्मत है। सरयूतटसे एक योजनतक दक्षिण दिशामें और तमसा तटसे वैसे ही एक योजनतक उत्तर दिशामें इसकी सीमा है। इस अयोध्याका यह क्षेत्रविन्यास ही श्रीहरिका अन्तर्गृह कहा जाता है। हे विप्र! यह श्रीविष्णुपुरी मत्स्यकी-सी आकृतिवाली है। इस मत्स्यके जैसे आकारवाली अयोध्याका शिरोभाग गोप्रतारघाटसे असिततीर्थ-पर्यन्त माना गया है। पूर्व दिशामें इस मत्स्यका पुच्छभाग है। (इसे श्रीबिल्वहरितीर्थतक जानना चाहिये) इसका मध्यभाग दक्षिण-उत्तरकी ओर है। हे महाभाग! इस पुरीमें [श्रीहरि] स्वयं 'श्रीविष्णुहरि' नामसे प्रधानतया प्राचीनकालसे ही निवास करते

हैं। वहाँ उनका प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जाता है॥ ६४—६७॥

व्यास उवाच

भगवन् किम्प्रभावोऽसौ योऽयं विष्णुहरिस्त्वया।
कीर्तितो मुनिशार्दूल प्रसिद्धिं गतवान् कथम्।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण ममाऽग्रतः॥ ६८॥

व्यासजीने कहा—हे ब्रह्मन्! आपने अभी जो यह कहा कि अयोध्यामें श्रीहरि श्रीविष्णुहरि नामसे निवास करते हैं। वहाँ उनका क्या प्रभाव है तथा उनकी प्रसिद्धि कैसे हुई? हे मुनिशार्दूल! इन सभी तथ्योंको विस्तारसहित मुझे बतलाइये॥ ६८॥

अगस्त्य उवाच

विष्णुशर्मेति विख्यातः पुराऽभूद् ब्राह्मणोत्तमः।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धर्मकर्मसमाश्रितः॥ ६९॥
योगध्यानरतो नित्यं विष्णुभक्तिपरायणः।
स कदाचित् तीर्थयात्रां कुर्वन् वैष्णवसत्तमः।
अयोध्यामागतो विष्णुर्विष्णुः साक्षाद् वसेदिति॥ ७०॥
चिन्तयन् मनसा धीरस्तपः कर्तुं समुद्यतः।
स वै तत्र तपस्तेपे शाकमूलफलाशनः॥ ७१॥
ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो ह्यतपत् स महातपाः।
वार्षिके च निरालम्बो हेमन्ते च सरोवरे॥ ७२॥

अगस्त्यने कहा—पूर्वकालमें विष्णुशर्मा नामके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। वे वेद-वेदांगोंके मर्मज्ञ, धर्म-कर्मपरायण, नित्यप्रति योग-ध्यानमें तन्मय तथा विष्णुभक्तिमें निरत थे। वे वैष्णवसत्तम विष्णुशर्मा किसी समय तीर्थयात्रा करते हुए अयोध्याजीमें इस विचारसे आये कि यहाँ साक्षात् श्रीविष्णु निवास करते हैं, ऐसा हृदयमें चिन्तन करते हुए उन धीर ब्राह्मणने वहाँ तपस्याका विचार किया और शाक-मूल, फलादिका आहार करते हुए

वहींपर तपमें संलग्न हो गये। वे महातपस्वी ग्रीष्मकालमें पंचाग्निके मध्यमें, वर्षा-ऋतुमें निरावृत आकाशके नीचे और हेमन्तकालमें सरोवरके मध्यमें रहते थे॥ ६९—७२॥

स्नात्वा यथोक्तविधिना कृत्वा विष्णोस्तथाऽर्चनम्।
वशीकृत्येन्द्रियग्रामं विशुद्धेनाऽन्तरात्मना॥ ७३॥
मनो विष्णौ समावेश्य विधाय प्राणसंयमम्।
ओंकारोच्चारणाद् धीमान् हृदि पद्मं विकाशयन्॥ ७४॥
तन्मध्ये रविसोमाग्निमण्डलानि यथाविधि।
कल्पयित्वा हरिं मूर्तं तस्मिन् देशे सनातनम्॥ ७५॥
पीताम्बरधरं विष्णुं शंखचक्रगदाधरम्।
तं च पुष्पैः समभ्यर्च्य मनस्तस्मिन्निवेश्य च॥ ७६॥
ब्रह्मरूपं हरिं ध्यायञ्जपन् वै द्वादशाक्षरम्।
वायुभक्षः स्थितस्तत्र विप्रस्त्रीन् वत्सरान् वसन्॥ ७७॥

[इस तपोऽनुष्ठानमें वे नित्यप्रति] शास्त्रोक्त विधिसे स्नानकर पूर्ण जितेन्द्रिय हो विशुद्ध अन्तरात्मासे श्रीविष्णुका सम्यक् अर्चन करते थे। उन्होंने [इस सर्वथा चंचल] मनको भगवान् श्रीविष्णुके श्रीचरणारविन्दमें समाविष्ट कर दिया और प्राणवायुका संयमनकर ॐकारके सतत उच्चारणके द्वारा अपने हृदयकमलको प्रफुल्लित किया। उस विकसित हृदयकमलमें उन प्राज्ञ ब्राह्मणने रवि, सोम और अग्निमण्डलोंकी यथाविधि कल्पनाकर उन [मण्डलोंके मध्यमें वैष्णवपीठकी भावना की और उस पीठमें] श्रीहरिके उस सनातन स्वरूपके अवस्थानकी परिकल्पना की, जो [सगुण] स्वरूप पीताम्बरविभूषित, व्यापक एवं शंख, चक्र, गदा आदिसे समन्वित है। वे ब्राह्मण विष्णुशर्मा उस भगवद्रूपकी [मानस] पुष्पोंसे भलीभाँति अर्चना करने लगे और उन्होंने उस [स्वरूपके ही अनुध्यान]-में अपने मनको सम्यग् रूपसे लगा दिया। वायुमात्रका

ही आहार करते हुए और द्वादशाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)-के जपमें निरत होकर ब्रह्मस्वरूप श्रीहरिके ध्यानमें तन्मय वे विप्र वहाँ *तीन वर्षोंतक तपस्या करते रहे॥ ७३—७७॥

ततो द्विजवरो ध्यात्वा स्तुतिञ्चक्रे हरेरिमाम्।
प्रणिपत्य जगन्नाथं चराचरगुरुं हरिम्।
विष्णुशर्माऽथ तुष्टाव नारायणमतन्द्रितः॥ ७८॥

इस प्रकारका तपोऽनुष्ठान करते हुए उन द्विजवर विष्णुशर्माने चराचरगुरु श्रीहरिको प्रणिपात अर्पितकर जगन्नाथ नारायणके ध्यानमें तन्मय हो सावधान चित्तसे इस स्तोत्रके द्वारा उनका स्तवन किया॥ ७८॥

विष्णुशर्मोवाच

प्रसीद भगवन् विष्णो प्रसीद पुरुषोत्तम।
प्रसीद देवदेवेश प्रसीद कमलेक्षण॥ ७९॥
जय कृष्ण जयाचिन्त्य जय विष्णो जयाव्यय।
जय यज्ञपते नाथ जय विष्णो पते विभो॥ ८०॥
जय पापहरानन्त जय जन्मज्वरापह।
नमः कमलनाभाय नभः कमलमालिने॥ ८१॥
नमः सर्वेश भूतेश नमः कैटभसूदन।
नमस्त्रैलोक्यनाथाय जगन्मूल जगत्पते॥ ८२॥
नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय वै।
नमः कृष्णाय रामाय नमश्चक्रायुधाय च॥ ८३॥

विष्णुशर्मा बोले—हे भगवन्! हे विष्णो! हे पुरुषोत्तम! आप प्रसन्न हों। हे देवदेवेश! हे कमलेक्षण! आप प्रसन्न हों। हे कृष्ण! आपकी जय हो। हे अचिन्त्य! आपकी जय हो। हे विष्णो! हे अव्यय! आपकी जय हो, जय हो। हे नाथ! हे यज्ञपते! आपकी जय हो। आपकी जय हो। हे विष्णो, हे रक्षक,

*रुद्रयामलमें तीस हजार वर्षकी तपस्याकी बात आयी है।

हे विभो! आपकी जय हो। हे पापहर! हे अनन्त! आपकी जय हो। हे जन्मरूप ज्वरके नाशक! आपकी जय हो। कमलनाभ और कमलमालाधरको नमस्कार है। सर्वेश, भूतेशको नमस्कार है। कैटभहन्ताको नमस्कार है। त्रैलोक्यनाथको नमस्कार है। जगतीपति और जगत्‌के मूलको नमस्कार है। देवाधिदेवको नमस्कार है। श्रीमन्नारायणको नमस्कार है। श्रीकृष्ण और श्रीरामको नमस्कार है। जिनके हाथमें चक्ररूप आयुध है, उन्हें नमस्कार है॥ ७९—८३ ॥

त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता।
भयार्त्तानां सुहृन्मित्रं त्वं पिता त्वं पितामहः॥ ८४॥
त्वं हविस्त्वं वषट्कारस्त्वं प्रभुस्त्वं हुताशनः।
करणं कारणं कर्ता त्वमेव परमेश्वरः॥ ८५॥
शङ्खचक्रगदापाणे मां समुद्धर माधव॥ ८६॥
प्रसीद मन्दरधर प्रसीद मधुसूदन।
प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद भुवनाधिप॥ ८७॥

आप सभी लोकोंकी माता हैं तथा आप ही सम्पूर्ण जगत्‌के पिता हैं। आप ही भयभीत जनोंके सुहृद् एवं उनपर स्नेह करनेवाले हैं, आप ही पिता और पितामह हैं। आप हविष् हैं, वषट्कार हैं, आप ही यज्ञाग्नि हैं। आप ही स्वामी हैं। करण, कारण, कर्ता तथा परमेश्वर आप ही हैं। हे माधव! हे शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाले! आप मेरा उद्धार कीजिये। हे मन्दराचलको धारण करनेवाले! आप प्रसन्न होइये, हे मधुसूदन! प्रसन्न होइये, हे कमलाकान्त! हे भुवनाधिराज! प्रसन्न हों, प्रसन्न हों॥ ८४—८७ ॥

अगस्त्य उवाच

इत्येवं स्तुवतस्तस्य मुनेर्भक्त्या महात्मनः।
आविर्बभूव विश्वात्मा विष्णुर्गरुडवाहनः॥ ८८॥

शङ्खचक्रगदापाणिः पीताम्बरधरोऽच्युतः।
उवाच स प्रसन्नात्मा विष्णुशर्माणमव्ययः॥ ८९॥

अगस्त्यजीने कहा—इस प्रकार उन महात्माके मनोयोगपूर्वक भक्ति-भावसे स्तवन करते समय अच्युत, गरुड़वाहन, विश्वात्मा, पीताम्बरधारी श्रीविष्णु हाथमें शंख-चक्र और गदाको धारण किये हुए उनके समक्ष ही प्रकट हो गये तथा उन अव्यय, प्रसन्नात्मा श्रीहरिने विष्णुशर्माको सम्बोधितकर कहा—॥ ८८-८९॥

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽस्मि भवतो वत्स महता तपसाऽधुना।
स्तोत्रेणानेन सुमते नष्टपापोऽसि साम्प्रतम्॥ ९०॥
वरं वरय विप्रेन्द्र वरदोऽहं तवाग्रतः।
नाऽतप्ततपसा द्रष्टुं शक्यः केनाप्यहं द्विज॥ ९१॥

भगवान्ने कहा—हे वत्स! तुम्हारी महती तपश्चर्यासे इस समय मैं सन्तुष्ट हूँ। हे सुमते! अब तुम इस स्तोत्रके द्वारा मेरा स्तवन करके समस्त पापोंसे मुक्त हो गये हो। हे विप्रेन्द्र! वर माँगो! इस समय वरदाता मैं तुम्हारे समक्ष उपस्थित हूँ। हे द्विज! तपके बिना कोई भी व्यक्ति मेरा दर्शन नहीं प्राप्त कर सकता॥ ९०-९१॥

विष्णुशर्मोवाच

कृतकृत्योऽस्मि देवेश साम्प्रतं तव दर्शनात्।
त्वद्भक्तिमचलामेकां मम देहि जगत्पते॥ ९२॥

विष्णुशर्मा बोले—हे देवेश! आपके दर्शनसे अब मैं कृतकृत्य हूँ। हे जगत्पते! आपके श्रीचरणोंमें मेरी अनन्य और अचल भक्ति हो, यही वर आप प्रदान करें॥ ९२॥

श्रीभगवानुवाच

भक्तिरस्त्वचला मे वै वैष्णवी मुक्तिदायिनी।
अत्रैवास्त्वचला मे वै जाह्नवी मुक्तिदायिनी॥ ९३॥

इदं स्थानं महाभाग त्वन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति॥ ९४॥

श्रीभगवान्ने कहा—निश्चित ही मेरी मुक्तिदात्री वैष्णवी भक्ति आपके हृदयमें अचलरूपमें प्रतिष्ठित हो और यहींपर मुक्तिदायिनी जाह्नवी देवी गंगा अचलरूपमें प्रतिष्ठित हों। हे महाभाग! यह स्थान तुम्हारे नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त होगा॥ ९३-९४॥

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशश्चक्रेणोत्खाय तत्स्थलम्।
जलं प्रकटयामास गाङ्गं पातालमण्डलात्॥ ९५॥
जलेन तेन भगवान् पवित्रेण दयाम्बुधिः।
नीरजस्तु भूमितलं क्षणाच्चक्रे कृपावशात्॥ ९६॥

अगस्त्यजीने कहा—हे द्विज! देवाधिदेव श्रीहरिने ऐसा कहकर उस स्थलका चक्रद्वारा खननकर पाताललोकसे गंगाजलको प्रकट कर दिया। दयासिन्धु भगवान्ने कृपावशात् उस पवित्र जलसे तत्काल ही वहाँके भूमितलको धूलिरहित (या कि रजोगुणशून्य) कर दिया॥ ९५-९६॥

चक्रतीर्थमिति ख्यातं ततः प्रभृति तद् द्विज।
जातं त्रैलोक्यविख्यातमघौघध्वंसकृच्छुभम्॥ ९७॥
तत्र स्नानेन दानेन विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥ ९८॥
ततः स भगवान् भूयो विष्णुशर्माणमच्युतः।
कृपया परया युक्त उवाच द्विजवत्सलः॥ ९९॥

हे द्विज! तभीसे लेकर वह स्थल 'चक्रतीर्थ' इस नामसे प्रसिद्ध हो गया। यह शुभ चक्रतीर्थ पापसमूहोंका ध्वंसक है तथा त्रैलोक्यमें विख्यात है। उसमें स्नान-दान करनेसे मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त होता है। इसके पश्चात् पुनः द्विजवत्सल अच्युतने परम कृपासे युक्त होकर विष्णुशर्मासे कहा॥ ९७—९९॥

श्रीभगवानुवाच

त्वन्नामपूर्विका विप्र मन्मूर्त्तिरिह तिष्ठतु।
विष्णुहरीति विख्याता मुक्तानां मुक्तिदायिनी॥ १००॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे विप्र! मेरे नामसे पूर्व तुम्हारे नामसे संयुक्त हुई मेरी मूर्ति यहाँपर प्रतिष्ठित हो। मुक्तात्माओंको भी मुक्तिदायिनी इस मूर्तिकी 'विष्णुहरि' इस नामसे प्रसिद्धि हो॥ १००॥

इति श्रुत्वा वचो विप्रो वासुदेवस्य बुद्धिमान्।
स्वनामपूर्विकां मूर्तिं स्थापयामास चक्रिणः॥ १०१॥
ततः प्रभृति विप्रेश शङ्खचक्रगदाधरः।
पीतवासाश्चतुर्बाहुर्नाम्ना विष्णुहरिः स्थितः॥ १०२॥

[महर्षि श्रीअगस्त्यजी कहते हैं कि] भगवान् श्रीवासुदेवके इस वचनको सुनकर उन बुद्धिमान् विप्रने चक्रधर श्रीहरिकी स्वनामपूर्विका अर्थात् अपने नामसे घटित संज्ञावाली मूर्तिकी स्थापना की। हे विप्रवर! तभीसे शंख-चक्र-गदाधर, पीताम्बर, चतुर्भुज श्रीविष्णु 'विष्णुहरि' नामसे यहाँपर स्थित हैं॥ १०१-१०२॥

कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य प्रारभ्य दशमीतिथिम्।
पूर्णिमामवधिं कृत्वा यात्रा साम्वत्सरी भवेत्॥ १०३॥
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
बहुवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ १०४॥
पितॄनुद्दिश्य यस्तत्र पिण्डान् निर्वापयिष्यति।
तृप्तास्तु पितरो यान्ति विष्णुलोकं न संशयः॥ १०५॥
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा विष्णुहरिं विभुम्।
सर्वपापक्षयं प्राप्य नाकपृष्ठे महीयते॥ १०६॥
स्वशक्त्या तत्र दानानि दत्वा निष्कल्मषो नरः।
विष्णुलोके वसेद्धीमान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ १०७॥
अन्यदाऽपि नरस्तत्र चक्रतीर्थे जितेन्द्रियः।
दृष्ट्वा सकृद्धरिं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १०८॥

[इस तीर्थयात्राका क्रम इस प्रकार है—] कार्तिक शुक्ल दशमी तिथिसे लेकर पूर्णिमातक यहाँकी यात्राका विधान है। यह साम्वत्सरी यात्रा है। मनुष्य चक्रतीर्थमें स्नानकर सभी पापोंसे रहित हो जाता है। अनेक सहस्र वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें पूजित रहता है। पितरोंके उद्देश्यसे जो यहाँ पिण्डदान करता है, उसके पितर तृप्त हो श्रीविष्णुलोकको प्राप्त कर लेते हैं, इसमें संशय नहीं है। मनुष्य चक्रतीर्थमें स्नानकर और सर्वव्यापक श्रीविष्णुहरिका दर्शन करके सर्वपापरहित होकर स्वर्गलोकमें पूजित होता है। अपने सामर्थ्यानुसार यहाँ दान देकर बुद्धिमान् मनुष्य निष्पाप हो चौदह इन्द्रोंके स्थितिकालपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास करता है। इसके अतिरिक्त भी अर्थात् पूर्वोक्त साम्वत्सरी यात्राके अभावमें भी जो जितेन्द्रिय मनुष्य एक बार भी श्रीविष्णुहरिका दर्शन कर लेता है, वह भी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १०३—१०८॥

इति सकलगुणाब्धिर्ध्येयमूर्तिश्चिदात्मा
हरिरिह परमूर्त्या तस्थिवान् मुक्तिहेतोः।
तमिह बहुलभक्त्या चक्रतीर्थाभिषेकी
वसति सुकृतिमूर्तिर्योऽर्चयेद् विष्णुलोके॥ १०९॥

इस प्रकार सकलगुणसिन्धु, ध्यानयोग्य स्वरूपवाले चिदात्मा श्रीहरि अत्युत्तम मूर्तिके रूपमें प्राणिमात्रकी मुक्तिकामनासे यहाँ विराजमान हुए। जो मनुष्य अत्यन्त भक्तिके साथ इस चक्रतीर्थमें स्नानकर श्रीविष्णुहरिका अर्चन करता है, वह पुण्यात्मा श्रीविष्णुलोकमें निवास करता है॥ १०९॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डे अयोध्यामाहात्म्ये 'विष्णुहरिमाहात्म्यवर्णनं' नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डके अन्तर्गत अयोध्यामाहात्म्यका 'विष्णुहरिमाहात्म्यवर्णन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

ब्रह्मकुण्ड, ऋणमोचन, पापमोचन तथा सहस्त्रधारासंज्ञक तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य

सूत उवाच

अगस्त्यमुनिरित्युक्त्वा चक्रतीर्थाश्रयां कथाम्।
विभोर्विष्णुहरेश्चापि पुनराह द्विजोत्तमाः॥ १॥

सूतजीने कहा—हे द्विजोत्तमो! अगस्त्यमुनि इस प्रकार विष्णुहरिके माहात्म्यका वर्णन करनेके अनन्तर चक्रतीर्थसम्बन्धी कथा तथा भगवान् विष्णुहरिकी महिमाका वर्णन करने लगे॥ १॥

अगस्त्य उवाच

पुरा ब्रह्मा जगत्स्त्रष्टा विज्ञाय हरिमच्युतम्।
अयोध्यावासिनं देवं तत्र चक्रे स्थितिं स्वयम्॥ २॥
आगत्य कृतवाँस्तत्र यात्रां ब्रह्मा यथाविधि।
यज्ञञ्च विधिवच्चक्रे नानासम्भारसंयुतम्॥ ३॥
ततः स कृतवाँस्तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः।
कुण्डं स्वनाम्ना विपुलं नानादेवसमन्वितम्॥ ४॥
विस्तीर्णजलकल्लोलकलितं कलुषापहम्।
कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीककुलाकुलम्॥ ५॥
हंससारसचक्राह्वविहङ्गममनोहरम्।
तटान्तविटपोल्लासिपतत्त्रिगणसङ्कुलम्॥ ६॥
तत्र कुण्डे सुराः सर्वे स्नाताः शुद्धिसमन्विताः।
बभूवुरद्धा विगतरजस्का विमलत्विषः॥ ७॥
तदाश्चर्यं महद् दृष्ट्वा ते सर्वे सहसा सुराः।
ब्रह्माणम्प्रणिपत्योचुर्भक्त्या प्रांजलयस्तदा॥ ८॥

अगस्त्यजीने कहा—पूर्वकालमें जगत्स्त्रष्टा ब्रह्माजीने अच्युत श्रीहरिको अयोध्यामें स्थित जानकर स्वयं भी वहीं अपनी

निवासस्थली बनायी। अयोध्यामें आकर उन्होंने यथाविधि यात्रा (परिक्रमा) की, पुनः प्रचुर मात्रामें यज्ञीय सामग्रियोंसे युक्त एक यज्ञका विधिवत् सम्पादन किया। तदनन्तर लोकपितामह श्रीब्रह्माजीने अनेक देवोंकी स्थितिवाले तथा अपने नामसे संयुक्त अर्थात् 'ब्रह्मकुण्ड' इस नामसे प्रसिद्ध एक विशाल कुण्डका निर्माण किया। विशालकाय वह कुण्ड कलुषका अपहरण करनेवाला था। जलसे भरे उस कुण्डसे लहरें उठ रही थीं और उसमें कुमुद, उत्पल, कह्लार, पुण्डरीक आदि कमल सुशोभित थे। वह कुण्ड हंस, सारस, चक्रवाक आदि पक्षियोंके कारण मनोहारी प्रतीत हो रहा था। उस कुण्डके तटोंपर स्थित वृक्षोंके ऊपर अनेक जातिके पक्षीगण शोभा बढ़ा रहे थे। उस कुण्डमें सभी देवताओंने स्नान किया और वे तत्काल ही रजोगुणसे निवृत्त तथा शोभासम्पन्न हो गये। उस समय अकस्मात् ऐसे महान् आश्चर्यका अनुभवकर उन सभी देवताओंने अंजलि बाँधकर श्रीब्रह्माजीको प्रणाम किया तथा भक्तिपूर्वक उनसे पूछा॥ २—८॥

देवा ऊचुः

भगवन् ब्रूहि तत्त्वेन माहात्म्यं कमलासन।
अस्य कुण्डस्य सकलं खातस्य विमलत्विषः॥ ९ ॥
अत्र स्नानेन सर्वेषामस्माकं विगतं रजः।
महदाश्चर्यमेतस्य दृष्ट्वा कुण्डस्य विस्मिताः।
सर्वे वयं सुरश्रेष्ठ कृपया त्वमतो वद॥ १०॥

देवोंने कहा—हे भगवन्! हे कमलासन ब्रह्मन्! आप [अपने द्वारा] निर्मित किये गये इस शोभायुक्त ब्रह्मकुण्डके समग्र माहात्म्यको तात्त्विक रूपसे बतलायें; क्योंकि इसमें स्नानमात्रसे ही हम सब विगतरजस्क अर्थात् मानसिक विक्षेपसे विमुक्त हो गये, यह महान् आश्चर्यका विषय है। इससे हम सभी लोग विस्मित हैं। अतः हे सुरश्रेष्ठ! कृपापूर्वक इस कुण्डके रहस्यको आप बतलायें॥ ९-१०॥

ब्रह्मोवाच

शृण्वन्तु सर्वे त्रिदशाः सावधानाः सविस्मयाः।
कुण्डस्यैतस्य माहात्म्यं नानाफलसमन्वितम्॥ ११॥
अत्र स्नानेन विधिवत् पापात्मानोऽपि जन्तवः।
विमानं हंससंयुक्तमास्थाय रुचिराम्बराः।
निवसन्ति ब्रह्मलोके यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १२॥
अत्र दानेन होमेन यथाशक्त्या सुरोत्तमाः।
तुलाश्वमेधयोः पुण्यं प्राप्नुयुर्मुनिसत्तम॥ १३॥
ममास्मिन् सरसि श्रीमाञ्जायते स्नानतो नरः।
तस्मादत्र विधानेन स्नानं दानं जपादिकम्॥ १४॥
सर्वयज्ञसमं स्याद् वै महापातकनाशनम्।
ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातिमितो यास्यत्यनुत्तमाम्॥ १५॥
अस्मिन् कुण्डे च सान्निध्यं भविष्यति सदा मम।
कार्तिके शुक्लपक्षस्य चतुर्दश्यां सुरोत्तमाः॥ १६॥
यात्रा भविष्यति सदा सुराः साम्वत्सरी मम।
शुभप्रदा महापापराशिनाशकरी तदा॥ १७॥
स्वर्णञ्चैव सदा देयं वासांसि विविधानि च।
निजशक्त्या प्रकर्तव्या सुरास्तृप्तिर्द्विजन्मनाम्॥ १८॥

ब्रह्माजीने कहा—हे विस्मित देवगणो! सावधानीसे सुनो! इस कुण्डका माहात्म्य अनेक पुण्यफलोंसे समन्वित है। यहाँ विधिवत् स्नानसे पापात्मा जीव भी रुचिर वस्त्रोंसे विभूषित तथा हंसयुक्त विमानपर आसीन होकर ब्रह्मलोकको प्रयाण करते हैं और प्रलयकालपर्यन्त वहीं निवास करते हैं। हे श्रेष्ठ देवताओ! यहाँ मानव यथाशक्ति दान तथा होम करके तुलादान और अश्वमेधयज्ञके पुण्यफलको प्राप्त करेंगे। [अगस्त्यजी व्यासजीसे कहते हैं]—हे मुनिसत्तम! [ब्रह्माजीने देवताओंसे यह भी कहा कि] हमारे इस ब्रह्मकुण्डमें स्नान करनेसे मनुष्य श्रीमान् हो जाता

है, इसलिये यहाँ विधानके साथ किया गया स्नान-दान-जप आदि पुण्यकृत्य समस्त यज्ञोंके समान श्रेष्ठ है तथा वह महापातकोंका भी नाश करनेवाला हो जाता है। आजसे यह कुण्ड 'ब्रह्मकुण्ड' इस नामसे अति उत्तम प्रसिद्धिको प्राप्त होगा।

[ब्रह्माजीने पुनः कहा कि] हे श्रेष्ठ देवताओ! इस कुण्डमें मेरी सदा सन्निधि (उपस्थिति) रहेगी। कार्तिक शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी तिथिको सर्वदा यहाँकी साम्वत्सरी (वार्षिकी) यात्रा होगी। हे देवो! वह यात्रा शुभप्रदा और पापनाशकारिणी है। हे देवताओ! यहाँ सर्वदा विविध प्रकारके वस्त्र तथा सुवर्णको यथाशक्ति ब्राह्मणोंके निमित्त दान करके उनकी तृप्ति करनी चाहिये॥ ११—१८॥

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवोऽयं ब्रह्मा लोकपितामहः।
अन्तर्दधे सुरैः सार्धं तीर्थं दृष्ट्वा तपोधन॥ १९॥
तदाप्रभृति तत्कुण्डं विख्यातं परमं भुवि।
चक्रतीर्थाच्च पूर्वस्यां दिशि कुण्डं स्थितं महत्॥ २०॥

अगस्त्यजी कहते हैं—हे तपोधन! [देवताओंको] ऐसा बतलाकर देवाधिदेव लोकपितामह ब्रह्माजी चक्रतीर्थका दर्शनकर देवगणोंके साथ वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तबसे लेकर यह ब्रह्मकुण्ड पृथिवीपर सुप्रसिद्ध हो गया। चक्रतीर्थसे पूर्व दिशामें यह महनीय कुण्ड स्थित है॥ १९-२०॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तपोराशिरगस्त्यः कुम्भसम्भवः।
पुनः पृष्टो मुनिवरो व्यासायावीवदत् कथाम्॥ २१॥

सूतजीने कहा—तपोराशि कुम्भज अगस्त्यजीने इस प्रकार बतलाया, तदुपरान्त मुनिवर व्यासजीके पुनः पूछनेपर वे [अग्रिम] कथाका वर्णन करने लगे॥ २१॥

अगस्त्य उवाच

अन्यच्छृणु महाभाग तीर्थं दुष्कृतिदुर्लभम्।
ऋणमोचनसञ्ज्ञन्तु सरयूतीरसङ्गतम्॥ २२॥
ब्रह्मकुण्डान्मुनिवर धनुःसप्तशतेन च।
पूर्वोत्तरदिशाभागे संस्थितं सरयूजले॥ २३॥
तत्र पूर्वं मुनिवरो लोमशो नाम नामतः।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन स्नानं चक्रे विधानतः॥ २४॥
ततः स ऋणनिर्मुक्तो बभूव गतकल्मषः।
तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा मुनीन् सानन्दमब्रवीत्॥ २५॥
पश्यन्त्वेतस्य महतो गुणाँस्तीर्थवरस्य वै।
भुजावूर्ध्वं तथा कृत्वा हर्षेणाहाश्रुलोचनः॥ २६॥

अगस्त्यजीने कहा—हे महाभाग! अब आप दूसरे तीर्थकी महिमा सुनें, जो दुराचारियोंको दुर्लभ है। सरयूजीके तटपर स्थित वह तीर्थ 'ऋणमोचन' नामसे प्रसिद्ध है। हे मुनिवर! ब्रह्मकुण्डसे सात सौ धनुषकी दूरीपर ईशान कोणमें सरयूजलके भीतर वह तीर्थ स्थित है। पूर्वकालमें लोमश नामसे विख्यात मुनिश्रेष्ठने तीर्थयात्राके प्रसंगसे उसमें विधानपूर्वक स्नान किया, इससे वे ऋणसे मुक्त तथा निष्कल्मष हो गये थे। उस समय ऐसे महान् आश्चर्यको देखकर उन्होंने मुनियोंसे प्रसन्नतापूर्वक कहा था कि आप लोग महनीय गुणोंसे युक्त इस तीर्थश्रेष्ठ (ऋणमोचनघाट)-का निश्चित ही दर्शन करें। उस समय हर्षातिरेकसे अश्रुपूरित नेत्रोंवाले वे महर्षि अपने दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर कहने लगे—॥ २२—२६॥

लोमश उवाच

ऋणमोचनसञ्ज्ञन्तु तीर्थमेतदनुत्तमम्।
यत्र स्नानेन जन्तूनामृणनिर्यातनं भवेत्॥ २७॥

ऐहिकं पारलौकिक्यं यद् ऋणत्रितयं नृणाम्।
तत्सर्वं स्नानमात्रेण तीर्थेऽस्मिन् नश्यति क्षणात्॥ २८॥
सर्वतीर्थोत्तमं चैतत् सद्यः प्रत्ययकारकम्।
मया चाऽस्य फलं सम्यगनुभूतमृणादिह॥ २९॥
तस्मादत्र विधानेन स्नानं दानं च शक्तितः।
कर्तव्यं श्रद्धया युक्तैः सर्वदा फलकाङ्क्षिभिः॥ ३०॥
स्नातव्यं च सुवर्णं च देयं वस्त्रादि शक्तितः॥ ३१॥

श्रीलोमशजीने कहा—ऋणमोचन नामक यह अत्युत्तम तीर्थ है। यहाँ स्नान करनेसे प्राणियोंके ऋणत्रयका बन्धन छूट जाता है। लौकिक हों अथवा पारलौकिक; चाहे जो भी ऋण मनुष्योंके ऊपर हों, वे सभी यहाँ स्नानमात्रसे क्षणभरमें समाप्त हो जाते हैं। यह ऋणमोचनतीर्थ समस्त तीर्थोंमें उत्तम तथा प्रत्यक्ष विश्वासकारक है। यहाँ रहकर तथा अनृणी होकर मैंने इस तीर्थफलका सम्यक् अनुभव किया है, अतः यहाँ सर्वदा विधानपूर्वक स्नान-दान यथाशक्ति श्रद्धालुओंको करना चाहिये और उन पुण्यफलाभिलाषी जनोंको [ऋणमोचनघाटपर] स्नान करके सुवर्ण-वस्त्रादिका दान यथाशक्ति करना चाहिये॥ २७—३१॥

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा तीर्थमाहात्म्यं लोमशो मुनिसत्तमः।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठः स्तुवँस्तीर्थगुणान् मुदा॥ ३२॥
इत्येतत्कथितं विप्र ऋणमोचनसञ्ज्ञकम्।
यत्र स्नानेन जन्तूनामृणं नश्यति तत्क्षणात्॥ ३३॥

अगस्त्यजीने कहा—इस प्रकारसे तीर्थमहिमाका गानकर मुनिश्रेष्ठ लोमशजी हर्षपूर्वक तीर्थके गुणोंकी स्तुति-प्रशंसा करते हुए वहीं अन्तर्धान हो गये। हे विप्र! इस प्रकार मैंने ऋणमोचनसंज्ञक तीर्थकी महिमा कही, जिसमें स्नान करनेसे प्राणियोंके ऋणत्रयकी निवृत्ति उसी क्षण हो जाती है॥ ३२-३३॥

ऋणमोचनतीर्थात्तु पूर्वतः सरयूजले।
धनुर्विंशत्या तीर्थं च पापमोचनसञ्ज्ञकम्॥ ३४॥
सर्वपापविशुद्धात्मा तत्र स्नानेन मानवः।
जायते तत्क्षणादेव नाऽत्र कार्या विचारणा।
मया तत्र मुनिश्रेष्ठ दृष्टं माहात्म्यमुत्तमम्॥ ३५॥

ऋणमोचनतीर्थसे पूर्वकी ओर सरयूजलमें बीस धनुषकी दूरीपर पापमोचन नामक तीर्थ है। वहाँपर स्नान करनेसे मनुष्य तत्क्षण ही सभी पापोंसे मुक्त होकर विशुद्धात्मा हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने वहाँ [एक बार उस तीर्थके] अत्युत्तम माहात्म्यका [प्रत्यक्ष] दर्शन किया है॥ ३४-३५॥

पाञ्चालदेशसम्भूतो नाम्ना नरहरिर्द्विजः।
असत्सङ्गप्रभावेण पापात्मा समजायत॥ ३६॥
नानाविधानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
कृतवान् पापिसङ्गेन त्रयीमार्गविनिन्दकः॥ ३७॥
स कदाचित् साधुसङ्गात्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः।
अयोध्यामागतो विप्र महापातककृद् द्विजः॥ ३८॥
पापमोचनतीर्थे तु स्नातः सत्सङ्गतो द्विजः।
पापराशिर्विनष्टोऽस्य निष्पापः समभूत्क्षणात्॥ ३९॥
दिवः पपात तन्मूर्ध्नि पुष्पवृष्टिर्मुनीश्वर।
दिव्यं विमानमारुह्य विष्णुलोके गतो द्विजः॥ ४०॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं मया च द्विजपुङ्गव।
श्रद्धया परया तत्र कृतं स्नानं विशेषतः॥ ४१॥
माघकृष्णचतुर्दश्यां तत्र स्नानं विशेषतः।
दानं च मनुजैः कार्यं सर्वपापविशुद्धये॥ ४२॥
अन्यदा तु कृते स्नाने सर्वपापक्षयो भवेत्।

पांचालदेशमें उत्पन्न एक नरहरि नामक ब्राह्मण था। दुष्टोंके संगके प्रभावसे वह पापात्मा हो गया था। वैदिक धर्मपथकी

निन्दामें निरत उस ब्राह्मणने पापियोंकी संगतिमें पड़कर नानाविध पापोंके साथ-साथ ब्रह्महत्या-जैसे महापाप भी कर डाले। एक बार वह महापापी ब्राह्मण साधु-संगतिमें पड़कर तीर्थयात्राके प्रसंगसे अयोध्यापुरीमें आ गया। हे विप्र! उस ब्राह्मणने साधुसंगसे प्रेरित हो पापमोचनतीर्थमें स्नान किया, तब उसी क्षण उसकी समस्त पापराशि भस्मीभूत हो गयी और वह निष्पाप हो गया। हे मुनीश्वर! उसके सिरपर आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई और वह ब्राह्मण दिव्य विमानपर आसीन हो श्रीविष्णुलोकको चला गया। हे द्विजपुंगव! मैंने भी इस महान् आश्चर्य-दृश्यको देखकर परमश्रद्धाके साथ वहाँ विशेष रूपसे स्नान किया। माघ कृष्ण चतुर्दशीको वहाँका स्नानपर्व है। सभी पापोंसे विशुद्धिहेतु मनुष्योंको चाहिये कि वहाँ स्नान-दानादि करें। अन्य समयमें भी स्नान करनेसे सभी पापोंका क्षय तो होता ही है॥ ३६—४२½ ॥

पापमोचनतीर्थे तु पूर्वन्तु सरयूजले॥ ४३॥
धनुः सप्तप्रमाणेन वर्तते तीर्थमुत्तमम्।
सहस्रधारासञ्ज्ञन्तु सर्वकिल्बिषनाशनम्॥ ४४॥
यस्मिन् रामाज्ञया वीरो लक्ष्मणः परवीरहा।
प्राणानुत्सृज्य योगेन ययौ शेषात्मतां पुरा॥ ४५॥
सार्द्धं हस्तत्रयेणैव प्रमाणं धनुषो विदुः।
चतुर्भिर्हस्तकैः संख्या दण्ड इत्यभिधीयते॥ ४६॥

पापमोचनतीर्थसे पूर्वकी ओर सरयूजलमें सहस्रधारा नामक उत्तम तीर्थ है, जो सात धनुषकी दूरीपर स्थित है। यह तीर्थ भी सर्वपापप्रणाशक है। प्राचीन कालमें महाराज श्रीरामकी आज्ञासे शत्रुंजय वीर श्रीलक्ष्मणने यहींपर योगके आश्रयसे प्राणोंका विसर्जनकर अपने [सहस्रफणोंवाले] शेषनागके स्वरूपको प्राप्त किया था। साढ़े तीन हाथके प्रमाणका एक धनुषप्रमाण होता है तथा चार हाथकी संख्याका एक दण्ड होता है॥ ४३—४६॥

सूत उवाच

इत्थं तदा समाकर्ण्य कुम्भयोनिमुनेस्तदा।
कृष्णद्वैपायनो व्यासः पुनः पप्रच्छ कौतुकात्॥ ४७॥

सूतजीने कहा—अगस्त्यजीसे यह सुनकर कृष्णद्वैपायन व्यासजीने कौतुकके कारण पुनः प्रश्न किया॥ ४७॥

व्यास उवाच

सहस्त्रधारामाहात्म्यं विस्तराद् वद सुव्रत।
शृण्वँस्तीर्थस्य माहात्म्यं न तृप्यति मनो मम॥ ४८॥

व्यासजीने कहा—हे सुव्रत! सहस्त्रधारातीर्थके माहात्म्यको आप विस्तारसे कहें। तीर्थमाहात्म्यको सुनते हुए मुझे आन्तरिक तृप्ति नहीं हो रही है॥ ४८॥

अगस्त्य उवाच

सावधानः शृणु मुने कथां कथयतो मम।
सहस्त्रधारातीर्थस्य समुत्पत्तिं महोदयाम्॥ ४९॥
पुरा रामो रघुपतिर्देवकार्यं विधाय वै।
कालेन सह सङ्गम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः॥ ५०॥
आवां मन्त्रयमाणौ हि यः पश्येदन्तिकागतः।
मया त्याज्यो भवेत्क्षिप्रमित्थं चक्रे च सम्विदम्॥ ५१॥

अगस्त्यजीने कहा—हे मुने! जो मैं कह रहा हूँ, उसे सावधानीसे सुनिये। सहस्त्रधाराकी समुत्पत्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है। पूर्वकालमें रघुपति महाराज श्रीराम देवकार्यको समाप्त करनेके उपरान्त कालदेवताके साथ एकान्तमें वार्ता कर रहे थे। इससे पूर्व श्रीरामचन्द्रजीने कालदेवतासे ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि मन्त्रणाके समय हम दोनोंके मध्यमें जो आ जायगा, वह मेरे द्वारा तत्काल त्याज्य होगा॥ ४९—५१॥

तस्मिन् मन्त्रयमाणे हि द्वारे तिष्ठति लक्ष्मणे।
आगतः स तपोराशिर्दुर्वासास्तेजसां निधिः॥ ५२॥

आगत्य लक्ष्मणं शीघ्रं प्रीत्योवाच क्षुधाकुलः॥ ५३॥

उस मन्त्रणाके समय लक्ष्मणजी द्वाररक्षकके रूपमें स्थित थे। उसी समय तपोराशि, तेजोनिधि दुर्वासाजी वहाँ पहुँच गये। उस समय वे बहुत ही क्षुधातुर थे, अतः तत्काल ही प्रीतिपूर्वक उन्होंने लक्ष्मणजीसे कहा— ॥ ५२-५३ ॥

दुर्वासा उवाच

सौमित्रे गच्छ शीघ्रं त्वं रामाग्रे मां निवेदय।
कार्यार्थिनमिदं वाक्यं नाऽन्यथा कर्तुमर्हसि॥ ५४॥

हे सौमित्रे! तुम शीघ्र जाओ और श्रीरामके समक्ष मेरे आनेका समाचार निवेदित करो। मेरे यहाँ आनेका विशेष प्रयोजन है, अतः इसके विपरीत तुम नहीं कर सकते॥ ५४॥

अगस्त्य उवाच

शापाद् भीतः स सौमित्रिर्द्रुतं गत्वा तयोः पुरः।
मुनिं निवेदयामास रामाग्रे दर्शनार्थिनम्।
दुर्वाससं तपोराशिमत्रिनन्दनमागतम्॥ ५५॥

अगस्त्यजीने कहा—महर्षि दुर्वासाजीके शापसे भयभीत लक्ष्मणजीने उन दोनों (राम और काल)-के समक्ष जाकर निवेदन किया कि 'अत्रिनन्दन तपोराशि दुर्वासामुनि आपके दर्शनार्थ आये हुए हैं'॥ ५५॥

रामोऽपि कालमामन्त्र्य प्रस्थाप्य च बहिर्ययौ।
दृष्ट्वा मुनिं तं प्रणतः सम्भोज्य प्रभुरादरात्॥ ५६॥
दुर्वाससं मुनिवरं प्रस्थाप्य स्वयमादरात्।

श्रीरामने भी कालसे परामर्शकर उसको विदा किया और बाहर जाकर महर्षि दुर्वासाका दर्शन-वन्दन किया। प्रभुने स्वागत-सत्कारपूर्वक उनकी क्षुधाको सन्तृप्त करके स्वयं आदरसहित उन्हें विदा किया॥ ५६ $^{1}/_{2}$ ॥

सत्यभङ्गभयाद् वीरो लक्ष्मणं त्यक्तवाँस्तदा॥ ५७॥

लक्ष्मणोऽपि तदा वीरः कुर्वन्नवितथं वचः।
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य सुमतिः सरयूतीरमाययौ॥ ५८॥

तदुपरान्त प्रतिज्ञाभंगके भयसे वीर श्रीरामने लक्ष्मणजीका उसी समय त्याग कर दिया। सुन्दर बुद्धिवाले शत्रुंजयी वीर लक्ष्मण अपने ज्येष्ठ भ्राताके वचनको (यह कि हे लक्ष्मण! आजसे मैं तुम्हारा त्याग करता हूँ) सत्य करनेहेतु सरयूजीके तटपर आ गये॥ ५७-५८॥

तत्र गत्वाऽथ च स्नात्वा ध्यानमास्थाय सत्वरम्।
चिदात्मनि मनः शान्तं सङ्गम्याऽवस्थितस्तदा॥ ५९॥
ततः प्रादुरभूत् तत्र सहस्रफणमण्डितः।
शेषश्चक्षुःश्रवःश्रेष्ठः क्षितिं भित्त्वा सहस्रधा।
सुरलोकात्सुरेन्द्रोऽपि समागादमरैः सह॥ ६०॥
ततः शेषात्मतां यातं लक्ष्मणं सत्यसङ्गरम्।
उवाच मधुरं शक्रः सुराणां तत्र पश्यताम्॥ ६१॥

तत्काल ही वे वहाँ पहुँचकर स्नान करके ध्यानयोगमें निमग्न हो गये। उन्होंने अपने मनको चिदात्मासे संयुक्त कर दिया और शान्त भावसे अवस्थित हो गये। तत्पश्चात् सहस्र फणोंसे सुशोभित नागराज शेष पृथिवीका सहस्रों विवरोंके रूपमें भेदनकर वहाँ प्रकट हो गये। उसी समय स्वर्गलोकसे देवराज इन्द्र भी समस्त देवोंके साथ वहाँ आ गये। तदनन्तर समस्त देवोंके समक्ष इन्द्रने अपने शेषस्वरूपको प्राप्त हुए सत्यनिष्ठ लक्ष्मणजीसे सुमधुर वाणीमें निवेदन किया॥ ५९—६१॥

इन्द्र उवाच

लक्ष्मणोत्तिष्ठ शीघ्रं त्वमारोह स्वपदं स्वकम्।
देवकार्यं कृतं वीर त्वया रिपुनिषूदन॥ ६२॥
वैष्णवं परमं स्थानं प्राप्नुहि त्वं सनातनम्।
भवन्मूर्तिः समायातः शेषोऽपि विलसत्फणः॥ ६३॥

सहस्रधा क्षितिं भित्त्वा सहस्रफणमण्डलैः।
क्षितेः सहस्रच्छिद्रेषु यस्माद् भित्त्वा समुद्गताः॥ ६४॥
फणासहस्रमणिभिर्दग्धाः शेषस्य सुव्रत।
तस्मादेतन्महातीर्थं सरयूतीरगं शुभम्।
ख्यातं सहस्रधारेति भविष्यति न संशयः॥ ६५॥
एतत्क्षेत्रप्रमाणं तु धनुषां पंचविंशतिः।
अत्र स्नानेन दानेन श्राद्धेन श्रद्धयान्वितः।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥ ६६॥

इन्द्रने कहा—हे लक्ष्मण! अब उठो और शीघ्र ही अपने परम पदमें आरोहण करो। हे शत्रुनिहन्ता वीर! आपने देवकार्यको परिपूर्ण किया है। अब आप सनातन परम पदरूप वैष्णव धामको प्राप्त कीजिये। सहस्र फणोंसे विलसित आपकी मूर्ति श्रीशेषजी भी यहाँ पधार चुके हैं। वे सहस्रफणमण्डलद्वारा पृथ्वीका भेदनकर यहाँ आये हैं। उनके फणोंकी मणियोंसे यह सहस्र छिद्रोंवाला भूतल दग्ध हो गया है, इसलिये हे सुव्रत! आजसे सरयूतटस्थ यह शोभन महातीर्थ **सहस्रधारा** इस नामसे प्रसिद्ध होगा, इसमें संशय नहीं है। इस क्षेत्रका प्रमाण पच्चीस धनुषका है। यहाँ श्रद्धायुक्त होकर स्नान-दान तथा श्राद्धसे मनुष्य सर्वपापविशुद्धात्मा होकर श्रीविष्णुलोकको प्राप्त करेगा॥ ६२—६६॥

अत्र स्नातो नरो धीमाञ्छेषं सम्पूज्य चाऽव्ययम्।
तीर्थं सम्पूज्य विधिवद् विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ ६७॥
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं विधिपुरःसरम्।
शेषरूपाहिवद् ध्येयाः पूज्या विप्रा विशेषतः॥ ६८॥
स्वर्णं चान्नं च वासांसि देयानि श्रद्धयान्वितैः।
स्नानं दानं हरेः पूजा सर्वमक्षयतां व्रजेत्॥ ६९॥

तस्मादेतन्महातीर्थं सर्वकामफलप्रदम्।
क्षितौ भविष्यति सदा नात्र कार्या विचारणा॥ ७०॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य सहस्रधारामें स्नानकर सनातन शेषजीका तथा इस तीर्थका विधिवत् पूजन करता है, वह विष्णुलोककी प्राप्ति करता है। अतएव यहाँ विधि-विधानसे स्नानादि पुण्यकृत्य करना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वह शेषनागके स्वरूपकी भावनाकर यहाँ ब्राह्मणोंका विशेषतः पूजन करे। श्रद्धालुजनोंको यहाँपर सुवर्ण, अन्न तथा वस्त्रादिका दान करना चाहिये। यहाँ स्नान-दान और श्रीहरिका पूजन—ये सभी अक्षयरूपताको प्राप्त होते हैं, इसलिये यह तीर्थ पृथ्वीपर सदा सभी कामनाओंको सफल करनेवाला होगा, इसमें संशय नहीं है॥ ६७—७०॥

श्रावणे शुक्लपक्षस्य या तिथिः पञ्चमी भवेत्।
तस्यामत्र प्रकर्तव्यो नागानुद्दिश्य यत्नतः॥ ७१॥
उत्सवो विपुलः सद्भिः शेषपूजापुरःसरम्।
उत्सवे तु कृते तत्र तीर्थे महति मानवैः॥ ७२॥
सन्तोष्य च द्विजान् भक्त्या नागपूजापुरस्सरम्।
सन्तुष्टाः फणिनः सर्वे पीडयन्ति न मानुषान्॥ ७३॥

श्रावणमासके शुक्ल पक्षकी जो पंचमी तिथि है, उसके आनेपर इस तीर्थमें सत्पुरुषोंको शेषनागकी पूजाके साथ नागोंके निमित्त प्रयत्नपूर्वक महान् उत्सव करना चाहिये। इसके साथ ही नागोंकी पूजा करके [अन्न-वस्त्रादिसे] ब्राह्मणोंको भी सन्तुष्ट करना चाहिये। मनुष्योंके द्वारा इस महातीर्थमें इस प्रकारसे उत्सव किये जानेपर सभी नाग सन्तुष्ट हो जाते हैं और तब वे मनुष्योंको पीड़ा नहीं देते॥ ७१—७३॥

वैशाखमासे ये स्नानं कुर्वन्त्यत्र समाहिताः।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ ७४॥

तस्मादत्र प्रकर्तव्यं माधवे यत्नतो नरैः।
स्नानं दानं हरिः पूज्यो ब्राह्मणाश्च विशेषतः।
तीर्थे कृतेऽत्र मनुजैः सर्वकामफलप्रदः॥ ७५॥

सम्पूर्ण वैशाखमासमें निष्ठापूर्वक जो मनुष्य यहाँ स्नान करते हैं, सैकड़ों कोटि कल्पोंतक उनकी [संसारमें] पुनरावृत्ति नहीं होती। इसलिये मनुष्योंको चाहिये कि वे प्रयत्नपूर्वक वैशाख-मासमें इस तीर्थमें स्नान, दान, हरिपूजा तथा विशेषतः ब्राह्मणपूजा करें। इस अनुष्ठानसे मनुष्योंकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी॥ ७४-७५॥

विष्णुमुद्दिश्य यो दद्यात् सालङ्कारां पयस्विनीम्।
सवत्सामत्र सत्तीर्थे सत्पात्राय द्विजन्मने॥ ७६॥
तस्य वासो भवेन्नित्यं विष्णुलोके सनातने।
अक्षयं स्वर्गमाप्नोति तीर्थस्नानेन मानवः॥ ७७॥

जो मानव श्रीविष्णुको उद्देश्यकर इस अत्युत्तम तीर्थमें सुपात्र ब्राह्मणको सवत्सा, सालंकारा पयस्विनी गौ का दान करेगा, उसका सदा निवास सनातन विष्णुलोकमें ही होगा। इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको अक्षय स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है॥ ७६-७७॥

अत्र पूज्यौ विशेषेण नरैः श्रद्धासमन्वितैः।
वैशाखे मास्यलङ्कारैर्वस्त्रैश्च द्विजदम्पती॥ ७८॥
लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै लक्ष्मीप्राप्त्यै विशेषतः।
वैशाखे मासि तीर्थानि पृथिवीसंस्थितानि वै॥ ७९॥
सर्वाण्यपि च सङ्गत्य स्थास्यन्त्यत्र न संशयः।
तस्मादत्र विशेषेण वैशाखे स्नानतो नृणाम्।
सर्वतीर्थावगाहस्य भविष्यति फलं महत्॥ ८०॥

श्रद्धालु मनुष्योंको चाहिये कि वे विशेष रूपसे लक्ष्मी-नारायणकी कृपा और धन-समृद्धिकी प्राप्तिके लिये वैशाखमासमें द्विजदम्पतीकी यहाँ वस्त्रालंकारोंसे पूजा करें। भूतलपर स्थित

जितने भी तीर्थ हैं, वे वैशाख मासमें यहाँ सहस्रधारातीर्थमें आ जाते हैं। यहीं वे मासभर निवास करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। इसीलिये यहाँ विशेषकर वैशाखमासमें स्नानसे मनुष्योंको सभी तीर्थोंमें स्नानका महान् फल प्राप्त हो जाता है॥ ७८—८०॥

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा मुनिराजेन्द्र लक्ष्मणं सुरसङ्गतम्।
शेषं संस्थाप्य तत्तीर्थे भूभारहरणक्षमम्॥ ८१॥
लक्ष्मणं यानमारोप्य प्रतस्थे दिवमादरात्।
तदाप्रभृति तत्तीर्थं विख्यातिं परमां ययौ॥ ८२॥
वैशाखे मासि तीर्थस्य माहात्म्यं परमं स्मृतम्।
पंचम्यामपि शुक्लायां श्रावणस्य विशेषतः॥ ८३॥
अन्यदा पर्वणि श्रेष्ठं विशेषं स्नानमाचरेत्॥
सहस्रधारातीर्थे च नरः स्वर्गमवाप्नुयात्॥ ८४॥

अगस्त्यजीने कहा—हे मुनिराजेन्द्र! इस प्रकार इन्द्रने देवरूपताको प्राप्त हुए लक्ष्मणजीसे यह कहकर भू-भारहरणमें सक्षम शेषको इस तीर्थमें स्थापित किया और लक्ष्मणजीको विमानमें बैठाकर सादर देवलोकको चले गये। तबसे यह स्थान परम प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ। वैशाखमासमें इस तीर्थका माहात्म्य सर्वाधिक होता है और वैसे ही श्रावण शुक्ल पंचमी तिथिको भी इस तीर्थका विशेष महत्त्व है। यद्यपि अन्य समयमें भी यह तीर्थ सेव्य है, पर्वोंपर सहस्रधारातीर्थमें स्नान विशेषरूपसे करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य स्वर्गलोककी प्राप्ति करता है॥ ८१—८४॥

विधिवदिह हि धीमान् स्नानदानानि तीर्थे
नरवर इह शक्त्या यः करोत्यादरेण।
स इह विपुलभोगान् निर्मलात्मा च भक्त्या
भजति भुजगशायिश्रीपतेरात्मनैक्यम्॥ ८५॥

जो बुद्धिमान् नरश्रेष्ठ यहाँ यथाशक्ति सादर स्नान-दान सम्पन्न

करता है, वह पवित्रात्मा इस लोकमें अनेक सुखोपभोगोंकी प्राप्ति करके और भक्तिभावसे जीवनयापन करता हुआ अन्तमें शेषशायी श्रीपतिके साथ सायुज्यमुक्तिका लाभ प्राप्त करता है॥ ८५॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये ब्रह्मकुण्ड-सहस्त्रधारातीर्थ-माहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डके अन्तर्गत अयोध्या-माहात्म्यका 'ब्रह्मकुण्ड-सहस्त्रधारातीर्थमाहात्म्यवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

स्वर्गद्वार तथा चन्द्रहरितीर्थका इतिहास और माहात्म्य एवं 'चन्द्रसहस्त्र' नामक व्रतके उद्यापनका विधान

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचो धीमानादरात् कुम्भजन्मनः।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं कृष्णद्वैपायनो मुनिः॥ १॥

सूतजीने कहा—अगस्त्यजीका यह वचन सुनकर बुद्धिमान् कृष्णद्वैपायन मुनिने मधुर वाक्योंसे कुम्भजन्मा अगस्त्यजीसे आदरपूर्वक [पुनः] प्रश्न किया॥ १॥

व्यास उवाच

भगवन्नद्भुतमिदं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्।
श्रुत्वा त्वत्तो मम मनः परमानन्दमाययौ॥ २॥
अन्यत्तीर्थवरं ब्रूहि तत्त्वेन मम शृण्वतः।
न तृप्तिरस्ति मनसः शृण्वतो मम सुव्रत॥ ३॥

हे भगवन्! इस सहस्त्रधारातीर्थका अद्भुत और उत्तम माहात्म्य है। आपसे इसे सुनकर मेरे मनको परमानन्दकी प्राप्ति हुई। हे

सुव्रत! तीर्थमाहात्म्यको सुनते हुए मेरा मन तृप्त नहीं हो पा रहा है। अतः अब मुझ श्रोताको भलीभाँति अन्य उत्तम तीर्थका माहात्म्य सुनाइये॥ २-३ ॥

अगस्त्य उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदनुत्तमम्।
स्वर्गद्वारमिति ख्यातं सर्वपापहरं सदा॥ ४॥
स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं विस्तराद् वक्तुमीश्वरः।
नहि कश्चिदतो वत्स सङ्क्षेपाच्छृणु सुव्रत॥ ५॥

अगस्त्यजीने कहा—हे विप्र! सुनो, अब मैं दूसरे अत्युत्तम तीर्थका वर्णन करूँगा। सदा सर्वपापहारी वह तीर्थ स्वर्गद्वारके नामसे प्रसिद्ध है। हे वत्स! हे सुव्रत! स्वर्गद्वारकी महिमाका विस्तृत वर्णन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है, अतः संक्षेपमें सुनो॥ ४-५ ॥

सहस्रधारामारभ्य पूर्वतः सरयूजले।
षट्त्रिंशदधिका प्रोक्ता धनुषां षट्शती मितिः॥ ६ ॥
स्वर्गद्वारस्य विस्तारः पुराणज्ञैर्विशारदैः।
स्वर्गद्वारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥ ७ ॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं नासत्यं मम भाषितम्।
स्वर्गद्वारसमं तीर्थं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके॥ ८ ॥
हित्वा दिव्यानि भौमानि तीर्थानि सकलान्यपि।
प्रातरागत्य तिष्ठन्ति तत्र संश्रित्य सुव्रत॥ ९ ॥
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं प्रातः स्नानं विशेषतः।
सर्वतीर्थावगाहस्य फलमात्मन ईप्सता॥ १०॥

सहस्रधारासे लेकर पूर्वकी ओर छः सौ छत्तीस धनुषकी दूरीतक सरयूजलमें यह तीर्थ विद्यमान है—ऐसा पुराणज्ञ विद्वानोंने निश्चित किया है। स्वर्गद्वारके समान तीर्थ न हुआ है और न होगा। यह सत्य है, बारम्बार सत्य है, मेरा कथन असत्य नहीं

है। इस स्वर्गद्वारके समान तीर्थ तो ब्रह्माण्डमण्डलमें नहीं है। पृथिवीलोक तथा स्वर्गादिक लोकोंके तीर्थ-समूह [अन्य सभी तीर्थोंको] त्यागकर यहाँ प्रातःकाल आ जाते हैं, अतः स्वर्गद्वार तीर्थमें प्रातःकाल स्नान अवश्य करना चाहिये। जो लोग सभी तीर्थोंमें अवगाहनके फलकी इच्छा रखते हों, वे स्वर्गद्वारतीर्थमें स्नान करें॥ ६—१०॥

त्यजन्ति प्राणिनः प्राणान् स्वर्गद्वारान्तरे द्विज।
प्रयान्ति परमं स्थानं विष्णोस्ते नाऽत्र संशयः॥ ११॥
मुक्तिद्वारमिदं पश्य स्वर्गप्राप्तिकरं नृणाम्।
स्वर्गद्वारमिति ख्यातं तस्मात्तीर्थमनुत्तमम्॥ १२॥
स्वर्गद्वारं सुदुष्प्राप्यं देवैरपि न संशयः।
यद्यत्कामयते तत्र तत्तदाप्नोति मानवः॥ १३॥
स्वर्गद्वारे परा सिद्धिः स्वर्गद्वारे परा गतिः।
जप्तं दत्तं हुतं दृष्टं तपस्तप्तं कृतञ्च यत्।
ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाऽक्षयम्॥ १४॥

हे द्विज! जो प्राणी स्वर्गद्वारमें प्राण त्याग करते हैं, वे परमश्रेष्ठ विष्णुलोककी प्राप्ति करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। [हे व्यासजी!] मनुष्योंको स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले तथा मोक्षके साक्षात् द्वाररूप इस तीर्थका दर्शन कीजिये। यह 'स्वर्गद्वार' इस नामसे विख्यात है। [यह तीर्थ स्वर्गादि पुण्यलोकों तथा मोक्षको प्रदान करनेमें समर्थ है,] इसलिये स्वर्गद्वारतीर्थ सर्वश्रेष्ठ है। स्वर्गद्वारतीर्थ तो देवोंको भी अतिशय दुष्प्राप्य है, इसमें संशय नहीं है। यहाँ निवास करता हुआ मनुष्य जो-जो कामना करता है, वह उसे प्राप्त कर लेता है। स्वर्गद्वारमें ही परमसिद्धि है, स्वर्गद्वारमें ही परमगति है। यहाँपर जप-हवन-दान-दर्शन, तपश्चर्या, ध्यान तथा अध्ययन आदि जो कुछ भी

सत्कृत्य किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है॥ ११—१४॥

जन्मान्तरसहस्त्रेण यत्पापं पूर्वसंचितम्।
स्वर्गद्वारप्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्॥ १५॥

सहस्त्रों जन्मोंके जो पूर्वसंचित पाप हैं, व्यक्तिके स्वर्गद्वारमें प्रवेश करते ही वे सभी (संचित पापसमूह) विनष्ट हो जाते हैं॥ १५॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसङ्कराः।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चाऽन्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः॥ १६॥
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः।
कालेन निधनं प्राप्ताः स्वर्गद्वारे शृणु द्विज॥ १७॥
कौमोदकीकराः सर्वे चक्रिणो गरुडध्वजाः।
शुभे विष्णुपुरे विष्णुर्जायन्ते तत्र मानवाः॥ १८॥
अकामो वा सकामो वा अपि तीर्थगतोऽपि वा।
स्वर्गद्वारे त्यजन् प्राणान् विष्णुलोके महीयते॥ १९॥

हे द्विज! सुनो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, कीड़े-मकोड़े, म्लेच्छ अथवा अन्य संकीर्ण पापयोनिवाले प्राणी और कीट, चींटी-चींटे या अन्य पशु-पक्षीगण—ये सभी स्वर्गद्वारमें यथाकाल प्राण त्यागकर सुदर्शन चक्र एवं कौमोदकी गदाको धारण करके और गरुड़पर आसीन होकर निश्चित ही विष्णुरूपसे मंगलमय विष्णुलोकको पधारते हैं। तीर्थमें उपस्थित हुआ सकाम हो या निष्काम हो—कोई भी प्राणी स्वर्गद्वारमें प्राण त्यागकर विष्णुलोकमें पूजित होता है॥ १६—१९॥

मुनयो देवताः सिद्धाः साध्या यक्षा मरुद्गणाः।
यज्ञोपवीतमात्रेण विभागं चक्रिरे तु ये॥ २०॥
मध्याह्नेऽत्र प्रकुर्वन्ति सान्निध्यं देवतागणाः।
तस्मात्तत्र प्रकुर्वन्ति मध्याह्ने स्नानमादरात्॥ २१॥

कुर्वन्त्यनशनं ये तु स्वर्गद्वारे जितेन्द्रियाः।
प्रयान्ति परमं स्थानं ये च मासोपवासिनः॥ २२॥
अन्नदानरता ये च रत्नदा भूमिदा नराः।
गोवस्त्रदाश्च विप्रेभ्यो यान्ति ते भवनं हरेः॥ २३॥

मुनिजन, देवगण, सिद्ध-साध्य-यक्ष और मरुद्गण—इन सभीने [स्वर्गद्वारमें रहनेकी कामनासे अपने-अपने निवासहेतु] 'यज्ञोपवीत' परिमाणसे [वहाँके भूभागका] बँटवारा किया था। मध्याह्नके समय यहाँपर देवगण विराजते हैं, इसलिये यहाँ लोग मध्याह्नकालमें सादर स्नान करते हैं। जो जितेन्द्रिय व्यक्ति स्वर्गद्वारमें अनशन व्रत करते हैं और जो मासभरके उपवासका व्रत धारण कर लेते हैं, वे सभी परम पदको प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य यहाँपर ब्राह्मणोंके निमित्त अन्न, रत्न, भूमि, गौ, वस्त्रादिके दानमें निरत रहते हैं, वे श्रीहरिके धामको प्राप्त करते हैं॥ २०—२३॥

यतः सिद्धा महात्मानो मुनयः पितरस्तथा।
स्वर्गं प्रयान्ति ते सर्वे स्वर्गद्वारं ततः स्मृतम्॥ २४॥
चतुर्धा च तनुं कृत्वा देवदेवो हरिः स्वयम्।
अत्र वै रमते नित्यं भ्रातृभिः सह राघवः॥ २५॥
ब्रह्मलोकं परित्यज्य चतुर्वक्त्रः सनातनः।
अत्रैव रमते नित्यं देवैः सह पितामहः॥ २६॥
कैलासनिलयावासी शिवस्तत्रैव संस्थितः॥ २७॥

इस तीर्थको स्वर्गद्वार इसलिये कहा गया है कि यहाँसे ही सिद्ध-महात्मा, मुनिजन और पितृगण स्वर्गको जाते हैं। स्वयं देवाधिदेव श्रीहरि अपनेको चार (श्रीराम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न) रूपोंमें व्यक्त करके रघुवंशशिरोमणि श्रीराम होकर अपने भाइयोंके साथ यहाँ नित्य विहार करते हैं। ब्रह्मलोकका

परित्यागकर चतुर्मुख सनातन लोकपितामह ब्रह्माजी देवोंके साथ यहींपर नित्य रमण करते हैं। कैलासलोकवासी श्रीशिवजी भी सदैव यहींपर विराजते हैं॥ २४—२७॥

मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः।
स्वर्गद्वारं समासाद्य स सर्वो व्रजति क्षयम्॥ २८॥
या गतिर्ज्ञानतपसां या गतिर्यज्ञयाजिनाम्।
स्वर्गद्वारे मृतानां तु सा गतिर्विहिता शुभा॥ २९॥
ऋषिदेवासुरगणैर्जपहोमपरायणैः।
यतिभिर्मोक्षकामैश्च स्वर्गद्वारो निषेव्यते॥ ३०॥

सुमेरु तथा मन्दराचलके समान विशाल पापोंकी राशि भी स्वर्गद्वारमें आकर सम्पूर्णतः क्षयको प्राप्त हो जाती है। जो गति ज्ञानियों, तपस्वियों तथा यज्ञ करनेवालोंको प्राप्त होती है, वही शुभावहा गति स्वर्गद्वारमें प्राण त्यागनेवालोंको मिलती है। जप-होम-परायण, ऋषिगण, देवगण और असुरगण तथा मोक्षकामी यतिगण—ये सभी स्वर्गद्वारकी परिचर्या करते हैं॥ २८—३०॥

षष्टिवर्षसहस्राणि काशीवासेषु यत्फलम्।
तत्फलं निमिषार्द्धेन कलौ दाशरथीं पुरीम्॥ ३१॥
या गतिर्योगयुक्तानां वाराणस्यां तनुत्यजाम्।
सा गतिः स्नानमात्रेण सरय्वां हरिवासरे॥ ३२॥

साठ हजार वर्षोंतक काशीवासका जो फल है, वही फल कलियुगमें दाशरथीपुरी अयोध्यामें अर्धनिमेष वाससे ही प्राप्त होता है। वाराणसीमें देहका त्याग करनेवाले योगपरायण साधकोंको जो गति मिलती है, वही गति एकादशी तिथिको सरयूजीमें स्नानमात्रसे प्राप्त हो जाती है॥ ३१-३२॥

स्वर्गद्वारे मृतः कश्चिन्नरकं नैव पश्यति।
केशवानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम्॥ ३३॥

स्वर्गद्वारमें आकर मृत्युको प्राप्त कोई भी प्राणी नरकको नहीं जाता। भगवान् केशवके अनुग्रहसे अनुगृहीत वे सभी प्राणी निश्चित ही परमगतिको प्राप्त होते हैं॥ ३३॥

भूलोके चाऽन्तरिक्षे च दिवि तीर्थानि यानि वै।
अतीत्य वर्तते तानि तीर्थान्येतद् द्विजोत्तम॥ ३४॥

हे द्विजोत्तम! भूलोक-अन्तरिक्षलोक और स्वर्गलोकमें जितने भी तीर्थ हैं, उन सभीका अतिक्रमणकर यह तीर्थ (स्वर्गद्वार) स्थित है॥ ३४॥

विष्णुभक्तिं समासाद्य रमन्ते तु सुनिश्चिताः।
संहृत्य शक्तितः कामं विषयेषु हि संस्थितम्॥ ३५॥
शक्तितः सर्वतो युक्त्वा शक्तिस्तपसि संस्थिता।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ ३६॥

जो लोग भलीभाँति विश्वास करके एवं वैष्णव भक्तियोगका आश्रय लेकर वहाँ सानन्द स्थित रहते हैं। जो विषयभोगोंमें प्रसक्त कामनाओंको तपःसामर्थ्यके द्वारा निवृत्त कर लेते हैं। तपस्यामें विद्यमान जो आत्मशक्ति है, उस शक्तिसे अपनेको सब प्रकारसे संयुक्त करके जो मनुष्य उस स्वर्गद्वारका सेवन करते हैं, उनकी कोटिशतकल्पके अनन्तर भी [भगवद्धामसे] पुनरावृत्ति नहीं होती॥ ३५-३६॥

हन्यमानोऽपि यो विद्वान् वसेच्छस्त्रशतैरपि।
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥ ३७॥
स्वर्गद्वारे वियुज्येत स याति परमां गतिम्।
उत्तरं दक्षिणं वापि अयनं न विकल्पयेत्॥ ३८॥
सर्वस्तेषां शुभः कालः स्वर्गद्वारं श्रयन्ति ये।

जो सैकड़ों शस्त्रोंसे मारा जानेपर भी इस स्वर्गद्वारतीर्थका त्याग नहीं करता, यहीं निवास करता है, वह विद्वान् उस परम

पदको प्राप्त करता है, जिसे पा लेनेके उपरान्त शोक नहीं रहता। जो मनुष्य स्वर्गद्वारमें प्राणत्याग करता है, वह [निश्चय ही] परमगतिको प्राप्त करता है। इस स्थलपर [मृत्यु आदिके सम्बन्धमें] उत्तरायण, दक्षिणायन आदिका विचार नहीं करना चाहिये; क्योंकि जिन लोगोंने स्वर्गद्वारका आश्रय ले रखा है, उनके लिये प्रत्येक काल मंगलमय है॥ ३७—३८$^{1}/_{2}$ ॥

स्नानमात्रेण पापानि विलयं यान्ति देहिनाम्॥ ३९॥
यावत्पापानि देहेन ये कुर्वन्ति जनाः क्षितौ।
अयोध्या परमं स्थानं तेषामीरितमादरात्॥ ४०॥

यहाँपर स्नानमात्रसे ही प्राणियोंके सभी पापसमूह विलीन हो जाते हैं। पृथ्वीपर रहकर मनुष्योंने कितने ही पापकर्म क्यों न किये हों, यहाँ स्नानमात्रसे ही सभी असत्कर्मोंका विनाश हो जाता है। शास्त्रोंका भी तो यही समादरपूर्ण कथन है कि अयोध्या परम स्थान है अर्थात् वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठतम है॥ ३९-४०॥

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पंचदश्यां विशेषतः।
तस्य साम्वत्सरी यात्रा देवैश्चन्द्रहरेः स्मृता॥ ४१॥
तस्मिन्नुद्यापनं चन्द्रसहस्त्रं व्रतयोगिभिः।
कार्यं प्रयत्नतो विप्र सर्वयज्ञफलाधिकम्॥ ४२॥
तस्मिन् कृते महापापक्षयात् स्वर्गो भवेन्नृणाम्॥ ४३॥

[अयोध्यापुरीमें चन्द्रहरि नामक एक परम श्रेष्ठ तीर्थ है, जहाँ भगवान् श्रीहरि चन्द्रहरि नामसे विराजमान हैं।] चन्द्रहरिदेवकी यात्रा विशेषतः ज्येष्ठी पूर्णिमाको होती है। इस तिथिमें यहाँकी साम्वत्सरी यात्राको देवोंने निर्धारित किया है। हे विप्र! इसी तिथिमें व्रती जनोंको चन्द्रसहस्त्रव्रत और उसका उद्यापन भी करना चाहिये। इस व्रतको यत्नपूर्वक सम्पन्न करनेसे सभी यज्ञोंसे

अधिक फल प्राप्त होता है। ऐसा करनेसे सभी पापोंका क्षय हो जाता है और मनुष्योंको स्वर्गकी प्राप्ति होती है॥ ४१—४३॥

व्यास उवाच

भगवन् ब्रूहि तत्त्वेन तस्य चन्द्रहरेः शुभाम्।
उत्पत्तिं च तथा चन्द्रव्रतस्योद्यापने विधिम्॥ ४४॥

व्यासजीने कहा—हे भगवन्! इन चन्द्रहरिकी शुभ उत्पत्ति तथा चन्द्रव्रतकी उद्यापनविधिको आप तत्त्वपूर्वक कहें॥ ४४॥

अगस्त्य उवाच

अयोध्यानिलयं विष्णुं नत्वा शीतांशुरुत्सुकः।
आगच्छत्तीर्थमाहात्म्यं साक्षात्कर्त्तुं सुधानिधिः।
अत्राऽगत्य च चन्द्रोऽथ तीर्थयात्रां चकार सः॥ ४५॥
क्रमेण विधिपूर्वं च नानाश्चर्यसमन्वितः।
समाराध्य ततो विष्णुं तपसा दुश्चरेण वै॥ ४६॥
तत्प्रसादं समासाद्य स्वाभिधानपुरस्सरम्।
हरिं संस्थापयामास तेन चन्द्रहरिः स्मृतः॥ ४७॥

अगस्त्यजीने कहा—एक बार शीतल किरणोंवाले सुधानिधि चन्द्रदेव उत्सुकतावश अयोध्याके माहात्म्यका साक्षात्कार करनेहेतु यहाँ आये और अयोध्यानाथ श्रीविष्णुको उन्होंने प्रणाम किया, तदनन्तर तीर्थयात्रा की। विधिपूर्वक क्रमशः अयोध्यातीर्थकी यात्रा करते हुए वे [यहाँकी विलक्षणताको देखकर] आश्चर्यचकित हो गये। यहाँ उन्होंने दुश्चर तपश्चर्यासे श्रीविष्णुकी समाराधना की और विष्णुकी कृपाको प्राप्तकर श्रीहरिकी अपने नामसे संयुक्त नामवाली मूर्तिकी स्थापना की, इसलिये इस विष्णुविग्रहकी प्रसिद्धि चन्द्रहरिके नामसे हुई॥ ४५—४७॥

वासुदेवप्रसादेन तत् स्थानं जातमद्भुतम्।
तद्धि गुह्यतमं स्थानं वासुदेवस्य सुव्रत॥ ४८॥

सर्वेषामेव भूतानां भर्तुर्मोक्षस्य सर्वदा।
अस्मिन् सिद्धाः सदा विप्र गोविन्दव्रतमास्थिताः॥ ४९॥
नानालिङ्गधरा नित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः।
अभ्यस्यन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः॥ ५०॥

भगवान् वासुदेवकी कृपासे यह अद्भुत स्थान हुआ। हे सुव्रत! निश्चय ही सभी प्राणियोंके पालनकर्ता तथा [परम पुरुषार्थ] मोक्षके अधिपति भगवान् वासुदेवका यह अत्यन्त गोपनीय स्थान है। हे विप्र! यहाँपर भगवत्साक्षात्कारका व्रत लेकर नानाविध स्वरूपोंवाले जितेन्द्रिय तथा मुक्तात्मा सिद्धजन विष्णुलोककी प्राप्तिकी कामनासे सर्वदा परमयोगका अभ्यास करते रहते हैं॥ ४८—५०॥

यथा धर्ममवाप्नोति अन्यत्र न तथा क्वचित्।
दानं व्रतं तथा होमः सर्वमक्षयतां व्रजेत्॥ ५१॥
सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते प्राणिनां सदा।
तस्मादत्र विधातव्यं प्राणिभिर्यत्नतः क्रमात्।
दानादिकं विप्रपूजा दम्पत्योश्च विशेषतः॥ ५२॥
सर्वयज्ञाधिकफलं सर्वतीर्थावगाहनम्।
सर्वदेवावलोकस्य यत्पुण्यं जायते नृणाम्॥ ५३॥
तत्सर्वं जायते पुण्यं प्राणिनामस्य दर्शनात्।
तस्मादेतन्महाक्षेत्रं पुराणादिषु गीयते॥ ५४॥
उद्यापनविधिश्चात्र नृभिर्द्विजपुरस्सरम्।
अग्रे चन्द्रहरेश्चन्द्रसहस्रव्रतसञ्ज्ञकः॥ ५५॥

जिस प्रकार यहाँपर धर्मकी प्राप्ति होती है, वैसी अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है। यहाँपर सम्पादित हुए सभी प्रकारके दान-व्रत तथा होम अक्षयरूपताको प्राप्त होते हैं। यहाँ सदा सभी प्राणियोंको सम्पूर्ण ईप्सित काम्यफलोंकी प्राप्ति हो जाती है, इसलिये यहाँपर यत्नपूर्वक क्रमानुरूप अर्थात् शास्त्रीय विधिके अनुसार दान आदि

सत्कर्म तथा ब्राह्मणपूजन करना चाहिये। विशेषतः द्विजदम्पतीकी पूजा यहाँ करनी चाहिये। सभी यज्ञोंका पूर्ण पुण्यफल, सभी तीर्थोंमें स्नान तथा सभी देवताओंके दर्शनका जो पुण्यफल मनुष्योंको मिलता है, वह सब पुण्य मनुष्योंको इन चन्द्रहरिदेवके तीर्थके दर्शनसे प्राप्त हो जाता है। इसलिये समस्त पुराणोंमें इस महाक्षेत्रकी महिमाका गान हुआ है। यहाँ चन्द्रहरिके समक्ष चन्द्रसहस्रसंज्ञक व्रतका अनुपालन करनेके बाद ब्राह्मणको आगेकर उसकी उद्यापनविधि सम्पन्न करनी चाहिये॥ ५१—५५॥

गते वर्षद्वये सार्द्धे पञ्चपक्षे दिनद्वये।
दिवसस्याऽष्टमे भागे पतत्येकोऽधिमासकः॥ ५६॥
त्र्यधिके वै अशीत्यब्दे चतुर्मासयुते ततः।
भवेच्चन्द्रसहस्रं तु तावज्जीवति यो नरः।
उद्यापनं प्रकर्तव्यं तेन यात्रा प्रयत्नतः॥ ५७॥
यत्पुण्यं परमं प्रोक्तं सततं यज्ञयाजिनाम्।
सत्यवादिषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं हेमदायिनि।
तत्पुण्यं लभते विप्र सहस्राब्दस्य जीविभिः॥ ५८॥
सर्वसौख्यप्रदं तादृक् पुण्यव्रतमिहोच्यते॥ ५९॥

चान्द्रमासकी गणितके अनुसार ढाई वर्ष दो मास सत्रह दिन (दो वर्ष आठ मास) और उस दिनका अष्टम-भाग—इतने कालके बाद एक अधिमास (पुरुषोत्तममास) आता है। [सौर गणनाके अनुसार] तिरासी वर्ष और चार मासकी आयुवाला व्यक्ति एक हजार पूर्णचन्द्रोंका दर्शन प्राप्त कर चुका होता है। उस आयुके व्यक्तिको चन्द्रहरितीर्थकी यात्रा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिये तथा उक्त व्रतका उद्यापन करना चाहिये। हे विप्र! जो परम पुण्यफल याज्ञिकों, सत्यवादियों और सुवर्णदाताओंको होता है, वही पुण्यफल सहस्र चन्द्रोंकी अवधितक जीनेवालोंको [यह व्रत करनेसे] मिल जाता है।

वैसा अर्थात् यज्ञ-यागादिके समान पुण्यमय यह सर्वसौख्यप्रदायक व्रत यहाँ बतलाया जाता है॥ ५६—५९॥

चतुर्दश्यां शुचिः स्नात्वा दन्तधावनपूर्वकम्।
चरितब्रह्मचर्यश्च जितवाक्कायमानसः।
पौर्णमास्यां तथा कृत्वा चन्द्रपूजां च कारयेत्॥ ६०॥
पूर्वं च मातरः पूज्या गौर्यादिकक्रमेण च।
ऋत्विजः पूजयेद् भक्त्या वृद्धिश्राद्धपुरस्सरम्॥ ६१॥
प्रयतैः प्रतिमा कार्या चन्द्रमण्डलसन्निभा।
सहस्रसङ्ख्या ह्यथवा तदर्धं वा तदर्धकम्।
निजवित्तानुमानेन तदर्धेन तदर्धकम्॥ ६२॥
ततः श्रद्धानुमानाद् वा कार्या वित्तानुमानतः।
अथवा षोडश शुभा विधातव्याः प्रयत्नतः॥ ६३॥
चन्द्रपूजां ततः कुर्यादागमोक्तविधानतः।
माषैः षोडशभिः कार्या प्रत्येकं प्रतिमाः शुभाः॥ ६४॥

ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशीको [प्रातःकाल उठकर] दन्तधावन आदि कर्म सम्पन्न करनेके अनन्तर [इस तीर्थमें] स्नान करे। उस दिन [पूर्णरूपसे] पवित्रतापूर्वक रहे, ब्रह्मचर्यका [दृढतापूर्वक] पालन करे तथा मन, वाणी और शरीरको संयमित रखे। [ऐसे ही पूरा दिन और रात बिताकर] पूर्णिमाके दिन भी वैसा ही नियम धारण करके चन्द्रदेवकी पूजा करे। [चन्द्रपूजासे] पहले गौरी आदि मातृकाओंका क्रमानुरूप पूजन करे। तदुपरान्त आभ्युदयिक श्राद्ध सम्पन्न करे और भक्तिपूर्वक ऋत्विजोंका [वरण एवं] पूजन करे। व्रतका नियम पालन करनेवालोंको चाहिये कि वे चन्द्रमण्डलकी-सी आकृतिवाली चन्द्रप्रतिमाका निर्माण करायें। अपनी आर्थिक सामर्थ्यके अनुसार उन्हें हजार, पाँच सौ, ढाई सौ, एक सौ पचीस अथवा उसकी आधी प्रतिमाएँ

श्रद्धापूर्वक बनवानी चाहिये। यदि यह भी सम्भव न हो तो सुन्दर सोलह प्रतिमाएँ ही यत्नपूर्वक बनवाये। प्रत्येक प्रतिमा शोभामयी एवं सोलह माशा (लगभग सवा तोला)-के तौलवाली बनवानी चाहिये। तदुपरान्त आगमोक्त विधिसे चन्द्रदेवका पूजन करे॥ ६०—६४॥

सोममन्त्रेण होमस्तु कार्यो वित्तानुमानतः।
प्रतिमास्थापनं कुर्यात् सोममन्त्रमुदीरयेत्॥ ६५॥
सोमोत्पत्तिं सोमसूक्तं पाठयेच्च प्रयत्नतः।
चन्द्रपूजां ततः कुर्यादागमोक्तविधानतः॥ ६६॥
चन्द्रन्यासं कलान्यासं कारयेन्मण्डले जलम्।
एकादशेन्द्रियन्यासं तथैव विधिपूर्वकम्॥ ६७॥
चन्द्रविम्बनिभं कार्यं मण्डलं शुभतण्डुलैः।
मध्ये च कलशः स्थाप्यो गव्येन पयसाप्लुतः॥ ६८॥
चतुरस्त्रेषु सम्पूर्णान् कलशान् स्थापयेद् बहिः।
मण्डले चन्द्रपूजा च कर्तव्या नामभिः क्रमात्॥ ६९॥

[इसके बाद सर्वप्रथम] सोममन्त्रका पाठ करे और प्रतिमा-स्थापन करे। तदुपरान्त अपने धनके अनुरूप सोममन्त्रसे होम करे। तदुपरान्त आगमोक्त विधिसे चन्द्रदेवकी पूजा करे। तत्पश्चात् सोमकी उत्पत्तिका आख्यान एवं सोमसूक्तका [ऋत्विजोंसे] पाठ करवाये। तदुपरान्त चन्द्रमण्डलमें यथाविधि चन्द्रन्यास, कलान्यास एवं एकादश इन्द्रियोंका न्यास करे। चन्द्रबिम्बके समान चन्द्रमण्डलको उत्तम अक्षतोंद्वारा बनाकर उस मण्डलके मध्यमें गोदुग्धसे भरे कलशको स्थापित करे। मण्डलके चतुष्कोणके बाहर चार [गोदुग्धादिसे] परिपूर्ण कलशोंकी स्थापना करे। तत्पश्चात् नाममन्त्रोंके द्वारा यथाक्रम चन्द्रमाका पूजन-स्तवन करे॥ ६५—६९॥

हिमांशवे नमश्चैव सोमचन्द्राय वै नमः।
चन्द्राय विधवे नित्यं नमः कुमुदबन्धवे॥ ७०॥

सुधांशवे च सोमाय ओषधीशाय वै नमः।
नमोऽब्जाय मृगाङ्काय कलानां निधये नमः॥ ७१ ॥
नमो नक्षत्रनाथाय शर्वरीपतये नमः।
जैवातृकाय सततं द्विजराजाय वै नमः॥ ७२ ॥
एवं षोडशभिश्चन्द्रः स्तोतव्यो नामभिः क्रमात्।

इन हिमांशु आदि सोलह नाममन्त्रोंसे चन्द्रदेवका क्रमशः स्तवन-प्रणाम करना चाहिये। हिमांशुको नमस्कार है [हिमांशवे नमः] सोमचन्द्रको नमस्कार है, विधु, कुमुदबन्धु चन्द्रदेवको सतत नमस्कार है। सुधांशु, सोम, ओषधीशको नमस्कार है। अब्ज, मृगांकको नमस्कार है, कलानिधिको नमस्कार है। नक्षत्रनाथको नमस्कार है, शर्वरीपतिको नमस्कार है, जैवातृक, द्विजराजको, चन्द्रमाको सदा-सर्वदा नमस्कार है॥ ७०—७२ $^1/_2$ ॥

ततो वै प्रयतो दद्याद् विधिवन्मन्त्रपूर्वकम्।
शङ्खतोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनम्॥ ७३ ॥
नमस्ते मासमासान्ते जायमान पुनः पुनः।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्क त्वं रोहिण्या सहितो मम॥ ७४ ॥

इस प्रकारसे स्तवन करनेके अनन्तर पुष्प, फल, चन्दनादिसे युक्त शंखोदक लेकर मन्त्रपाठपूर्वक संयतचित्त व्यक्ति विधिवत् [अर्घ्य] समर्पित करे। [चन्द्रमाको इस मन्त्रसे अर्घ्य देना चाहिये—] हे शशांक! आप प्रत्येक मासके अन्तमें सोलहों कलाओंसे युक्त होकर पुनः-पुनः उदित होते हैं। आपको नमस्कार है। रोहिणी देवीके साथ आप मेरे द्वारा दिये जा रहे इस अर्घ्यको स्वीकार करें॥ ७३-७४॥

एवं सम्पूज्य विधिवत् शशिनं प्रणतो भवेत्।
षोडशान्ये च कलशा दुग्धपूर्णाः सरत्नकाः॥ ७५ ॥
सवस्त्राच्छादनाः शान्त्यै दातव्यास्ते द्विजन्मने।
अभिषेकं ततः कुर्यात् पायसेन जलेन तु॥ ७६ ॥

ऋत्विजां मनसस्तुष्टिः कार्या वित्तानुमानतः।
ब्राह्मणं भोजयेत् तत्र सकुटुम्बं विशेषतः॥ ७७॥

इस प्रकार विधिवत् [अर्घ्यदानादिसे] पूजनकर चन्द्रदेवको प्रणाम करे, तदुपरान्त दुग्धपूर्ण अन्य सोलह कलशोंको वस्त्र-रत्नादि सहित ब्राह्मणोंको शान्तिहेतु दान कर दे। तत्पश्चात् जलयुक्त दुग्धसे अभिषेककर अपनी सम्पत्तिके अनुसार ऋत्विजोंको सन्तुष्ट करे तथा विशेष रूपसे कुटुम्बयुक्त ब्राह्मणको इस अवसरपर भोजन कराये॥ ७५—७७॥

पूजनीयौ प्रयत्नेन वस्त्रैश्च द्विजदम्पती।
कर्तव्यञ्च ततो भूरिदक्षिणादानमुत्तमम्॥ ७८॥
प्रतिमाश्च प्रदातव्या द्विजेभ्यो धेनुपूर्विकाः।
सुवर्णं रजतं वस्त्रं तथान्नं च विशेषतः॥ ७९॥
दातव्यं चन्द्रसुप्रीत्यै हर्षादेवं द्विजन्मने।

[उस अवसरपर] प्रयत्नपूर्वक वस्त्राभूषणादिसे ब्राह्मणदम्पतीका सत्कार करे और तदनन्तर प्रचुर मात्रामें उत्तम दक्षिणा अर्पण करे। इसके अनन्तर ब्राह्मणोंको गोदानके सहित उन प्रतिमाओंका दान करना चाहिये तथा चन्द्रदेवकी विशेष प्रसन्नताके लिये इसी प्रकार ब्राह्मणको हर्षपूर्वक सुवर्ण, रजत, वस्त्र, अन्नादिका भी दान देना चाहिये॥ ७८—७९१/२॥

उपवासविधानेन दिनशेषं नयेत् सुधीः॥ ८०॥
अनन्तरे च दिवसे कुर्याद् भगवदर्चनम्।
बान्धवैः सह भुंजीत नियमं च विसर्जयेत्॥ ८१॥

बुद्धिमान् व्यक्ति [इस प्रकारसे कर्मकाण्ड पूर्ण करके] उपवासपूर्वक वह शेष दिन व्यतीत करे, दूसरे दिन भगवान्‌की पूजा-अर्चना करनेके उपरान्त बन्धुओंके साथ भोजन करे और [व्रतोचित] नियमोंका विसर्जन कर दे॥ ८०-८१॥

एवं च कुरुते चन्द्रसहस्त्रं व्रतमुत्तमम्।
ब्रह्मघ्नोऽपि सुरापोऽपि स्तेयी च गुरुतल्पगः।
व्रतेनाऽनेन शुद्धात्मा चन्द्रलोकं व्रजेन्नरः॥ ८२॥

जो व्यक्ति इस प्रकारसे 'चन्द्रसहस्त्र' संज्ञक उत्तम व्रतका अनुष्ठान करता है, वह ब्रह्मघाती, मद्यप, चौर अथवा गुरुतल्पग होनेपर भी इस व्रतके प्रभावसे शुद्धचित्त हो जाता है और चन्द्रलोककी प्राप्ति करता है॥ ८२॥

यादृशश्च भवेद्विप्र प्रियो नारायणस्य च।
एवं करोति नियतं कृतकृत्यो भवेन्नरः॥ ८३॥

हे विप्र! इस व्रतको करनेवाला नारायणका प्रेमभाजन होता है। जो मनुष्य इस व्रतको नित्य-प्रति करता है, वह कृतकृत्य हो जाता है॥ ८३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये स्वर्गद्वारमाहात्म्यं चन्द्रसहस्त्रव्रतोद्यापनविधिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार स्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डके अन्तर्गत अयोध्यामाहात्म्यका 'स्वर्गद्वारमाहात्म्य-चन्द्रसहस्त्रव्रतोद्यापन-विधिवर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

धर्महरि तथा स्वर्णखनि नामक तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य

अगस्त्य उवाच

तस्माच्चन्द्रहरिस्थानादाग्नेय्यां दिशि संस्थितः।
देवो धर्महरिर्नाम कलिकल्मषनाशकः॥ १॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः स्वकर्मपरिनिष्ठितः।
पुरा समागतो धर्मस्तीर्थयात्राचिकीर्षया॥ २॥

आगत्य च चकारोच्चैर्यात्रां तत्रादरेण सः।
दृष्ट्वा माहात्म्यमतुलमयोध्यायाः सविस्मयः॥ ३॥
विधाय स्वभुजावूर्ध्वौ विप्रोऽवोचन्मुदान्वितः।
अहो रम्यमिदं तीर्थमहो माहात्म्यमुत्तमम्॥ ४॥
अयोध्यासदृशी कापि दृश्यते नापरा पुरी।
या न स्पृशति वसुधां विष्णुचक्रस्थिताऽनिशम्॥ ५॥
यस्यां स्थितो हरिः साक्षात् सेयं केनोपमीयते।
अहो तीर्थानि सर्वाणि विष्णुलोकप्रदानि वै॥ ६॥
अहो विष्णुरहो तीर्थमयोध्याऽहो महापुरी।
अहो माहात्म्यमतुलं किं न श्लाघ्यमिहास्थितम्॥ ७॥

अगस्त्यजीने कहा—इस चन्द्रहरिस्थानसे आग्नेय दिशामें कलिकल्मषनाशक धर्महरि भगवान् विराजमान हैं। पूर्वकालमें वेद-वेदांगतत्त्वज्ञ और अपने वर्णाश्रमोचित आचारमें परिनिष्ठित धर्म [नामक ब्राह्मण] तीर्थयात्राहेतु यहाँ आये और आदरपूर्वक उन्होंने अयोध्याजीकी तीर्थयात्रा की। अयोध्याके अतुल माहात्म्यका दर्शनकर वे विस्मित हो गये और हर्षसे उत्फुल्ल हो अपनी दोनों भुजाओंको उठाकर बोले—'अहो! यह कितना रमणीक तीर्थ है! अहो उत्तम महिमावाला है! अयोध्याजीके समान अन्य दूसरी कोई पुरी नहीं है। यह पुरी वसुधातलका स्पर्श नहीं करती है। यह श्रीविष्णुचक्रपर स्थित है। इस पुरीमें साक्षात् श्रीहरि स्थित हैं। अतः इसके साथ अन्य पुरीकी उपमा है ही नहीं। अहो! [यहाँके] सभी तीर्थ विष्णुलोक प्रदान करनेवाले हैं। अहो! यह महान् पुरी अयोध्या तो साक्षात् विष्णुरूपा ही है। अहो! इस तीर्थका तो अतुल माहात्म्य है, यहाँ ऐसी कौन वस्तु है, जो श्लाघ्य नहीं है!'॥ १—७॥

इत्युक्त्वा तत्र बहुशो ननर्त प्रमदाकुलः।
धर्मो माहात्म्यमालोक्य अयोध्याया विशेषतः॥ ८॥

तं तथा नर्तमानं वै धर्मं दृष्ट्वा कृपान्वितः।
आविर्बभूव भगवान् पीतवासा हरिः स्वयम्।
तं प्रणम्य च धर्मोऽथ तुष्टाव हरिमादरात्॥ ९॥

इस प्रकार अयोध्यापुरीके विशेष माहात्म्यको जानकर उन्होंने उसके गौरवका बारंबार वर्णन किया और वे धर्म आनन्दविह्वल होकर नृत्य करने लगे। भाव-विभोर होकर नाच रहे उनकी यह दशा देखकर स्वयं पीताम्बरधारी श्रीहरि कृपा-परवश हो वहीं आविर्भूत हो गये। तब उन ब्राह्मण धर्मदेवने प्रभुको प्रणामकर आदरपूर्वक उन श्रीहरिका स्तवन किया॥ ८-९॥

धर्म उवाच

नमः क्षीराब्धिवासाय नमः पर्यङ्कशायिने।
नमः शङ्करसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे॥ १०॥
भक्त्याऽर्चितसुपादाय नमोऽजादिप्रियाय ते।
शुभाङ्गाय सुनेत्राय माधवाय नमो नमः॥ ११॥
नमोऽरविन्दपादाय पद्मनाभाय वै नमः।
नमः क्षीराब्धिकल्लोलस्पृष्टगात्राय शार्ङ्गिणे॥ १२॥
ॐ नमो योगनिद्राय योगक्षैर्भावितात्मने।
तार्क्ष्यासनाय देवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ १३॥
सुकेशाय सुनासाय सुललाटाय चक्रिणे।
सुवस्त्राय सुवर्णाय श्रीधराय नमो नमः॥ १४॥
सुबाहवे नमस्तुभ्यं चारुजङ्घाय ते नमः।
सुवासाय सुदिव्याय सुविद्याय गदाभृते॥ १५॥
केशवाय च शान्ताय वामनाय नमो नमः।
धर्मप्रियाय देवाय नमस्ते पीतवाससे॥ १६॥

धर्मने कहा—क्षीरसागरवासी आपको नमस्कार है, शेषशय्याके ऊपर शयन करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार है! जिनके दिव्य

श्रीचरणोंको श्रीशंकरजी स्पर्श करते हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है! जिनके सुन्दर श्रीचरण [भक्तोंद्वारा] भक्तिपूर्वक अर्चित हैं, उन आपको नमस्कार है! ब्रह्मादि देवता जिनके प्रिय हैं, जिनके श्रीअंग शोभासम्पन्न हैं तथा जिनके नेत्र [कमलवत्] सुन्दर हैं, उन श्रीमाधवको बारम्बार नमस्कार है! जिनके श्रीचरण कमलके समान सुन्दर हैं, उन्हें नमस्कार है! जिनके नाभिदेशमें कमल स्थित है, उन्हें नमस्कार है! क्षीरसागरकी उत्ताल तरंगें जिनके श्रीविग्रहका स्पर्श करती रहती हैं तथा जो शार्ङ्ग नामक धनुषको धारण करते हैं, उन्हें नमस्कार है, जो योगनिद्राका आश्रय लेकर [जगत्पालनरूप] व्यापारसे उपरत होते हैं, उन्हें नमस्कार है! नक्षत्र और योगादिसे जिनका शरीर सुगठित है अर्थात् ग्रह-नक्षत्रादि जिनके अवयव हैं, उन्हें नमस्कार है! जो गरुडासनपर आसीन हैं, ऐसे गोविन्ददेवको बारम्बार नमस्कार है! जिनके सुन्दर घुँघराले केश हैं, जिनकी सुन्दर नासिका है, जिनका ललाट शोभासम्पन्न है, जिनके वस्त्र दर्शनीय हैं, जिनका सुन्दर [श्यामल] वर्ण है, जो अपने [हृदयदेशमें] भगवती श्रीको धारण करते हैं, ऐसे सुदर्शनचक्रधारी [आप]-को नमस्कार है, नमस्कार है! जिनके सुन्दर बाहुयुगल हैं, जिनकी जंघाएँ भी सुन्दर हैं, ऐसे आपको नमस्कार है! जिनकी देहगन्ध सुरभित है, जो दिव्य कान्तिवाले हैं, जो परमविद्याके अधिष्ठान हैं तथा जो गदाधारी हैं, ऐसे शान्तरूप केशव और वामनदेवको नमस्कार है, नमस्कार है। जिनको धर्म प्रिय है, ऐसे हे पीताम्बरधारी! आपको नमस्कार है॥ १०—१६॥

अगस्त्य उवाच

इति स्तुतो जगन्नाथो धर्मेण श्रीपतिर्मुदा।
उवाच स हृषीकेशः प्रीतो धर्ममुदारधीः॥ १७॥

अगस्त्यजीने कहा—इस प्रकार जब धर्मके द्वारा प्रीतिपूर्वक उन जगन्नाथ श्रीपतिकी स्तुति की गयी, तो उदारहृदय वे भगवान् हृषीकेश उनपर प्रसन्न होकर बोले—॥ १७॥

श्रीभगवानुवाच

तुष्टोऽहं भवतो धर्म स्तोत्रेणानेन सुव्रत।
वरं वरय धर्मज्ञ यस्ते स्यान्मनसः प्रियः॥ १८॥
स्तोत्रेणानेन यः स्तौति मानवो मामतन्द्रितः।
सर्वान् कामानवाप्नोति पूजितः श्रीयुतः सदा॥ १९॥

हे धर्म! हे सुव्रत! आपके इस स्तोत्रके कारण मैं आपपर सन्तुष्ट हूँ। हे धर्मज्ञ! जो आपकी मनोभिलाषा हो, वह वर मुझसे माँग लो। जो मानव आलस्यरहित होकर इस स्तोत्रसे मेरी स्तुति करेगा, वह सम्पूर्ण अभिलाषाओंकी प्राप्ति कर लेगा, [संसारमें] पूजित [होगा] तथा सदा श्रीसंयुक्त रहेगा॥ १८-१९॥

धर्म उवाच

यदि तुष्टोऽसि भगवन् देवदेव जगत्पते।
त्वामहं स्थापयाम्यत्र निजनाम्ना जगद्गुरो॥ २०॥

धर्मने कहा—हे भगवन्! हे देवाधिदेव, हे जगत्पते, हे जगद्गुरो! यदि आप सन्तुष्ट हैं तो इस स्थानपर अपने नामके अनुसार मैं आपकी स्थापना करूँगा॥ २०॥

अगस्त्य उवाच

एवमस्त्विति सम्प्रोच्याऽभवद्धर्महरिर्विभुः।
स्मरणादेव मुच्येत नरो धर्महरेर्विभोः॥ २१॥
सरयूसलिले स्नात्वा सुचिन्ताकुलमानसः।
देवं धर्महरिं पश्येत् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २२॥
अत्र दानं तथा होमो जपो ब्राह्मणभोजनम्।
सर्वमक्षयतां याति विष्णुलोके निवासकृत्॥ २३॥

अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि यत्किञ्चिद् दुष्कृतं भवेत्।
प्रायश्चित्तं विधातव्यं तन्नाशाय प्रयत्नतः॥ २४॥
प्रायश्चित्तेन विधिना पापं तस्य प्रणश्यति।
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं प्रायश्चित्तं विधानतः॥ २५॥
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि राजादेर्निग्रहात्तथा।
नित्यकर्मनिवृत्तिः स्याद् यस्य पुंसोऽवशात्मनः।
तेनाप्यत्र विधातव्यं प्रायश्चित्तं प्रयत्नतः॥ २६॥
अत्र साक्षात् स्वयं देवो विष्णुर्वसति सादरः।
तस्माद्वर्णयितुं शक्यो महिमा न हि मानवैः॥ २७॥

अगस्त्यजीने कहा—वे व्यापक श्रीहरि धर्मसे एवमस्तु (ऐसा ही हो)—यह कहकर 'धर्महरि' इस विग्रहके रूपमें अवस्थित हो गये। उन विभु धर्महरिदेवके स्मरणमात्रसे मनुष्य मोक्ष पा लेता है। जो मानव अत्यन्त अनुरागके साथ सरयूसलिलमें स्नानकर धर्महरिदेवका दर्शन करता है, वह समस्त पापोंसे विमुक्त हो जाता है। इस स्थानपर दान-होम-जप तथा ब्राह्मणभोजन—ये सभी कर्म अक्षय फलदायक हो जाते हैं तथा [यहाँका निवास] श्रीविष्णुलोकमें निवास करानेवाला होता है। मनुष्यके द्वारा अनजानमें अथवा जानबूझकर यदि कुछ भी दुष्कर्म हो जाय, तो उसके शमनहेतु प्रयत्नपूर्वक प्रायश्चित्त करना चाहिये। प्रायश्चित्त-विधिका अनुपालन करनेपर ही मनुष्यका पाप नष्ट हो पाता है, इसलिये [किये गये पापोंके नाशहेतु] यहाँपर अवश्य ही विधिवत् प्रायश्चित्त करना चाहिये। जिस मनुष्यके [सन्ध्योपासन-अग्निहोत्रादि] नित्यकर्मोंका अनजानमें, जान-बूझकर अथवा शासक आदिके बन्धनमें पड़ जानेपर विवशताकी स्थितिमें लोप हो जाय, उसको भी कर्मलोपजनित प्रत्यवायकी निवृत्तिके लिये

यहाँपर प्रसन्नतापूर्वक सविधि प्रायश्चित्त करना चाहिये। यहाँपर प्रत्यक्ष ही स्वयं देवदेव श्रीविष्णु आदरपूर्वक निवास करते हैं, इसलिये इस [तीर्थ]-की महिमाका मनुष्योंके द्वारा वर्णन सम्भव नहीं है॥ २१—२७॥

आषाढे शुक्लपक्षस्य एकादश्यां द्विजोत्तम।
तस्य साम्वत्सरी यात्रा कर्तव्या तु विधानतः॥ २८॥
स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा धर्महरिं विभुम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके वसेत्सदा॥ २९॥
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे स्वर्णस्य खनिरुत्तमा।
यत्र चक्रे स्वर्णवृष्टिं कुबेरो रघुजाद् भयात्॥ ३०॥

हे द्विजश्रेष्ठ! आषाढ़की शुक्ला एकादशीको विधानपूर्वक इस तीर्थकी साम्वत्सरी यात्रा करनी चाहिये। मनुष्य स्वर्गद्वारमें स्नान करके सर्वसमर्थ धर्महरिका दर्शनकर सभी पापोंसे रहित हो विष्णुलोकमें सदा निवास करता है। इस स्थानसे दक्षिण दिशामें स्वर्णखनि नामक उत्तम तीर्थ है, जहाँ महाराज रघुके भयसे धनाध्यक्ष कुबेरने स्वर्णकी वर्षा की थी॥ २८—३०॥

व्यास उवाच

भगवन् ब्रूहि तत्त्वज्ञ स्वर्णवृष्टिरभूत्कथम्।
कुबेरस्य कथं भीतिरुत्पन्ना रघुभूपतेः॥ ३१॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरान्मम सुव्रत।
श्रुत्वा कथारहस्यानि न तृप्यति मनो मम॥ ३२॥

व्यासजीने कहा—हे तत्त्वज्ञ भगवन्! स्वर्णवृष्टि कैसे हुई, यह बतायें। महाराज रघुसे कुबेरको भय क्यों उत्पन्न हुआ? हे सुव्रत! मुझे यह सब विस्तारसे बतायें; क्योंकि इन कथा-रहस्योंको सुनकर मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है॥ ३१-३२॥

अगस्त्य उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि स्वर्णस्योत्पत्तिमुत्तमाम्।
यस्य श्रवणतो नृणां जायते विस्मयो महान्॥ ३३॥
आसीत् पुरा रघुपतिरिक्ष्वाकुकुलवर्द्धनः।
रघुर्निजभुजोदारवीर्यशासितभूतलः॥ ३४॥

अगस्त्यजीने कहा—हे विप्र! सुनो, स्वर्णकी उत्तम उत्पत्ति की उस उत्तम कथाको मैं कह रहा हूँ, जिसे सुनकर लोग अत्यन्त विस्मित हो जाते हैं। पूर्वकालमें इक्ष्वाकुकुलकी कीर्तिपताकाको दिग्दिगन्तमें लहरानेवाले एवं अपने वंशके संरक्षक राजा रघु हुए। उन राजा रघुने अपनी भुजाओंके उदार पराक्रमसे सम्पूर्ण भूतलको शासित किया॥ ३३-३४॥

प्रतापतापितारातिवर्गव्याख्यातसद्यशाः।
प्रजाः पालयता सम्यक् तेन नीतिमता सता॥ ३५॥
यशःपूरेण संलिप्ता दिशो दश सितत्विषा।
स चक्रे प्रौढविभवसाधनां विजयक्रमात्॥ ३६॥

उनके शत्रु यद्यपि प्रतापसे भले ही भयभीत हो रहे हों, फिर भी वे महाराजके शासनगुणोंके कारण उनका यशोगान करते थे। महाराज रघुने सर्वोत्तम नीतिका आश्रय लेकर प्रजाका शासन तथा सम्यक् पालन-पोषण किया था। दसों दिशाओंमें उनके यशोरूप चन्द्रमाकी किरणें व्याप्त थीं। उस समय महाराज श्रीरघुने अपने विजयोपक्रमोंके द्वारा राजकोषको अत्यन्त समृद्ध बनाया॥ ३५-३६॥

नानादेशान् समाक्रम्य चतुरङ्गबलान्वितः।
भूतानि वशमानीय वसु जग्राह दण्डतः॥ ३७॥
उत्कृष्टान् नृपतीन् वीरो दण्डयित्वा बलाधिकान्।
रत्नानि विविधान्याशु जग्राहातिबलस्तदा॥ ३८॥

चतुरंगिणी सेनाको साथ लेकर उन्होंने अनेक देशोंपर आक्रमणकर राजाओंको अपने वशमें किया और दण्डरूपमें

उनसे धन प्राप्त किया। उस समय बलाधिक्यके कारण वीर राजा श्रीरघुने अनेक उत्कृष्ट बलशाली राजाओंको अपने वशमें करके अल्पकालमें ही उनसे प्रचुर मात्रामें विविध रत्नोंको प्राप्त किया॥ ३७-३८ ॥

स विजित्य दिशः सर्वा गृहीत्वा रत्नसंचयम्।
अयोध्यामागतो राजा राजधानीं च तां शुभाम्॥ ३९ ॥
तत्रागत्य च काकुत्स्थो यज्ञायोत्सुकमानसः।
चकार निर्मलां बुद्धिं निजवंशोचितक्रियाम्॥ ४० ॥

सभी दिशाओंको सम्यक् रूपसे जीतकर और रत्नोंका संचय करके वे महाराज अपनी उस शोभामयी राजधानी अयोध्यामें वापस आये। ककुत्स्थवंशी राजा रघु वहाँ आनेपर यज्ञसम्पादनार्थ उत्सुक हो गये। उनके कुलके पूर्वज यज्ञाराधनमें संलग्न रहते थे, अतः यज्ञादि कर्म उनके लिये भी उचित था। इसीलिये उन्होंने कुलानुरूप यज्ञकर्म करनेहेतु अपने पवित्र अन्तःकरणको तत्पर किया॥ ३९-४० ॥

वसिष्ठं मुनिमाज्ञाय वामदेवं च कश्यपम्।
अन्यानपि मुनिश्रेष्ठान् नानातीर्थसमाश्रितान्।
समानयद्विनीतेन द्विजवर्येण भूपतिः॥ ४१ ॥
दृष्ट्वा स्थितान् स तान् सर्वान् प्रदीप्तानिव पावकान्।
तानागतान् विदित्वाऽथ रघुः परपुरंजयः।
निश्चक्राम यथान्यायं स्वयमेव महायशाः॥ ४२ ॥
ततो विनीतवत् सर्वान् काकुत्स्थो द्विजसत्तमान्।
उवाच धर्मयुक्तं च वचनं यज्ञसिद्धये॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् महाराज रघुने वसिष्ठमुनिको अपनी अभिलाषा बतायी और एक विनयशील श्रेष्ठ ब्राह्मणके माध्यमसे वामदेव, कश्यप तथा अनेक तीर्थोंमें समाश्रित दूसरे भी श्रेष्ठ मुनिजनोंको

आमंत्रितकर वे उन्हें अयोध्यामें लाये। महायशस्वी शत्रुंजय महाराज श्रीरघु प्रदीप्त पावकके समान तेजोदीप्त उन मुनिजनोंको समुपस्थित देखकर स्वयं ही राजभवनसे बाहर आये और शिष्ट मर्यादाके अनुरूप विनीत भावसे यज्ञसिद्धिहेतु धर्मयुक्त वचनोंके द्वारा उन सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे प्रार्थना की॥ ४१—४३ ॥

रघुरुवाच

मुनयः सर्व एवैते यूयं शृणुत मद्वचः।
यज्ञं विधातुमिच्छामि तत्राज्ञां दातुमर्हथ॥ ४४॥
साम्प्रतं मामको यज्ञो युक्तः स्यान्मुनिसत्तमाः।
एतद्विचार्य तत्त्वेन ब्रूत यूयं मुनीश्वराः॥ ४५॥

रघुने कहा—हे मुनिगण! आप सभी मेरी प्रार्थना सुननेकी कृपा करें, मैं यहाँ यज्ञका आयोजन करना चाहता हूँ। आप हमें आज्ञा प्रदान करें। हे श्रेष्ठ मुनिगण! इस समय मेरे द्वारा यज्ञ करना उचित हो तो, आप लोग इसका विचारकर हमें बतलाइये॥ ४४-४५ ॥

मुनय ऊचुः

राजन् विश्वजिदाख्यातो यज्ञानां यज्ञ उत्तमः।
साम्प्रतं कुरु तं यत्नान्मा विलम्बं वृथा कृथाः॥ ४६॥

मुनियोंने कहा—हे राजन्! यज्ञोंमें उत्तम विश्वजित् नामक यज्ञ है। यत्नपूर्वक इस समय आप उसकी दीक्षा ग्रहण कर लें, अनावश्यक विलम्ब न करें॥ ४६ ॥

अगस्त्य उवाच

नृपश्चक्रे ततो यज्ञं विश्वदिग्जयसञ्ज्ञितम्।
नानासम्भारमधुरं कृतसर्वस्वदक्षिणम्॥ ४७॥
नानाविधेन दानेन मुनिसन्तोषहर्षकृत्।
सर्वस्वमेव प्रददौ द्विजेभ्यो बहुमानतः॥ ४८॥

तेषु विश्वेषु यातेषु पूजितेषु गृहान् स्वकान्।
बन्धुष्वपि च तुष्टेषु मुनिषु प्रणतेषु च॥ ४९॥
तेन यज्ञेन विधिवद्विहितेन नरेश्वरः।
शुशुभे शोभनाचारः स्वर्गे देवेन्द्रवत् क्षणात्॥ ५०॥

अगस्त्यजीने कहा—यह सुनकर महाराज श्रीरघुने अनेक यज्ञीय सामग्रियोंकी बहुलताके कारण प्रीतिजनक एवं दक्षिणाके रूपमें सर्वस्वके समर्पणवाले विश्वदिग्जय (विश्वजित्) नामक यज्ञको सम्पन्न किया। अनेक प्रकारके दानसे वे सभी मुनिगण सन्तुष्ट हो गये, क्योंकि ब्राह्मणोंके लिये अतिशय सम्मानपूर्वक यह सर्वस्वदान सम्पन्न हुआ था। तत्पश्चात् उस यज्ञके पूर्ण होनेपर मुनिगणोंकी पूजा हुई और वे अपने-अपने आश्रमोंको चले गये। बन्धुओंके, मुनियोंके, प्रजाजनोंके तथा याचकोंके सन्तुष्ट हो जानेपर वह यज्ञ विधिवत् सम्पन्न हुआ। उस यज्ञकी सम्पन्नतासे शोभन आचारयुक्त सम्राट् श्रीरघु तब पृथ्वीपर ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे कि स्वर्गमें देवराज इन्द्र सुशोभित होते हैं॥ ४७—५०॥

तत्रान्तरे समभ्यायान्मुनिर्यमवताम्वरः।
विश्वामित्रमुनेरन्तेवासी कौत्स इति स्मृतः।
दक्षिणार्थं गुरोर्धीमान् पावितुं तं नरेश्वरम्॥ ५१॥

इसी बीचमें संयमी पुरुषोंमें श्रेष्ठ, विश्वामित्रमुनिके अन्तेवासी मतिमान् महर्षि कौत्स गुरुके निमित्त दक्षिणाहेतु तथा स्वयं उन नरेश्वरको पवित्र करने अर्थात् उनके यशका विस्तार करनेके लिये वहाँ उपस्थित हुए॥ ५१॥

चतुर्दशसुवर्णानां कोटीराहर सत्वरम्।
मद्दक्षिणेति गुरुणा निर्बन्धाद्याचितो रुषा॥ ५२॥

आगतः स मुनिः कौत्सस्ततो याचितुमादरात्।
रघुं भूपालतिलकं दत्तसर्वस्वदक्षिणम्॥ ५३॥

[विश्वामित्रके तपोऽनुष्ठानमें कुछ समयपूर्व महर्षि कौत्सने शिष्यभावसे विशेष सहयोग किया था। जब अनुष्ठानपूर्ति हो गयी तो विश्वामित्रने कौत्सको जानेकी अनुमति दी। उस समय] जब कौत्सने बार-बार विश्वामित्रसे दक्षिणा लेनेके लिये हठ किया तो रोषपूर्वक गुरुने उनसे कहा—'चौदह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ शीघ्र लेकर आओ, यही मेरी दक्षिणा है।' इसीलिये वे कौत्समुनि याचना करनेके लिये आदरपूर्वक उन नृपशिरोमणिके समीप आये, जिन्होंने यज्ञकी दक्षिणाके रूपमें अपना सर्वस्व दे डाला था॥ ५२—५३॥

तमागतमभिप्रेत्य रघुरादरतस्तदा।
उत्थाय पूजयामास विधिवत् स परन्तपः॥ ५४॥
सपर्यासीत् तस्य सर्वा मृत्पात्रविहितक्रिया।
पूजासम्भारमालोक्य तादृशं तं मुनीश्वरः॥ ५५॥
विस्मितोऽभून्निरानन्दो दक्षिणाशां परित्यजन्।
उवाच मधुरं वाक्यं वाक्यज्ञानविशारदः॥ ५६॥

उस समय मुनिवर कौत्सको अपने सामने आया हुए देखकर शत्रुहन्ता महाराज रघुने [सिंहासनसे] उठकर समादरपूर्वक उनकी पूजा की। उस समय महाराज श्रीरघुके पास मात्र मृत्तिकाके ही पात्र बचे थे, उन्होंने उसीसे उनका पूजन सम्पन्न किया, ऐसे पूजासम्भारको देखकर वे मुनीश्वर कौत्स विस्मित और निरानन्द (निराश) हो गये। उनको यद्यपि दक्षिणाप्राप्तिकी आशा नहीं रही, तथापि [राजाको इस बातका खेद न हो, इसलिये] सम्भाषणकौशलमें अतीव निपुण वे कौत्स [महाराज

रघुसे] मधुर वाक्योंमें कहने लगे— ॥ ५४—५६ ॥

कौत्स उवाच

राजन्नभ्युदयस्तेऽस्तु गच्छाम्यन्यत्र साम्प्रतम्॥ ५७॥
गुर्वर्थाहरणायैव दत्तसर्वस्वदक्षिणम्।
त्वां न याचे धनाभावादतोऽन्यत्र व्रजाम्यहम्॥ ५८॥

कौत्सने कहा—राजन्! आपका अभ्युदय हो! अब मैं गुरुदक्षिणाहेतु यहाँसे अन्यत्र जा रहा हूँ। आपने [विश्वजित् नामक यज्ञमें] सर्वस्व दान कर दिया था, अतः धनाभावके कारण आपसे कुछ याचना नहीं कर सकूँगा, अब यहाँसे अन्यत्र जा रहा हूँ॥ ५७-५८॥

अगस्त्य उवाच

इत्युक्तस्तेन मुनिना रघुः परपुरंजयः।
क्षणं ध्यात्वाऽब्रवीदेनं विनयाद् विहितांजलिः॥ ५९॥

अगस्त्यजीने कहा—कौत्समुनिके ऐसा कहनेपर शत्रुंजय महाराज रघुने क्षणभर विचारकर विनयपूर्वक करबद्ध हो करके उनसे कहा॥ ५९॥

रघुरुवाच

भगवंस्तिष्ठ मे हर्म्ये दिनमेकं मुनिव्रत।
यावद् यतिष्ये भगवन् भवदर्थार्थमुच्चकैः॥ ६०॥

रघुने कहा—हे भगवन्! हे मुनिव्रत! आप हमारे राजभवनमें [केवल] एक दिन स्थित रहिये, जबतक कि मैं आपके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये तीव्रतर प्रयत्न करता हूँ॥ ६०॥

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वा परमोदारवचो मुनिमुदारधीः।
प्रतस्थे च रघुस्तत्र कुबेरविजिगीषया॥ ६१॥
तमायान्तं कुबेरोऽथ विज्ञाप्य वचनोदितैः।
प्रसन्नमनसा चक्रे वृष्टिं स्वर्णस्य चाक्षयाम्॥ ६२॥

स्वर्णवृष्टिरभूद् यत्र सा स्वर्णखनिरुत्तमा।
स मुनिं दर्शयामास खनिं तेन निवेदिताम्॥ ६३॥
तस्मै समर्पयामास तां रघुः खनिमुत्तमाम्।
मुनीन्द्रोऽपि गृहीत्वाशु ततो गुर्वर्थमादरात्॥ ६४॥
राज्ञे निवेदयामास सर्वमन्यद्गुणाधिकः।
वरानथ ददौ तुष्टः कौत्सो मतिमताम्वरः॥ ६५॥

उदारबुद्धि महाराज श्रीरघुने ऐसा परम उदार वचन महर्षि कौत्ससे कहा और वहींसे कुबेरपर विजय पानेहेतु चल दिये। रघुके आगमनको जानकर कुबेरने [उनके शौर्यादिके कारण] प्रसन्न होकर अक्षय स्वर्णकी वर्षा कर दी। जहाँ स्वर्णकी वृष्टि हुई, वहीं उत्तम स्वर्णखनि नामक तीर्थ है। महाराज श्रीरघुने उन (कुबेर)-के द्वारा निवेदित स्वर्ण- खनिको कौत्समुनिको दिखाया और वह उत्तम खनि उन्हें समर्पित कर दी। मुनीन्द्र कौत्सने भी उस खनिसे आदरपूर्वक तत्काल उतना ही धन स्वीकार कर लिया, जितना कि गुरुको देना था। उससे अधिक जो स्वर्ण उस कुण्डमें शेष था, उसे राजाको निवेदित कर दिया। तत्पश्चात् सन्तुष्ट होकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महर्षि कौत्सने [महाराज रघुको] अनेक वर प्रदान किये॥ ६१—६५॥

कौत्स उवाच

राजँल्लभस्व सत्पुत्रं निजवंशगुणान्वितम्।
इयं स्वर्णखनिस्तूर्णं मनोऽभीष्टफलप्रदा॥ ६६॥
भूयादत्र परं तीर्थं सर्वपापहरं सदा।
अत्र स्नानेन दानेन नृणां लक्ष्मीः प्रजायते॥ ६७॥
वैशाखे शुक्लद्वादश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता।
नानाभीष्टफलप्राप्तिर्भूयान्मद्वचसा नृणाम्॥ ६८॥

कौत्सने कहा—हे राजन्! आप अपने वंशोचित गुणोंसे समन्वित सत्पुत्रको प्राप्त करो और यह जो स्वर्णखनि है, वह शीघ्र ही अभीष्टफलप्रदा हो जाय। यहाँ सदा सर्वपापहारी उत्तम तीर्थ स्थापित हो। यहाँ स्नान और दानसे मनुष्योंको लक्ष्मीकी प्राप्ति हो। वैशाखमासकी शुक्ल द्वादशीको यहाँकी साम्वत्सरी यात्रा हो। मेरे आज्ञासामर्थ्यसे मनुष्योंको इस तीर्थका सेवन करनेपर अनेकविध अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति हो॥ ६६—६८॥

अगस्त्य उवाच

इति दत्वा वरान् राज्ञे कौत्सः सन्तुष्टमानसः।
प्रतस्थे निजकार्यार्थे गुरोराश्रममुत्सुकः॥ ७९॥
राजा स कृतकृत्योऽथ शेषं सङ्गृह्य तद्धनम्।
द्विजेभ्यो विधिवद् दत्वा पालयामास वै प्रजाः॥ ७०॥
एवं स्वर्णखनेर्जातं माहात्म्यं च मुनीश्वरात्॥ ७१॥

अगस्त्यजीने कहा—सन्तुष्टहृदय महर्षि कौत्स राजाको ऐसे अनेक वर प्रदानकर अपने कार्यहेतु समुत्सुक होकर गुरुके आश्रमको चले गये। राजा भी [कौत्सको सन्तुष्ट देखकर] कृतकृत्य हो गये और [उन मुनिद्वारा छोड़े गये] शेष धनको उन्होंने ब्राह्मणोंको यथावत् दान कर दिया। तत्पश्चात् धर्मपूर्वक प्रजापालन करने लगे। इस प्रकारसे मुनीश्वर कौत्सके द्वारा इस स्वर्णखनितीर्थका माहात्म्य [लोकमें] प्रकाशित हुआ॥ ६९—७१॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये धर्महरिस्वर्णखनिमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डके अन्तर्गत अयोध्या-माहात्म्यका 'धर्महरि-स्वर्णखनिमाहात्म्यवर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

महर्षि कौत्सका पूर्ववृत्तान्त, सरयू-तिलोदकी-संगम तथा समीपवर्ती सम्भेदतीर्थका इतिहास एवं माहात्म्य

व्यास उवाच

भगवन् ब्रूहि तत्त्वेन कथं निर्बन्धतो मुनिः।
विश्वामित्रो निजं शिष्यं कौत्सं क्रोधेन तादृशम्॥ १॥
दुष्प्राप्यमर्थं यत्नेन बहु प्रार्थितवाँस्तदा।
एतत्सर्वं च कथय मयि यद्यस्ति ते कृपा॥ २॥

व्यासजीने कहा—हे भगवन्! महर्षि विश्वामित्र क्रोधके वशीभूत क्यों हो गये थे और उस क्रोधके कारण अपने शिष्य कौत्सको उस प्रकारकी दुष्प्राप्य और विशेष प्रयत्नसे ही उपलब्ध होनेवाली सम्पत्तिको दक्षिणाके रूपमें लानेका आदेश क्यों दिया था? यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा है, तो यह सब यथार्थपूर्वक वर्णन करें॥ १-२॥

अगस्त्य उवाच

शृणु द्विज कथामेतां सावधानेन्द्रियः स्वयम्।
विश्वामित्रो मुनिश्रेष्ठः स दिव्यज्ञानलोचनः॥ ३॥
निजाश्रमे तपो दुर्गं चकार प्रयतो व्रती।
एकदा तमथो द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरागतः॥ ४॥
आगत्य च क्षुधाक्रान्त उच्चैः प्रोवाच स द्विजः।
भोजनं दीयतां मह्यं क्षुधापीडितचेतसे।
पायसं शुचि चोष्णं च शीघ्रं क्षुधार्तिने द्विज॥ ५॥
इति श्रुत्वा वचः क्षिप्रं विश्वामित्रः प्रयत्नतः।
स्थाल्यां पायसमादाय तं समर्प्य ततः स्वयम्॥ ६॥

अगस्त्यजीने कहा—हे द्विज! इन्द्रियोंको सावधान करके इस कथाको सुनो! महर्षि विश्वामित्र मुनियोंमें श्रेष्ठ और दिव्य

दृष्टिवाले थे। वे संयतचित्त महर्षि अपने आश्रममें व्रतको धारणकर कठिन तपश्चर्यामें निरत थे। एक बार उनके दर्शनकी लालसासे महर्षि दुर्वासा वहाँ आये। वे विप्रवर भूखसे बहुत व्याकुल थे, इसलिये विश्वामित्रजीके आश्रमपर आकर उच्च स्वरसे पुकारने लगे—'क्षुधासे मेरा चित्त बहुत व्याकुल है, मुझे भोजन दो। हे द्विज! क्षुधासे व्याकुल हुए मुझे शीघ्र ही पवित्र और उष्ण पायस प्रदान कीजिये।' दुर्वासाजीके इस वचनको सुनकर स्वयं विश्वामित्रजीने प्रयत्नपूर्वक शीघ्र ही पाकपात्रमें पायसको लेकर उन्हें समर्पित किया॥ ३—६ ॥

तदादायोत्थितं दृष्ट्वा दुर्वासास्तं विलोकयन्।
उवाच मधुरं वाक्यं मुनिं लक्षणतत्परः॥ ७ ॥
क्षणं सहस्व विप्रेन्द्र यावत् स्नात्वाव्रजाम्यहम्।
तिष्ठ तिष्ठ क्षणं तिष्ठ आगच्छाम्येष साम्प्रतम्॥ ८ ॥
इत्युक्त्वा स जगामैव दुर्वासाः स्वाश्रमं तदा॥ ९ ॥
विश्वामित्रस्तपोनिष्ठस्तदा सानुरिवाऽचलः।
दिव्यं वर्षसहस्रं स तस्थौ स्थिरमतिस्तदा॥ १० ॥

तब [विश्वामित्रजीकी] परीक्षामें तत्पर महर्षि दुर्वासाने विश्वामित्रको हाथमें पायस लिये खड़ा देखकर उनसे यह मधुर वाक्य कहा—हे विप्रेन्द्र! क्षणभर सहन करो, जबतक मैं स्नान करके न आ जाऊँ! रुको-रुको, क्षणभर रुको। मैं शीघ्र ही आता हूँ। ऐसा कहकर दुर्वासाजी सीधे अपने आश्रमको ही चले गये। तब तपोनिष्ठ विश्वामित्रजी उसी स्थानपर पर्वतशिखरकी भाँति निश्चल हो स्थिर चित्तसे दिव्य सहस्र वर्षोंतक दुर्वासाजीके आगमनकी प्रतीक्षामें खड़े रह गये॥ ७—१० ॥

तस्य शुश्रूषणपरो मुनिः कौत्सो यतव्रतः।
बभूव परमोदारमतिर्विगतमत्सरः॥ ११ ॥

पुनरागत्य स मुनिर्दुर्वासा गतकल्मषः।
भुक्त्वा च पायसं सद्यः स जगाम निजाश्रमम्॥ १२॥
तस्मिन् गते मुनिवरे विश्वामित्रस्तपोनिधिः।
कौत्सं विद्यावतां श्रेष्ठं विससर्ज गृहान् प्रति॥ १३॥
स विसृष्टो गुरुं प्राह दक्षिणा प्रार्थ्यतामिति।
विश्वामित्रस्तु तं प्राह त्वं किं दास्यसि दक्षिणाम्।
दक्षिणा तव शुश्रूषा गृहं व्रज यतव्रत॥ १४॥

उस समय परम उदार मतिवाले, मात्सर्यहीन तथा व्रतशील मुनि कौत्स उन विश्वामित्रजीकी शुश्रूषामें तत्पर हो गये। [सहस्र वर्षोंकी अवधिको बिताकर] उन निष्पाप दुर्वासामुनिने पुनः आकर पायसको ग्रहण किया और तत्काल अपने आश्रमको चले गये। उन मुनीश्वरके चले जानेपर तपोनिधि महर्षि विश्वामित्रने ज्ञानियोंमें अग्रगण्य कौत्सको अपने स्थानपर जानेका आदेश दिया। ऐसा आदेश सुनकर कौत्सने गुरुजीसे प्रार्थना की—आप मुझसे दक्षिणा माँगनेकी कृपा करें। तब विश्वामित्रजीने उनसे कहा कि [अरे!] तुम दक्षिणा क्या दोगे, यह जो नियमपूर्वक इतने दिनोंतक तुमने मेरी सेवा की है, वही मेरे लिये दक्षिणा है। हे यतव्रत! अब अपने घर चले जाओ॥ ११—१४॥

पुनः पुनर्गुरुं प्राह शिष्यो निर्बन्धवान् यदा।
तदा गुरुर्गुरुक्रुद्धः शिष्यं प्राह च निष्ठुरम्॥ १५॥
सुवर्णस्य सुवर्णस्य चतुर्दश समाहर।
कोटीर्मे दक्षिणा विप्र पश्चाद् गच्छ गृहम्प्रति॥ १६॥

किन्तु जब कौत्सने [दक्षिणा लेनेके लिये] हठपूर्वक बार–बार आग्रह किया तो गुरु विश्वामित्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर निष्ठुरतापूर्वक शिष्यसे कहा—'हे विप्र! चतुर्दश कोटि उत्तम स्वर्णमुद्राओंको लाकर मुझे दक्षिणाके रूपमें दो, तत्पश्चात् अपने

घरको जाओ॥ १५-१६॥

इत्युक्तो गुरुणा कौत्सो विचार्य समुपागमत्।
काकुत्स्थं दिग्विजेतारं ययाचे गुरुदक्षिणाम्॥ १७॥
इत्युक्तं ते मुनिवर त्वया पृष्टं हि यत्पुनः।
अतोऽन्यच्छृणु ते वच्मि तीर्थकारणमुत्तमम्॥ १८॥
तस्माद् दक्षिणदिग्भागे सम्भेदः सिद्धसेवितः।
तिलोदकीसरय्वोश्च सङ्गत्या भुवि संश्रुतः॥ १९॥
तत्र स्नात्वा महाभाग भवन्ति विरजा नराः।
दशानामश्वमेधानां कृतानां यत्फलं भवेत्।
तदाप्नोति स धर्मात्मा तत्र स्नात्वा यतव्रतः॥ २०॥

गुरुजीके ऐसा कहनेपर कौत्स विचारपूर्वक ककुत्स्थकुलभूषण दिग्विजयी रघुके समीप आये और उनसे गुरु-दक्षिणाकी याचना की। हे मुनिवर! आपने जो पहले प्रश्न किया था, वह इस प्रकार मैंने बतलाया। अब पुनः पूछे गये प्रश्नका उत्तर, जो कि तीर्थके आविर्भावका भलीभाँति निरूपण करनेवाला है, उसे मैं आपसे कहता हूँ, सुनो! उस स्वर्णखनिसे दक्षिणदिशामें सिद्धगणोंसे सेवित सम्भेद नामक तीर्थ स्थित है, जो कि तिलोदकी तथा सरयूके संगमके कारण पृथ्वीपर विख्यात है। हे महाभाग! यहाँ स्नानकर मनुष्य रजोगुणसे रहित हो जाते हैं। दस अश्वमेध यज्ञ करनेवालोंको जो फल कहा गया है, वही फल व्रतका नियम लेकर यहाँ स्नान करनेवाले धर्मनिष्ठ मनुष्यको प्राप्त होता है॥ १७—२०॥

स्वर्णादिकञ्च यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे।
शुभां गतिमवाप्नोति अग्निवच्चैव दीप्यते॥ २१॥
तिलोदकीसरय्वोश्च सङ्गमे लोकविश्रुते।
दत्वान्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते॥ २२॥

उपवासं च यः कृत्वा विप्रान् सन्तर्पयेन्नरः।
सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः॥ २३॥
एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः।
यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति॥ २४॥
नभस्यकृष्णामावस्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
रामेण निर्मिता पूर्वं नदी सिन्धुरिवापरा॥ २५॥
सिन्धुजानां तुरङ्गाणां जलपानाय सुव्रत।
तिलवच्छ्यामम‍ुदकं यतस्तस्यां सदा बभौ॥ २६॥
तिलोदकीति विख्याता पुण्यतोया सदा नदी।
सङ्गमादन्यतो यस्यां तिलोदक्यां शुचिव्रतः।
स्नातो विमुच्यते पापैः सप्तजन्मार्जितैरपि॥ २७॥
तस्मात् तिलोदकीस्नानं सर्वपापहरं मुने।
कर्तव्यं सुप्रयत्नेन प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः।
स्नानं दानं व्रतं होमं सर्वमक्षयतां व्रजेत्॥ २८॥

वेदोंमें पारंगत ब्राह्मणको जो यहाँ सुवर्णादिका दान करता है, वह शुभ गतिको प्राप्त होता है और अग्निके समान प्रकाशित होता है। लोकविख्यात इस सरयू-तिलोदकीसंगममें अन्नका सविधि दान देकर व्यक्ति पुनः माताके गर्भमें नहीं आता। जो व्यक्ति उपवासयुक्त होकर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करता है, वह सौत्रामणी नामक यज्ञके फलको प्राप्त करता है। नियमपूर्वक एक ही बार आहारका व्रत लेकर जो महीनेभर यहाँ निवास करता है, उस व्रतनिष्ठके जीवनभरमें किये हुए पापोंका तत्काल नाश हो जाता है। भाद्रपदमासकी अमावस्या (कुशोत्पाटनी अमावस्या)-में इस सम्भेदतीर्थकी साम्वत्सरी यात्रा होती है। हे सुव्रत! पूर्वकालमें प्रभु श्रीरामने सिन्धुदेशीय अश्वोंके जल पीनेके लिये मानो दूसरी सिन्धु नदीके ही समान एक नदीका निर्माण

किया था। उस नदीके जलका वर्ण तिलके समान श्यामल था, इसलिये सतत प्रवहमान पुण्यतोया वह नदी 'तिलोदकी' इस नामसे विख्यात हुई। पवित्रव्रतधारी जो मनुष्य तिलोदकीसंगमसे अतिरिक्त अन्य स्थलोंपर भी तिलोदकीमें स्नान करता है, वह सात जन्मोंमें अर्जित पापोंसे विमुक्त हो जाता है। इसलिये हे मुने! तिलोदकीस्नान सर्वपापहर है। धर्माभिलाषी प्राणियोंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक [सरयू-तिलोदकी-संगममें] जो स्नान, दान, व्रत और होम किया जाता है; वह सब अक्षयत्वको प्राप्त होता है॥ २१—२८॥

इति विविधविधानैस्तीर्थयात्रां क्रमेण
प्रथितगुणविकासः प्राप्तपुण्यो विधाय।
हरिमुपहृतभावः पूजयन् सर्वतीर्थे
व्रजति परमधाम न्यस्तपापः कथंचित्॥ २९॥

इस प्रकार भाँति-भाँतिके शास्त्रीय विधानोंके अनुसार जो पुण्यात्मा मनुष्य तीर्थयात्राका अनुष्ठान करता है और श्रीहरिमें चित्तवृत्तियोंको लगाकर यथाक्रम प्रत्येक तीर्थमें उन श्रीहरिकी पूजा-उपासना सम्पन्न कर लेता है, उसके [सदाचार, तपश्चर्या, भगवद्भक्ति आदि] सद्गुण अतिशय विकासको प्राप्त होते हैं तथा वह समस्त पापराशिको त्यागकर अनायास ही [श्रीहरिके] परमधामको पा लेता है॥ २९॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये
तिलोदकीप्रभाववर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डके अन्तर्गत अयोध्यामाहात्म्यका
'तिलोदकीप्रभाववर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

सीताकुण्ड, चक्रहरि, गुप्तहरि, सरयू-घाघरासंगम तथा गोप्रतारतीर्थका इतिहास एवं माहात्म्य, गोप्रतारतीर्थके महिमावर्णनके प्रसंगमें अयोध्यावासियों और अपने परिकरोंके सहित श्रीरामके महाप्रयाणका विस्तृत वर्णन

अगस्त्य उवाच

तस्मात्सङ्गमतो विप्र पश्चिमे दिक्तटे स्थितम्।
सीताकुण्डमिति ख्यातं सर्वकामफलप्रदम्॥ १॥
यत्र स्नात्वा नरो विप्र सर्वपापैः प्रमुच्यते।
सीतया किल तत्कुण्डं स्वयमेव विनिर्मितम्।
रामेण वरदानाच्च महाफलनिधीकृतम्॥ २॥

अगस्त्यजीने कहा—हे विप्र! सरयू-तिलोदकी संगमसे पश्चिम दिशामें स्थित सर्वकामफलप्रद सीताकुण्ड विख्यात है। जहाँ स्नानकर मनुष्य सभी पापोंसे विमुक्त हो जाता है। भगवती श्रीसीताजीने स्वयमेव इस कुण्डका निर्माण कराया था और भगवान् श्रीरामके वरदानसे यह सीताकुण्ड महान् फलोंका कोष हो गया॥ १-२॥

श्रीराम उवाच

शृणु सीते प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं भुवि यादृशम्।
त्वत्कुण्डस्यास्य सुभगे त्वत्प्रीत्या कथयाम्यहम्॥ ३॥
अत्र स्नानं च दानं च जपो होमस्तपोऽथवा।
सर्वमक्षयतां याति विधानेन शुचिस्मिते॥ ४॥
मार्गकृष्णाचतुर्दश्यां तत्र स्नानं विशेषतः।
सर्वपापहरं देवि सर्वदा स्नायिनां नृणाम्॥ ५॥
इति रामो वरं प्रादात् सीतायै च प्रजाप्रियः।
तदाप्रभृति सर्वत्र तत्तीर्थं भुवि वर्तते॥ ६॥

सीताकुण्डमिति ख्यातं जनानां परमाद्भुतम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा नूनं राममवाप्नुयात्॥ ७॥
तत्र स्नानेन दानेन तपसा च विशेषतः।
गन्धैर्माल्यैर्धूपदीपैर्नाना विभवविस्तरैः।
रामं सम्पूज्य सीतां च मुक्तः स्यान्नात्र संशयः॥ ८॥
मार्गे मासि च स्नातव्यं गर्भवासो न जायते।
अन्यदाऽपि नरः स्नात्वा विष्णुलोकं स गच्छति॥ ९॥

श्रीरामने कहा—हे सीते! सुनो, पृथ्वीपर इस कुण्डका जैसा माहात्म्य है, उसे कहता हूँ। हे सुभगे! मैं तुम्हारी प्रीतिके वश होकर तुम्हारे इस कुण्डकी महिमा कह रहा हूँ। यहाँ स्नान, दान, जप-होम तथा तपस्या—ये सभी विधानपूर्वक करनेसे अक्षयत्वको प्राप्त हो जाते हैं। हे पवित्रस्मिते देवि! यहाँ अगहन कृष्ण चतुर्दशीको स्नानका विशेष पर्व है। यहाँ सर्वदा स्नान करनेवालोंके सभी पापोंका हरण हो जाता है। प्रजाप्रिय श्रीरामने सीताजीको इस प्रकारका वर प्रदान किया था; [अपने अलौकिक प्रभावके कारण] मनुष्योंके लिये परम विस्मयकारी यह तीर्थ तभीसे भूतलपर सर्वत्र 'सीताकुण्ड' इस नामसे विख्यात हुआ है। इस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य निश्चित ही भगवान् श्रीरामचन्द्रकी प्राप्ति करता है। यहाँपर स्नान-दान-तप आदिके अनुष्ठानसे और विशेषरूपसे अपनी समृद्धिके अनुरूप गन्ध-माला-धूप-दीप आदि अनेक उपचारोंके द्वारा श्रीसीतासहित श्रीरामका पूजनकर मनुष्य [भव-बन्धनसे] मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है। मार्गशीर्षमासमें स्नान करनेसे मनुष्यका पुनः गर्भवास नहीं होता है। अन्य समयमें भी यहाँ स्नान करनेपर विष्णुलोककी प्राप्ति होती है॥ ३—९॥

विभोर्विष्णुहरेर्विप्र रम्ये पश्चिमदिक्तटे।
देवश्चक्रहरिर्नाम सर्वाभीष्टफलप्रदः॥ १०॥

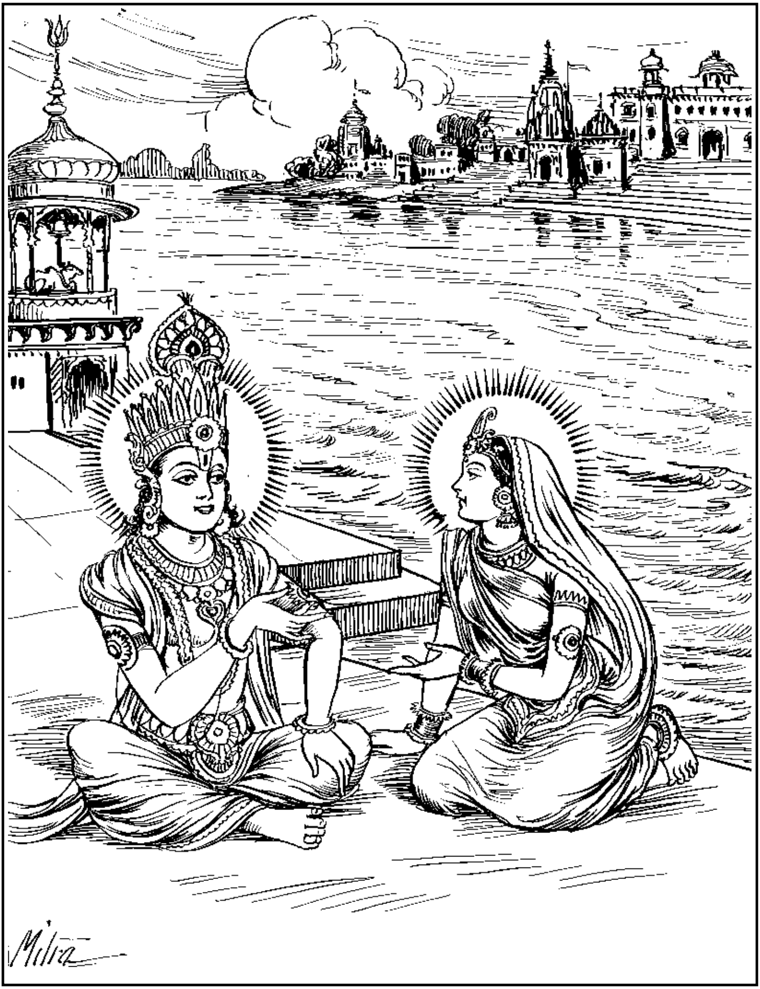

श्रीसीताजीद्वारा निर्मित कुण्डको श्रीरामद्वारा वरदान देना

तस्य चक्रहरेर्विप्र महिमा न हि मानवैः।
शक्यो वर्णयितुं धीरैरपि बुद्धिमताम्वरैः॥ ११॥
ततः पश्चिमदिग्भागे नाम्ना पुण्यहरिः स्मृतः।
विष्णोरायतनं ख्यातं परमार्थफलप्रदम्।
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १२॥
तयोर्दर्शनतो यान्ति तेषां पापानि देहिनाम्।
तानि पापानि यावन्ति कुर्वते भुवि ये नराः॥ १३॥

हे विप्र! विभु विष्णुहरिदेवके स्थानसे पश्चिम दिशामें सरयूतटपर भगवान् विष्णुका सर्वाभीष्टफलप्रद चक्रहरि नामक तीर्थ है। हे विप्र! उन चक्रहरिदेवकी महिमाका वर्णन तो ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ धीर मनुष्योंद्वारा भी अशक्य है। इस चक्रहरि तीर्थसे पूर्व भागमें श्रीविष्णुका पुण्यहरि नामक प्रसिद्ध स्थान है, जो परमार्थफलप्रद है, जिसके दर्शनमात्रसे सभी पापोंका विनाश हो जाता है। इन दोनों स्थलोंके दर्शनसे प्राणियोंके पापोंका नाश हो जाता है। मनुष्य इस भूतलपर जितने पाप कर सकते हैं, उनके उन सभी पापोंका नाश [इस तीर्थके सेवनसे] हो जाता है॥ १०—१३॥

पुरा देवासुरे जाते संग्रामे भृशदारुणे।
दैत्यैर्वरमदोत्सिक्तैर्देवा युधि पराजिताः॥ १४॥
तेषां पलायमानानां देवानामग्रणीर्हरः।
संस्तभ्य चैव तान् सर्वान् पुरस्कृत्याम्बुजासनम्॥ १५॥
क्षीरोदशायिनं विष्णुं शेषपर्यङ्कशायिनम्।
रत्नवल्लीमिव स्वच्छां श्वेतद्वीपनिवासिनीम्॥ १६॥
परां चतुर्मुखोत्पत्तिकल्पसंकल्पनामिव।
लक्ष्म्योपविष्टं पार्श्वे च चरणाम्बुजहस्तया॥ १७॥
नारदाद्यैर्मुनिवरैरुद्गीतगुणगौरवम्।
गरुडेन पुरःस्थेनानिशमंजलिना स्तुतम्॥ १८॥

क्षीराब्धिजलकल्लोलमदबिन्दूङ्किताम्बरम् ।
तारकोत्करविस्फारतारहारविराजितम् ॥ १९ ॥
पीताम्बरमतिस्मेरविकाशद्भावभावितम् ।
बिभ्रतं कुण्डलं स्थूलं कर्णाभ्यां मौक्तिकोज्ज्वलम् ॥ २० ॥
किरीटं पद्मरागाणां वलयं दधतं परम् ।
मित्रस्य राहुवित्रासनिवर्तनमिवाऽपरम् ॥ २१ ॥
सकौस्तुभप्रभाचक्रं बिभ्राणम्प्रवलारुणम् ।
शरणं स जगामाशु विनीतात्मा स्तुवन्निति ॥ २२ ॥
तस्मिन्नवसरे शम्भुः सर्वदेवगणैः सह ।
तुष्टाव प्रयतो भूत्वा विष्णुं जिष्णुं सुरद्विषाम् ॥ २३ ॥

पूर्वकालमें एक अतीव दारुण देवासुर-संग्राम हुआ था। वर पाकर मदोन्मत्त हुए असुरोंसे देवगण उस समरमें पराजित हो गये थे। [उस समय] देवताओंको भागते देखकर उनके अग्रणी शंकरजीने उनके इस पलायनको रोका तथा ब्रह्माजीको आगेकर उन्हें अपने साथ लेकर क्षीरसागरको गये, जहाँ भगवान् श्रीविष्णु शेष-पर्यंकपर शयन कर रहे थे। उन्हींके समीपमें रत्नोंकी लताके सदृश स्वच्छ कान्तिमती, श्वेतद्वीपनिवासिनी भगवती पराशक्तिरूपा महालक्ष्मी विराजमान थीं, जो कि चतुर्मुख ब्रह्माजीके आविर्भावरूप प्रयोजनकी साधिका साक्षात् भगवदिच्छा ही थीं। वहीं पार्श्व भागमें वे भगवती लक्ष्मी बैठकर अपने हाथोंसे उनके चरणकमलोंकी सेवा कर रही थीं। नारदादि ऋषिगण उनके उदार गुणोंका गान कर रहे थे। गरुड़जी उनके सम्मुख अहर्निश हाथ जोड़े हुए उपस्थित थे और उनकी स्तुति कर रहे थे। क्षीरसागरकी उत्ताल तरंगोंसे छिटकते बिन्दुकण उनके पीताम्बरको गीला कर रहे थे। छिटकते हुए तारागणोंके सदृश कान्तिमय मौक्तिक हार उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। वे पीतवासा प्रभु मन्द-मन्द मुसकुराते हुए शोभायमान थे तथा उस मन्द हास्यपर एक

मनोहर भावका विकास हो रहा था। उनके कानोंपर बड़ी-बड़ी मुक्तामणियोंके समान उज्ज्वल आभावाले कुण्डल सुशोभित थे तथा मस्तकपर उत्तम किरीट शोभायमान था, उन्होंने पद्मरागमणियोंसे निर्मित वलय धारण कर रखा था, जो कि ऐसा जान पड़ता था, मानो सूर्यके राहुजन्य भयको दूर करनेवाला कोई साधन हो। उन्होंने जो सुदर्शनचक्र धारण कर रखा था, वह कौस्तुभमणिकी प्रभाके कारण प्रवालके सदृश अरुणाभ प्रतीत हो रहा था। उस समय विनयपूर्वक शंकरजी सभी देवगणोंके साथ समीप आकर उनके शरणापन्न हो गये तथा स्तुतिका उपक्रम करने लगे। उन्होंने एकनिष्ठ होकर देववैरी असुरोंको जीतनेवाले श्रीविष्णुका इस प्रकार स्तवन किया— ॥ १४—२३ ॥

ईश्वर उवाच

संसारार्णवसंतारसुपर्णसुखदायिने ।
मोहतीव्रतमोहारिचन्द्राय हरये नमः ॥ २४ ॥

ईश्वरने कहा—जो संसारसागरसे समुद्धार करनेवाले तथा गरुड़जीको सुख प्रदान करनेवाले हैं, जो मोहरूप तीव्र अन्धकारका नाश करनेमें चन्द्रके सदृश समर्थ हैं, ऐसे श्रीहरिको प्रणाम है ॥ २४ ॥

स्फुरत्सम्विन्मणिशिखां चित्तसङ्गतिचन्द्रिकाम्।
प्रपद्ये भगवद्भक्तिं मानसोद्यानवाहिनीम्॥ २५ ॥
हेलोल्लसत्समुत्साहशक्तिं व्याप्तजगत्त्रयम्।
या पूर्वकोटिर्भावानां सत्त्वानां वैष्णवीति वा॥ २६ ॥
पवनान्दोलिताम्भोजदलपर्वान्तवर्तिनाम् ।
पतताामिव जन्तूनां स्थैर्यमेका हरिस्मृतिः॥ २७ ॥
नमः सूर्यात्मने तुभ्यं सम्वित्किरणमालिने।
हृत्कुशेशयकोषश्रीसमुन्मेषविधायिने ॥ २८ ॥
नमस्तस्मै यमवते योगिनां गतये सदा।
परमेशाय वै पारे महसां तमसां तथा॥ २९ ॥

यज्ञाय भुक्तहविष ऋग्यजुःसामरूपिणे।
नमः सरस्वतीगीतदिव्यसद्गुणशालिने॥ ३०॥

जिसमें आत्मविज्ञानरूपी मणिदीपकी लौ स्फुरित हो रही है, जो अन्तःकरणको उल्लसित, आह्लादित करनेमें चन्द्रिकाके सदृश है, जो खेल-खेलमें [चित्तके सहज धर्म] उत्साहको उच्छलित कर देनेमें समर्थ है, जिसने त्रिलोकीको [अपने अचिन्त्य प्रभावसे] परिव्याप्त कर रखा है, ऐसी उस अन्तःकरणरूपी उद्यानमें बहनेवाली भगवद्भक्तिरूपा मन्दाकिनीकी शरण लेता हूँ। जो समस्त सात्त्विक भावोंकी आदि जननी है, जो विष्णुकी परमशक्ति है, मैं उस भगवद्भक्तिका आश्रय लेता हूँ। कमलपत्रके अग्रभागमें स्थित तथा वायुके कारण चलायमान जलबिन्दुके सदृश विनाशधर्मा प्राणियोंकी स्थिरताका एकमात्र आश्रय भगवान् श्रीहरिकी स्मृति ही है। हृदयकमलकोषकी शोभाको उल्लसित करनेवाले तथा ज्ञानरूप किरणोंकी मालासे सुशोभित सूर्यस्वरूप आपको नमस्कार है। जो संयमनिष्ठ, योगियोंके लिये सर्वदा एकमात्र प्राप्य तथा [मायाकृत] प्रकाश एवं अन्धकारसे परे हैं, उन संयमशील परमेश्वरको नमस्कार है। [हे नारायण!] आप ही यज्ञ हैं और आप ही यज्ञभुक् हैं। आप ही ऋक्, यजुः तथा साम हैं। देवी सरस्वती अपने दिव्य गीतोंद्वारा आपके ही गौरवका गान करती हैं। हे सद्गुणशालिन्! आपको प्रणाम है॥ २५—३०॥

शान्ताय धर्मनिधये क्षेत्रज्ञायाऽमृतात्मने।
शिष्ययोगप्रतिष्ठाय नमो जीवैकहेतवे।
घोराय मायाविधये सहस्रशिरसे नमः॥ ३१॥
योगनिद्रात्मने नाभिपद्मोद्भूतजगत्सृजे।
नमः सलिलरूपाय कारणाय जगत्स्थितेः॥ ३२॥

कार्यमेयाय बलिने जीवाय परमात्मने।
गोप्त्रे प्राणाय भूतानां नमो विश्वाय वेधसे॥ ३३॥
दृप्ताय सिंहवपुषे दैत्यसंहारकारिणे।
वीर्यायाऽनन्तमनसे जगद्भावभृते नमः॥ ३४॥
संसारकारणाज्ञानमहासन्तमसश्छिदे ।
अचिन्त्यधाम्ने गुह्याय रुद्रायात्युद्विजे नमः॥ ३५॥
शान्ताय शान्तकल्लोलकैवल्यपददायिने।
सर्वभावातिरिक्ताय नमः सर्वमयात्मने॥ ३६॥
इन्दीवरदलश्यामं स्फूर्जत्किंजल्कविभ्रमम्।
बिभ्राणं कौस्तुभं विष्णुं नौमि नेत्ररसायनम्॥ ३७॥

शान्त, धर्मनिधि, क्षेत्रज्ञ, अमृतात्मा और जीवसमूहके एकमात्र कारणरूप तथा [भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादिकी अभीप्सावाले अधिकारी] शिष्योंमें [तत्तद्] योगोंको प्रतिष्ठित करनेवाले आपको प्रणाम है। घोर स्वरूपवाले तथा मायाके प्रवर्तक आप सहस्रशीर्षाको प्रणाम है। योगनिद्राका आश्रय लेनेवाले, अपने नाभिपद्मसे जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीको उत्पन्न करनेवाले, [सृष्टिसे पूर्व] कारणसलिलके रूपमें विद्यमान तथा सतत चलायमान जगत्को व्यावहारिक स्थिरता प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है। कार्यरूप जगत्प्रपंचको देखकर जिनका कर्तृरूपमें अनुमान किया जाता है, जो बलके अधिष्ठान हैं, जीवस्वरूप हैं, रक्षक हैं, प्राणियोंके प्राणरूप हैं, विश्वस्रष्टा हैं और विश्वरूप भी हैं, ऐसे आप परमात्माको नमस्कार है। नृसिंहरूप धारण करके दर्पित हो दितिपुत्र हिरण्यकशिपुका संहार करनेवाले, शक्तिस्वरूप, अनन्त अन्तःकरणरूप तथा समस्त लोकप्रपंचको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। अनित्य [हो करके भी नित्यवत् प्रतीत होनेवाला] तथा संसारका कारणभूत जो अज्ञानरूप महान् अन्धकार है, उसका उच्छेद करनेवाले, अचिन्तनीय तेज

अथवा धामवाले, [अज्ञानियोंके लिये] गुह्य स्वरूपवाले तथा [लोकको अपने प्रभावसे] उद्विग्न कर देनेवाले रुद्ररूप आपको नमस्कार है। शान्त स्वरूपवाले, विक्षेपशून्य कैवल्यपदके प्रदायक तथा समस्त सत्ताओं (या कि व्यापारों)-से परे सर्वात्मस्वरूप आपको नमस्कार है। जो नीलकमलके समान श्यामल वर्णवाले हैं और चमकते हुए केसरके सदृश शोभायमान कौस्तुभमणि धारण किये हैं। जो नेत्रोंके लिये रसायनरूप हैं, ऐसे आप श्रीविष्णुको प्रणाम है॥ ३१—३७॥

अगस्त्य उवाच

इति स्तुतः प्रसन्नात्मा वरदो गरुडध्वजः।
ववर्ष दृष्टिसुधया सर्वान् देवान् कृपान्वितः।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयावनतान् सुरान्॥ ३८॥

अगस्त्यजीने कहा—वरदाता, गरुडध्वज श्रीहरि इस प्रकार स्तुत होनेपर प्रसन्नतासे भर गये तथा उन्होंने सभी उपस्थित देवोंपर कृपापूर्वक अपनी दृष्टिसुधाकी वर्षा की। तत्पश्चात् अत्यन्त विनयभावसे नतमस्तक हुए देवोंसे श्रीभगवान् इस प्रकार मधुर वाणीमें कहने लगे—॥ ३८॥

श्रीभगवानुवाच

जानामि विबुधाः सर्वमभिप्रायं समाधितः।
दैतेयैर्विक्रमाक्रान्तं पदं समरदर्पितैः॥ ३९॥
सबलैर्बलहीनानां प्रतापो विजितः परैः।
साम्प्रतं तु विधास्यामि तपो युष्मद्बलाय वै॥ ४०॥
अयोध्यानगरे गत्वा करिष्ये तप उत्तमम्।
गुप्तो भूत्वा भवत्तेजोविवृद्ध्यै दैत्यशान्तये॥ ४१॥
भवन्तोऽपि तपस्तीव्रं कुर्वन्त्वमलमानसाः।
अयोध्यां प्राप्य तां देवा दैत्यनाशाय सत्वरम्॥ ४२॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवो! मैंने समाधिके द्वारा [पूर्वमें ही] समस्त अभिप्राय जान लिया था, दैत्योंने अपने पराक्रमसे समरभूमिमें दर्पित होकर तुम्हारे पदको छीन लिया है। यह स्वाभाविक है कि निर्बलोंको सबल शत्रु अपने बलप्रयोगसे परास्त कर देते हैं। अब मैं तुम लोगोंकी बलवृद्धिके लिये तपोरूप उपाय करूँगा। दैत्योंको शमित करने और आप लोगोंके पराक्रमकी वृद्धिके लिये मैं गुप्त रूपसे अयोध्यापुरीमें उत्कृष्ट तपस्या करूँगा। हे देवगण! आपलोग भी शीघ्र ही उस अयोध्यामें जाकर पवित्र अन्तःकरणपूर्वक असुरोंके नाशहेतु तीव्र तपस्या करें॥ ३९—४२॥

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवान् देवो गरुडवाहनः।
अयोध्यामागतः क्षिप्रं चकार तप उत्तमम्॥ ४३॥
गुप्तो भूत्वा यदा विद्वन् सुरतेजोऽभिवृद्धये।
तेन गुप्तहरिर्नाम देवो विख्यातिमागतः॥ ४४॥
आगतस्य हरेः पूर्वं यत्र हस्ततलाच्च्युतम्।
सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं तेन चक्रहरिः स्मृतः॥ ४५॥
तयोर्दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।

अगस्त्यजीने कहा—देवाधिदेव गरुड़वाहन श्रीविष्णु देवोंसे ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये तथा शीघ्र ही अयोध्याधाममें आकर उत्तम तपका अनुष्ठान करने लगे। हे विद्वन्! देवोंकी तेजोऽभिवृद्धिहेतु गुप्त होकर श्रीहरिने तप किया था, इसलिये वे गुप्तहरिके नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके आगमनकालमें उस स्थानपर उनके हस्ततलसे सुदर्शन चक्र छूटकर गिरा था, इसीलिये वह [स्थान चक्रहरितीर्थ कहलाया और] विष्णुविग्रह ‘चक्रहरि’ इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। इन दोनों गुप्तहरि तथा चक्रहरिके दर्शनमात्रसे

मनुष्य समस्त पापोंसे विमुक्त हो जाता है॥ ४३—४५ $^{1}/_{2}$ ॥

हरेस्तेन प्रभावेण देवाः प्रबलतेजसा॥ ४६॥
जित्वा दैत्यान् रणे सर्वान् सम्प्राप्य स्वपदान्यथ।
रेजिरे विपुलानन्दैरसुरानार्दयंस्ततः॥ ४७॥
ततः सर्वे समेत्याशु बृहस्पतिपुरस्सराः।
देवाः सर्वेऽनमन्मौलिमालार्चितपदाम्बुजम्।
हरिं द्रष्टुमथागच्छन्नयोध्यायां समुत्सुकाः॥ ४८॥
आगत्य च ततः श्रुत्वा नानाविधगुणादरम्।
भावपुष्पैः समभ्यर्च्य नत्वा प्राञ्जलयस्तदा।
हरिमेकाग्रमनसा ध्यायन्तो ध्याननिष्ठिताः॥ ४९॥
तानागतान् समालोक्य परभक्त्या कृतानतीन्।
प्रसन्नः प्राह विश्वात्मा पीतवासा जनार्दनः॥ ५०॥

तदनन्तर भगवान् श्रीहरिके उस तपःप्रभावसे देवोंने प्रबल तेजसे सम्पन्न होकर युद्धमें असुरगणोंको परास्त करके पुनः अपने-अपने पदोंको प्राप्त कर लिया और इस प्रकार असुरोंको पूर्णरूपसे ध्वस्त करके सुखातिशयका अनुभव करते हुए देवगण शोभित होने लगे। तदुपरान्त बृहस्पतिजीको आगे करके वे सभी देवगण भक्तोंके द्वारा मस्तकोंको अवनत करके पूजे गये चरणकमलोंवाले भगवान् श्रीहरिके दर्शनहेतु शीघ्र ही एक साथ उत्सुकतापूर्वक अयोध्यामें उपस्थित हुए। यहाँ आकर उन्होंने आदरपूर्वक प्रभुके गुणगौरवका श्रवण किया तथा अंजलि बाँधकर भावपुष्पोंके द्वारा नतमस्तक हो उनका सम्यक् अर्चन किया। तत्पश्चात् एकाग्र मनसे वे श्रीहरिके ध्यानमें निरत हो गये। अतिशय भक्तिपूर्वक समागत देवोंको अपने चरणोंमें नतमस्तक हुआ देखकर विश्वात्मा पीताम्बरधारी भगवान् जनार्दनने प्रसन्नतापूर्वक ऐसा कहा—॥ ४६—५०॥

श्रीभगवानुवाच

भो भो देवा भवन्तश्च चिराद् दिष्ट्याद्य संगताः।
अधुना भवतामिच्छां कां करोमि सुरा अहम्।
तद्ब्रूत त्वरिता मह्यं किं विलम्बेन निर्भयाः॥ ५१॥

हे देवगण! भाग्यवश आज बहुत दिनोंके पश्चात् आप लोगोंसे मिलन हुआ है। हे देवो! इस समय मैं आप लोगोंकी किस इच्छाकी पूर्ति करूँ? निर्भय होकर मुझसे शीघ्र कहो, विलम्ब मत करो॥ ५१॥

देवा ऊचुः

भगवन् देवदेवेश त्वया सम्प्रति सर्वशः।
सर्वं समभवत्कार्यं निष्पन्नं वै जगत्पते॥ ५२॥
तथापि सर्वदा भाव्यं नित्यं देव त्वया विभो।
अस्मद्रक्षार्थमत्रैव विजितेन्द्रियवर्त्मना॥ ५३॥
एवमेव सदा कार्यं शत्रुपक्षविनाशनम्॥ ५४॥

देवोंने कहा—हे देवाधिदेव भगवन्! हे जगत्पते!! निश्चित ही आपके द्वारा हमारे सभी कार्य भलीभाँति सम्पन्न हो गये, तथापि हे विभो! हम लोगोंके रक्षाहेतु आप यहीं सदाके लिये स्थित हो जायँ और इसी प्रकार आप सावधान होकर हमारे शत्रुपक्षका सदा ही विनाश करते रहें॥ ५२—५४॥

श्रीभगवानुवाच

एवमेतत्करिष्यामि भवतामरिसंक्षयम्।
श्रीमतां तेजसो वृद्धिं करिष्यामि सदा सुराः॥ ५५॥
कथेयं च सदा ख्यातिं लोके यास्यति चोत्तमाम्।
अयं नाम्ना गुप्तहरिर्देवो भुवनविश्रुतः॥ ५६॥
मदीयं परमं गुह्यं स्थानं ख्यातिं समेष्यति।
अत्र यः प्राणिनां श्रेष्ठः पूजायज्ञजपादिकम्॥ ५७॥

करोति परया भक्त्या स याति परमां गतिम्।
अत्र यः कुरुते दानं यथाशक्त्या जितेन्द्रियः॥ ५८॥
स स्वर्गमतुलं प्राप्य न शोचति कदाचन।
अत्र मत्प्रीतये देवाः प्राणिभिर्धर्मकाङ्क्षिभिः॥ ५९॥
दातव्या गौः प्रयत्नेन सवत्सा विधिपूर्वकम्।
स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरी वस्त्रद्वयसमावृता॥ ६०॥
कांस्योपदोहना ताम्रपृष्ठी बहुगुणान्विता।
रत्नपुच्छा दुग्धवती घण्टाभरणभूषिता॥ ६१॥

श्रीभगवान्‌ने कहा— हे देवो! मैं ऐसा ही करूँगा। आप लोगोंके तेजकी वृद्धि और आपके शत्रुओंका संहार मैं निरन्तर करता रहूँगा। लोकमें यह कथा सदाके लिये परम प्रसिद्धि प्राप्त करेगी। मेरा गुप्तहरि नामक यह विग्रह भुवन-विश्रुत होगा तथा मेरा यह परम गुह्य स्थान सम्यक् रूपसे प्रसिद्ध होगा। जो बड़भागी पुरुष इस स्थानपर पूजा-यज्ञ-जपादिक कर्म परमभक्तिके साथ करेगा, वह सर्वोत्तम गतिको प्राप्त करेगा। जो जितेन्द्रिय मानव यथाशक्ति यहाँ दान करता है, वह उस अतुलनीय स्वर्गकी प्राप्ति करता है, जिसे प्राप्त कर लेनेके बाद कभी शोक नहीं होता। हे देवताओ! धर्माभिलाषी जनोंको चाहिये कि वे यहाँपर मेरी प्रसन्नताके लिये विधिके अनुसार प्रयत्नपूर्वक सवत्सा गौका दान करें। उस गौके सींग सुवर्णमण्डित हों और खुर रजतमण्डित हों। उसे घण्टा आदि अलंकरणों तथा दो वस्त्रोंसे विभूषित करना चाहिये। उसकी पीठको ताम्र एवं पूँछको रत्नोंसे मण्डित करना चाहिये। वह दूध देनेवाली और बहुत-से उत्तम लक्षणोंसे समन्वित हो। गौके साथ काँसेका दोहनपात्र भी दिया जाना चाहिये॥ ५५—६१॥

अर्चिता गन्धपुष्पाद्यैः सुप्रसन्नाऽमृतप्रजा।
द्विजाय वेदविज्ञाय गुणिने निर्मलात्मने॥ ६२॥

विष्णुभक्ताय विदुषे आनृशंस्यरताय च।
ब्राह्मणाय च गौर्देया सर्वत्र सुखमश्नुते॥ ६३॥
न देया द्विजमात्राय दातारं सोऽवपातयेत्॥
मत्प्रीतयेऽत्र दातव्या निर्मलेनान्तरात्मना॥ ६४॥

इस प्रकारके लक्षणों तथा उपकरणोंसे समन्वित प्रसन्न मनवाली जीवितवत्सा गौकी गन्ध-पुष्पादिसे पूजा करके उसे वेदवेत्ता, सद्‌गुणसम्पन्न तथा निर्मल चित्तवाले द्विजको प्रदान करना चाहिये। दयाधर्मका आचरण करनेवाले, विद्वान् एवं विष्णुभक्त ब्राह्मणको ही गौ प्रदान करे। ऐसा करनेपर देनेवालेको सर्वत्र सुखकी प्राप्ति होती है। [ब्राह्मणोचित आचारसे रहित] केवल जातिमात्रसे ब्राह्मणको गोदान न करे; क्योंकि वह दाताको नरकगामी बना देता है। इस तीर्थमें मेरी प्रसन्नताके लिये निर्मल चित्तसे अवश्य ही गोदान करे॥ ६२—६४॥

स्नातं यैश्च विशुद्ध्यर्थमत्र मद्भक्तितत्परैः।
तेषां स्वर्गतयो नित्यं मुक्तिः करतले स्थिता॥ ६५॥

जो हमारी भक्तिमें तत्पर होकर आत्मविशुद्धिके लिये यहाँ स्नान करता है, उसे स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति होती है तथा मुक्ति तो सदैव उसके करतलमें ही स्थित है॥ ६५॥

तथा चक्रहरेः पीठे मत्प्रीत्यै दानमुत्तमम्।
जपहोमादिकं चापि कर्तव्यं यत्नतो नरैः॥ ६६॥
भवन्तोऽपि विधानेन यात्रां कुर्वन्तु सत्तमाः।
अस्माद् गुप्तहरेः स्थानान्निकटे सङ्गमे शुभे॥ ६७॥
प्रत्यग्भागे गोप्रताराद् योजनत्रयसंमिते।
घर्घराम्बुतरङ्गिण्या सरयूः सङ्गता यतः॥ ६८॥
अत्र स्नात्वा विधानेन द्रष्टव्योऽत्र प्रयत्नतः।
देवो गुप्तहरिर्नाम सर्वकामार्थसिद्धिदः॥ ६९॥

इस प्रकार मेरी प्रीतिके लिये मनुष्योंको चक्रहरिपीठपर जप, होम, दान आदि उत्तम कर्म करने चाहिये। हे श्रेष्ठजनो! आप लोग भी विधानके साथ तीर्थयात्रा करें। इस गुप्तहरि स्थानसे निकट ही पश्चिमकी ओर गोप्रतारघाटसे तीन योजनकी दूरीपर घर्घरा नामक नदीके साथ जहाँ सरयू नदीका संगम होता है, वहाँ विधानपूर्वक स्नानकर प्रयत्नपूर्वक गुप्तहरिदेवका दर्शन करना चाहिये। इससे सभी कामनाओंकी सिद्धि होती है॥ ६६—६९॥

अगस्त्य उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः पीताम्बरधरोऽच्युतः।
देवा अपि विधानेन कृत्वा यात्रां प्रयत्नतः॥ ७०॥
अयोध्यायां स्थिता नित्यं हरेर्गुणविमोहिताः।
तदाप्रभृति विप्रेन्द्र तत्स्थानं भुवि पप्रथे॥ ७१॥
कार्तिक्यां तु विशेषेण यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
विभोर्गुप्तहरेस्तत्र सङ्गमस्नानपूर्विका॥ ७२॥
गोप्रतारे च तीर्थेऽस्मिन् सरयूघर्घराश्रिते।
स्नात्वा देवोऽर्चनीयोऽयं सर्वकामफलप्रदः॥ ७३॥
तथा चक्रहरेर्यात्रा कर्तव्या सुप्रयत्नतः।
मार्गशीर्षस्य विशदे पक्षे हरितिथौ नरैः।
एवं यः कुरुते यात्रां विष्णुलोके स मोदते॥ ७४॥

अगस्त्यजीने कहा—यह कहकर पीताम्बरधर अच्युतदेव वहीं अन्तर्धान हो गये। देवगणने भी प्रयत्नपूर्वक यथाविधान इस स्थानकी यात्रा की। यात्रा सम्पन्न करनेके पश्चात् श्रीहरिके गुणोंमें अनुरक्त हो वे देवता अयोध्यामें सदाके लिये स्थित हो गये। हे विप्रेन्द्र! तभीसे यह तीर्थ पृथ्वीपर प्रसिद्ध हो गया। कार्तिकमासमें तो विशेषकर यहाँकी साम्वत्सरी (वार्षिकी) यात्रा होती है। वार्षिकी यात्राके क्रममें सर्वव्यापक गुप्तहरि [-का दर्शन] और

गोप्रतारतीर्थ (गुप्तारघाट) तथा सरयू-घाघरा-संगममें स्नानकर श्रीहरिकी पूजा करनेसे सभी कामनाएँ फलीभूत होती हैं। मार्गशीर्षमासकी शुक्ला एकादशीके दिन जो मनुष्य चक्रहरितीर्थकी यात्रा करता है, उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है॥ ७०—७४॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा तु विरते मुनौ कलशजन्मनि।
कृष्णद्वैपायनो व्यासः पुनराह सविस्मयः॥ ७५॥

सूतजीने कहा—कलशयोनि मुनि अगस्त्यजी ऐसा कहकर मौन हो गये, तब श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव पुनः विस्मयपूर्वक कहने लगे॥ ७५॥

व्यास उवाच

अत्याश्चर्यमयीं ब्रह्मन् कथामेतां तपोधन।
उक्तवानसि येनैतत्साश्चर्यं मम मानसम्॥ ७६॥
विस्तरेण मम ब्रूहि माहात्म्यं परमाद्भुतम्॥ ७७॥
शृणु सङ्गममाहात्म्यं विप्रेन्द्र परमाद्भुतम्।
स्कन्ददेवाच्छ्रुतं सम्यक्कथयामि तथा तव॥ ७८॥
दशकोटिसहस्राणि दशकोटिशतानि च।
तीर्थानि सरयूनद्या घर्घरोदकसङ्गमे।
निवसन्ति सदा विप्र स्कन्दादवगतं मया॥ ७९॥
देवतानां सुराणां च सिद्धानां योगिनां तथा।
ब्रह्मविष्णुशिवानां च सान्निध्यं सर्वदा स्थितम्॥ ८०॥
तस्मिन् सङ्गमसलिले नरः स्नात्वा समाहितः।
सन्तर्प्य पितृदेवाँश्च दत्वा दानं स्वशक्तितः॥ ८१॥
हुत्वा वैष्णवमन्त्रेण शुचिर्यत्फलमाप्नुयात्।
तदिहैकमना विप्र शृणु यत्कथयामि ते॥ ८२॥

व्यासजीने कहा—हे ब्रह्मन्! हे तपोधन अगस्त्यजी! आपने

जो यह अत्यन्त अद्भुत कथाका वर्णन किया है, इसे सुनकर मुझे मनमें आश्चर्य हो रहा है। अब आप [कृपापूर्वक] इस संगमके परम अद्भुत माहात्म्यको विस्तारसे कहिये। [तब अगस्त्यजीने कहा] हे विप्रेन्द्र! इस विस्मयजनक संगममाहात्म्यको आप सुनिये, इसे स्कन्ददेवसे मैंने सुना था, वही आपसे भली-भाँति कह रहा हूँ। हे विप्र! मैंने भगवान् स्कन्दसे सुना था कि इस घाघरा-सरयूसंगममें एकादश सहस्र कोटि तीर्थ सदा विद्यमान रहते हैं। सभी देवता, देवियाँ, सिद्ध, योगी और ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश यहाँ सर्वदा स्थित रहते हैं। [हे विप्र!] पवित्र और समाहित मनवाले लोग इस संगमसलिलमें स्नानकर, देव-पितृतर्पण तथा यथाशक्ति दान देकर और वैष्णव मन्त्रसे होम करके जिस फलकी प्राप्ति करते हैं, वह आपसे कह रहा हूँ॥ ७६—८२॥

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च।
कुरुक्षेत्रे महाक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे।
सुवर्णदाने यत्पुण्यमहन्यहनि तद्भवेत्॥ ८३॥
अमावास्यां पौर्णमास्यां द्वादश्योरुभयोरपि।
अयने च व्यतीपाते स्नानं वैष्णवलोकदम्॥ ८४॥

एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और एक सौ वाजपेय यज्ञ तथा महाक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय स्वर्णदानद्वारा जो फल प्राप्त होता है, वह फल यहाँपर प्रतिदिन [स्नानादि करनेपर] प्राप्त होता है। अमावस्या, पूर्णिमा, मासके दोनों पक्षोंकी द्वादशियाँ, अयन और व्यतीपात योग—इन अवसरोंपर इस संगमजलमें स्नान करना विष्णुलोकप्रद है॥ ८३-८४॥

तिष्ठेद् युगसहस्रं तु पादेनैकेन यः पुमान्।
विधिवत् सङ्गमे स्नायात् पौष्यां तदविशेषतः॥ ८५॥
लम्बतेऽर्वाक्छिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान्।

स्नातानां शुचिभिस्तोयैः सङ्गमे प्रयतात्मनाम्।
व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि॥ ८६॥
पौषे मासि विशेषेण स्नानं बहुफलप्रदम्॥ ८७॥

जो मनुष्य एक पैरसे सहस्र युगपर्यन्त खड़े रहकर तपस्या करे तो जो लाभ उसे प्राप्त होता है, उसीके समान लाभ पौषपूर्णिमाके दिन मात्र एकबार इस संगमजलमें यथाविधि स्नान करके वह प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य दस हजार युगपर्यन्त सिरको नीचे लटकाकर तपस्याका फललाभ करता है, उसीके समान फललाभ इस संगमके पवित्र जलमें स्नानसे मिल जाता है। यहाँपर [स्नानादि करनेसे] जो व्युष्टि अर्थात् परिणामकी उपलब्धि होती है, वह सैकड़ों महायज्ञोंसे भी नहीं हो पाती। विशेषतः पौषमासमें यहाँका स्नान बहुफलप्रद है॥ ८५—८७॥

पौषे मासि विशेषेण यः कुर्यात् स्नानमादृतः।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा वर्णसङ्करः॥
स याति ब्रह्मणः स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम्॥ ८८॥
पौषे मासि तु यो दद्याद् घृताढ्यं दीपमुत्तमम्।
विधिवच्छ्रद्धया विप्र शृणु तस्यापि यत्फलम्॥ ८९॥

विशेषकर पौषमासमें आदरपूर्वक जो कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा वर्णसंकर भी स्नान करता है, वह पुनरावृत्तिसे वर्जित ब्रह्मलोककी प्राप्ति कर लेता है। जो व्यक्ति पौषमासमें विधिपूर्वक श्रद्धाके साथ घृतसे पूरित उत्तम दीपदान करता है, हे विप्र! उसका भी फल सुनो॥ ८८-८९॥

नानाजन्मार्जितं पापं स्वल्पं बह्वपि वा भवेत्।
तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं तोयस्थं लवणं यथा॥ ९०॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं सन्ततीः सौख्यमुत्तमम्।
प्राप्नोति फलदं नित्यं दीपदः पुण्यभाङ् नरः॥ ९१॥

यस्तु शुक्लत्रयोदश्यां पौषेऽत्र प्रयतो व्रती।
जागरं कुरुते धीरः स गच्छेद् भवनं हरेः॥ ९२॥

अल्प हो या अधिक हो, उसका नानाजन्मार्जित पाप जलमें स्थित लवणके समान विनष्ट हो जाता है। इस तीर्थमें नित्य दीपदान करनेवाला व्यक्ति पुण्यभाजन होकर आयु-आरोग्य, ऐश्वर्य, सन्तति और उत्तम सुख प्राप्त करता है। उसके क्रियाकलाप फलप्रद हो जाते हैं। पौष शुक्ल त्रयोदशीके दिन जो व्यक्ति व्रतयुक्त होकर एकाग्रचित्तसे जागरण (रात्रिजागरण) करता है, उस धीर पुरुषको वैकुण्ठपदकी प्राप्ति होती है॥ ९०—९२॥

जागरं विदधद्रात्रौ दीपं दत्वा तु सर्वशः।
होमं च कारयेद्विप्रो नियतात्मा शुचिव्रतः॥ ९३ ॥
वैष्णवो विष्णुपूजां च कुर्वञ्छृण्वन् हरेः कथाम्।
गीतवादित्रनृत्यैश्च विष्णुतोषणकारकैः॥
कथाभिः पुण्ययुक्ताभिर्जागृयाच्छर्वरीं नरः॥ ९४ ॥
ततः प्रभाते विमले स्नात्वा विधिवदादरात्।
विष्णुं सम्पूज्य विप्रांश्च देयं स्वर्णादि शक्तितः॥ ९५ ॥

इस तीर्थमें रात्रिमें सर्वत्र दीपदान करके जागरण करना चाहिये। नियतात्मा एवं पवित्र व्रतधारी मनुष्य यहाँ ब्राह्मणके द्वारा होम कराये और वह विष्णुभक्त मनुष्य विष्णुकी पूजा करे, तदनन्तर भगवान् विष्णुकी लीलाकथाओंको सुने। इस अवसरपर गीत-वाद्य तथा नृत्य आदिसे विष्णुको सन्तुष्ट करना चाहिये तथा मनुष्यको पुण्यमयी विष्णुकथाएँ सुनते हुए समस्त रात्रि व्यतीत करके विमल प्रभातकालमें यथाविधि स्नान करके भगवान् विष्णु तथा विप्रगणकी पूजा करनी चाहिये और यथाशक्ति स्वर्ण आदिका दान करना चाहिये॥ ९३—९५॥

स्वर्णं चाऽन्नं च वासांसि यो दद्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः।
सङ्गमे विधिवद् विद्वान् स याति परमां गतिम्॥ ९६ ॥

जो मानव इस संगमतीर्थमें श्रद्धापूर्वक विधिवत् स्वर्ण, अन्न तथा वस्त्रोंका दान करता है, वह परमगतिका लाभ प्राप्त करता है ॥ ९६ ॥

वर्षे वर्षे तु कर्तव्यो जागरः पुण्यतत्परैः।
हरिः पूज्यो द्विजाः सम्यक् सन्तोष्याः शक्तितो नरैः॥ ९७ ॥
तेन विष्णोः परा तुष्टिः पापानि विफलानि च।
भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात्॥ ९८ ॥

इस जागरणोत्सवको सत्कर्मपरायण मनुष्य प्रतिवर्ष करे। जागरणके उपलक्ष्यमें हरिपूजन तथा यथाशक्ति द्विजोंका सन्तोषसाधन करना चाहिये। इसे करनेसे श्रीविष्णुको परमसन्तुष्टि होती है और जैसे गरुड़को देखकर सर्पोंका विष नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इस जागरणादिरूप व्रताचरणके द्वारा मानवका कलुषनाश हो जाता है॥ ९७-९८॥

तत्र स्नातो दिवं याति तत्र स्नातः सुखी भवेत्॥ ९९ ॥
त्रिषु लोकेषु ये केचित्प्राणिनः सर्व एव ते।
तर्प्यमाणाः परां तृप्तिं यान्ति सङ्गमजैर्जलैः॥ १०० ॥

इस संगममें स्नान करनेसे स्वर्गलाभ होता है और मनुष्य सुखी हो जाता है। त्रैलोक्यमें जितने भी प्राणी हैं, उनके लिये संगमके जलसे तर्पण किये जानेपर वे सभी परम तृप्तिको प्राप्त करते हैं॥ ९९-१००॥

भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम्।
गतिमन्वेषमाणानां न सङ्गमसमा गतिः॥ १०१ ॥
सप्तावरान् सप्त परान् पुरुषश्चात्मना सह।
पुंसस्तारयते सर्वान् सङ्गमे स्नानमाचरन्॥ १०२ ॥

[आधिभौतिकादि त्रिविध] दुःखोंसे व्यथित चित्तवाले और मोक्षके अनुसन्धानमें तत्पर समस्त प्राणियोंके लिये संगमसे विशिष्ट कोई भी उपलब्धि नहीं है। इस संगममें स्नान करके मनुष्य अपने साथ-

साथ अपनी पूर्वकी सात पीढ़ियों और बादमें होनेवाली सात पीढ़ियोंके समस्त पूर्वजों तथा वंशजोंका उद्धार कर देता है॥ १०१-१०२॥

जात्यन्धैरिह ते तुल्यास्तथा पंगुभिरेव च।
समेत्याऽत्र च न स्नान्ति सरयूघर्घरसङ्गमे॥ १०३॥
वर्णानां ब्राह्मणो यद्वत्तथा तीर्थेषु सङ्गमः।
सरयूघर्घरायोगे वैष्णवस्थो नरः सदा॥ १०४॥
अत्र स्नानेन दानेन यथाशक्त्या जितेन्द्रियः।
होमेन विधियुक्तेन नरः स्वर्गमवाप्नुयात्॥ १०५॥

जो लोग यहाँ पहुँचकर सरयू-घाघरा संगमतीर्थमें स्नान नहीं करते, वे मानो जन्मसे ही अन्धे और लँगड़े लोगोंके तुल्य हैं। जिस प्रकार वर्णोंमें ब्राह्मण वरिष्ठ है, वैसे ही सभी तीर्थोंमें संगम श्रेष्ठ है। सरयूघाघरासंगममें स्नान किया हुआ मनुष्य तो मानो सर्वदा वैकुण्ठमें ही स्थित है। जितेन्द्रिय मानव इस संगमतीर्थमें यथाशक्ति सविधि स्नान-दान तथा होम करके स्वर्गलाभ प्राप्त करते हैं॥ १०३—१०५॥

नरो वा यदि वा नारी विधिवत्स्नानमाचरेत्।
स्वर्गलोकनिवासो हि भवेत्तस्य न संशयः॥ १०६॥
यथा वह्निर्दहेत् सर्वं शुष्कमार्द्रमथाऽपि वा।
भस्मीभवन्ति पापानि तत्समागममज्जनात्॥ १०७॥

पुरुष अथवा नारी कोई भी हो, वह संगममें सविधि स्नान करके स्वर्गलोकमें स्थिति प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। जैसे अग्नि शुष्क तथा आर्द्र सभी प्रकारके काष्ठको दग्ध कर देती है, उसी प्रकार सरयू-घाघरा-संगममें स्नान करनेसे पापसमूह भस्म हो जाते हैं॥ १०६-१०७॥

एकतः सर्वतीर्थानि नानाविधफलानि वै।
सरयूघर्घरोत्पन्नसङ्गमस्त्वधिको भवेत्॥ १०८॥
सर्वतीर्थावगाहस्य फलं यादृक् स्मृतं श्रुतौ।
तादृक्फलं नृणां सम्यग्भवेत् सङ्गममज्जनात्॥ १०९॥

एक ओर नानाविध फल प्रदान करनेवाले समस्त तीर्थ हों और दूसरी ओर सरयू-घाघरा संगम हो, तो [फलाधिक्यकी दृष्टिसे] संगम ही अधिक फलप्रद हो सकेगा। वेदोंमें समस्त तीर्थोंमें स्नानका जो फल कहा गया है, इस संगममें अवगाहन करके मानव उसीके समान फल प्राप्त कर लेते हैं॥ १०८-१०९॥

गोप्रताराभिधं तीर्थमपरं वर्ततेऽनघ।
सन्निधौ सङ्गमस्यैव महापातकनाशनम्॥ ११०॥

हे अनघ! गोप्रतार नामक जो अन्य एक तीर्थ इस संगमके पास विद्यमान है, यह भी उसी संगमतीर्थ-जैसा महापातकनाशक है॥ ११०॥

यत्र स्नानेन दानेन न शोचति नरः क्वचित्।
गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥ १११॥
वाराणस्यां यथा विद्वन् वर्तते मणिकर्णिका।
उज्जयिन्यां यथा विप्र महाकालनिकेतनम्॥ ११२॥
नैमिषे चक्रवापी तु यथा तीर्थतमा स्मृता।
अयोध्यायां तथा विप्र गोप्रताराभिधं महत्॥ ११३॥

मानव यहाँ स्नान तथा दान कर लेनेपर कभी भी शोकग्रस्त नहीं होता। गोप्रतारके समान पुण्यतीर्थ अन्यत्र कहीं भी नहीं हुआ है और होगा भी नहीं। हे विद्वन्! जैसे वाराणसीमें मणिकर्णिकातीर्थ है, हे विप्र! उज्जयिनीमें जिस प्रकारसे महाकालमन्दिर है और जिस प्रकार नैमिषारण्यमें उत्तम चक्रवापी तीर्थ है, उसी प्रकार अयोध्यामें गोप्रतार नामक महातीर्थ है॥ १११—११३॥

यत्र रामाज्ञया विद्वन् साकेतनगरीजनाः।
अवापुः स्वर्गमतुलं निमज्ज्य परमाम्भसि॥ ११४॥

हे विद्वन्! श्रीरामकी आज्ञासे साकेतनगरवासी (अयोध्यावासी) मनुष्योंने इस गोप्रतारतीर्थके विमल जलमें स्नान करके अतुलनीय स्वर्गलोकको प्राप्त किया था॥ ११४॥

व्यास उवाच

अवापुस्ते कथं स्वर्गं साकेतनगरीजनाः।
कथं च राघवो विद्वन्नेतत्कथय सुव्रत॥ ११५॥

व्यासजीने पूछा—हे सुव्रत! साकेतनगरीके लोग स्वर्गलोकमें कैसे गये और श्रीराघवने भी किस प्रकार लीलासंवरण किया? हे विद्वन्! कृपया आप इस रहस्यको बतायें॥ ११५॥

अगस्त्य उवाच

सावधानः शृणु मुने कथामेतां सुविस्तरात्।
यथा जगाम रामोऽसौ स्वर्गं स च पुरीजनः॥ ११६॥

अगस्त्यजीने कहा—हे मुने! जिस प्रकार श्रीराम और उनकी पुरीकी प्रजा स्वर्गमें गयी, उस कथाको सावधान होकर सुनो। मैं विस्तारसे उसका वर्णन कर रहा हूँ॥ ११६॥

पुरा रामो विधायैव देवकार्यमतन्द्रितः।
स्वर्गं गन्तुं मनश्चक्रे भ्रातृभ्यां सह वीरधीः॥ ११७॥

पूर्वकालमें आलस्यरहित होकर उत्साहसम्पन्न श्रीरामने समस्त देवकार्यको सम्पन्न करनेके पश्चात् अपने दोनों भाइयों भरत-शत्रुघ्नके साथ स्वधामगमनहेतु मनमें निश्चय किया॥ ११७॥

ततो निशम्य चारेण वानराः कामरूपिणः।
ऋक्षगोपुच्छरक्षांसि समुत्पेतुरनेकशः॥ ११८॥

गुप्तचरोंद्वारा यह सुनकर इच्छारूपधारी अनेकानेक वानर, ऋक्ष, गोपुच्छ (लम्बी पूँछवाले वानर) और राक्षसगण अयोध्यामें आकर उपस्थित हो गये॥ ११८॥

देवगन्धर्वपुत्राश्च ऋषिपुत्राश्च वानराः।
रामक्षयं विदित्वा तु सर्व एव समागताः॥ ११९॥

इनमें जो देवों, गन्धर्वों तथा ऋषियोंके पुत्र थे और वानररूपसे श्रीरामकार्यके सम्पादनहेतु अवतरित हुए थे, अब वे सभी श्रीरामचन्द्रके स्वधामगमनके अभिप्रायको जानकर अयोध्यामें पधारे थे॥ ११९॥

ते राममनुगत्योचुः सर्वे वानरयूथपाः।
तवाऽनुगमने राजन् सम्प्राप्ताः स्म इहानघ॥ १२०॥
यदि राम विनास्माभिर्गच्छेस्त्वं पुरुषर्षभ
सर्वे खलु हताः स्याम दण्डेन महता नृप॥ १२१॥

उन सभी वानरसेनापतियोंने रामके समीपमें जाकर प्रार्थना की कि हे अनघ! हे राजन्! हम लोग यहाँ आपका अनुगमन करनेहेतु आये हुए हैं। हे पुरुषोत्तम श्रीराम! यदि आप हम लोगोंके बिना ही स्वधामगमन करते हैं, तो आपके इस परलोकगमनरूप महादण्डके द्वारा हे राजन्! हम लोग निश्चित ही मृत्युका वरण कर लेंगे॥ १२०—१२१॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषामृक्षवानररक्षसाम्।
विभीषणमुवाचाऽथ राघवस्तत्क्षणं गिरा॥ १२२॥
यावत्प्रजा धरिष्यन्ति तावदेव विभीषण।
कारयस्व महद्राज्यं लङ्कां त्वं पालयिष्यसि॥ १२३॥
शाधि राज्यं च खल्वेतन्नान्यथा मे वचः कुरु।
प्रजास्त्वं रक्ष धर्मेण नोत्तरं वक्तुमर्हसि॥ १२४॥

रामने रीछ, वानर तथा राक्षसोंकी बात सुनकर तत्काल ही विभीषणसे कहा कि हे विभीषण! जबतक [लंकाकी] प्रजाएँ जीवन-धारण करेंगी, तबतक इस विशाल लंकाराज्यका संचालन तुम करते रहोगे। लंकानिवासियोंका पालन करते हुए [धर्मपूर्वक] तुम राज्यपर शासन करो। यह मेरा आदेश है, जिसे तुम्हें अन्यथा नहीं करना चाहिये। अब तुम राजधर्मानुसार प्रजारक्षण करो और मेरे कथनसे विपरीत कुछ भी मत कहो॥ १२२—१२४॥

एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो हनुमन्तमथाब्रवीत्।
वायुपुत्र चिरंजीव मा प्रतिज्ञां वृथा कृथाः॥ १२५॥
यावल्लोका वदिष्यन्ति मत्कथां वानरर्षभ।
तावत् त्वं धारय प्राणान् प्रतिज्ञां प्रतिपालयन्॥ १२६॥

विभीषणसे ऐसा कहकर ककुत्स्थकुलभूषण भगवान् श्रीरामने श्रीहनुमान्‌जीसे भी कहा—'हे वायुपुत्र! तुम चिरंजीवी हो जाओ! [पूर्वमें की गयी अपनी] प्रतिज्ञाको तुम वृथा नहीं करोगे। हे वानरोत्तम! इस धरा-धामपर जबतक हमारे भक्त हमारी कथाका गान करेंगे, तबतक तुम अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए इस लोकमें जीवित रहो'॥ १२५-१२६॥

मैन्दश्च द्विविदश्चैव अमृतप्राशनावुभौ।
यावल्लोका धरिष्यन्ति तावदेतौ धरिष्यतः॥ १२७॥
पुत्रपौत्राश्च येऽस्माकं तान् रक्षन्त्विह वानराः॥ १२८॥
एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थः सर्वानथ च वानरान्॥
मया सार्धं प्रयातेति तदा तान् राघवोऽब्रवीत्॥ १२९॥

'मैन्द और द्विविद—इन दोनोंने अमृतपान किया है, अतः जबतक लोकोंकी स्थिति है, तबतक ये दोनों जीवित रहेंगे। हे वानरो! जो हमारे पुत्र-पौत्र हैं, यहाँ रहकर आप लोग उनकी रक्षा करना।' ऐसा कहकर काकुत्स्थ श्रीरामने अन्य वानरोंको आज्ञा प्रदान की कि आप लोग हमारे साथ चलें॥ १२७—१२९॥

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महाभुजः।
रामः कमलपत्राक्षः पुरोधसमथाऽब्रवीत्॥ १३०॥
अग्निहोत्राणि यान्त्वग्रे दीप्यमानानि सर्वशः।
वाजपेयातिरात्राणि निर्यान्तु च ममाग्रतः॥ १३१॥

रात्रिकी समाप्ति होनेपर उषःकालमें विशाल वक्षःस्थल-वाले महाबाहु राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रने कुलपुरोहित महर्षि वसिष्ठसे कहा—[अब मैं महाप्रस्थान करूँगा। अतः] मेरे अग्निहोत्रकी साधनभूत अग्नियाँ और वाजपेय, अतिरात्र आदि याग देदीप्यमान होते हुए हमारे आगे-आगे चलें॥ १३०-१३१॥

ततो वसिष्ठस्तेजस्वी सर्वं निश्चित्य चेतसा।
चकार विधिवत्कर्म महाप्रास्थानिकं विधिम्॥ १३२॥

ततः क्षौमाम्बरधरो ब्रह्मचर्यसमन्वितः।
कुशानादाय पाणिभ्यां महाप्रस्थानमुद्यतः॥ १३३॥
न व्याहरच्छुभं किंचिदशुभं वा नरेश्वरः।
निष्क्रम्य नगरात्तस्मात्सागरादिव चन्द्रमाः॥ १३४॥

तब [मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रके उक्त निश्चयको सुनकर] तेजस्वी महर्षि वसिष्ठने अपने चित्तसे निश्चयकर महाप्रस्थानके समयपर जो अनुष्ठान किया जाता है, उसको विधिवत् सम्पन्न किया। महाप्रस्थानहेतु उद्यत महाराज रामने उस समय रेशमी वस्त्र धारणकर तथा ब्रह्मचर्य (प्रणवाभ्यास)-से समन्वित होकर दोनों हाथोंमें कुशाओंको ले रखा था। राजाधिराज श्रीरामने उस समय मौनव्रत धारण कर लिया था अर्थात् उनके श्रीमुखसे कोई भी शुभ-अशुभ वाक्य नहीं निकल रहा था। इस प्रकार जैसे सागरसे चन्द्रमाका उदय होता है, उसी प्रकार श्रीराम अयोध्या नगरीसे निकलकर बाहर आ गये॥ १३२—१३४॥

रामस्य सव्यपार्श्वे तु सपद्मा श्रीः समाश्रिता।
दक्षिणे ह्रीर्विशालाक्षी व्यवसायस्तथाऽग्रतः॥ १३५॥
नानाविधायुधान्यत्र धनुर्ज्याप्रभृतीनि च।
अनुव्रजन्ति काकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहाः॥ १३६॥

उस समय उनके वामभागमें कमल लिये हुए भगवती श्रीलक्ष्मी तथा दक्षिण भागमें विशालाक्षी लज्जा देवी चल रही थीं और वैसे ही उनका व्यवसाय अर्थात् लोकोत्तर पौरुष मूर्तिमान् होकर आगे-आगे जा रहा था। इन्हींके साथ ही प्रभुके अनेक दिव्य आयुध धनुष तथा उसकी डोरी और बाण आदि पुरुषरूपमें होकर उन काकुत्स्थ श्रीरामका अनुगमन कर रहे थे॥ १३५-१३६॥

वेदो ब्राह्मणरूपेण सावित्री सव्यदक्षिणे।
ओङ्कारोऽथ वषट्कारः सर्वे रामं तदाऽव्रजन्॥ १३७॥

ऋषयश्च महात्मानः सर्वे चैव महीधराः।
अनुगच्छन्ति काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥ १३८॥

वेदभगवान् ब्राह्मणरूपसे श्रीरामके वामभागमें और भगवती सावित्री दक्षिण भागमें होकर अनुगमन कर रही थीं। [वेदोंका आदिबीज] ओंकार (प्रणव) तथा [तन्त्रविधानके अन्तर्गत आनेवाला प्रमुख शब्द] वषट्कार—ये सभी श्रीरामके साथ शरीरधारी होकर चल रहे थे। साथ ही महात्मा ऋषिगण तथा सभी ब्राह्मण काकुत्स्थकुलमें उत्पन्न श्रीरामका अनुगमन कर रहे थे, इस प्रकार उनके साथ चलते हुए श्रीराम स्वर्गद्वार महातीर्थपर समुपस्थित हुए॥ १३७-१३८॥

तथानुयान्ति काकुत्स्थमन्तःपुरगताः स्त्रियः।
सवृद्धाबालदासीकाः सपार्षद्द्वाररक्षकाः॥ १३९॥
सान्तःपुरश्च भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ।
रामं व्रजन्तमागम्य रघुवंशमनुव्रताः॥ १४०॥

इसी प्रकार अन्तःपुरमें रहनेवाली नारियाँ तथा बालकसे लेकर वृद्धतक सभी जन, दास-दासियोंके समूह, पार्षदों तथा द्वाररक्षकोंके समूह—इन्होंने भी श्रीरामचन्द्रजीका अनुगमन किया। साथ ही श्रीभरत और शत्रुघ्नजी तथा उनके अन्तःपुरोंके निवासीजनोंने भी अपने प्रियतम श्रीरामचन्द्रजीको प्रस्थित जानकर उनका अनुगमन किया॥ १३९-१४०॥

ततो विप्रा महात्मानः साग्निहोत्राः समन्ततः।
सपुत्रदाराः काकुत्स्थमनुगच्छन्ति सर्वशः॥ १४१॥
मन्त्रिणो भृत्ययुक्ताश्च सपुत्राः सहबान्धवाः।
सर्वे ते सानुगाश्चैव ह्यनुगच्छन्ति राघवम्॥ १४२॥
ततः सर्वाः प्रकृतयो हृष्टपुष्टजनावृताः।
गच्छन्तमनुगच्छन्ति राघवं गुणरंजिताः॥ १४३॥

तत्पश्चात् चारों ओरसे अपने स्त्री-पुत्र-परिवारसहित अग्निहोत्री महात्मा ब्राह्मण भी अग्निहोत्रीय अग्नियोंको लेकर सर्वतोभावेन [सांसारिक आसक्तियोंको त्यागकर] महाराज श्रीरामके साथ महाप्रास्थानिक यात्रामें चलने लगे। इतना ही नहीं, अयोध्यासाम्राज्यके समस्त मंत्रीगण भी अपने पुत्रों, बन्धु-बान्धवों तथा सेवकोंके साथ श्रीराघवका अनुगमन कर रहे थे। तत्पश्चात् हृष्ट-पुष्ट जनोंसे युक्त और श्रीराघवके गुणानुरागमें अनुरंजित सभी प्रकृतियों (प्रजाजन)-ने भी महाप्रस्थानमें निरत श्रीराघवका अनुगमन किया॥ १४१—१४३ ॥

तथा प्रजाश्च सकलाः सपुत्राश्च सबान्धवाः।
राघवस्यानुगाश्चासन् दृष्ट्वा विगतकल्मषम्॥ १४४॥
स्नाताः शुक्लाम्बरधराः सर्वे प्रयतमानसाः।
कृत्वा किलकिलाशब्दमनुयाताश्च राघवम्॥ १४५॥

वैसे ही पुत्र-बान्धवोंसहित [सुदूरवर्ती] प्रजावर्ग भी निष्पाप श्रीरामको [प्रयाणोद्यत] देखकर उनका अनुगमन करने लगा। [उन अनुगामी मनुष्योंकी ही भाँति] श्रीरामका अनुगमन करनेवाले [वानर आदि भी] स्नान करके शुक्ल वस्त्र धारण किये हुए और एकाग्रचित्त थे। वे [हर्षवश] किलकिलाहट करते हुए अनुगमन कर रहे थे॥ १४४-१४५ ॥

न कश्चित्तत्र दीनोऽभून्न भीतो नापि दुःखितः।
प्रहृष्टा मुदिताः सर्वे बभूवुः परमाद्भुताः॥ १४६॥
द्रष्टुकामाश्च निर्वाणं राज्ञो जनपदास्तथा।
सम्प्राप्तास्तेऽपि दृष्ट्वैव नभोमार्गेण चक्रिणम्॥ १४७॥

वहाँपर न तो किसीके मुखमण्डलपर दीनताका आभास था, और न ही किसीको [आत्मवियोगका] भय था तथा न ही कोई दुखी था। वे सब इस अद्भुत महाप्रस्थानसे अत्यन्त विस्मित,

प्रमुदित, आह्लादित थे। महाराज श्रीरामको [अकल्पनीय] निर्वाणपथपर जाता देखनेके लिये [राजधानीसे बाहरके] लोग भी वहाँपर आये और प्रभुका दर्शन करते ही उन्होंने आकाशमार्गमें चतुर्भुज श्रीविष्णुरूपको प्राप्त कर लिया॥ १४६-१४७॥

ऋक्षवानररक्षांसि जनाश्च पुरवासिनः।
आगत्य परया भक्त्या पृष्ठतः समुपाययुः॥ १४८॥
तानि भूतानि नगरे ह्यन्तर्धानगतान्यपि।
राघवं तेऽप्यनुययुः स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥ १४९॥
यानि पश्यन्ति काकुत्स्थं स्थावराणि चराणि च।
सत्त्वानि स्वर्गगमने मतिं कुर्वन्ति तान्यपि॥ १५०॥

ऋक्ष, वानर, राक्षस तथा पुरवासीगण परमभक्तिके साथ [महाराज रामके] पीछे-पीछे चले जा रहे थे। अयोध्यानगरीके भीतर ऐसे भी प्राणी थे, जिनका कि दर्शन भी दुर्लभ था, उन लोगोंने भी स्वर्गद्वार-पर उपस्थित श्रीराघवका अनुगमन किया। वहाँपर चर और अचर जो भी प्राणी महाराज श्रीरामका दर्शन कर रहे थे, उन सभीके चित्तमें स्वर्गमें जानेकी अपूर्व लालसा जाग्रत् हो गयी थी॥ १४८—१५०॥

नासीत् सत्त्वमयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि किंचन।
यद्राघवं नाऽनुयाति स्वर्गद्वारमुपस्थितम्॥ १५१॥
अथार्धयोजनं गत्वा नदीं पश्चान्मुखो ययौ।
सरयूं पुण्यसलिलां ददर्श रघुनन्दनः॥ १५२॥

इस प्रकार अयोध्यानगरीमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म भी कोई ऐसा प्राणी शेष नहीं रह गया था, जो स्वर्गद्वारपर उपस्थित श्रीरामका अनुगमन न कर रहा हो। इस प्रकार वहाँ पहुँचनेके पश्चात् श्रीराम आधा योजन जाकर पश्चिमाभिमुख होकर सरयूकी ओर गये। वहाँ रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने पुण्य-सलिला सरयूनदीका दर्शन किया॥ १५१-१५२॥

अथ तस्मिन् मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः।
सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः॥ १५३॥
आययौ तत्र काकुत्स्थं स्वर्गद्वारमुपस्थितम्।
विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिः सर्वतो वृतः॥ १५४॥
दीपयन् सर्वतो व्योम ज्योतिर्भूतमनुत्तमम्।
स्वयंप्रभैश्च तेजोभिर्महद्भिः पुण्यकर्मभिः॥ १५५॥
पुण्या वाता ववुस्तत्र गन्धवन्तः सुखप्रदाः।
सपुण्यपुष्पवर्षं च वायुमुक्तं महाजवम्॥ १५६॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च तस्मिन् सूर्य उपस्थितः।
सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां स समुपास्पृशत्॥ १५७॥
ततो ब्रह्मा सुरैर्युक्तः स्तोतुं समुपचक्रमे॥ १५८॥

उसी समय [महर्लोकवासी] सभी महात्मा ऋषिगण तथा देवोंके साथ लोकपितामह श्रीब्रह्माजी स्वर्गद्वारमें उपस्थित श्रीरामके सम्मुख आये। सैकड़ों करोड़ों दिव्य विमानोंसे सभी दिशाएँ आच्छादित हो गयी थीं। वहाँपर समुपस्थित पुण्यकर्मा महापुरुषोंके स्वयंप्रभ तेजसे आकाशमण्डल सभी ओरसे प्रकाशित हो रहा था। अर्थात् आकाशमण्डलमें एक अनुपम प्रकाशकी छटा व्याप्त हो गयी थी। उस समय उत्तम सुगन्धवाली और सुखप्रद वायु प्रवाहित हो रही थी। उस पवित्र वायुप्रवाहसे सुन्दर पुष्पोंकी वेगपूर्ण वर्षा हो रही थी। उस समय गन्धर्वों और अप्सराओंके साथ-साथ वहाँ [श्रीरामके कुलपुरुष] सूर्यदेव भी प्रस्तुत थे। तत्पश्चात् उन श्रीरामने अपने श्रीचरणोंसे सरयूसलिलका स्पर्श किया। उस समय देवोंके साथ भगवान् ब्रह्माजी पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुतिहेतु उद्यत हुए॥ १५३—१५८॥

त्वं हि लोकपतिर्देव न त्वां जानाति कश्चन।
अहं ते वै विशालाक्ष भूतपूर्वपरिग्रहः॥ १५९॥

त्वमचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं लोकसंग्रहे।
यामिच्छसि महावीर्य तां तनुं प्रविश स्वकम्॥ १६०॥

[ब्रह्माजीने कहा—] हे देव! आप समस्त लोकोंके नाथ हैं। कोई भी आपको जान सकनेमें समर्थ ही नहीं है। हे विशाललोचन! मुझे भी पूर्वकालमें आपसे ही जीवनकी प्राप्ति हो सकी है। हे महावीर्य! आपका स्वरूप अचिन्त्य है, अक्षय है, महद्भूत (परब्रह्मात्मक) है। अब आप लोकसंग्रहार्थ अंगीकृत इस मनुष्यदेहका परित्यागकर जिस स्वरूपमें प्रविष्ट होना चाहें, उसे स्वीकार कीजिये॥ १५९-१६०॥

पितामहस्य वचनाद् दिवमेवाविशत् स्वयम्।
सुदिव्यं वैष्णवं तेजः ससारः स सहानुजः।
ततो विष्णुतनुं देवाः पूजयन्तः सुरोत्तमम्॥ १६१॥
साध्या मरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः।
ये च दिव्या ऋषिगणा गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
सुपर्णा नागयक्षाश्च दैत्यदानवराक्षसाः॥ १६२॥
देवाः प्रहृष्टा मुदिताः सर्वे पूर्णमनोरथाः।
साधुसाध्विति ते सर्वे त्रिदिवस्था बभाषिरे॥ १६३॥

समस्त स्वरूप [वास्तवमें विश्वात्मरूप] आपके ही हैं। पितामह ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर श्रीरामने दिव्यतम वैष्णव तेजमें अपने भाइयों तथा स्वयंको भी सशरीर सन्निविष्ट किया और दिव अर्थात् स्वर्गकी ओर प्रस्थित हुए। तदुपरान्त वैष्णव स्वरूपमें सन्निविष्ट हुए देवदेव श्रीहरिका देवगण, साध्यगण, मरुद्गण, इन्द्र, अग्नि, दिव्य महर्षिगण, गन्धर्व, अप्सराएँ, गरुड़ एवं उनके परिकर, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस आदिने आगे आ-आ करके अभिनन्दन किया। अन्तरिक्षमें अवस्थित सफलमनोरथ देवता हर्षित, आह्लादित हो उठे और उन सभीने [श्रीहरिका] साधुवादपूर्वक सम्मान किया॥ १६१—१६३॥

अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह।
एषां लोकं जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत॥ १६४॥
इमे तु सर्वे मत्स्नेहादायाताः सर्वमानवाः।
भक्ताश्च भक्तिमन्तश्च त्यक्तात्मानोऽपि सर्वशः॥ १६५॥

हे सुव्रत! इस जनसमूहके लिये उत्तम लोकोंकी व्यवस्था कीजिये। ये सभी लोग स्नेहके कारण मेरे साथ आये हैं। ये सभी भक्त, भक्तिमान् हैं तथा सभी प्रकारसे सब कुछ त्यागकर यहाँतक कि प्राणोंका भी मोह छोड़कर आये हुए हैं॥ १६४-१६५॥

तच्छ्रुत्वा विष्णुकथितं सर्वलोकेश्वरोऽब्रवीत्।
लोकं सन्तानिकं नाम संस्थास्यन्ति हि मानवाः॥ १६६॥
स्वर्गद्वारेऽत्र वै तीर्थे राममेवानुचिन्तयन्।
प्राणांस्त्यजति भक्त्या वै स सन्तानम्परं लभेत्॥ १६७॥
सर्वे सन्तानिकं नाम ब्रह्मलोकादनन्तरम्।
वानराश्च स्वकां योनिं राक्षसाश्चाऽपि राक्षसीम्॥ १६८॥
यस्या विनिःसृता ये वै सुरासुरतनूद्भवाः।
आदित्यतनयश्चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम्॥ १६९॥
ऋषयो नागयक्षाश्च प्रयास्यन्ति स्वकारणम्।

श्रीविष्णुका यह वाक्य सुनकर निखिल लोकोंके स्वामी ब्रह्माजीने कहा—मानवगण सन्तानिक लोकोंको प्राप्त होंगे। जो इस स्वर्गद्वारतीर्थमें भक्तिपूर्वक श्रीरामका चिन्तन करते हुए प्राणत्याग करेंगे, उनको उत्तम सन्तानिक लोककी प्राप्ति होगी। सभी जन ब्रह्मलोकके परवर्ती सन्तानिक नामक लोकको जायँगे। वानरगण अपनी योनिमें, राक्षसगण राक्षसी योनिमें अर्थात् वानर एवं राक्षसोंने जिस-जिस योनिसे जन्म लिया था, वे उन-उन सुर-असुर योनियोंकी प्राप्ति करेंगे। सूर्यपुत्र सुग्रीव सूर्यमण्डलमें जायँगे। ऋषिगण, नागगण तथा यक्षगण अपने-अपने कारणशरीरकी

प्राप्ति करेंगे॥ १६६—१६९१/२ ॥

तथा ब्रुवति देवेशे गोप्रतारमुपस्थितम्॥ १७०॥
तज्जलं सरयूं भेजे परिपूर्णं ततो जलम्।
अवगाह्य जलं सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वा प्रहृष्टवत्॥ १७१॥
मानुषं देहमुत्सृज्य ते विमानान्यथारुहन्।
तिर्यग्योनिगता ये च प्रविश्य सरयूं तदा॥ १७२॥
देहत्यागं च ते तत्र कृत्वा दिव्यवपुर्धराः।
तथान्यान्यपि सत्वानि स्थावराणि चराणि च॥ १७३॥
प्राप्य चोत्तमदेहं वै देवलोकमुपागमन्।
तस्मिंस्तत्र समापन्ने वानरा ऋक्षराक्षसाः।
तेऽपि प्रविविशुः सर्वे देहान्निक्षिप्य वै तदा॥ १७४॥
तदा स्वर्गं गताः सर्वे स्मृत्वा लोकगुरुं विभुम्।
जगाम त्रिदशैः सार्धं रामो हृष्टो महामतिः॥ १७५॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी श्रीविष्णुने पितामह ब्रह्माजीसे कहा—देवेश ब्रह्माजीके ऐसा कहते ही गोप्रतारतीर्थमें उपस्थित समस्त जन-समूहने परिपूर्ण परमात्मरूप सरयूजलका अभिवन्दन किया और जलधारामें अवगाहनकर प्रसन्नताके साथ प्राणोत्सर्ग कर दिया। उन सबने मानव देह त्यागकर विमानोंपर आरोहण किया। तिर्यक् योनिवाले प्राणी भी सरयूजलमें प्रवेश कर गये। उन्होंने भी प्राण त्याग करके दिव्य देहको धारण किया। अन्य स्थावर तथा जंगम प्राणिसमुदायने भी उत्तम शरीरका लाभ करके सुरलोकको गमन किया। उस समय ऐसे अद्भुत दृश्यका दर्शनकर वानर, भालु तथा राक्षसोंने भी लोकगुरु श्रीरामका चिन्तन करते हुए सरयूधारामें प्रवेश किया और देह त्यागकर स्वर्गलोकको चले गये। तब देवगणके साथ प्रसन्नहृदय महामति श्रीरामने भी [अपने सनातन साकेतलोकमें] प्रवेश किया॥ १७०—१७५॥

अतस्तद् गोप्रताराख्यं तीर्थं विख्यातिमागतम्।
गोप्रतारे परो मोक्षो नान्यतीर्थेषु विद्यते॥ १७६॥
जन्मान्तरशतैर्विप्र योगोऽयं यदि लभ्यते।
मुक्तिर्भवति तत्त्वेकजन्मना लभ्यते न वा॥ १७७॥
गोप्रतारे न सन्देहो हरिर्भक्त्या सुनिष्ठितः।
एकेन जन्मनान्योऽपि योगमोक्षञ्च विन्दति॥ १७८॥
गोप्रतारे नरो विद्वान् योऽपि स्नाति सुनिश्चितः।
विशत्यसौ परं स्थानं योगिनामपि दुर्लभम्॥ १७९॥

हे विप्र! तबसे यह गोप्रतारतीर्थ [समस्त लोकोंमें] विख्यात हो गया। तीर्थोंमें इसके समान कोई तीर्थ नहीं है। इस तीर्थमें परमगतिकी प्राप्ति होती है। सैकड़ों जन्मोंके पुण्यके फलस्वरूप यदि गोप्रतारतीर्थमें जानेका योग प्राप्त हो जाय तो एक ही जन्ममें उसकी मुक्ति हो जाती है। श्रीहरि यहाँ भक्तिके साथ भलीभाँति स्थित हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस तीर्थमें व्यक्ति एक ही जन्ममें योगसिद्धि तथा मोक्षलाभ करता है। जो ज्ञानवान् मनुष्य विश्वासके साथ इस तीर्थमें स्नान करता है, वह योगियोंके लिये भी दुर्लभ परम स्थानको प्राप्त करता है॥ १७६—१७९॥

कार्तिक्यां च विशेषेण स्नातव्यं विजितेन्द्रियैः।
कार्तिके मासि विप्रर्षे सर्वे देवाः सवासवाः।
स्नातुमायान्त्ययोध्यायां गोप्रतारे विशेषतः॥ १८०॥
गोप्रतारसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।
यत्र प्रयागराजोऽपि स्नातुमायाति कार्तिके॥ १८१॥
निष्पापः कलुषं त्यक्त्वा शुक्लाङ्गः सितकंचुकः।
शुद्ध्यर्थं साधुकामोऽसौ प्रयागो मुनिसत्तम॥ १८२॥

कार्तिकमासमें इन्द्रियोंको नियन्त्रित करके विशेष रूपसे [गोप्रतारतीर्थमें] स्नान करना चाहिये। हे विप्रर्षे! कार्तिकमासमें

इन्द्रसहित सभी देवगण अयोध्यामें उपस्थित होते हैं और विशेष रूपसे गोप्रतारतीर्थमें स्नान करते हैं। गोप्रतारके समान तीर्थ न हुआ है और न होगा, जहाँ तीर्थराज प्रयाग भी कार्तिकमासमें स्नानार्थ पधारते हैं। हे मुनिसत्तम! [पापकर्मा लोग प्रयागराजमें अपने कालुष्यको धोकर स्वयं तो बाह्याभ्यन्तर शुद्ध होकर चले जाते हैं, किंतु तीर्थराज उन महापापोंको धोते हुए स्वयं कालिमायुक्त हो जाते हैं, अतः प्रत्येक कार्तिकमासमें] वे [गोप्रतारतीर्थमें स्नानकर] पापलेपसे मुक्त, सर्वथा निष्पाप हो जाते हैं। उनका स्वरूप शुभ्र हो जाता है। [पापोंसे मलिन हुए] उनके दिव्य वस्त्र [पुनः] स्वाभाविक निर्मलतासे युक्त हो जाते हैं। वे प्रयागराज स्वयं अपनेको विशुद्ध बनानेकी पवित्र कामनासे [प्रत्येक कार्तिकमासमें यहाँ] उपस्थित होते हैं॥ १८०—१८२॥

यानि कानि च तीर्थानि भूमौ दिव्यानि सुव्रत।
कार्तिक्यां तानि सर्वाणि गोप्रतारे वसन्ति वै॥ १८३॥
गोप्रतारे जपो होमः स्नानं दानञ्च शक्तितः।
सर्वमक्षयतां याति श्रद्धया नियमव्रतम्॥ १८४॥
कार्तिके प्राप्य तद्यान्ति तीर्थानि सकलान्यपि।
गोप्रतारं गमिष्यामः पापं त्यक्तुमितीच्छया॥ १८५॥
गोप्रतारे कृतं स्नानं सर्वपापप्रणाशनम्।
गोप्रतारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा गुप्तहरिं विभुम्।
सर्वपापैः प्रमुच्येत नात्र कार्या विचारणा॥ १८६॥

हे सुव्रत! पृथ्वीपर जितने भी दिव्य तीर्थोंकी स्थिति है, कार्तिकमासमें वे सभी गोप्रतारतीर्थमें निश्चित ही निवास करते हैं। यहाँपर नियमनिष्ठ होकर श्रद्धासे जप, होम, स्नान, यथाशक्ति दान आदि पुण्यकर्म किये जानेपर वे सभी अक्षयत्वको प्राप्त हो जाते हैं। कार्तिकमासको प्राप्त करके समस्त तीर्थ इस

कामनासे यहाँ आते हैं कि हम पापोंसे मुक्त हो जायँगे, अतः गोप्रतारतीर्थको चलें। गोप्रतारमें किया गया स्नान सभी पापोंका नाशक है। गोप्रतारमें स्नान करके विभु श्रीगुप्तहरिका दर्शन कर लेनेपर मनुष्य सभी पापोंसे विमुक्त हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ १८३—१८६॥

विष्णुमुद्दिश्य विप्राणां पूजनं च विशेषतः।
कर्तव्यं श्रद्धया युक्तैः स्नानपूर्वं यतव्रतैः॥ १८७॥
पयस्विनी च गौर्देया सालङ्कारा च शक्तितः।
विप्राय वेदविदुषे नियमव्रतशालिने।
ब्राह्मणायाऽतिशुचये विष्णुप्रीत्यै यतात्मना॥ १८८॥

व्रतशील मानवोंको चाहिये कि वे संयत चित्तसे यहाँ स्नान करनेके पश्चात् श्रीविष्णुको उद्देश्य करके श्रद्धायुक्त हो विशेषतः ब्राह्मणोंका पूजन करें और धर्मनियमों एवं व्रतोंका अनुपालन करनेवाले वेदवेत्ता, परम पवित्र श्रेष्ठ ब्राह्मणको श्रीहरिकी प्रसन्नताके लिये यथाशक्ति अलंकारोंसे विभूषित पयस्विनी गौका दान करें॥ १८७-१८८॥

अन्नं बहुविधं हेम वासांसि विविधानि च।
दातव्यानि हरेः प्राप्त्यै भक्त्या परमया युतैः॥ १८९॥
सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे नर्मदायां शशिग्रहे।
तुलादानस्य यत्पुण्यं तदत्र दीपदानतः॥ १९०॥

परम भक्तिभावसे सम्पन्न मनुष्योंको चाहिये कि वे भगवान् श्रीहरिकी प्राप्तिके लिये अनेकविध भोज्यान्न, सुवर्ण तथा भाँति-भाँतिके वस्त्रोंका [गोप्रतारतीर्थमें] दान करें। कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय और नर्मदामें चन्द्रग्रहणकालमें [स्नानादिका जो पुण्यफल है] तथा तुलादानका जो फल है, वह फललाभ यहाँपर दीपदानसे हो जाता है॥ १८९-१९०॥

घृतेन दीपको यस्य तिलतैलेन वा पुनः।
ज्वलते मुनिशार्दूल हयमेधेन तस्य किम्॥ १९१॥
तेनेष्टं क्रतुभिः सर्वैः कृतं तीर्थावगाहनम्।
दीपदानं कृतं येन कार्तिके केशवाग्रतः॥ १९२॥

हे मुनिशार्दूल! [गोप्रतारतीर्थमें] जिस व्यक्तिका घृतयुक्त अथवा तिलतैलयुक्त दीपक जलता है, उसे अश्वमेधसे क्या प्रयोजन! उसने सभी यज्ञोंको सम्पन्न कर लिया और सभी तीर्थोंमें अवगाहन कर लिया, जिसने भगवान् श्रीहरिके आगे कार्तिकमें दीपदान किया है॥ १९१-१९२॥

नानाविधानि तीर्थानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च।
गोप्रतारस्य तान्यत्र कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ १९३॥
स्वर्णमाल्यं च यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे।
शुभां गतिमवाप्नोति ह्यग्निवच्चैव दीप्यते॥१९४॥
गोप्रताराभिधे तीर्थे त्रिलोकीविश्रुते द्विज।
दत्वान्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते॥ १९५॥

[लोकमें यद्यपि] अनेक प्रकारके तीर्थगण हैं, जो भोग तथा मोक्ष दोनों ही देनेवाले हैं, किंतु वे इस गोप्रतारतीर्थकी सोलहवीं कलाकी भी समानताके योग्य नहीं हैं। जो वेदवेत्ता ब्राह्मणको स्वर्णमाला देता है, वह शुभगतिको प्राप्त होता है तथा अग्निवत् प्रकाशित होता है। हे द्विज! त्रिलोकीमें विश्रुत गोप्रतार नामक इस तीर्थमें सविधि अन्नदान करनेसे वह पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता॥ १९३—१९५॥

तत्र स्नानं तु यः कुर्याद् विप्रान् संतर्पयेन्नरः।
सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ १९६॥
एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र यतव्रतः।
यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति॥ १९७॥

अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्गोप्रतारे विधानतः।
ते विशन्ति पदं विष्णोर्निःसंदिग्धं तपोधन॥ १९८॥

यहाँ जो व्यक्ति स्नान करता है और द्विजगणको तृप्त करता है, वह सौत्रामणी यज्ञ करनेका फल प्राप्त करता है। जो व्रतधारी मानव एक समय आहारपूर्वक यहाँ मासभर कल्पवास करता है, उसके जीवनभरकी पापराशि सहसा विनष्ट हो जाती है। हे तपोधन! जो मानव विधिपूर्वक यहाँपर अग्निमें प्रवेश करते हैं, वे तो मानो विष्णुपदमें ही प्रविष्ट हो गये, इसमें सन्देह नहीं है॥ १९६—१९८॥

कुर्वन्त्यनशनं येऽत्र विष्णुभक्त्या सुनिश्चिताः।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ १९९॥
अर्चयेद् यस्तु गोविन्दं गोप्रतारे हि मानवः।
दशसौवर्णिकं पुण्यं गोप्रतारे प्रकथ्यते॥ २००॥
अग्निहोत्रफलो धूपो गोविन्दस्य समर्पितः।
भूमिदानेन सदृशं गन्धदानफलं स्मृतम्॥ २०१॥

जो मानव निश्चितरूपसे विष्णुभक्तिमें तत्पर होकर यहाँपर अनशन करते हैं अर्थात् अन्न-जलादि कुछ भी नहीं ग्रहण करते हैं, उनका सैकड़ों कोटि कल्पोंतक संसारमें पुनरागमन नहीं होता है। जो मानव इस गोप्रतारमें गोविन्दका अर्चन करता है, उसे दस सुवर्ण-मुद्रादानके समान पुण्यलाभ होता है। गोविन्दको समर्पित धूपका फल अग्निहोत्रके फलके समान होता है तथा गन्ध-चन्दनादिके समर्पणका फल भूमिदानके समान होता है॥ १९९—२०१॥

अत्यद्भुतमिदं विद्वन् स्थानमेतत्प्रकीर्तितम्।
कार्तिक्यां तु विशेषेण अत्र स्नात्वा शुचिव्रतः॥ २०२॥
स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दशस्वर्णफलं लभेत्।
स्वर्णदः स्वर्गवासी च यो दद्याच्छ्रद्धयान्वितः॥ २०३॥

हे विद्वन्! इस गोप्रतार नामक स्थानको अतीव अद्भुत कहा गया है। पवित्र व्रतधारी मानव विशेषरूपसे कार्तिक-मासमें यहाँ [गोप्रतारमें] तथा स्वर्गद्वारतीर्थमें स्नानकर दस स्वर्णमुद्रादानके फलका लाभ प्राप्त करता है। जो व्यक्ति इस तीर्थमें श्रद्धासहित सुवर्णदान करता है, उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है॥ २०२-२०३॥

सुतीर्थे पर्वणि श्रेष्ठे दशस्वर्णफलप्रदे।
ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां रात्रौ जागरणं चरेत्॥ २०४॥
उपोषितः शुचिः स्नातो विष्णुपूजनतत्परः।
दीपं दद्यात् प्रयत्नेन नानाफलविधायिनम्॥ २०५॥

मनुष्यको चाहिये कि वह दस स्वर्णफल-प्रदायक इस उत्तम तीर्थमें [उपस्थित होकर] श्रेष्ठ पर्व ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशीको यहाँ रात्रिमें जागरण करे। पवित्रतापूर्वक उपवास करता हुआ वह स्नान करके विष्णुपूजनमें तत्पर रहे और प्रयत्नपूर्वक विविध फलोंको देनेवाला दीपदान करे॥ २०४-२०५॥

तावद् गर्जन्ति पुण्यानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले।
यावद् दद्याज्जले दीपं कार्तिके केशवाग्रतः॥ २०६॥

स्वर्गलोक, मृत्युलोक और रसातलमें पुण्यसमूह तभीतक गर्वित हो गर्जन करते हैं, जबतक कि कार्तिकमासमें केशवभगवान्के आगे जलमें दीपदान नहीं किया जाता॥ २०६॥

पौर्णमास्यां प्रभाते तु स्नात्वा निर्मलमानसः।
हरिं सम्पूज्य विधिवद्विधाय श्राद्धमादरात्॥ २०७॥
दत्वान्नं च यथाशक्त्या सन्तोष्य ब्राह्मणाँस्ततः।
वस्त्रादिभिरलङ्कारैः सम्पूज्य द्विजदम्पती॥ २०८॥
विभुं गुप्तहरिं दृष्ट्वा सम्पूज्य तु विशेषतः।
नमस्कृत्याऽनु तत्तीर्थं शुचिस्तद्गतमानसः॥ २०९॥

स्वर्गद्वारे च विधिवन्मध्याह्ने स्नानमाचरेत्।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते॥ २१०॥

पूर्णिमाके दिन निर्मल हृदयसे प्रभातकालमें स्नानकर श्रीहरिकी पूजा करे, तदुपरान्त समादरपूर्वक श्राद्ध करे, फिर यथाशक्ति अन्नदान करके ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करे। तदुपरान्त द्विजदम्पतीको यथाशक्ति आभूषण-वस्त्रादिसे अलंकृतकर सन्तुष्ट करे। इसके अनन्तर विभु गुप्तहरिदेवका दर्शन करके उनकी विशेष रूपसे पूजा करे तथा उस तीर्थको प्रणाम करे। तदुपरान्त भगवच्चिन्तन करता हुआ पवित्र भावसे स्वर्गद्वारतीर्थमें मध्याह्नके समय सविधि स्नान करे। ऐसा करनेपर वह मनुष्य सभी पापोंसे विमुक्त और विशुद्ध हो जाता है तथा विष्णुलोकमें पूजित होता है॥ २०७—२१०॥

इति परमविधानैर्गोप्रतारे विधाय
प्रथितसुकृतमूर्तिः स्नानमुच्चैः प्रयत्नात्।
कलितनिखिलपापः पूजयित्वादरेणा-
ऽच्युतममलविकाशो विष्णुसायुज्यमेति॥ २११॥

जो इस प्रकारकी उत्तम विधियोंके साथ गोप्रतारतीर्थमें प्रयत्नपूर्वक तथा उत्साहित चित्तसे स्नानरूप अनुष्ठानका सम्पादन करता है और आदरपूर्वक अच्युतभगवान्का पूजन करता है, उसके द्वारा किये गये पूर्वकालके निखिल पाप दूर हो जाते हैं और वह प्रख्यात पुण्यकर्मा मनुष्य निर्मल ज्ञानसे सम्पन्न होकर अन्तमें भगवान् श्रीविष्णुकी सायुज्यमुक्तिको प्राप्त करता है॥ २११॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये स्वर्गद्वारगोप्रतारतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डके अन्तर्गत अयोध्यामाहात्म्यका 'स्वर्गद्वार-गोप्रतारतीर्थमाहात्म्यवर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

क्षीरोदककुण्ड, बृहस्पतिकुण्ड, रुक्मिणीकुण्ड, धनयक्षकुण्ड, वसिष्ठकुण्ड, वामदेवस्थान, सागरकुण्ड, योगिनीकुण्ड, उर्वशीकुण्ड तथा घोषार्क (सूर्य)-कुण्ड—इन तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य

अगस्त्य उवाच

तीर्थमन्यत् प्रवक्ष्यामि क्षीरोदकमिति स्मृतम्।
सीताकुण्डाच्च वायव्ये वर्तते गुणसुन्दरम्।
पुण्यैकनिचयस्थानं सर्वदुःखविनाशनम्॥ १॥

अगस्त्यजीने कहा—अब मैं क्षीरोदक नामसे विख्यात एक अन्य तीर्थका वर्णन कर रहा हूँ। यह क्षीरोदकतीर्थ सीताकुण्डसे वायव्यकोणपर अवस्थित है। विविध गुणयुक्त होनेके कारण यह तीर्थ अतीव मनोरम है। क्षीरोदकतीर्थ पुण्यसमूहका प्रधान स्थान तथा अखिल दुःखोंका नाशक है॥ १॥

पुरा दशरथो राजा पुत्रेष्टिं नाम नामतः।
चकार विधिवद्यज्ञं पुत्रार्थं यत्र चादरात्॥ २॥
क्रतुं समापयामास सानन्दो भूरिदक्षिणम्।
यज्ञान्ते क्रतुभुक् तत्र मूर्तिमान् समदृश्यत॥ ३॥
हस्ते कृत्वा हेमपात्रं हविःपूर्णमनुत्तमम्।
तस्मिन् हविषि सङ्कीर्णं वैष्णवं तेज उत्तमम्।
चतुर्विधं विभज्यैव पत्नीभ्यो दत्तवान् नृपः॥ ४॥

पूर्वकालमें राजा दशरथने सविधि आदरपूर्वक पुत्रप्राप्तिकी कामनासे यहाँ पुत्रेष्टि नामक एक यज्ञ किया था। आनन्दित मनसे उन्होंने जब प्रचुर दक्षिणावाली पुत्रेष्टि सम्पन्न की, उस समय उसके

अवसानकालमें यज्ञभोक्ता अग्निदेवने मूर्तिमान् होकर उन्हें हाथमें स्वर्णपात्रके साथ दर्शन दिया। वह उत्तम पात्र हविष्यसे भरा हुआ था। उसमें उत्तम वैष्णव तेज निहित था। राजाने उस हविष्को चार भागोंमें विभक्तकर अपनी तीनों पत्नियोंको दे दिया*॥ २—४॥

यत्र तत्क्षीरसम्प्राप्तिर्जाता परमदुर्लभा।
क्षीरोदकमिति ख्यातं तत्स्थानं पापनाशनम्।
उदकेनाभिव्यक्तं च उत्तमं च फलप्रदम्॥ ५॥
तत्र स्नात्वा नरो धीमान् विजितेन्द्रिय आदरात्।
सर्वान् कामानवाप्नोति पुत्रांश्च सुबहुश्रुतान्॥ ६॥
आश्विने शुक्लपक्षस्य एकादश्यां जितव्रतः।
तत्र स्नात्वा विधानेन दत्वा शक्त्या द्विजन्मने॥ ७॥
विष्णुं सम्पूज्य विधिवत् सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
पुत्रानवाप्नुयाद् विद्धि धर्मांश्च विधिवन्नरः॥ ८॥

हे द्विज! जहाँ परम दुर्लभ उस क्षीर (हविष्यान्न)-की प्राप्ति हुई थी, वह पापनाशक तीर्थ 'क्षीरोदक' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह जलसे घिरा, परम उत्तम फल देनेवाला स्थान है। जो इन्द्रियजित् विद्वान् मनुष्य इस क्षीरोदक-कुण्डमें श्रद्धापूर्वक स्नान करता है, उसकी सभी कामनाएँ सफल होती हैं। उसे ज्ञानी पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। जितेन्द्रिय मानव यथाविधान आश्विन शुक्ला एकादशीके दिन यहाँ स्नानोपरान्त यथाशक्ति ब्राह्मणको दान करके तथा सविधि विष्णुपूजन [आदि विविध धर्मानुष्ठान करने]-से समस्त कामनाफलोंको प्राप्त करता है। यह सब विधिपूर्वक किये जानेपर मनुष्यको पुत्रोंकी प्राप्ति एवं धर्म-क्रियाओंकी सिद्धि होती है—ऐसा जान लो॥ ५—८॥

* नोट—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डमें यह विभागक्रम इस प्रकार है—$^{१}/_{२}$ भाग राजमहिषी भगवती श्रीकौसल्याजीको, $^{१}/_{४}$ भाग वीराङ्गना श्रीकैकेयीजीको तथा श्रीसुमित्रा अम्बाको $^{१}/_{८}$ + $^{१}/_{८}$ ये दो पायसांश विभाजित हुए थे।

तस्मात् क्षीरोदकस्थानान्नैर्ऋते दिग्दले श्रितम्।
ख्यातं बृहस्पतेः कुण्डमुद्दण्डाचण्डमण्डितम्॥ ९ ॥
सर्वपापप्रशमनं पुण्यामृततरङ्गितम्।
यत्र साक्षात् सुरगुरुर्निवासं किल निर्ममे॥ १०॥
यज्ञं च विधिवच्चक्रे बृहस्पतिरुदारधीः।
नानामुनिगणैर्युक्तं रम्यं बहुफलप्रदम्।
सुपर्णच्छायसम्पन्नं कुण्डं तत्पापिदुर्लभम्॥ ११॥
इन्द्रादयोऽपि विबुधा यत्र स्नात्वा प्रयत्नतः।
मनोऽभीष्टफलं प्राप्ताः सौन्दर्यौदार्यतुन्दिलाः॥ १२॥
यत्र स्नानेन दानेन नरो मुच्येत किल्बिषात्॥ १३॥
भाद्रे शुक्ले तु पंचम्यां यात्रा तत्र फलप्रदा।
अन्यदाऽपि गुरोर्वारे स्नानं बहुफलप्रदम्॥ १४॥
बृहस्पतेस्तथा विष्णोः पूजां तत्र य आचरेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते॥ १५॥
भवेद् बृहस्पतेः पीडा यस्य गोचरवेधतः।
तेनात्र विधिवत् स्नानं कार्यं सङ्कल्पपूर्वकम्॥ १६॥

इस क्षीरोदक (क्षीरसागर)-तीर्थसे नैर्ऋत्यकोणकी ओर विख्यात बृहस्पतिकुण्ड विद्यमान है। यह कुण्ड विशाल एवं वेगवती लहरोंसे युक्त है और सर्वपापनाशक तथा पवित्र अमृतोपम जलसे तरंगायित है। साक्षात् सुरगुरु बृहस्पतिने यहाँ अपना निवास बनाया था। उदारमति श्रीबृहस्पतिजीने यहाँ यथाविधि यज्ञ किया था। यह रम्य कुण्ड नाना मुनिगणोंसे युक्त, रम्य, प्रचुर फलप्रद तथा उत्तम पादपोंके कारण छायायुक्त है। पापियोंके लिये इस कुण्डका दर्शन भी दुर्लभ है। इन्द्रादि देवगण भी यत्नपूर्वक इस कुण्डमें स्नान करके अभीष्ट फलके अधिकारी और सौन्दर्य-औदार्य आदि गुणोंसे सम्पन्न हुए हैं।

इस तीर्थमें स्नान तथा दान करनेवाला मनुष्य पापरहित हो जाता है। भाद्रपदमासकी शुक्ला पंचमी तिथिको बृहस्पतिकुण्डकी यात्रा अत्यधिक फलप्रद होती है। इससे अतिरिक्त किसी भी समय बृहस्पतिवारको यहाँ स्नान बहुफलप्रद है। जो मानव इस कुण्डमें बृहस्पति तथा विष्णुकी पूजा करता है, वह सभी पापोंसे विनिर्मुक्त हो जाता है और विष्णुलोककी प्राप्ति करके अतीव हर्षित होता है। गोचरवेधमें जिसे बृहस्पति पीड़ाप्रद हों, वह इस कुण्डमें संकल्पपूर्वक विधिवत् स्नान करे॥ ९—१६॥

होमं कृत्वा गुरोर्मूर्तिः सुवर्णेन विनिर्मिता।
स्थित्वा जले प्रदेया वै पीताम्बरसमन्विता॥ १७॥
वेदज्ञायाऽतिशुचये स्नात्वा पीडापनुत्तये।
होमं च कारयेत्तत्र ग्रहजाप्यविधानतः॥ १८॥
एवं कृते न सन्देहो ग्रहपीडा प्रणश्यति॥ १९॥

तदुपरान्त वहाँपर ग्रहजाप्य विधानसे अर्थात् बृहस्पति-मन्त्रका जपानुष्ठान सम्पन्न करके शास्त्रोक्त रीतिसे होम करवाये। होम करनेके उपरान्त स्वर्णनिर्मित बृहस्पतिप्रतिमा पीत वस्त्रसे अलंकृत करे और बृहस्पतिजन्य पीडाके निवारणार्थ अत्यन्त पवित्र वेदवेत्ता ब्राह्मणको तीर्थजलमें प्रविष्ट होकर दान करे। ऐसा करनेसे निश्चय ही ग्रहजन्य पीड़ाकी निवृत्ति हो जाती है॥ १७—१९॥

तद्दक्षिणे मुनिश्रेष्ठ रुक्मिणीकुण्डमुत्तमम्।
चकार यत्स्वयं देवी रुक्मिणी कृष्णवल्लभा॥ २०॥
तत्र विष्णुः स्वयं चक्रे निवासं सलिले तदा।
वरप्रदानात् स्नेहेन भार्यायाः प्रगुणीकृतम्॥ २१॥

हे मुनिवर! बृहस्पतिकुण्डसे दक्षिण दिशामें रुक्मिणीकुण्ड स्थित है। यह उत्तम कुण्ड श्रीकृष्णवल्लभा देवी रुक्मिणीके द्वारा निर्मित है। इस कुण्डके जलमें स्वयं विष्णु तभीसे निवास करने

लगे। उन श्रीविष्णुने प्रेमके कारण रुक्मिणीको वर देकर इस स्थानका गौरव बढ़ाया था॥ २०-२१ ॥

तत्र स्नानं तथा दानं होमं वैष्णवमन्त्रकम्।
द्विजपूजां विष्णुपूजां कुर्वीत प्रयतो नरः॥ २२ ॥
तत्र साम्वत्सरी यात्रा कर्तव्या सुप्रयत्नतः।
ऊर्जकृष्णनवम्यां च सर्वपापापनुत्तये॥ २३ ॥
पुत्रवाञ्जायते वन्ध्यो यात्रां कृत्वा न संशयः।
नारीभिर्वा नरैर्वापि कर्तव्यं स्नानमादरात्॥ २४ ॥
भुक्त्वा भोगान् समग्रांश्च विष्णुलोके स मोदते।

नित्यप्रति मनुष्यको एकाग्र चित्तसे इस कुण्डमें स्नान [करके] दान, विष्णुमन्त्रोंसे होम, द्विजपूजा और श्रीविष्णुकी पूजा करनी चाहिये। पापनाशकी कामनासे कार्तिक कृष्णा नवमी तिथिको विशेष प्रयत्नके साथ इस कुण्डकी सांवत्सरी यात्रा करनी चाहिये। इससे पुत्रहीन मानव पुत्रवान् होता है, इसमें संशय नहीं है। पुरुष हो अथवा स्त्री ही क्यों न हो, सभीको चाहिये कि वे इस कुण्डमें सादर स्नान करें। ऐसा करनेवाले समस्त भोगोंका उपभोग करनेके पश्चात् विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं॥ २२—२४$^{१}/_{२}$ ॥

लक्ष्मीकामनया तत्र स्नातव्यं च विशेषतः॥ २५ ॥
सर्वकाममवाप्नोति तत्र स्नानेन मानवः।
रुक्मिणीश्रीपतिप्रीत्यै दातव्यं च स्वशक्तितः॥ २६ ॥
कर्तव्या विधिवत् पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः।
ध्येयो लक्ष्मीपतिस्तत्र शङ्खचक्रगदाधरः॥ २७ ॥
पीताम्बरधरः स्त्रग्वी नारदादिभिरीडितः।
तार्क्ष्यासनो मुकुटवान् हेमांगदविभूषितः॥ २८ ॥
सर्वकामफलावाप्त्यै वक्षोलक्षितकौस्तुभः।
अतसीकुसुमश्यामः कमलामललोचनः॥ २९ ॥

मनुष्योंको चाहिये कि वे लक्ष्मीलाभार्थ इस कुण्डमें विशेष रूपसे स्नान करें। जो मानव यहाँ स्नान करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यहाँ रुक्मिणी तथा श्रीपति विष्णुकी प्रसन्नताके लिये शक्तिके अनुसार दान तथा यथाविधि ब्राह्मणकी विशेष रूपसे पूजा करनी चाहिये। यहाँपर समस्त कामनाओंको फलित करनेके लिये [इस प्रकारकी विधिके अनुसार] श्रीविष्णुका ध्यान करे। वे रमापति श्रीविष्णु शंख-चक्र-गदाधारी, पीताम्बर-विभूषित तथा मालासे मण्डित हैं। नारद आदि महर्षिगण उनकी स्तुति कर रहे हैं। वे गरुड़ासीन हैं। उनके मस्तकपर मुकुट तथा [भुजाओंमें] सुवर्णमय बाजूबन्द शोभा बढ़ा रहे हैं। उनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि उद्भासित हो रही है। उनका वर्ण अलसीके पुष्प-जैसा श्यामल तथा उनके लोचन अमल कमलकी भाँति सुन्दर हैं॥ २५—२९॥

एवं कृते न सन्देहः सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
इह लोके सुखं भुक्त्वा हरिलोके स मोदते॥ ३०॥

साधक इस प्रकारसे ध्यान करके समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। वह इस लोकमें सुख भोगकर [देहावसानके अनन्तर] विष्णुलोकमें परम हर्षित होता है॥ ३०॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यदघापहम्।
कलिकिल्बिषसंहारकारकं प्रत्ययात्मकम्॥ ३१॥
परं पवित्रमतुलं सर्वकामार्थसिद्धिदम्।
धनयक्ष इति ख्यातं परं प्रत्ययकारकम्॥ ३२॥
रुक्मिणीकुण्डवायव्यदिग्दले संस्मृतं शुभम्।
हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेरासीत्तत्र धनं महत्॥ ३३॥
तस्य रक्षार्थमत्यर्थं रक्षितो यक्ष उच्चकैः।

अब मैं एक अन्य पापनाशक तीर्थका वर्णन करता हूँ। यह

तीर्थ परम पवित्र सर्वकामसिद्धिप्रद, कलिकल्मषका नाशक तथा विश्वासकारक है। इस परम प्रत्ययकारक (सुदृढ़ विश्वास उत्पन्न करानेवाले), अतुलनीय तथा विख्यात तीर्थका नाम है धनयक्षतीर्थ। यह शुभावह तीर्थ रुक्मिणीकुण्डसे वायव्यकोणपर अवस्थित है। राजर्षि हरिश्चन्द्रकी विपुल धन-सम्पदा यहीं संरक्षित थी। इसके रक्षार्थ [विश्वामित्रजीके द्वारा] एक यक्ष सदाके लिये विशेष रूपसे नियुक्त किया गया था॥ ३१—३३½ ॥

विश्वामित्रो मुनिः पूर्वं यदा चैव पराजयत्॥ ३४॥
हरिश्चन्द्रं नरपतिं राजसूयकरं परम्।
राज्यं जग्राह सकलं चतुरङ्गबलान्वितम्॥ ३५॥
तद्वशेऽदाच्च स मुनिर्धनं सकलमुत्तमम्।
तद्रक्षायै प्रयत्नेन यक्षं स्थापितवानसौ॥ ३६॥
प्रमन्थर इति ख्यातं प्रमोदानन्दमन्दिरम्।
रक्षां विदधतस्तस्य बहुयत्नेन सर्वशः॥ ३७॥
तुतोष स मुनिर्धीमान् कदाचिद्विजितेन्द्रियः।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रीत्या परमया युतः॥ ३८॥

जब पूर्वकालमें ऋषि विश्वामित्रने राजसूय यज्ञ करनेवाले श्रेष्ठ नरेश महाराज हरिश्चन्द्रको पराजित करके उनकी चतुरंगिणी सेनाके साथ समस्त राज्य स्वयं ग्रहण कर लिया, तब मुनिने इस अतुल एवं उत्तम धन-सम्पदाके रक्षार्थ उस यक्षको प्रयत्नपूर्वक नियुक्त किया था। वह यक्ष तबसे उस धन-सम्पदाकी रक्षा करता आ रहा था। प्रसन्नता और आनन्दसे भरपूर उस यक्षका नाम था—प्रमन्थर। वह सर्वतोभावेन अतिशय प्रयत्नपूर्वक उस धनकी रक्षा करता था। किसी समय जितेन्द्रिय धीमान् मुनि विश्वामित्रने [वहाँ आकर उसे देखा और] सन्तुष्ट होकर उससे मधुर वाणीमें कहने लगे— ॥ ३४—३८॥

विश्वामित्र उवाच

वरं वरय धर्मज्ञ क्षिप्रमेव विमत्सरः।
भक्त्या परमया धीर सन्तुष्टोऽस्मि विशेषतः॥ ३९॥

विश्वामित्रने कहा—हे धर्मज्ञ! तुम मत्सरतासे रहित होकर वर माँगो। हे धीर! तुम्हारी परमभक्ति देखकर मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ॥ ३९॥

यक्ष उवाच

वरं प्रयच्छसि यदि विप्रवर्य मदीप्सितम्।
ममाङ्गमतिदुर्गन्धि शापाच्च नृपतेरभूत्।
सुगन्धयितुं ब्रह्मर्षे तत्प्रसीद मुनीश्वर॥ ४०॥

यक्ष बोला—हे विप्रवर्य! राजाके शापके कारण मेरी यह देह दुर्गन्धित हो गयी है। हे ब्रह्मर्षे! हे मुनीश्वर! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझपर प्रसन्न होकर मुझे सुगन्धित कर दीजिये॥ ४०॥

अगस्त्य उवाच

एवमुक्ते तु यक्षेण मुनिर्ध्यानस्थलोचनः।
तं विविच्यानया भक्त्या अभिषेकं चकार सः॥ ४१॥
तीर्थोदकेन विधिवत्कृत्वा सङ्कल्पमादरात्।
ततः सोऽभूत्क्षणेनैव सुगन्धोत्तरविग्रहः॥ ४२॥
तथाभूतः स मधुरं प्रोवाच प्रांजलिस्ततः।
पुनः पुरःस्थितो धीमान् विनयावनतस्तदा॥ ४३॥

अगस्त्यजीने कहा—इस प्रकार यक्षका वचन सुनकर मुनिने ध्यानमग्न नेत्रोंसे यक्षकी भक्तिका विचार किया तथा यक्षकी अभीष्ट सिद्धिका संकल्प करके उसी तीर्थजलसे आदरके साथ उसका सविधि अभिषेक किया। ऋषिके अभिषेकके कारण यक्षका शरीर अतिशय सुगन्धित हो उठा। विनयावनत धीमान्

यक्ष इस प्रकार उत्तम सुगन्धयुक्त शरीरसे सम्पन्न होकर अंजलि बाँधकर पुनः उनके समक्ष उपस्थित हुआ और मुनिसे मधुर वाणीमें कहने लगा॥ ४१—४३ ॥

यक्ष उवाच

त्वत्कृपाभिरहं धीर जातः सुरभिविग्रहः।
एतत्स्थानं यथा ख्यातिं याति सर्वज्ञ तत्कुरु॥ ४४॥
त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे तथा यत्नं विधेहि वै॥ ४५॥

यक्षने कहा—हे धीर! आपकी कृपाराशिसे मेरा शरीर सुगन्धित हो गया। हे विप्रर्षे! हे सर्वज्ञ! अब आपकी कृपासे यह स्थान जिस प्रकार प्रसिद्ध हो जाय, आप वैसा प्रयत्न कीजिये॥ ४४-४५ ॥

अगस्त्य उवाच

एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा मुनिः स्तिमितलोचनः।
यक्षं प्रति प्रसन्नात्मा ह्युवाच श्लक्ष्णया गिरा॥ ४६॥

अगस्त्यजीने कहा—अधखुले नेत्रोंवाले ऋषि विश्वामित्रने यक्षकी प्रार्थना सुनकर एक क्षण ध्यान किया, तत्पश्चात् वे प्रसन्न मनसे कोमल वाणीमें उस यक्षसे कहने लगे॥ ४६ ॥

विश्वामित्र उवाच

प्रसिद्धिमतुलां यक्ष एतत्स्थानं गमिष्यति।
धनयक्ष इति ख्यातिमेतत्तीर्थं गमिष्यति॥ ४७॥
सौन्दर्यदं शरीरस्य परं प्रत्ययकारकम्।
यत्र स्नात्वा विधानेन दौर्गन्ध्यं त्यजति क्षणात्।
तत्र स्नानं प्रयत्नेन कर्तव्यं पुण्यकाङ्क्षिभिः॥ ४८॥
दानं श्रद्धास्वशक्तिभ्यां लक्ष्मीपूजा विशेषतः।

विश्वामित्रजीने कहा—हे यक्ष! यह स्थान अतुल प्रसिद्धिको प्राप्त करेगा। [तुम्हारे नामके अनुसार] यह स्थान धनयक्षतीर्थ कहा जायगा। विश्वासकारक यह परमतीर्थ शरीरको सौन्दर्य देनेवाला

होगा। यहाँ विधानपूर्वक स्नान करनेपर देहकी दुर्गन्ध तत्काल नष्ट हो जायगी। पुण्यकामी व्यक्तियोंको यहाँ यत्नपूर्वक स्नान करना चाहिये और श्रद्धापूर्वक यथाशक्ति दान देना चाहिये। इस तीर्थमें विशेष रूपसे लक्ष्मीपूजन करना चाहिये॥ ४७—४८१/२ ॥

तत्र स्नानेन दानेन लक्ष्मीप्रीत्यै विशेषतः॥ ४९॥
पूजया तु निधीनां च नवानामपि सुव्रत।
इहलोके सुखं भुक्त्वा परलोके स मोदते॥ ५०॥
महापद्मस्तथा पद्मः शङ्खो मकरकच्छपौ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव॥ ५१॥
एतेषामपि कुण्डेऽत्र सन्निधिर्भविताऽनघ।
एतेषां तु विशेषेण पूजा बहुफलप्रदा॥ ५२॥

हे सुव्रत! लक्ष्मीकी प्रसन्नताके लिये इस तीर्थमें स्नान-दान और लक्ष्मी एवं नवनिधियोंका पूजन करनेसे इहलोकमें विविध सुख भोगनेके बाद परलोकमें सुखकी प्राप्ति होती है। महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील तथा खर्व—ये नौ निधियाँ हैं। हे अनघ! [लक्ष्मीजीके साथ ही] इस कुण्डमें निधियाँ भी [सर्वदा] सन्निहित रहेंगी। उनकी विशेष रूपसे की गयी पूजा बहुत-से फल प्रदान करेगी।॥ ४९—५२ ॥

जलमध्ये प्रकर्तव्यं निधिलक्ष्मीप्रपूजनम्॥ ५३॥
अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधानि च॥ ५४॥
सुवर्णादि यथा शक्त्या वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।
गुप्तं दानं प्रयत्नेन कर्तव्यं सुप्रयत्नतः॥ ५५॥
फलानि च सुवर्णानि देयानि च विशेषतः॥ ५६॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं बहुफलप्रदम्।
श्रद्धया परया युक्तैः कर्तव्यं श्रद्धयाऽधिकम्॥ ५७॥

माघे कृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
तत्र स्नानं पितॄणान्तु तर्पणं च विशेषतः॥ ५८॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् तृप्यत्विति ब्रुवन्।
अपसव्येन विधिवत् तर्पयेदंजलित्रयम्॥ ५९॥
एवं कुर्वन् नरो यक्ष न मुह्यति कदाचन।
अत्र स्नातो दिवं याति अत्र स्नातः सुखी भवेत्॥ ६०॥
अत्र स्नातेन ते यक्ष कर्तव्यं पूजनम्पुरः।
त्वत्पूजनेन विधिवन्नृणां पापक्षयो भवेत्॥ ६१॥
नमः प्रमथराजेति पूजामंत्र उदाहृतः।
तीर्थमध्ये प्रकर्तव्यं पूजनं श्रवणादिकम्॥ ६२॥

[इस तीर्थके] जलके मध्यमें निधियोंके सहित लक्ष्मीकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। उदारमना होकर इस कुण्डके निकट नाना प्रकारके अन्न, विविध वस्त्र तथा यथाशक्ति स्वर्णदान करना चाहिये। यहाँ प्रयत्नपूर्वक गुप्तदान करे और विशेषरूपसे उत्तम फलोंका दान करे। कृष्णपक्षीय चतुर्दशीको यहाँका स्नान अनेक फल देनेवाला है। उत्कट श्रद्धावाले लोगोंके लिये परम श्रद्धापूर्वक यहाँ स्नान तथा दान करना कर्तव्य है। माघकी कृष्ण चतुर्दशीको इस [निधितीर्थ]-की साम्वत्सरी यात्रा होती है। [उस समय] यहाँ स्नानके साथ विशेष रूपसे पितृतर्पण करना चाहिये। 'ब्रह्माजीसे लेकर तृणपर्यन्त समस्त जगत् तृप्त हो।' यह तर्पण वाक्य बोलते हुए अपसव्य होकर तीन अंजलि जलसे यथाविधि तर्पण करना चाहिये। हे यक्ष! ऐसा करनेवाला मानव कभी मोहग्रस्त नहीं होता। हे यक्ष! यहाँ स्नान करनेवाला स्वर्गगमन करता है। इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य सुखी हो जाता है। हे यक्ष! यहाँ स्नान करनेवालेको पहले तुम्हारी पूजा अवश्य करनी चाहिये,

तुम्हारी पूजा करनेसे मनुष्योंका पाप नष्ट होगा। **नमः प्रमथराजाय** (प्रमथराजको नमस्कार है)—यह तुम्हारी पूजाका मन्त्र कहा गया है। इस तीर्थमें तुम्हारी पूजा [तथा तुम्हारा जो आख्यान है, उसका] श्रवण आदि करना चाहिये॥ ५३—६२॥

निधिलक्ष्म्योस्तथा यक्ष तव पूजा विशेषतः।
एवं यः कुरुते धीरः सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ ६३॥
धनार्थी धनमाप्नोति पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात्।
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति तत्किं न यदिहाप्यते॥ ६४॥
यस्तु मोहान्नरो यक्ष स्नानं न कुरुते किल।
तस्य साम्वत्सरं पुण्यं त्वं ग्रहीष्यसि सर्वशः॥ ६५॥

हे यक्ष! इस तीर्थमें निधियोंकी, लक्ष्मीजीकी तथा तुम्हारी पूजा विशेष रूपसे कर्तव्य है। जो धीर व्यक्ति इस विधि-विधानसे पूजा करता है, उसको समस्त कामनाओंकी प्राप्ति होती है। धनार्थी धन, पुत्रार्थी पुत्र, मोक्षार्थी मोक्षलाभ करनेमें समर्थ हो जाता है। अधिक क्या कहा जाय, जगत्‌में ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है, जिसे इस तीर्थके सेवनद्वारा मनुष्य न पा सके। हे यक्ष! जो मानव मोहके कारण यहाँ स्नान नहीं करता, तुम उसके वर्षभरका समस्त पुण्य ले लोगे॥ ६३—६५॥

इति दत्त्वा वराँस्तस्मै विश्वामित्रो मुनीश्वरः।
अन्तर्दधे मुनिवरस्तदा स च तपोनिधिः॥ ६६॥
तदाप्रभृति तत्स्थानं परमां ख्यातिमाययौ।
तस्य तीर्थस्य सकला भूमिः स्वर्णविनिर्मिता॥ ६७॥
दिव्यरत्नौघखचिता समन्तादुपशोभिता।
एवं यः कुरुते विद्वन् स याति परमां गतिम्॥ ६८॥

तदनन्तर तपोनिधि मुनीश्वर विश्वामित्र यक्षको इस प्रकार अनेक वरदान देकर अन्तर्धान हो गये। हे द्विज! तबसे यह स्थान

परम प्रसिद्ध हो गया। इस तीर्थकी सम्पूर्ण भूमि स्वर्णसे निर्मित, दिव्यरत्न-जड़ित तथा सभी ओरसे सम्यक् रूपसे सुशोभित है। हे विद्वन्! जो मानव पूर्वोक्त विधिसे इस तीर्थका सेवन करता है, उसे परमगतिका लाभ हो जाता है॥ ६६—६८॥

धनयक्षादुत्तरस्मिन् दिग्भागे संस्थितं द्विज।
वसिष्ठकुण्डं विख्यातं सर्वपापापहं सदा॥ ६९॥
वसिष्ठस्य सदा तत्र निवासः सुतपोनिधेः।
अरुन्धती सदा यस्य वर्तते निर्मलव्रता॥ ७०॥
अत्र स्नानं विशेषेण श्राद्धपूर्वमतन्द्रितः।
यः कुर्यात् प्रयतो धीमाँस्तस्य पुण्यमनुत्तमम्॥ ७१॥
वामदेवस्य तत्रैव सन्निधिर्वर्ततेऽनघ।
वसिष्ठवामदेवौ तु पूजनीयौ प्रयत्नतः॥ ७२॥
पतिव्रता पूजनीयाऽरुन्धती च विशेषतः।
स्नातव्यं विधिना सम्यग् दातव्यं च स्वशक्तितः॥ ७३॥
सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः।
अत्र यः कुरुते स्नानं स वसिष्ठसमो भवेत्॥ ७४॥

हे द्विज! धनयक्षतीर्थसे उत्तर दिग्भागमें सर्वदा समस्त पापोंका नाशक वसिष्ठकुण्ड नामक विख्यात तीर्थ है। उत्तम तपस्याके निधान ऋषि वसिष्ठजी यहाँ सतत निवास करते हैं। निर्मल व्रतवाली अरुन्धतीजी भी यहाँ स्वामीके समीपमें निवास करती हैं। जो धीमान् व्यक्ति आलस्यरहित होकर श्राद्ध-कृत्योंके सम्पादनपूर्वक इस तीर्थमें स्नान करता है, उसे अत्युत्तम पुण्य प्राप्त होता है। हे निष्पाप! महर्षि वामदेव भी इस तीर्थमें सदा ही निवास करते हैं। अतः यत्नपूर्वक इस तीर्थमें वसिष्ठ और वामदेवकी पूजा करनी चाहिये तथा [साथ ही] विशेष रूपसे पतिव्रता देवी अरुन्धतीकी भी पूजा करनी चाहिये। इस

तीर्थमें सविधि स्नान एवं यथाशक्ति दान भी करना चाहिये। ऐसा करनेसे समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं, इसमें संशय नहीं है। जो मानव यहाँ स्नान करता है, वह वसिष्ठजीके समान हो जाता है॥ ६९—७४॥

भाद्रे मासि सिते पक्षे पंचम्यां नियतव्रतः।
तस्य साम्वत्सरी यात्रा कर्तव्या विधिपूर्विका॥ ७५॥
विष्णुपूजा प्रयत्नेन कर्तव्या श्रद्धयाऽत्र वै।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते॥ ७६॥
वसिष्ठकुण्डाद् विप्रेन्द्र प्रत्यग्दिग्दलमाश्रितम्।
विख्यातं सागरं कुण्डं सर्वकामार्थसिद्धिदम्।
यत्र स्नानेन दानेन सर्वकामानवाप्नुयात्॥ ७७॥
पौर्णमास्यां समुद्रस्य स्नानाद् यत्पुण्यमाप्नुयात्।
तत्पुण्यं पर्वणि स्नातो नरश्चाऽक्षयमाप्नुयात्॥ ७८॥
तस्मादत्र विधानेन स्नातव्यं पुत्रकाङ्क्षया।
आश्विने पौर्णमास्यां तु विशेषात् स्नानमाचरेत्॥ ७९॥
एवं कुर्वन् नरो विद्वान् सर्वपापैः प्रमुच्यते।
अत्र स्नात्वा नरो दत्वा यथाशक्त्या दिवं व्रजेत्॥ ८०॥

व्रतमें तत्पर मनुष्य भाद्रपदमासकी शुक्ला पंचमीको वसिष्ठकुण्डकी यथाविधि साम्वत्सरी यात्रा करे। मनुष्यको श्रद्धाके साथ यत्नपूर्वक इस तीर्थमें विष्णुपूजा करनी चाहिये, ऐसा करनेवाला सभी पापोंसे रहित होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। हे विप्रेन्द्र! वसिष्ठकुण्डसे पश्चिम दिशामें सागर नामक विख्यात कुण्ड है। यह सर्वकामार्थसिद्धिप्रद है। यहाँ स्नान-दान करनेसे समस्त कामनाओंकी प्राप्ति होती है। पूर्णिमा (आदि पर्वों)-के अवसरपर समुद्रमें स्नान करके व्यक्ति जिस पुण्यको प्राप्त करता है, उसे वह अक्षय रूपमें पर्वके समय सागरकुण्डमें स्नान करनेसे पा लेता है। इसीलिये पुत्र [आदिकी]-

कामनासे इस सागरकुण्डमें यथाविधि स्नान करना चाहिये। विशेषतः आश्विन पौर्णमासीको इस तीर्थमें स्नान करे। विद्वान् मानव ऐसा करते हुए समस्त कलुषोंसे मुक्त हो जाता है तथा यहाँके यथाशक्ति स्नान-दानके प्रभावसे स्वर्गमें गमन करता है॥ ७५—८०॥

सागरान्नैर्ऋते भागे योगिनीकुण्डमुत्तमम्॥
यत्रासते चतुःषष्टिर्योगिन्यो जलसंस्थिताः॥ ८१॥
सर्वार्थसिद्धिदाः पुंसां स्त्रीणां चैव विशेषतः।
परसिद्धिप्रदाः सर्वाः सर्वकामफलप्रदाः॥ ८२॥
आश्विने शुक्लपक्षस्य अष्टम्यां च विशेषतः।
स्नातव्यं च प्रयत्नेन योगिनीप्रीतये नृभिः॥ ८३॥
अत्र स्नानं तथा दानं सर्वं सफलतां व्रजेत्।
यक्षिणीप्रभृतयः सिद्धा भवन्त्यत्र न संशयः॥ ८४॥

सागरकुण्डसे नैर्ऋत्य कोणमें उत्तम योगिनीकुण्ड है। इस योगिनीकुण्डके जलमें चौंसठ योगिनियाँ विद्यमान हैं। ये योगिनियाँ मनुष्योंको तथा विशेषतः स्त्रियोंको सर्वार्थसिद्धि प्रदान करती हैं। ये सभी योगिनियाँ परम सिद्धिप्रदा तथा सर्वकामफलप्रदा हैं। इन योगिनियोंकी प्रसन्नताहेतु मनुष्य आश्विन शुक्लाष्टमीको योगिनीतीर्थमें अवश्य स्नान करें। यहाँपर किया गया स्नान-दान सर्वविध साफल्यदायक है। यहाँ [साधना करनेसे] यक्षिणी आदि सिद्ध होती हैं, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ८१—८४॥

योगिनीकुण्डतः पूर्वमुर्वशीकुण्डमुत्तमम्।
यत्र स्नातो नरो विद्वान्नुर्वशीं दिवि संश्रयेत्॥ ८५॥
पुरा किल मुनिर्धीरो रैभ्यो नाम तपोधनः।
चचार हिमवत्पार्श्वे निराहारो जितेन्द्रियः॥ ८६॥
तत्तपो विपुलं दृष्ट्वा भीतः सुरपतिस्ततः।
उर्वशीं प्रेषयामास तपोविघ्नाय चादरात्॥ ८७॥

ततः सा प्रेषिता तेनाजगाम गजगामिनी।
उवास हिमवत्पार्श्वे रैभ्याश्रममनुत्तमम्॥ ८८॥
नवफुल्ललताकुंजे मञ्जुकूजद्विहङ्गमे।
किन्नरीकेलिसङ्गीतस्तिमिताङ्गकुरङ्गके ॥ ८९॥
पुन्नागकेशराशोकच्छिन्नकिञ्जल्कपिंजरे ।
कल्पिते कांचनगिरौ द्वितीय इव वेधसा॥ ९०॥

योगिनीकुण्डसे पूर्व दिशाभागमें उर्वशीकुण्ड नामक उत्तम तीर्थ है। यहाँ जो विद्वान् मनुष्य स्नान करता है, उसे स्वर्गमें उर्वशीकी प्राप्ति होती है। पूर्वकालमें यहाँ धीर और तपोधन रैभ्य नामक मुनि रहते थे। निराहार और जितेन्द्रिय होकर वे हिमालयके समीप तपश्चर्या करते थे। महर्षि रैभ्यकी विपुल तपस्याको देखकर देवराज इन्द्र भयभीत हो गये और उनकी तपस्यामें विघ्न करनेहेतु उर्वशी नामकी एक श्रेष्ठ अप्सराको आदरपूर्वक [रैभ्यके पास] भेज दिया। इन्द्रके द्वारा प्रेषित वह गजगामिनी अप्सरा हिमालयके पास स्थित रैभ्यमुनिके अत्युत्तम आश्रममें रहने लगी। उस आश्रममें नये-नये पुष्पोंसे लदी हुई लताओंके कुंज थे और उनमें पक्षीगण मंजुल कूजन कर रहे थे। वहाँ किन्नरियोंके नृत्य-संगीत हरिणकुलके अंगोंको स्तम्भित कर रहे थे। [आश्रम-परिसरमें] पुन्नाग, केशर और अशोकपुष्पोंके पराग उड़-उड़कर उस लताकुंजमें विकीर्ण हो रहे थे। इस प्रकार वह आश्रम ऐसा सुशोभित हो रहा था, मानो सुमेरुपर्वत बनानेके उपरान्त विधाताके द्वारा एक और सुमेरुपर्वतका निर्माण किया गया॥ ८५—९०॥

सा बभौ कान्तिसर्वस्वकोशः कुसुमधन्वनः।
उर्वश्यनल्पसामान्यलावण्यामृतवाहिनी ॥ ९१॥
अङ्गप्रभासुवर्णेन सितमौक्तिकशोभिता।
तारुण्यरुचिरत्वेन तारुण्येन विभूषिता॥ ९२॥

विलोललोचनापाङ्गतरङ्गधवलत्विषा ।
नवपल्लवसच्छायं कल्पयन्ती निजाधरम्॥ १३॥
कर्णोपलम्बिसङ्घुष्यद्भृङ्गाढ्यचूतमञ्जरी ।
सुधागर्भसमुद्भूता पारिजातलता यथा॥ १४॥
तनुमध्या पृथुश्रोणिर्वर्णोद्भिन्नपयोधरा।
निःशाणितशरस्येव शक्तिः कुसुमधन्वनः॥ १५॥
अपश्यदाश्रमे तस्मिन् मुनिरायतलोचनाम्।
नयनानलदाहेन विदग्धेन मनोभुवा॥ १६॥
त्रिनेत्रवंचनायेव कल्पितां ललनातनुम्।
तामाश्रमलतापुष्पकांचीरचितकुण्डलाम् ॥ १७॥
विलोक्य तां विशालाक्षीं मुनिर्व्याकुलितेन्द्रियः।
बभूव रोषसन्तप्तः शशाप च बहु ज्वलन्॥ १८॥

असीम और असाधारण लावण्यसुधाको धारण की हुई वह उर्वशी कामदेवके सारभूत सौन्दर्यका कोश प्रतीत हो रही थी। शुभ्र मौक्तिककी-सी श्वेत-स्वर्णिम कान्तिसे समन्वित देहवाली और युवावस्थोचित रुचिरतासे युक्त वह अप्सरा ऐसी जान पड़ती थी कि मानो युवावस्थाने स्वयं ही उसको सजाया हो। उसके चंचल नेत्रोंके कटाक्ष नदीकी धवल तरंगोंके समान थे और उसके अधर नूतन किसलयोंकी शोभाको धारण किये थे। अप्सराके कानोंमें गुंजन करते हुए भौरोंसे युक्त आम्रमंजरी शोभित हो रही थी। वह अमृतसे समुत्पन्न पारिजातलताके समान जान पड़ती थी। क्षीणकाय मध्यदेश, पृथुल श्रोणिदेश एवं अभ्युन्नत पयोधरोंके कारण वह तीक्ष्ण बाणोंवाले पुष्पधन्वा कामदेवकी मूर्तिमती शक्ति प्रतीत हो रही थी। उसे देखकर ऐसा लगता था कि मानो शिवजीकी नेत्राग्निसे दग्ध हुए कामदेवने भगवान् शंकरको ठगनेके लिये नारीका रूप धारण किया हो। [कर्णपर्यन्त]

विस्तृत नेत्रोंवाली तथा आश्रमकी ही लताओंके पुष्पोंसे करधनी और कुण्डलोंको निर्मित करके उन्हें धारण की हुई उस अप्सराको महर्षि रैभ्यने देखा। उस विशालाक्षीको देखकर उन मुनिकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं और अग्निज्वालाके समान क्रोधावेशमें आकर उन्होंने उसे शाप दे दिया॥ ९१—९८॥

रैभ्य उवाच

कुरूपतां व्रज क्षिप्रं या त्वं सौन्दर्यगर्विता।
समागता तपोविघ्नहेतवे मम सन्निधौ॥ ९९॥

रैभ्यमुनिने कहा— जो तुम सौन्दर्यसे मतवाली होकर तपस्यामें विघ्न करनेहेतु हमारे आश्रममें आयी हो, अतः तत्काल ही तुम कुरूप हो जाओ॥ ९९॥

अगस्त्य उवाच

इति शप्ता रुषा तेन मुनिना सा शुभेक्षणा।
उवाच वनिता भूत्वा प्रांजलिर्मुनिमादरात्॥ १००॥

अगस्त्यजीने कहा—रोषपरवश ऋषि रैभ्यने जब शुभदर्शना उस उर्वशीको इस प्रकारसे शापित किया, तब वह अंजलि बाँधकर आदरपूर्वक मुनिसे कहने लगी॥ १००॥

उर्वश्युवाच

भगवन् मे प्रसीद त्वं पराधीना यतस्त्वहम्।
त्वच्छापस्य कथं मुक्तिर्भविता नियतव्रत॥ १०१॥

उर्वशी कहने लगी—हे भगवन्! मैं पराधीना नारी हूँ, मेरे प्रति आप प्रसन्न हो जायँ। हे व्रतशील! अब मुझे [बताइये कि] आपके शापसे मुक्ति किस प्रकार होगी?॥ १०१॥

रैभ्य उवाच

अयोध्यायामस्ति तीर्थं पावनं परमं महत्।
तत्र स्नानं कुरुष्वाऽद्य सौन्दर्यम्परमाप्नुहि॥ १०२॥

त्वन्नाम्नैव च विख्यातिं तोयं यास्यति तद्ध्रुवम्॥ १०३॥

रैभ्य मुनिने कहा—अयोध्यामें एक परमपावन महातीर्थ है। तुम तत्काल वहीं जाकर स्नान करो। इससे तुमको पुनः सुरूपताका लाभ होगा और आजसे वह जल [-में विद्यमान तीर्थ] तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा, यह निश्चित है॥ १०२-१०३॥

अगस्त्य उवाच

एवं सा विप्रवचसा विदधे सर्वमादरात्।
सुन्दरी साऽभवत्क्षिप्रं तत्स्थानं ख्यातिमाययौ॥ १०४॥
अत्र स्नानं मुनिश्रेष्ठ यः कुर्याद्विधिवज्जनः।
सौन्दर्यं परमं तस्य भवेत्तत्र न संशयः॥ १०५॥

अगस्त्यजीने कहा—तदनन्तर उर्वशी ब्राह्मण रैभ्यके वाक्यका आदर करके अयोध्या गयी तथा [उनके कहनेके अनुसार] समस्त अनुष्ठान सम्पन्न किया, जिससे वह तत्काल फिरसे सौन्दर्ययुक्त हो गयी। जहाँ उसने स्नान किया था, उस स्थानका नाम उर्वशीकुण्ड कहा गया। हे मुनिप्रवर! जो मानव इस महातीर्थमें सविधि स्नान करता है, उसे परम सौन्दर्यकी प्राप्ति हो जाती है। इसमें संशय नहीं है॥ १०४-१०५॥

भाद्रे शुक्लतृतीयायां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
विष्णुरत्र जनैः पूज्यः सर्वकामार्थसिद्धये॥ १०६॥
एवं कुर्वन् नरो विद्वान् विष्णुलोके वसेत्सदा।
नरो वा यदि वा नारी सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ १०७॥

भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको यहाँकी साम्वत्सरी यात्रा होती है। सर्वकामसिद्धिहेतु यहाँपर सभीके द्वारा श्रीविष्णु पूज्य हैं। विद्वान् व्यक्तिको ऐसे नियमका पालन करनेसे वैकुण्ठलोकमें सदा वास मिलता है। [तीर्थका सेवन करनेवाले] पुरुष हों या स्त्रियाँ हों—वे सभी लोग समस्त कामनाओंकी

प्राप्ति करते हैं॥ १०६-१०७॥

घोषार्ककुण्डं परममुर्वशीकुण्डदक्षिणे।
वर्तते मुनिशार्दूल सर्वपापापहं सदा॥ १०८॥
यत्र स्नानेन दानेन सूर्यलोके महीयते।
एतत्तीर्थस्य सदृशं नापरं विद्यते क्वचित्॥ १०९॥
व्रणी कुष्ठी दरिद्री वा दुःखाक्रान्तोऽपि यो नरः।
करोति विधिवत् स्नानं सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ ११०॥
रविवारे विशेषेण कर्तव्यं स्नानमादरात्।
भाद्रे मासि तथा माघे शुक्लषष्ठ्यां प्रयत्नतः॥ १११॥
कर्तव्यं विधिवत् स्नानं सूर्यलोकाभिकाङ्क्षया।
पौषे मासि तथा स्नानं सूर्यवारे विशेषतः॥ ११२॥
सप्तम्यां रवियुक्तायां स्नानं बहुफलप्रदम्।
घोषाभिधोऽभवत् पूर्वं सूर्यवंशे नरेश्वरः॥ ११३॥

हे मुनिशार्दूल! उर्वशीकुण्डसे दक्षिण दिशामें समस्त पापोंका नाशक, श्रेष्ठतम घोषार्ककुण्ड विद्यमान है। यहाँ स्नान-दान करनेसे मानव सूर्यलोकमें पूजित होता है। इस घोषार्ककुण्डके समान अन्य तीर्थ कहीं भी नहीं है। व्रणी, कुष्ठी, दरिद्र तथा दुःखाक्रान्त मानव इस तीर्थमें यथाविधि स्नान करके समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। विशेषतः रविवारके दिन आदरपूर्वक इस कुण्डमें स्नान करना चाहिये। सूर्यलोकमें जानेका अभिलाषी मानव भाद्रपद तथा माघमासके शुक्लपक्षकी षष्ठीतिथिमें प्रयत्नपूर्वक इस तीर्थमें यथाविधि स्नान करे। पौषमासमें तथा विशेषतः रविवारको इस तीर्थमें यथाविधि स्नान करना प्रशस्त है। यदि रविवारको सप्तमी तिथि पड़ती है, तो उसमें किया गया स्नान अधिक फलप्रद होता है। पूर्वकालमें घोष नामक एक राजा सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए थे॥ १०८—११३॥

समुद्रमेखलामेकः पृथिवीं समपालयत्।
यस्य कीर्त्या प्रकाशन्ते त्रिलोकीमण्डलानि वै॥ ११४॥
यः प्रतापात् स्फुरन् भाति प्रभाकर इवाऽपरः।
प्रचण्डतरदोर्दण्डखण्डितारातिमण्डलः॥ ११५॥
स कदाचित् प्रजापालो मन्त्रिविन्यस्तभूतलः।
बभ्राम मृगयासक्तो वनेऽतिगहनद्रुमे॥ ११६॥

राजा घोष समुद्रोंसे घिरी हुई पृथिवीका अकेले ही सम्यक् शासन करते थे। उनकी कीर्तिसे त्रैलोक्यमण्डल प्रकाशित था। वे अपने प्रतापसे प्रदीप्त द्वितीय सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहे थे। उन्होंने अपने प्रचण्डतम बाहुबलसे शत्रुसमुदायको पराभूत कर दिया था। वे प्रजापालक महाराज घोष एक बार अपने मन्त्रियोंपर राज्यभार छोड़कर शिकार करनेके विचारसे सघन वृक्षोंवाले वनमें भ्रमण करने लगे॥ ११४—११६॥

स राजा पूर्वजन्मोत्थपापैरशुभसूचकैः।
कृमिव्याप्तकराम्भोजः सुन्दरोऽपि गतस्मयः॥ ११७॥
मृगयायामभूदेकः कदाचित् पर्यटन् वने।
वराहसिंहहरिणान् निघ्नन् गच्छन्नितस्ततः॥ ११८॥
तृषाक्रान्तो म्लानतनुः सरोऽपश्यत् पुरो नृपः।
ददर्श तत्र च मुनीन् स्नानसन्ध्यादितत्परान्॥ ११९॥
ततो विधिवदाचम्य स्नानं चक्रे नरेश्वरः।
ततो दिव्यशरीरोऽभूदानन्दामलमानसः॥ १२०॥
मुनिभिस्तीर्थमाज्ञाय चक्रे सूर्यस्तुतिं प्रियाम्॥ १२१॥

राजा घोष परम सुन्दर थे, तथापि उनमें [अपने सौन्दर्यका] अहंकार नहीं था। उनके द्वारा पूर्वजन्ममें किये गये पापोंके सूचक कर्मविपाकके कारण उनका कमलवत् सुन्दर हाथ कृमियोंसे ग्रस्त हो गया। एक बार राजा घोष एकाकी ही मृगयार्थ वनमें भ्रमण

कर रहे थे। उन्होंने वहाँ सिंह, वराह तथा हरिणोंका वध किया और इधर-उधर भ्रमण करते हुए थककर तृषासे अत्यन्त पीड़ित हो गये। वे म्लानमुख हो गये थे। तभी उन्होंने सामने एक सरोवरको देखा। उन्होंने देखा कि मुनिगण वहाँ स्नान तथा सन्ध्यावन्दनादिमें तत्पर हैं। तदनन्तर नरेश्वर घोषने भी यथाविधि आचमन करके वहाँ स्नान किया। स्नान करते ही उनका शरीर दिव्य कान्तिवाला हो गया और इस आनन्दके कारण उनका मन भी निर्मल हो गया। राजाको उन मुनिजनोंसे यह ज्ञात हुआ कि यह एक [सौर] तीर्थ है। तब वहाँ वे भगवान् सूर्यको प्रिय लगनेवाली स्तुति करने लगे॥ ११७—१२१॥

राजोवाच

भगवन् देवदेवेश नमस्तुभ्यं चिदात्मने।
नमः सवित्रे सूर्याय जगदानन्ददायिने॥ १२२॥
प्रभागेहाय देवाय त्रयीभूताय ते नमः।
विवस्वते नमस्तुभ्यं योगज्ञाय सदात्मने॥ १२३॥
पराय परमेशाय त्रिलोकीतिमिरच्छिदे।
अचिन्त्याय सदा तुभ्यं नमो भास्करतेजसे॥ १२४॥
योगप्रियाय योगाय योगज्ञाय सदा नमः।
ओङ्काराय वषट्काररूपिणे ज्ञानरूपिणे॥ १२५॥
यज्ञाय यजमानाय हविषे ऋत्विजे नमः।
रोगघ्नाय स्वरूपाय कमलानन्ददायिने॥ १२६॥
अतिसौम्यातितीक्ष्णाय सुराणाम्पतये नमः।
सत्राशाय नमस्तुभ्यं भक्तत्राय प्रियात्मने॥ १२७॥
प्रकाशकाय सततं लोकानां हितकारिणे।
प्रसीद प्रणतायाऽद्य मह्यं भक्तिकृते स्वयम्॥ १२८॥

राजाने कहा—हे भगवन्! आप चिदात्मा हैं। हे देवदेवेश! आपको प्रणाम है! मैं जगदानन्ददाता, सविता, सूर्यको नमस्कार

करता हूँ। प्रकाशके आश्रय, त्रयी (ऋग्-यजुष्-सामवेद)-मूर्ति, योगवेत्ता, नित्यात्मा, दिव्य स्वरूपवाले आप विवस्वान्‌को नमस्कार है। पर, परमेश्वर, त्रिलोकीके अन्धकारका ध्वंस करनेवाले, मन आदिसे अगोचर तथा देदीप्यमान तेजवाले आपको सर्वदा नमस्कार है। योगप्रिय, योगरूप तथा योगज्ञको सतत प्रणाम है। ज्ञानात्मा, वषट्कारस्वरूप तथा [एकाक्षर] प्रणवस्वरूप आपको नमस्कार है। जो स्वयं ही यज्ञ, यजमान, हविष् तथा ऋत्विक् हैं, मैं उन सूर्यदेवको प्रणाम करता हूँ। जो पद्मको आनन्द देनेवाले हैं, जिनका स्वरूप अतीव सौम्य है, जो आत्मस्वरूप हैं, अतितीक्ष्ण हैं, उन रोगहन्ता देवाधिदेवको प्रणाम है। हे प्रियात्मन्! आप यज्ञभुक् हैं तथा भक्तोंके त्राता हैं। आपको प्रणाम है! आप सतत प्रकाशमान तथा लोकहितकारी हैं। मैं आपके प्रति भक्ति करता हूँ। मैं प्रणत हूँ। अब मुझपर आप प्रसन्न हों॥ १२२—१२८॥

अगस्त्य उवाच

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य स प्रसन्नो रविः स्वयम्।
आविर्बभूव सहसा भक्तस्य प्रियकाम्यया।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रश्रयानतमूर्धजम्॥ १२९॥

अगस्त्यजीने कहा—राजा घोषके द्वारा इस प्रकार स्तुति करनेसे सूर्यदेव उनपर प्रसन्न हो गये। वे भक्तका प्रिय करनेके लिये सहसा आविर्भूत हो गये और विनयपूर्वक सिर झुकाये महाराज घोषसे मधुर वाणीमें कहने लगे॥ १२९॥

रविरुवाच

वरम्वरय राजेन्द्र प्रसन्नोऽस्मि तवाग्रतः।
ददामि तद्वरं तेऽद्य यत् त्वया मनसेप्सितम्॥ १३०॥

सूर्यदेवने कहा—हे राजन्! मैं प्रसन्न होकर तुम्हारे समक्ष आया हूँ, वर माँगो। तुम जो भी मनोवांछित वर माँगोगे, उसे मैं अभी प्रदान करूँगा॥ १३०॥

राजोवाच

भगवन् भास्करानन्त प्रयच्छसि वरं यदि।
मन्नाम्ना कृतमूर्तिस्ते तिष्ठत्वत्र सदा विभो॥ १३१॥

राजाने कहा—हे विभो! हे भगवान् भास्कर! हे अनन्त! यदि आप वरदान देना चाहते हैं, तब आप मेरे नामसे घटित मूर्तिरूपमें यहाँ सदा निवास करें॥ १३१॥

रविरुवाच

एवमस्तु मनुष्येन्द्र तव वाञ्छा मनोहरा।
एतत्स्तोत्रं त्वयोक्तं मे ये पठिष्यन्ति मानवाः॥ १३२॥
तेभ्यस्तुष्टः प्रदास्यामि सर्वान् कामान् नरेश्वर।
एतत्स्थानं परां ख्यातिं त्वन्नाम्ना यास्यति क्षितौ॥ १३३॥
सर्वान् कामानवाप्नोति योऽत्र स्नानं समाचरेत्।
मद्भक्तेन सदा राजन् कर्तव्यं स्नानमत्र वै॥ १३४॥
यं यं काममिहेच्छेत तं तं काममवाप्नुयात्॥ १३५॥

भगवान् सूर्यने कहा—हे मनुजेन्द्र! ऐसा ही हो! तुम्हारी अभिलाषा अत्यन्त मनोरम है। हे नरेश्वर! जो लोग तुम्हारे द्वारा पठित मेरे इस स्तवका पाठ करेंगे, मैं उनके प्रति प्रसन्न होकर समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करूँगा। यह स्थान पृथ्वीपर तुम्हारे नामसे परम प्रसिद्ध होगा। जो मानव यहाँ स्नान करेगा, उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण होंगी। हे राजन्! मेरा भक्त यहाँ सतत स्नान करे। वह यहाँ जो-जो कामना करेगा, उसे वह सब प्राप्त होगा॥ १३२—१३५॥

अगस्त्य उवाच

इति दत्वा वरं देवः कृपया परया युतः।
भास्वान् सहस्रकिरणस्तदाऽन्तर्धानमाययौ॥ १३६॥
राजा भास्करदेहोत्थां रविमूर्तिमनुत्तमाम्।
तत्र संस्थापयामास पूजयामास च स्वयम्॥ १३७॥

घोषार्ककुण्डं तन्नाम्ना तत्र ख्यातिं जगाम ह।
यत्र स्नानान्नरो राजन् सूर्यलोके वसेत् सदा॥ १३८॥
इति रुचिरविधानैस्तूर्णमादित्यमूर्तिं
विमलपरमभक्त्या पूजयित्वादरेण॥
तदमृतमयकुण्डे स्नानमादौ विधाय
प्रचुरविमलकीर्तिः सूर्यलोके वसेत् सः॥ १३९॥

अगस्त्यजीने कहा—सहस्रकिरणमाली तेजोमय सूर्यदेवने परमकृपा-परायण होकर यह वरदान दिया, इसके उपरान्त वे वहीं अन्तर्धान हो गये। महाराज घोष भी सूर्यदेवके शरीरसे प्रकट हुई अत्युत्तम मूर्तिको वहाँ संस्थापित करके स्वयं उसकी पूजा करने लगे। तबसे यह तीर्थ राजा घोषके नामके अनुसार घोषार्क (सूर्यकुण्ड) कुण्डके नामसे प्रसिद्ध हो गया। हे राजन्! यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सर्वदा सूर्यलोकमें निवास करता है। इस प्रकार आदरसहित उस अमृतमय सूर्यकुण्डमें प्रथमतः स्नान करनेके अनन्तर उत्तम विधि-विधानोंके अनुसार विमल [अन्तःकरण तथा] उत्कट भक्तिभावसे उस आदित्यमूर्तिका जो मनुष्य [जीवनकी अस्थिरता जानकर] शीघ्रतापूर्वक पूजन करता है, उसे निष्कलंक, प्रभूत कीर्तिकी प्राप्ति होती है तथा वह सूर्यलोकमें निवास करता है॥ १३६—१३९॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये बृहस्पति-कुण्डरुक्मिणीकुण्डधनयक्षतीर्थवसिष्ठकुण्डसागरकुण्ड-योगिनीकुण्डोर्वशीयकुण्डघोषार्ककुण्डमाहात्म्य-वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डके अन्तर्गत अयोध्यामाहात्म्यमें 'बृहस्पतिकुण्ड-रुक्मिणीकुण्ड-धनयक्षतीर्थ-वसिष्ठकुण्ड-सागरकुण्ड-योगिनीकुण्ड-उर्वशीकुण्ड-घोषार्ककुण्ड-वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

रतिकुण्ड, कुसुमायुधकुण्ड, मन्त्रेश्वर, शीतलादेवी, बन्दी देवी, चुडकीदेवी, महारत्नतीर्थ, दुर्भर-महाभरतीर्थ, महाविद्या सिद्धपीठ क्षीरेश्वर आदि तीर्थोंका इतिहास-माहात्म्यादि और अयोध्याकी परिक्रमाका क्रमिक वर्णन

अगस्त्य उवाच

घोषार्कतीर्थाद् विप्रर्षे पश्चिमे दिक्तटे स्थितम्।
रतिकुण्डमिति ख्यातं सर्वपापहरं सदा।
यत्र स्नानेन दानेन परां कान्तिमवाप्नुयात्॥ १॥
तत्पश्चिमदिशाभागे कुसुमायुधनामकम्।
कुण्डं प्रसिद्धमतुलं सर्वकामार्थसिद्धये॥ २॥
यत्र स्नानेन दानेन कन्दर्पसदृशाकृतिम्।
लभते ना विधानेन मुने नास्त्यत्र संशयः॥ ३॥
रतिकुण्डे तथा विप्र कुसुमायुधकुण्डके।
श्रद्धया कुरुते स्नानं स सौख्यपरमो भवेत्॥ ४॥
कुण्डद्वयेऽत्र मिथुनं यत्स्नानं कुरुते किल।
रतिकामाविव ख्यातौ सदा तौ सुन्दरौ तदा॥ ५॥
तस्मादत्र विधानेन स्नातव्यं धर्मकाङ्क्षिभिः।
दानं देयं यथाशक्त्या रतिकन्दर्पतुष्टये॥ ६॥

अगस्त्यजीने कहा—हे विप्रर्षे! घोषार्कतीर्थसे पश्चिम दिशामें सर्वपापहारी रतिकुण्ड नामक प्रसिद्ध तीर्थ स्थित है, जहाँ स्नान-दानसे अनुपम सौन्दर्यकी प्राप्ति होती है। उस कुण्डसे पश्चिम दिशाकी ओर कुसुमायुध नामक अतुलनीय कुण्ड प्रसिद्ध है। यह

समस्त कामनाओंका साधक है। यहाँ विधिपूर्वक स्नान-दान करनेसे मनुष्यको कामदेवके समान सौन्दर्यका लाभ होता है। हे मुने! इसमें कोई संशय नहीं है। हे विप्र! जो मनुष्य रतिकुण्ड तथा कुसुमायुधकुण्डमें श्रद्धापूर्वक स्नान करता है, वह परम सौख्यका भागी बन जाता है। जो पति-पत्नी इन दोनों कुण्डोंमें स्नान करते हैं, वे रति और कामदेवके समान विख्यात तथा उसी क्षण परम सौन्दर्यसे सम्पन्न हो जाते हैं। इसलिये धर्माभिलाषी जनोंको इन कुण्डोंमें सविधि स्नान करना चाहिये तथा रति और कामदेवकी प्रसन्नताके लिये यथाशक्ति दान देना चाहिये॥ १—६॥

भवेतां नियतं तस्य सन्तुष्टौ रतिमन्मथौ।
माघे विशदपंचम्यां तत्र स्नानं शुभप्रदम्॥ ७॥
रतिकुण्डे पुनः स्नात्वा पश्चात्कन्दर्पकुण्डके।
स्नातव्यं तद्दिने विप्र मिथुनेन प्रयत्नतः॥ ८॥
रतिकन्दर्पयोः पूजा विधातव्या विशेषतः।
वस्त्रादिभिरलङ्कारैः सम्पूज्यौ द्विजदम्पती।
सर्वान् कामानवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा॥ ९॥
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमादिभिः।
वासोभिर्विविधैः पुष्पैः पूजयेद् द्विजदम्पती॥ १०॥
एवं कृते न सन्देहो रतिकन्दर्पतुष्टये।
तद्व्रजेन्मिथुनं विप्र रतिकन्दर्पतुल्यताम्॥ ११॥
कुसुमायुधकुण्डात्तु प्रतीच्यां दिशि संस्थितम्।
मन्त्रेश्वर इति ख्यातं तत्स्थानं भुवि दुर्लभम्॥ १२॥
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा मन्त्रेश्वरं विभुम्।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ १३॥

[जो ऐसा करता है,] उसपर निश्चित ही रति और कामदेव सदा प्रसन्न रहते हैं। माघके शुक्लपक्षकी पंचमी तिथिको इन

दोनों कुण्डोंमें स्नान करना शुभप्रद है। अतः उस दिन पति-पत्नी [ग्रन्थि-बन्धनपूर्वक] पहले रतिकुण्डमें और तत्पश्चात् कामकुण्डमें प्रयत्नपूर्वक स्नान करें। इसके उपरान्त रति-कामदेवकी पूजा करके वस्त्र-अलंकारादिद्वारा द्विजदम्पतीकी पूजा करें। इससे पूजा करनेवालोंकी सभी कामनाओंकी पूर्ति होती है, इसमें कोई संशय नहीं है। दम्पतीको चाहिये कि वे चन्दन, अगरु, कर्पूर, कस्तूरी, कुमकुम और विविध प्रकारके पुष्पों तथा वस्त्रादिसे द्विजदम्पतीकी पूजा करें। रति और कन्दर्पकी तुष्टिहेतु इस प्रकारके विधानसे कामनापूर्तिमें कोई सन्देह नहीं रह जाता है। हे विप्र! वे दम्पती [रूप-सौन्दर्यादिमें] रति और कामदेवके समान हो जाते हैं। कुसुमायुधकुण्डसे पश्चिम दिशामें 'मन्त्रेश्वर' इस नामसे प्रसिद्ध एक स्थान है। यह स्थान पृथ्वीपर दुर्लभ है। इस तीर्थमें स्नान करके विभु मन्त्रेश्वरजीका दर्शन करनेसे सैकड़ों-करोड़ों कल्पोंतक मनुष्यकी संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होती है॥ ७—१३॥

पुरा रामो देवकार्यं विधायामलकर्मकृत्।
कालेन सह सङ्गम्य मन्त्रं चक्रे नरेश्वरः॥ १४॥
स्वर्गं प्रति प्रयाणाय यत्र स्नातो जितेन्द्रियः।
तत्रैव स्थापितं लिङ्गं मन्त्रेश्वर इति श्रुतम्॥ १५॥
तदुत्तरे सरो रम्यं कुमुदोत्पलमण्डितम्।
तत्र स्नानं तथा दानं नानाफलदमुत्तमम्॥ १६॥

पूर्वकालमें निर्मल आचरणवाले नरेश्वर श्रीराम देवकार्यको सम्पन्न करके कालके साथ यहींपर मन्त्रणा कर रहे थे। जितेन्द्रिय श्रीरामने स्वर्ग जानेकी कामनासे जहाँ स्नान किया, वहींपर उनके द्वारा स्थापित मन्त्रेश्वर नामक विश्रुत शिवलिंग विराजित है। मन्त्रेश्वरसे उत्तरमें एक रम्य सरोवर है। वह कुमुद

तथा कमलोंसे अलंकृत है। इस सरोवरमें स्नान-दानादिसे नानाविध उत्तम फल मिलते हैं॥ १४—१६॥

चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता।
तत्र स्नानेन दानेन ब्राह्मणानां च पूजनात्।
अक्षयं स्वर्गमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा॥ १७॥
मन्त्रेश्वरस्य महिमा नहि केनापि शक्यते।
सम्यग्वर्णयितुं विप्र य उत्तमफलप्रदः॥ १८॥
मन्त्रेश्वरसमं लिङ्गं न भूतं न भविष्यति॥ १९॥
सुगन्धिपुष्पधूपादिकुसुमाद्यनुलेपनैः।
पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः।
एवं कृते न सन्देहो मुक्तिस्तस्य करे स्थिता॥ २०॥

चैत्र शुक्ला चतुर्दशीको इस तीर्थकी साम्वत्सरी यात्रा होती है। इस तीर्थमें स्नान, दान तथा ब्राह्मणपूजन आदि करनेसे अक्षय स्वर्गलाभ होता है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हे विप्र! कोई भी व्यक्ति इस उत्तम फलप्रद मन्त्रेश्वरतीर्थकी महिमाका सम्यक् वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है। मन्त्रेश्वरके समान लिंग न हुआ है और होगा भी नहीं। सर्वाभीष्टसाधक यह लिंग प्रयत्नपूर्वक सुगन्धित धूप, दीप, पुष्प तथा अनुलेपनादिसे पूजा करनेयोग्य है। ऐसा करनेसे पूजा करनेवालेके लिये मुक्ति करतलगत हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १७—२०॥

तत्रैवोत्तरभागे तु शीतला वर्ततेऽनघ।
तां सम्पूज्य नरो विद्वान् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २१॥
सर्वदा पूजनं तस्याः सोमवारे विशेषतः।
कर्तव्यं सुप्रयत्नेन नृभिः सर्वार्थसिद्धये॥ २२॥
विस्फोटकादिकभये नरैश्च समुपस्थिते।
कर्तव्यं पूजनं सम्यग् रोगादिभयनाशनम्॥ २३॥

तदुत्तरे तु तत्रैव देवी बन्दीति विश्रुता।
यस्याः स्मरणमात्रेण निगडादिभयं नहि॥ २४॥
राज्ञा क्रुद्धेन ये बद्धाः शृङ्खलानिगडादिभिः।
बन्दीं संस्मृत्य देवीं तु मुक्ताः स्युस्तत्क्षणाद्धि ते॥ २५॥

हे अनघ! मन्त्रेश्वरसे उत्तर दिशाभागमें शीतलादेवी (बड़ी देवकाली) विद्यमान हैं। विद्वान् मानव शीतलाजीके सम्यक् रूपसे पूजनके द्वारा समस्त कलुषोंसे मुक्त हो जाता है। यद्यपि प्रत्येक समयमें शीतलाजीकी पूजा हो सकती है, तथापि विशेष रूपसे सोमवारको समस्त अभीष्टोंकी सिद्धिके लिये शीतलादेवीकी पूजा मनुष्योंको करनी चाहिये। विस्फोटक आदिका भय उपस्थित होनेपर मनुष्योंको शीतलादेवीकी पूजा करनी चाहिये। शीतलाजीकी सम्यक् रीतिसे पूजा होनेपर रोग, भय आदि नष्ट हो जाते हैं। शीतलाजीके समीपमें ही लोकविश्रुता बन्दीदेवी विद्यमान हैं। बन्दीदेवीके केवल स्मरणसे ही [राजाके द्वारा होनेवाला] हथकड़ी-बेड़ी आदिसे बन्धनका भय दूर हो जाता है। जो लोग कुपित हुए राजाके द्वारा हथकड़ी-बेड़ी आदिसे बाँध लिये जाते हैं, वे बन्दीदेवीके स्मरणसे तत्काल ही मुक्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २१—२५॥

यात्रा तस्याः प्रयत्नेन कर्तव्या यत्नतो नरैः।
मङ्गले हि विशेषेण सर्वकामार्थसिद्धिदा॥ २६॥
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैरपि च सुव्रत।
नैवेद्यैर्विविधैर्वाऽपि पूजनीया प्रयत्नतः॥ २७॥
बन्दीप्रीत्यै मुनिश्रेष्ठ देयं ब्राह्मणभोजनम्।
एवं कृते न सन्देहः सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ २८॥

हे सुव्रत! मनुष्योंको यत्नपूर्वक बन्दीदेवीकी यात्रा करनी चाहिये। विशेषतः मानव मंगलवारको सभी अभीष्टोंको सिद्ध करनेवाली बन्दीदेवीकी गन्ध-पुष्प-धूप-दीप तथा विविध

नैवेद्योंसे प्रयत्नपूर्वक पूजा करें। हे मुनिप्रवर! बन्दीदेवीको प्रसन्न करनेहेतु ब्राह्मणोंको भोजन-दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यकी कामना निःसन्देह पूर्ण हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २६—२८॥

तदुत्तरस्मिंस्तत्रैव चुडकी भुवि कीर्तिता।
वर्तते परमा सिद्धिरूपिणी स्मरणान्नृणाम्॥ २९॥
सुसंदिग्धेषु कार्येषु भये च समुपस्थिते।
यस्याः स्मरणतो नृणां सर्वसिद्धिः प्रजायते॥ ३०॥
अग्रे तस्याः सदा कार्यो नृभिरंगुष्ठतो ध्वनिः।
दीपदानं प्रयत्नेन कर्तव्यं नियतात्मभिः॥ ३१॥
सर्वाभीष्टप्रदं नृणां दीपदानं प्रशस्यते।
चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तस्या यात्रा विनिर्मिता॥ ३२॥

बन्दीदेवीसे उत्तर दिशामें उनके समीप ही लोकविख्यात चुडकी (चुटकी) देवी स्थित हैं। ये मनुष्योंको स्मरणमात्रसे परमसिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। किसी प्रकारका भय उपस्थित होनेपर तथा सुसंदिग्ध अर्थात् असम्भवप्राय कार्योंमें इनके स्मरणसे सब प्रकारसे सफलता प्राप्त होती है। चुटकीदेवीके सम्मुख जाकर सर्वदा अंगुष्ठ-ध्वनि (चुटकी बजाना) करनी चाहिये। संयतचित्त जनोंको यत्नपूर्वक [उनके निमित्त] दीपदान करना चाहिये। चुटकीके समीप किया गया दीपदान मनुष्यको समस्त अभीष्ट फल प्रदान करता है। प्रत्येक चतुर्दशीके दिन चुटकीदेवीकी यात्रा निर्दिष्ट की गयी है॥ २९—३२॥

ततः पूर्वदिशाभागे वर्तते तीर्थमुत्तमम्।
महारत्न इति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्॥ ३३॥
यत्र स्नानेन दानेन पूजया च द्विजन्मनाम्।
सर्वकामार्थसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥ ३४॥

भाद्रे कृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता।
यात्रास्ते किल मुख्याऽस्य महारत्ना इति श्रुता॥ ३५॥
महारत्न इति ख्यातं तस्मात्तीर्थमनुत्तमम्।
तत्र दानं प्रकर्तव्यं द्विजसन्तोषकारकम्॥ ३६॥
नारीभिरपि विप्रर्षे कर्तव्यो जागरोत्सवः।
वीर्यसौभाग्यसम्पन्नसर्वसौख्याय सर्वदा।
तत्र स्नानं प्रयत्नेन कर्तव्यं श्रद्धया नरैः॥ ३७॥
ततो नैर्ऋत्यदिग्भागे दुर्भराख्यं सरः शुभम्।
वर्तते सुकृतोदारं महाभरसरस्तथा॥ ३८॥

चुडकीदेवीसे पूर्वदिक्भागमें एक उत्तम तीर्थ स्थित है, जो 'महारत्न' इस नामसे विख्यात और सभी तीर्थोंमें उत्तमोत्तम है। इस महारत्न तीर्थमें स्नान-दान तथा द्विजगणकी पूजा करनेसे समस्त कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं, इसमें सन्देह नहीं है। भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशीके दिन महारत्नतीर्थकी साम्वत्सरी यात्रा होती है। महारत्नतीर्थकी इस प्रधान यात्राका नाम 'महारत्ना' है—ऐसी प्रसिद्धि है। इसलिये इस अत्युत्तम तीर्थका नाम महारत्न हुआ। इस तीर्थमें द्विजगणको सन्तोषप्रद दान करना चाहिये। हे विप्रर्षे! नारियाँ भी यहाँ जागरणोत्सव करें। मनुष्योंको वीर्य, सौभाग्य, सम्पत्ति तथा सुखके प्राप्तिहेतु श्रद्धा तथा यत्नके साथ सतत इस तीर्थमें स्नान करना चाहिये। महारत्नतीर्थके नैर्ऋत्यदिक्भागमें दुर्भर नामक शुभ सरोवर विद्यमान है और यहींपर प्रचुर पुण्योंवाला महाभर नामक एक और सरोवर है॥ ३३—३८॥

तत्र स्नानादवाप्नोति सदा स्वर्गपदं नरः।
धनं बहुविधं देयं वासांसि विविधानि च॥ ३९॥
शिवपूजा प्रकर्तव्या स्नात्वा कुण्डद्वये नरैः।
नानाविधेन भावेन भक्त्या परमया युतैः॥ ४०॥

गन्धादिभिः शुभैः पुष्पैरर्चनीयो महेश्वरः।
नीलकण्ठोऽन्धकारातिराराध्यो योगिनामपि॥ ४१॥
इति ध्यात्वा शिवं सार्धं निष्पापं प्रयतो नरः।
सर्वकामानवाप्याशु शिवलोके वसेत्सदा॥ ४२॥

वहाँ (दोनों सरोवरोंमें) सर्वदा स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है। मनुष्योंको दोनों कुण्डोंमें स्नान करके शिवपूजा करनी चाहिये और विविध प्रकारसे धन और वस्त्रोंका दान करना चाहिये। नानाविध सद्भावोंके साथ परम भक्तिपूर्वक [विविध] गन्धद्रव्यों तथा सुन्दर पुष्पोंसे भगवान् महेश्वरकी अर्चना करनी चाहिये। [विषके कारण] नीले कण्ठवाले और अन्धकासुरके शत्रु भगवान् शंकर योगियोंके परमाराध्य हैं—इस प्रकारकी भावनाके साथ एकाग्र चित्तसे भगवान् शिवका भगवती उमाके साथ ध्यान करनेसे मनुष्यकी कामनाएँ शीघ्र फलीभूत हो जाती हैं तथा वह सतत शिवलोकमें निवास करता है। हे विप्र! मनुष्य इस प्रकारसे (उन दोनों कुण्डोंका सेवन करके) सभी पापोंसे रहित हो जाता है॥ ३९—४२॥

एवं कृत्वा नरो विप्र सर्वपापैः प्रमुच्यते।
महाभरे वरे तीर्थे तथा दुर्भरसञ्ज्ञके॥ ४३॥
भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां यः कुर्याच्छ्रद्धयाऽन्वितः।
शिवपूजां च विधिवद् द्विजपूजां विशेषतः॥ ४४॥
यः करोति नरो भक्त्या शिवलोके स सम्वसेत्।
एवं कुर्वन्नरो विद्वान् न मुह्यति कदाचन॥ ४५॥
विष्णुरुद्रौ च तस्यातिसुप्रसन्नौ सनातनौ।
तयोः स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४६॥
अतः किं बहुनोक्तेन विप्र तीर्थमनुत्तमम्।
सर्वपापौघशमनं सर्वाभीष्टकरं सदा॥ ४७॥

तीर्थप्रवर महाभर तथा दुर्भर इन दोनों सरोवरोंमें जो मनुष्य श्रद्धाके साथ भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशीके दिन यथाविधि शिवपूजा तथा विशेषतः भक्तिके साथ द्विजपूजा करता है, वह सतत शिवलोकमें निवास करता है। जो विद्वान् मानव ऐसा करता है, वह कदापि मोहित नहीं होता। सनातन देवता भगवान् विष्णु तथा भगवान् रुद्र उसपर परम प्रसन्न हो जाते हैं। उनके स्मरणमात्रसे व्यक्ति सभी पापोंसे रहित हो जाता है। हे विप्र! अधिक क्या कहूँ, यह तीर्थ अत्युत्तम, सर्वपापहारी तथा समस्त अभीष्ट प्रदान करनेवाला है॥ ४३—४७॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि तीर्थमन्यच्छुभावहम्।
यत्र यात्रा तथा दानं विना भाग्यं न सम्भवेत्॥ ४८॥
ईशाने दुर्भरस्थानान्महाविद्याभिधं महत्।
तस्य दर्शनतो नॄणां सिद्धयः स्युः करे स्थिताः॥ ४९॥
तदग्रे सरसि स्नात्वा महाविद्यां तु यो नरः।
पश्यति श्रद्धया भक्त्या स याति परमां गतिम्॥ ५०॥
सिद्धपीठं तथाख्यातं सम्यक्प्रत्ययकारकम्।
तत्र पूजा विधातव्या भक्त्या परमया द्विज॥ ५१॥
मन्त्रं यः श्रद्धया विप्र शैवं शाक्तमथापि वा।
गाणपत्यं वैष्णवं वा तत्र यः प्रयतो नरः॥ ५२॥
एकाग्रमानसो विद्वन्नाराध्यावर्तयेत् सदा।
तस्य सिद्धिर्भवेन्नित्यं चमत्कारो भवेद् द्विज॥ ५३॥

अब मैं एक अन्य तीर्थका वर्णन करता हूँ, जो शुभप्रद है, तथापि वहाँकी यात्रा तथा वहाँ दान कर पाना बिना उत्तम भाग्यके सम्भव ही नहीं है। दुर्भरस्थानसे ईशानकोणमें महाविद्या नामक महापीठ है। इस तीर्थके दर्शनमात्रसे मनुष्योंको सिद्धियाँ करतलगत हो जाती हैं। महाविद्याके पुरोभागमें एक सरोवर विद्यमान है। जो मनुष्य पहले

इस सरोवरमें स्नान करके श्रद्धा-भक्तियुक्त होकर महाविद्यादेवीका दर्शन करता है, उसे परमगतिकी प्राप्ति होती है। यह महाविद्यातीर्थ एक विख्यात सिद्धपीठ है। यह सिद्धपीठ सम्यक् विश्वासकारक है। अर्थात् यह सम्यक् श्रद्धाको जन्म देनेवाला सिद्धपीठ है। इसकी परमभक्तिके साथ पूजा करनी चाहिये। हे द्विज! जो मानव श्रद्धाके साथ वहाँपर शैव, शाक्त, गाणपत्य अथवा वैष्णवमन्त्रका एकाग्र मनसे आवर्तन अर्थात् जप करता है, हे द्विज! उसे सिद्धिलाभ तथा प्रत्यक्ष चमत्कारका सतत अनुभव होता है॥ ४८—५३॥

तस्मादत्र प्रकर्तव्यं जपादिकमतन्द्रितैः।
अष्टम्यां च नवम्यां च यात्रा स्यात् प्रातिमासिकी॥ ५४॥
देयान्यन्नानि बहुशो नानाविधफलानि च।
क्षीरेण स्नपनं कार्यं पूजनीया प्रयत्नतः॥ ५५॥
उच्चाटनादीन्यपि च मोहनादिविशेषतः।
अत्र स्थाने विशेषेण दुष्टमन्त्रोऽपि सिद्ध्यति॥ ५६॥
सिद्धस्थाने परं मोक्षं वशीकरणमुत्तमम्।
जपो होमस्तथा दानं सर्वमक्षयतां व्रजेत्॥ ५७॥
आश्विने शुक्लपक्षस्य नवरात्रिषु सुव्रत।
यत्र गत्वा नरो विप्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५८॥

अतएव निरालस्य भावसे मनुष्यको इस सिद्धपीठमें जप आदि करना चाहिये। प्रत्येक मासकी अष्टमी तथा नवमी तिथिके दिन इस सिद्धपीठकी मासिक यात्रा की जाती है। यहाँ अनेक अन्नोंका दान तथा फलदान करना चाहिये तथा प्रयत्नपूर्वक क्षीरद्वारा महाविद्यादेवीको स्नान कराकर पूजा करनी चाहिये। इस पीठमें अभिचार क्रियाओंकी भी सिद्धि होती है। यहाँपर विशेषतया दुष्टमंत्र अर्थात् साधकके लिये जो मन्त्र शास्त्रोंमें असाध्य बताये गये हैं, वे भी सिद्ध हो जाते हैं। इस सिद्धपीठमें परम मोक्षलाभ होता है तथा मनोनियमनके लिये

भी यह पीठ उपायरूप है। यहाँ जप, होम, दानादिरूप समस्त सत्कर्म अक्षयफलदायक होता है। हे विप्र! हे सुव्रत! आश्विन शुक्लपक्षके नवरात्रके समय मनुष्य इस तीर्थकी यात्रा करके सभी पापोंसे रहित हो जाता है॥ ५४—५८॥

यदा पूर्वं विनिर्जित्य रावणं लोकरावणम्।
समागतो रघुपतिः सीतालक्ष्मणसंयुतः॥ ५९॥
यत्र गत्वा यदा वीरो भरतो रामकाङ्क्षया।
स्थितः सानुचरः श्रीमाञ्छ्रिया परमया युतः॥ ६०॥
तत्रागमत् सुरगवी प्रादुर्भूता स्त्रवत्स्तनी।
तत्स्तनेभ्यः प्रसुस्त्राव दुग्धं बहुगुणाधिकम्॥ ६१॥

पूर्वकालमें लोकोंको रुलानेवाले रावणका वध करनेके पश्चात् श्रीसीता तथा लक्ष्मणजीके साथ रघुपति श्रीराम यहाँ आये थे तथा [उनके आनेसे पहले ही] अपने अनुचरोंके साथ परम शोभासम्पन्न भरतजी भी श्रीरामकी दर्शनाभिलाषा लेकर यहाँ आये और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक यहीं प्रतीक्षा करने लगे। तत्पश्चात् (रामके आगमनके पश्चात्) देवलोकसे स्त्रवत्स्तनी (झरते दूधसे युक्त स्तनोंवाली) देवसुरभि कामधेनु भी उस समय यहाँ प्रकट हुई थी। उसके स्तनोंसे गुणयुक्त बहुत-सा दूध पृथिवीपर गिर रहा था॥ ५९—६१॥

तद्भूमिपतितं दुग्धं दृष्ट्वा वानरराक्षसाः।
विस्मयं परमं जग्मुः प्रपपुस्ते चराचरम्॥ ६२॥
किमेतदिति राजेन्द्र तानुवाच रघूद्वहः।
वसिष्ठो वेत्ति तत्सर्वं पृच्छामस्तं मुनिं वयम्॥ ६३॥
इत्युक्तास्तु ततः सर्वे वसिष्ठप्रमुखे स्थिताः।
ते पप्रच्छुः प्राञ्जलयः कृत्वा चाग्रेसरं नृपम्॥ ६४॥
वसिष्ठोऽपि क्षणं ध्यात्वा तमुवाच निराकुलम्॥
राघवम्प्रति सम्बोध्य सर्वेषामग्रतो मुनिः॥ ६५॥

[प्रचुर मात्रामें] पृथिवीपर गिर रहे दुग्धको देखकर वानर तथा राक्षसगण अत्यन्त विस्मित हो गये और उसे पीने लगे। समस्त स्थावर-जंगम प्राणियोंने भी उस दुग्धको पिया। तदुपरान्त [उन्होंने प्रभु श्रीरामके समीप जाकर पूछा—] हे राजेन्द्र! यह क्या है? श्रीरामने उनसे कहा—इस विषयमें महर्षि वसिष्ठजी सम्यक् रूपसे जानते हैं। अब हमसब उनसे ही पूछें। यह निश्चितकर सभी लोग श्रीरामको आगे करके वसिष्ठजीके पास आये। वे सभी हाथ जोड़कर उनके समक्ष बैठ गये। उन लोगोंने महर्षिसे [सुरभिके सम्बन्धमें] प्रश्न किया। उस प्रश्नको सुनकर महर्षि वसिष्ठजी क्षण-भर ध्यान करके सबके समक्ष प्रसन्नात्मा श्रीराघवसे कहने लगे॥ ६२—६५॥

वसिष्ठ उवाच

शृणु राम महाबाहो कामधेनुरियं शुभा।
समागता तव स्नेहात् प्रस्त्रवन्ती स्तनात् पयः॥ ६६॥
दुग्धमध्ये समुद्भूतो रुद्रस्त्वां द्रष्टुमागतः।
निष्पन्नकार्यं देवानां निर्जितारातिमुत्तमम्॥ ६७॥
इमां सम्पूजय क्षिप्रमेतत्कुण्डस्य सन्निधौ।
शीघ्रं त्वमपि यत्नेन पूजयेमं शिवं शुभम्।
दुग्धेश्वरमिति ख्यातं क्षीरकुण्डे पवित्रकम्॥ ६८॥

वसिष्ठजीने कहा—हे महाबाहो! हे राम! सुनिये, ये कल्याणप्रदा कामधेनु हैं। तुम्हारे प्रति स्नेहके कारण ये देवी अपने स्तनोंसे दुग्ध-क्षरण करती हुई देवलोकसे यहाँ आयी हैं। यह देखिये! आपके दर्शनोंकी कामनाके ही कारण इनके स्तनोंसे क्षरित दुग्धके रूपमें रुद्र उद्भूत हुए हैं। आपने शत्रुकुलका विध्वंस करके देवगणका उत्तम कार्य किया है। अब इस कुण्डमें शीघ्रतापूर्वक इन शुभप्रदायक शिवकी तथा कुण्डके समीपमें ही इन कामधेनुकी यत्नसे पूजा कीजिये। इस क्षीरकुण्डसे समुद्भूत परम पवित्र [शिव-

लिंगस्वरूप] रुद्र अब दुग्धेश्वर नामसे विख्यात होंगे॥ ६६—६८॥

अगस्त्य उवाच

ततो रघुपतिः श्रीमान् वसिष्ठोक्तविधानतः।
पूजयामास तल्लिङ्गं दुग्धेश्वरमिति स्मृतम्॥ ६९॥
सीतया सत्कृतं यस्मात् तत्कुण्डं क्षीरसङ्गमम्।
सीताकुण्डमिति ख्यातिं जगामानुपमां ततः॥ ७०॥
सीताकुण्डे नराः स्नात्वा दृष्ट्वा दुग्धेश्वरं प्रभुम्।
सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते नात्र कार्या विचारणा॥ ७१॥
अत्र स्नानं जपो होमो दानं चाक्षयतां व्रजेत्।
सीताकुण्डे तु सम्पूज्य सीतारामौ सलक्ष्मणौ॥ ७२॥
दुग्धेश्वरञ्च सम्पूज्य सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
ज्येष्ठे मासि चतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी स्मृता॥ ७३॥
एवं यो विधिवत्कुर्याद् दयाधर्मविशारदः।
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥ ७४॥

अगस्त्यजीने कहा—तत्पश्चात् श्रीमान् रघुपतिने वसिष्ठद्वारा उपदिष्ट विधानसे दुग्धेश्वर नामक उस शिवलिंगकी सम्यक् पूजा की। देवी सीताने भी उस क्षीरकुण्डका आदर किया। अतएव वह क्षीरकुण्ड सीताकुण्डके नामसे अनुपम प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ। मनुष्यगण इस सीताकुण्डमें स्नान करनेके उपरान्त दुग्धेश्वरजीका दर्शन करके अपने समस्त कलुषोंसे निःसंदिग्ध रूपसे मुक्त हो जाते हैं। इस कुण्डमें किया गया स्नान, दान, जप तथा होम अक्षय फलप्रद होता है। मनुष्य सीताकुण्डमें लक्ष्मण-सहित राम-सीताकी पूजा करके दुग्धेश्वरकी भी अर्चना करे तो उसकी सभी कामनाएँ फलीभूत हो जाती हैं। ज्येष्ठमासकी चतुर्दशीके दिन सीताकुण्डकी साम्वत्सरी यात्रा होती है। जो दया-धर्मयुक्त मनुष्य इस विधिसे सीताकुण्डका सेवन करता है, वह उस परम लोकको प्राप्ति करता है, जहाँ जानेसे मनुष्यको शोक नहीं होता॥ ६९—७४॥

तत्र पूर्वदिशाभागे सुग्रीवरचितं महत्।
तीर्थं तपोनिधेस्तत्र वर्तते सन्निधौ शुभम्॥ ७५॥
यत्र स्नात्वा च दत्वा च रामं सम्पूज्य यत्नतः।
तस्मिन्नेव दिने तत्र सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ ७६॥
तत्प्रत्यग्दिशि वै स्थाने हनुमत्कुण्डमित्यपि।
तस्य पश्चिमतो विप्र विभीषणसरः शुभम्॥ ७७॥
तयोः स्नानेन दानेन रामसम्पूजनेन च।
सर्वान् कामानवाप्नोति तस्मिन्नेव विधानतः।
इयं सा परमा मेध्याऽयोध्या धर्मनिधिः स्मृता॥ ७८॥

इस सीताकुण्डसे पूर्वदिशामें सुग्रीवद्वारा रचित विशाल तीर्थस्थल है। तपोनिधि सुग्रीवजी इस शुभावह तीर्थमें निवास करते हैं। जो यहाँ स्नान तथा दान करके यत्नतः श्रीरामकी पूजा करता है, उसी दिन उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इस सुग्रीवतीर्थसे पश्चिमकी ओर श्रीहनुमत्कुण्ड स्थित है। हे विप्र! हनुमत् कुण्डके पश्चिमकी ओर शुभप्रद विभीषणकुण्ड है। इन दोनों कुण्डोंपर यथाविधि स्नान-दान और श्रीरामका पूजन करनेवाला मानव समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। [श्रीवसिष्ठजीने कहा—हे राम!] यह जो पवित्रतम और श्रेष्ठतम अयोध्या है, इसे आप समस्त धर्मकी निधि-स्वरूपा जानिये॥ ७५—७८॥

इत्युक्तास्तु ततः सर्वे वसिष्ठमुनिमादरात्।
पप्रच्छुर्विनयात् क्षिप्रं विभीषणपुरःसराः॥ ७९॥
कथयस्व तपोराशे कथामेतां सुदुर्लभाम्।
अयोध्यायाः परं विप्र माहात्म्यं कथयन्ति यत्।
तत्सर्वं कथय क्षिप्रं श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम्॥ ८०॥
यथा यात्रां विधास्यामः क्रमेण च विधानतः।
तदस्मासु कृपां कृत्वा कथयस्व तपोनिधे॥ ८१॥

महर्षि वसिष्ठजीका वाक्य सुनकर विभीषण आदि सभी अनुचरोंने विनय तथा आदरके साथ महर्षिसे प्रश्न किया—हे तपोराशे! इस लोकमें अयोध्याका जो उत्तम माहात्म्य है और जिसे विद्वज्जन बतलाते हैं, वह सब कहिये। हे विप्र! यह अयोध्यामाहात्म्य अतीव दुर्लभ है। अतः आप इसे शीघ्र कहिये। हे तपोनिधान! हम लोग इस माहात्म्यको सुनकर जिस विधिके द्वारा अयोध्याकी यात्रा सम्पन्न कर सकें? आप हम लोगोंपर कृपा करके उसे कहिये॥ ७९—८१॥

वसिष्ठ उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे अयोध्यामहिमाद्भुतम्।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ८२॥

वसिष्ठजीने कहा—हे मननशील जनो! जिस अयोध्या-माहात्म्यको सुनकर मनुष्य निःसंदिग्ध रूपसे सर्वपापविनिर्मुक्त हो जाता है, उस अद्भुत महिमाका श्रवण कीजिये॥ ८२॥

इदं गुह्यतरं क्षेत्रमयोध्याभिधमुत्तमम्।
सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा॥ ८३॥
अस्मिन् सिद्धाः सदा देवा वैष्णवं व्रतमास्थिताः।
नानालिङ्गधरा नित्यं विष्णुलोकाभिकाङ्क्षिणः।
अभ्यस्यन्ति परं योगं युक्तप्राणा जितेन्द्रियाः॥ ८४॥

यह उत्तम अयोध्या नामक क्षेत्र अतीव गोपनीय है। यह समस्त प्राणियोंकी मुक्तिका शाश्वत हेतु है। इस क्षेत्रमें विष्णुलोकके अभिलाषी जितेन्द्रिय देवता तथा सिद्धगण नाना रूपोंको धारणकर और प्राणोंको संयत करके सतत वैष्णवव्रतका पालन करते हुए परम योगका अभ्यास करते रहते हैं॥ ८३-८४॥

नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहगवासिनि।
कमलोत्पलशोभाढ्ये सरोभिः समलंकृते॥ ८५॥

अप्सरोगणसङ्कीर्णे सर्वदा सेविते शुभे।
रोचते हि सदावासः क्षेत्रे नित्यं हरेरिह॥ ८६॥

यहाँ विविध प्रकारके वृक्ष विद्यमान हैं। इन वृक्षोंपर पक्षी निवास करते हैं। अनेक सरोवरोंसे यह क्षेत्र भरा हुआ है। उत्पल तथा कमलोंकी बहुलतावाले ये सरोवर अपूर्व शोभायुक्त हो रहे हैं। अप्सराएँ भी सतत इस क्षेत्रकी सेवा करती रहती हैं। स्वयं श्रीहरि भी सदा इस क्षेत्रमें रहनेकी अभिलाषा करते हैं॥ ८५-८६॥

मन्यमाना विष्णुभक्ता विष्णौ सर्वेऽर्पितक्रियाः।
यथा मोक्षमिहायान्ति नान्यत्र हि तथा क्वचित्॥ ८७॥
अतः श्रेष्ठतमं क्षेत्रं यस्माच्च वसतिर्हरेः।
महाक्षेत्रमिदं यस्मादयोध्याभिधमुत्तमम्॥ ८८॥

[श्रीहरिकी यहाँ नित्य सन्निधि] माननेवाले ज्ञानी विष्णुभक्त विष्णुको समस्त क्रियाकलापोंका अर्पण करके इस क्षेत्रमें जिस प्रकारसे मोक्षलाभ प्राप्त करते हैं, ऐसा अन्य क्षेत्रमें सम्भव नहीं है। इसीलिये यह अयोध्या नामक उत्तम क्षेत्र श्रेष्ठतम है। यह तो महाक्षेत्र है, क्योंकि यहाँ भगवान् श्रीहरि [सर्वदा] निवास करते हैं॥ ८७-८८॥

नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे।
स्नानात् संसेवनाद् वाऽपि न मोक्षः प्राप्यते तथा।
इह सम्प्राप्यते यद्वत्तत एव विशिष्यते॥ ८९॥
प्रयागे वा भवेन्मोक्ष इह वा हरिसंश्रयात्।
सर्वस्मादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत् स्मृतम्॥ ९०॥
अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभिः सर्वैः सिद्धैर्महर्षिभिः।
इह सम्प्राप्यते मोक्षो दुर्लभोऽन्यत्र यो मतः॥ ९१॥
तेभ्यः प्रयच्छति हरिर्योगमैश्वर्यमुत्तमम्।
आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमुत्तमम्॥ ९२॥

नैमिष, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार (हरिद्वार) और पुष्करक्षेत्रमें रहकर

स्नान तथा भली-भाँति भजन करनेसे वैसी मोक्षोपलब्धि नहीं होती, जैसी कि इस स्थानके सेवनसे सम्यक्रूपसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। यही कारण है कि समस्त तीर्थोंमें अयोध्या ही श्रेष्ठतम है। प्रयागक्षेत्रमें [नानाविध धर्माचरणसे] जो मोक्ष मिलता है, वह यहाँ मात्र श्रीहरिकी शरण लेनेसे ही प्राप्त हो जाता है। इसलिये इसे ही समस्त उत्तम तीर्थोंकी अपेक्षा महातीर्थ माना गया है। अव्यक्त लक्षणोंवाले सिद्ध मुनि तथा महर्षिगण इस अयोध्याक्षेत्रमें जिस प्रकारका मोक्षलाभ करते हैं, मेरे विचारसे वैसा मोक्ष कहीं प्राप्त नहीं होता। यहाँ वह मोक्षदशा सुलभ है, जो अन्यत्र दुर्लभ मानी गयी है। जो जन अयोध्याका सेवन करते हैं, श्रीहरि उनको ऐश्वर्य, भक्तियोग, उत्तम स्थान तथा अपनी सायुज्य मुक्ति प्रदान करते हैं॥ ८९—९२॥

ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्धं श्रीश्च वायुर्दिवाकरः।
देवराजस्तथा शक्रो ये चान्येऽपि दिवौकसः।
उपासते महात्मानः सर्वत्र हरिमादरात्॥ ९३॥
अन्येऽपि योगिनः सिद्धाः क्षेत्ररूपा महाव्रताः।
अनन्यमनसो भूत्वा सर्वदोपासते हरिम्॥ ९४॥
विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः।
इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारी न पुनर्भवेत्॥ ९५॥
ये पुनर्निगमाधीनाः सत्रस्था विजितेन्द्रियाः।
व्रतिनश्च निरारम्भाः सर्वे ते हरिभाविताः॥ ९६॥
देहभङ्गं समापद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः।
गतास्ते च परं मोक्षं प्रसादात् सर्वदा हरेः॥ ९७॥
जन्मान्तरसहस्रेषु युंजन् योगी न चाप्नुयात्।
तमिहैव परं मोक्षं मरणादपि गच्छति॥ ९८॥

देवर्षिगणके साथ ब्रह्मा, लक्ष्मी, वायु, दिवाकर सूर्य, देवराज इन्द्र तथा अन्य महामना देवगण—ये आदरके साथ इस पावन

तीर्थमें सर्वत्र स्थित होकर श्रीहरिकी आराधना करते हैं। अन्यान्य क्षेत्रवासी महाव्रती सिद्धयोगी अनन्य हृदयसे यहाँ सतत श्रीहरिकी उपासना करते हैं। यदि धर्म-निष्ठाका त्याग कर देनेवाले विषयासक्त संसारी लोग भी इस क्षेत्रमें प्राणत्याग करते हैं, उन्हें भी पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। यहाँपर जो लोग वेदानुमोदित मार्गका आश्रय लेनेवाले, जितेन्द्रिय, यज्ञनिरत, संकल्पशून्य तथा व्रतपरायण होकर स्थित हैं, वे सभी श्रीहरिके द्वारा अनुगृहीत ही हैं। आसक्तिशून्य तथा निर्मल बुद्धिवाले वे लोग भगवान् श्रीहरिके सार्वकालिक अनुग्रहके प्रभावसे देहावसानके उपरान्त परम गतिरूप मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं। सहस्रों जन्मोंके प्रयासद्वारा योगी योगसाधनासे जिस मोक्षकी प्राप्ति नहीं कर पाता, उसी मोक्षको यहाँपर वह देहत्याग करनेमात्रसे ही प्राप्त कर लेता है॥ ९३—९८॥

एतत्सङ्क्षेपतो वच्मि क्षेत्रस्य महिमाद्भुतम्।
एतदेव परं स्थानमेतदेव परम्पदम्।
एतादृङ् नापरं स्थानं पुनरन्यत्र दृश्यते॥ ९९ ॥
यत्र गत्वा प्रयत्नेन यात्रा पुण्याभिकाङ्क्षिभिः।
कर्तव्या विधिवद्धीराः क्रमेण श्रद्धयान्वितैः॥ १००॥

हे द्विज! मैंने संक्षेपमें इस अद्भुत अयोध्याक्षेत्रके माहात्म्यका वर्णन किया है। यही उत्तम क्षेत्र है तथा परमपद भी यही है। अयोध्याके समान उत्तम क्षेत्र अन्यत्र कहीं नहीं देखा जाता है। हे धीरजनो! पुण्याभिलाषी पुरुषोंको यहाँ आकर शास्त्रीय क्रमानुरूप श्रद्धापूर्वक तीर्थयात्रा करनी चाहिये॥ ९९-१००॥

प्रथमेऽहनि कर्तव्य उपवासो यतात्मभिः।
नियमेन ततः स्नानं दानं चैव स्वशक्तितः॥ १०१॥
उपावृत्तस्तु पापेभ्यो यस्य वासो गुणैः सह।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः॥ १०२॥

यहाँ महात्मा मनुष्य आकर पहले दिन नियमतः उपवास करे तथा सविधि स्नानोपरान्त यथाशक्ति दान करे। विविध पापोंसे निवृत्त रहना, समस्त भोगोंका त्याग करना तथा सद्‌गुणोंको अपनाकर [तीर्थभूमिमें] जो निवास किया जाना है, वही उपवास कहा गया है॥ १०१—१०२॥

उपवासं विधायाऽसौ चक्रतीर्थे नरः कृती।
उपवासदिने स्नायाद् दद्याच्चैव स्वशक्तितः॥ १०३॥
विप्रं सम्पूज्य विधिवत् पश्येद् विष्णुहरिं विभुम्।
स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा विष्णुं सम्पूज्य यत्नतः॥ १०४॥
क्षौरं च कारयेत्तत्र व्रती धर्माभिधे ततः।
पापमोचनके स्नानमृणमोचनके ततः॥ १०५॥
स्नात्वा सहस्रधारायां शेषं सम्पूज्य यत्नतः।
दृष्ट्वा चन्द्रहरिं देवं ततो धर्महरिं विभुम्॥ १०६॥
ततश्चक्रहरिं दृष्ट्वा दद्याच्चैव स्वशक्तितः।
ब्रह्मकुण्डे नरः स्नात्वा सर्वकामार्थसिद्धये।
महाविद्यासमीपे तु रात्रौ जागरणं चरेत्॥ १०७॥
ततः प्रभाते विमले पुनरुत्थाय सद्व्रती।
स्वर्गद्वारे प्रयत्नेन विधिवत् स्नानमाचरेत्॥ १०८॥
श्राद्धं च विधिवत् कृत्वा दत्वा चैव स्वशक्तितः।
विष्णुं सम्पूज्य विधिवद् विप्रानपि पुनः पुनः॥ १०९॥
दम्पती च प्रयत्नेन पूज्यौ वस्त्रादिभिस्तथा।
श्रद्धया परया युक्तैर्दातव्या भूरिदक्षिणा॥ ११०॥
विप्रान् सम्पूज्य विधिवद् भुंजीत प्रयतो नरः॥ १११॥

व्रती सत्पुरुष उपवास करके उस दिन चक्रतीर्थमें स्नान तथा यथाविधान अपनी शक्तिके अनुरूप दान करे। तत्पश्चात् सविधि विप्रका पूजन करनेके उपरान्त प्रभु विष्णुहरिका दर्शन करे।

तदनन्तर स्वर्गद्वारमें स्नान तथा यत्नतः विष्णुपूजन करके वह व्रतधारी पुरुष वहीं धर्मतीर्थमें क्षौरकर्म करवाये। तत्पश्चात् पापमोचन, ऋणमोचन और सहस्रधारा तीर्थमें स्नान करके यत्नपूर्वक उसे भगवान् शेषकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर क्रमशः चन्द्रहरि, धर्महरि तथा चक्रहरिका दर्शन करके यथाशक्ति दान करे। तत्पश्चात् मानव सर्वाभीष्टसिद्धिहेतु ब्रह्मकुण्डमें स्नानोपरान्त महाविद्यापीठके निकट जाकर रात्रिमें जागरण करे। इसके अनन्तर वह उत्तम व्रतशील व्यक्ति विमल प्रातःकालमें स्वर्गद्वारमें उत्साहपूर्वक विधानानुरूप स्नान करे, फिर सविधि पितृश्राद्ध तथा शक्तिके अनुसार दान करके विष्णुकी सम्यक् रीतिसे पूजा सम्पन्न करे। इसके बाद पुनः द्विजगणकी पूजा करे। तदनन्तर परम श्रद्धासहित प्रयत्नपूर्वक द्विजदम्पतीकी पूजा करके उनको प्रचुर दक्षिणा देनी चाहिये। तत्पश्चात् अन्य द्विजोंकी भी सम्यक् प्रकारसे पूजा सम्पन्न करनेके अनन्तर वह व्रती स्वयं भी भोजन करे॥ १०३—१११॥

अन्येद्युरपि चोत्थाय श्रद्धया परया युतः।
रुक्मिणीप्रभृतीन्यत्र पश्येत् तीर्थानि च क्रमात्॥ ११२॥
तत्र तत्र नरः स्नात्वा दत्वा चैव स्वशक्तितः।
विष्णुं सम्पूज्य यत्नेन मनोवाक्कायनिर्मलः॥ ११३॥
यात्रां समापयेत् सम्यङ् नियतात्मा शुचिव्रतः।
यत्र क्वापि मृतो धीरः परं मोक्षमवाप्नुयात्॥ ११४॥

तदनन्तर अगले दिन शय्यासे उठकर परम श्रद्धाके साथ ही रुक्मिणीकुण्ड आदि अन्य सभी तीर्थोंका क्रमानुसार दर्शन तथा इन सभी तीर्थोंमें स्नान, यथाशक्ति दान और यत्नतः विष्णुका पूजन करे। तदनन्तर मन, वाणी और कायासे निर्मल हुआ पवित्र व्रतवाला वह व्यक्ति सम्यक् रूपसे यात्रा (परिक्रमा) समाप्त करे। धीर मनुष्य इस तीर्थमें जहाँ-कहीं भी (अयोध्याकी

चौरासी कोशी परिक्रमाके अन्तर्गत किसी भी उक्त तीर्थमें) मृत्युको प्राप्त होता है, उसे अत्युत्तम मोक्ष मिलता है॥ ११२—११४॥

अगस्त्य उवाच

वसिष्ठोक्तमिति श्रुत्वा कृत्वा चैव यथाविधि।
विभीषणपुरोगास्ते बभूवुर्निर्मलास्तदा॥ ११५॥
इति बहुलविधानैस्तीर्थयात्रां विधाय
प्रचुरसुकृतपूर्णास्ते च सुग्रीवमुख्याः।
गतमलिनसुदेहाः स्वर्गचर्याप्रयत्ना-
दुपगुणितगुणौघास्ते बभूवुः समस्ताः॥ ११६॥

अगस्त्यजी कहते हैं—तब विभीषण आदि परिकर महर्षि वसिष्ठसे इस तीर्थ-माहात्म्यको सुनकर तथा इन सभी तीर्थोंका यथाविधि सेवन करनेके पश्चात् निर्मल अन्तःकरणवाले हो गये। इस प्रकार नानाविध विधानोंसे समन्वित तीर्थयात्राको सम्पन्न करके प्रचुर पुण्योंके धनी वे [विभीषण-] सुग्रीवादि शरीर-अन्तःकरणादिकी मलिनतासे रहित हो गये। इस प्रकारकी स्वर्गप्राप्तिकी साधनीभूत तीर्थचर्याका सप्रयत्न अनुपालन करके वे सभी लोग बढ़े हुए सद्गुणोंसे विभूषित अर्थात् उत्तमोत्तम सद्गुणोंसे सम्पन्न हो गये॥ ११५-११६॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये रतिकुण्डमहारत्नतीर्थ-दुर्भरमहाभरतीर्थमहाविद्यातीर्थसिद्धपीठदुग्धेश्वरसीताकुण्डसुग्रीवतीर्थ-हनुमत्कुण्डविभीषणसरस्तीर्थायोध्यायात्राविधिक्रमवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डके अन्तर्गत अयोध्यामाहात्म्यमें 'रतिकुण्ड-कुसुमायुधकुण्ड, महारत्नमंत्रेश्वरतीर्थ-दुर्भर-महाभरतीर्थ, शीतला-बन्दीदेवी-चुडकीदेवी, महाविद्यातीर्थ-सिद्धपीठ-दुग्धेश्वर-सीताकुण्ड-सुग्रीवतीर्थ-हनुमत्कुण्ड-विभीषणसरतीर्थ-अयोध्या-यात्राविधिक्रम-वर्णन्' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

गयाकूप, पिशाचमोचन, मानसस्थल, तमसा नदी, माण्डव्याश्रमादि तपःस्थल, सीताकुण्ड, विघ्नेश्वर-स्थान, भैरवस्थान, नन्दिग्राम, भरतकुण्ड, जटाकुण्ड आदि तीर्थोंका माहात्म्य

अगस्त्य उवाच

जटाकुण्डत आग्नेयदिग्दले संश्रितं महत्।
गयाकूपमिति ख्यातं सर्वाभीष्टफलप्रदम्॥ १॥
यत्र स्नात्वा च दत्वा च यथाशक्त्या जितेन्द्रियः।
सर्वकाममवाप्नोति श्राद्धं कृत्वा द्विजोत्तमः॥ २॥
नरकस्थाश्च ये केचित्पितरश्च पितामहाः।
विष्णुलोके तु गच्छन्ति तस्मिञ्छ्राद्धे कृते तु वै॥ ३॥
तस्मिञ्छ्राद्धे कृते विप्र पितॄणामनृणो भवेत्।
सक्तुभिः पिण्डदानन्तु सयवैः पायसेन च॥ ४॥
कर्त्तव्यमृषिनिर्दिष्टं पिण्याकेन गुडेन वा।
श्राद्धं तत्तीर्थके प्रोक्तं पितॄणां तुष्टिकारकम्॥ ५॥

अगस्त्यजीने कहा—जटाकुण्डसे आग्नेय दिशामें गयाकुण्ड स्थित है। सभी अभीष्ट फल देनेवाला यह प्रसिद्ध महातीर्थ है। जितेन्द्रिय श्रेष्ठ द्विज इस गयाकुण्डमें स्नान, यथाशक्ति दान तथा पितरोंके श्राद्धद्वारा समस्त काम्यवस्तुओंकी प्राप्ति करता है। इस तीर्थमें किये गये श्राद्धके प्रभावसे तो जो नरकस्थ पितृ-पितामहगण हैं, वे भी विष्णुलोकको गमन करते हैं। हे विप्र! गयाकुण्डमें श्राद्ध करनेसे मानव पितृऋणसे मुक्त हो जाता है। यहाँ यवचूर्णसे युक्त सत्तूसे पिण्डदान करना चाहिये अथवा ऋषिनिर्दिष्ट पिण्याक (विशेष प्रकारका श्राद्ध-द्रव्य), गुड़

अथवा पायससे पितृगणका श्राद्ध करना चाहिये। मुनियोंका कथन है कि इस तीर्थमें पितृगणको ऐसा ही श्राद्ध प्रसन्नतादायक है॥ १—५॥

तत्र श्राद्धं प्रकर्तव्यं नरैः श्रद्धासमन्वितैः।
तुष्यन्ति पितरस्तेषां तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः॥ ६॥
तुष्टेषु पितृषु श्रीमाञ्जायते पुत्रवाँस्तथा।
श्राद्धेन पितरस्तुष्टाः प्रयच्छन्ति सुतान् बहून्॥ ७॥
श्रियञ्च विपुलान् भोगाञ्छ्राद्धकृद्भ्यो न संशयः।
तस्मादत्र विधानेन विधातव्यं प्रयत्नतः॥ ८॥
श्राद्धं श्रद्धायुतैः सम्यगभीष्टफलकाङ्क्षिभिः।
गयाकूपे विशेषेण पितॄणां दत्तमक्षयम्॥ ९॥
सोमवारेण संयुक्ता अमावास्या यदा भवेत्।
तत्रानन्तफलं श्राद्धं पितॄणां दत्तमक्षयम्॥ १०॥

श्रद्धासमन्वित होकर मनुष्योंको इस तीर्थमें श्राद्ध करना चाहिये। इससे उनके पितृगण तथा सभी सुरगण प्रसन्न हो जाते हैं। पितृगण [तथा देवगण]-की प्रसन्नता होनेपर श्राद्धकर्ता श्रीमान्, सम्पत्तिवान् तथा अनेक पुत्रोंवाला होता है। श्राद्धसे सन्तुष्ट पितर श्राद्धकर्ताओंको प्रचुर समृद्धि तथा भोग प्रदान करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। अतएव अभीष्ट चाहनेवाले मनुष्य यत्नपूर्वक इस तीर्थमें श्रद्धायुक्त हो सविधि श्राद्ध करें। विशेषतया गयाकूपमें श्राद्ध करनेसे पितरोंको अक्षय फललाभ होता है। सोमवती अमावस्याके दिन यहाँ किया गया श्राद्ध अनन्तफलप्रदायक होता है। वह श्राद्धकर्म अक्षय हो जाता है॥ ६—१०॥

अन्यदा सोमवारेण तत्र श्राद्धं विधानतः।
पितृसन्तोषदं नित्यं तत्र दत्ताक्षयो भवेत्॥ ११॥

तत्र पूर्वदिशाभागे तीर्थं सर्वोत्तमोत्तमम्।
पिशाचमोचनं नाम विद्यते च फलप्रदम्॥ १२॥
तत्र स्नात्वा च दत्वा च पिशाचो नैव जायते।
तत्र स्नानं तथा दानं श्राद्धं चैव विशेषतः।
कर्तव्यं च प्रयत्नेन नरैः श्रद्धासमन्वितैः॥ १३॥
मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां विशेषतः।
स्नानं तत्र प्रकर्तव्यं पिशाचत्वविमुक्तये॥ १४॥
तत्सन्निधौ पूर्वभागे मानसं नाम नामतः।
तीर्थं पुण्यनिवासाग्र्यं स्नातव्यं च विशेषतः॥ १५॥
तत्र स्नानेन दानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
नानाविधानि पापानि मेरुतुल्यानि वै पुनः।
तत्र स्नानात् क्षयं यान्ति नाऽत्र कार्या विचारणा॥ १६॥

अन्य समयमें मात्र सोमवारके दिन यथाविधान श्राद्ध करनेसे वह पितरोंके लिये नित्य सन्तोषप्रद तथा अक्षय लाभप्रद होता है। इस गयाकुण्डसे पूर्वदिक्भागमें [तीर्थोंमें] सर्वोत्तम पिशाचतीर्थ है। वह भी [उत्कृष्ट] फलप्रदायक है। यहाँ स्नान-दान करनेपर मनुष्यको पिशाचत्वकी प्राप्ति नहीं होती। श्रद्धावान् मनुष्योंको चाहिये कि वे इस पिशाचमोचनतीर्थमें यत्नपूर्वक स्नान, दान तथा विशेषरूपसे श्राद्ध करें। पिशाचत्वसे विमुक्तिके लिये मनुष्योंको विशेषरूपसे यहाँ मार्गशीर्षमासकी शुक्ला चतुर्दशी तिथिमें अवश्य ही स्नान करना चाहिये। पिशाचमोचनके समीप पूर्वभागमें मानस नामक तीर्थ है। यह तीर्थ पुण्यस्थलोंमें श्रेष्ठ है। यहाँ विशेषरूपसे स्नान करना चाहिये। इस मानसतीर्थमें स्नान तथा दान करनेसे सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं। सुमेरुपर्वतके समान नाना प्रकारके पाप भी इस तीर्थमें स्नान करनेसे क्षीण हो

जाते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ११—१६॥

यत्किंचिद् विद्यते पापं मानसं कायिकं तथा।
वाचिकं तथा पापं स्नानतो विलयं व्रजेत्॥ १७॥
प्रौष्ठपद्यां सदा कार्या पौर्णमास्यां विशेषतः।
यात्रा तस्य नृभिर्विप्र पुण्यवद्भिः क्रियापरैः॥ १८॥
तस्माद् दक्षिणदिग्भागे वर्तते सुकृतैकभूः।
तमसा नाम तटिनी महापातकनाशिनी॥ १९॥
यत्र स्नानं तथा दानं सर्वपापहरं सदा।
यस्यास्तटे तथा रम्ये सर्वदा फलदायके॥ २०॥

कायिक, वाचिक तथा मानसिक जो कोई भी पाप क्यों न हों, मानसतीर्थमें स्नानद्वारा वे समस्त दोष विलीन हो जाते हैं। हे विप्र! पुण्यात्मा कर्मनिष्ठ व्यक्तियोंको चाहिये कि वे भाद्रपद पूर्णिमाके दिन सर्वदा मानसतीर्थकी यात्रा करें। मानसतीर्थसे दक्षिणकी ओर सत्कर्मोंकी एकमात्र आधारभूमि तमसा नामक महापापनाशिका नदी है। यहाँ स्नान तथा दान सदैव सभी पापोंका हरण करनेवाला है। इसका तट सदैव रम्य एवं सतत फलप्रद है॥ १७—२०॥

नानाविधानि स्थानानि मुनीनां भावितात्मनाम्।
माण्डव्यस्य मुनेः स्थानं वर्तते पापनाशनम्॥ २१॥
यस्यास्तीरे मुनिश्रेष्ठ सर्वत्र सुमनोहरम्।
तस्याश्रमपदं रम्यं नानावृक्षमनोहरम्॥ २२॥

भावितात्मा मुनिगणोंके इसके तटपर नानाविध निवासस्थान हैं। यहींपर मुनि माण्डव्यका पापनाशक आश्रमस्थान भी स्थित है। हे मुनिश्रेष्ठ! तमसाके तटपर जो माण्डव्यमुनिका आश्रम है, वह भाँति-भाँतिके वृक्षोंके कारण मनोहारी, सभी ओरसे चित्ताह्लादक एवं रमणीय है॥ २१-२२॥

यस्मात् स्थानात् समुद्भूता तमसा सुतरङ्गिणी।
तद्वनं पुण्यमधिकं पावनं पदमुत्तमम्॥ २३॥
यस्य दर्शनतो नृणां सर्वपापक्षयो भवेत्॥ २४॥

यह सुन्दर तरंगोंवाली तमसा नदी माण्डव्य ऋषिके इसी आश्रमस्थानसे निकली है। वहाँकी वनस्थली अत्यन्त पवित्र तथा पुण्योंकी अधिकतासे युक्त है। मनुष्य इस माण्डव्यवनका दर्शन पाकर समस्त पापोंसे रहित हो जाते हैं॥ २३-२४॥

प्रफुल्लनानाविधगुल्मशोभितं
लताप्रतानावनतं मनोहरम्।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः
सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः॥ २५॥

वह मनोहर वन झुकी हुई लताओंके फैलाववाला, मनोरम, फूलती हुई नानाविध वनस्पतियोंसे शोभायमान, कण्टकाकीर्ण एवं पुष्पित केतकीवृक्षोंसे समन्वित और फूलोंसे लदी प्रियंगुलताओंसे चारों ओरसे घिरा था॥ २५॥

तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः
सकर्णिकारैर्बकुलैश्च सर्वतः।
अशोकपुन्नागवरैः सुपुष्पितै-
र्द्विरेफमालाकुलपुष्पसञ्चयैः॥ २६॥

माण्डव्यमुनिका वह आश्रमपरिसर सभी ओर सुगन्ध फैलाते हुए तमालतरुओं और कर्णिकार, बकुल, अशोक, पुन्नाग आदि पुष्पित वृक्षोंसे आच्छादित एवं फूलोंपर मँडराते भौंरोंसे भरा था॥ २६॥

क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुरूषितै-
र्विहङ्गमैश्चारुफलप्रचारिभिः।

निनादितं सारसमुत्कुलादिभिः
प्रमत्तदात्यूहकुलैश्च वल्गुभिः॥ २७॥

वह आश्रम कहींपर खिले हुए कमलोंके परागसे धूसरित और स्वादिष्ट फलोंका आस्वादन करते पक्षियोंसे युक्त था तो कहींपर उत्कण्ठा आदि भावोंको प्रकट करते हुए चातक-समूहके सरस एवं शोभन निनादसे ध्वनित था॥ २७॥

क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं
क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम्।
क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं
क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम्॥ २८॥
मदाकुलाभिर्भ्रमरीभिरारा-
न्निषेवितं चारुसुगन्धितपुष्पवत्।
क्वचित् सपुष्पैः सहकारवृक्षै-
र्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च॥ २९॥
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं
प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम्।
समन्ततः सुन्दरदर्शनीयतां
समुद्वहत् तद्वनमुल्लसन्महत्॥ ३०॥

कहींपर चक्रवाकोंका झुण्ड निनाद कर रहा था। कहीं हंस अपने कूजनसे उस वन्यस्थलीको गुंजित कर रहे थे। कहींपर कदम्बवृक्षोंकी पंक्तियाँ शोभा पा रही थीं। कहीं मतवाले भ्रमरोंसे वनस्थान भरा था। जो सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्पोंके समीप जा-जाकर उनके परागका सेवन कर रहे थे। कहीं मंजरियोंसे शोभित आम्रतरु थे, तो कहीं लिपटी हुई लताओंवाले तिलकवृक्ष विद्यमान थे। हर्षसे भरे हुए नानाविध पक्षियोंसे सेवित, हारीत पक्षियोंके मदमदिरनादसे ध्वनित और चारों ओरसे सुन्दरता तथा दर्शनीयताको धारण किया

हुआ वह वन उल्लसित हो रहा था॥ २८—३०॥

निविडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं
मदमुदितविहङ्गीवृन्दनादाभिरामम्।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं
नवकिसलय शोभाशोभितं सत्फलाढ्यम्॥ ३१॥

सघन वेतसवृक्षोंके कारण श्यामल, नीलकण्ठ पक्षियोंके अवस्थानसे मनोरम, हर्षविह्वल पक्षिसमुदायके कलरवसे शोभायमान, फूलोंसे लदी डालियोंमें मँडराते मतवाले भौंरोंसे समन्वित, नये-नये किसलयोंसे परिपूर्ण वृक्षोंवाला एवं उत्तम कोटिके फलोंसे समृद्ध वह तपोवन इन सभी शोभावर्धक उपादानोंके कारण सभी दिशाओंमें मनोहर प्रतीत होता था॥ ३१॥

इत्यादिबहुशोभाढ्यं सर्वदिक्षु मनोहरम्।
यत्र माण्डव्यमुनिना तपस्तप्तं महत्किल।
यत्प्रभावादभूत्तीर्थं पावनं तत्सदा महत्॥ ३२॥

इस प्रकारके शोभाबहुल तपोवनमें महर्षि माण्डव्य चिरकालतक महान् तपोनुष्ठान करते रहे, जिसके प्रभावसे वह स्थान सदा-सदाके लिये परम पवित्र महातीर्थ बन गया॥ ३२॥

तत्पूर्वं गौतमस्यर्षेराश्रमं पावनं महत्।
तत्पूर्वं च्यवनस्यर्षेः पराशरमुनेरिदम्।
प्रथमं ते मुनिश्रेष्ठ पितुः किल तपोनिधेः॥ ३३॥
नानाविधानि तीर्थानि चाश्रमाश्चैव सर्वशः।
वर्तन्ते तापसानां च यस्यास्तीरे समन्ततः॥ ३४॥
तमसा नाम सा ज्ञेया वर्तते तटिनी शुभा।
यज्ञयूपान् समुत्खाय शोभिता बहुशोऽभितः॥ ३५॥
तत्र स्नानेन दानेन श्राद्धेन च विशेषतः।
सर्वकामार्थसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥ ३६॥

मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे पंचदश्यां विशेषतः।
स्नानं तस्याः फलप्राप्तिदायकं सर्वदा नृणाम्॥ ३७॥
तस्मादत्र प्रकर्तव्यं स्नानं निर्मलमानसैः।
प्रयत्नतो मुनिश्रेष्ठ सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥ ३८॥

इस माण्डव्यतीर्थसे पूर्वकी ओर महर्षि गौतमका महापवित्र आश्रम है तथा उससे पूर्वदिशामें महर्षि च्यवनका आश्रम विद्यमान है। हे मुनिसत्तम! आपके तपोनिधि पिता महर्षि पराशरजीने पहले इसी आश्रमकी स्थापना की थी। जिसके तटपर चारों ओर तपस्वियोंके आश्रम हैं और समस्त परिक्षेत्रमें भाँति-भाँतिके तीर्थ विद्यमान हैं, उस मंगलमयी सरिताका नाम तमसा है—ऐसा जानना चाहिये। [तमसातटवर्ती भूभागमें] सर्वत्र ही अनेक यज्ञयूपोंके आरोपित होनेके कारण उसकी अपूर्व शोभा हो रही है। इस तमसातटपर स्नान-दान; विशेषतः श्राद्ध करनेसे निःसंदिग्धरूपसे सभी कामनाओंकी सिद्धि होती है, इसमें सन्देह नहीं है। विशेषतः मार्गशीर्षमासकी पूर्णिमा तिथिमें सर्वदा तमसामें स्नान करना मनुष्योंके लिये अत्यधिक फलदायक है। हे मुनीश्वर! निर्मल मनवाले मनुष्योंको चाहिये कि वे सभी अभीष्टोंकी सिद्धिके लिये यत्नपूर्वक [मार्गशीर्ष पूर्णिमा तिथिमें] यहाँ स्नान करें॥ ३३—३८॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि तमसापरमं शुभम्।
सीताकुण्डमिति ख्यातं श्रीदुग्धेश्वरसन्निधौ॥ ३९॥
भाद्रे शुक्लचतुर्थ्यां तु तस्य यात्रा शुभावहा।
सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थं पूज्यो विघ्नेश्वरस्तथा।
तस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नविनाशनम्॥ ४०॥

अब मैं दुग्धेश्वरके समीपमें तमसाके तटवर्ती एक अन्य शुभप्रद परमतीर्थका वर्णन करता हूँ। इसका विख्यात नाम है

सीताकुण्ड। भाद्रमासकी शुक्ल चतुर्थीको इस सीताकुण्डकी यात्रा शुभप्रद है। इस तीर्थमें सभी कामनाओंके सिद्धिहेतु विघ्नेश्वरकी पूजा करनी चाहिये॥ ३९-४०॥

तस्माद् दक्षिणदिग्भागे भैरवो नाम नामतः।
यं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ४१॥
रक्षितो वासुदेवेन क्षेत्ररक्षार्थमादरात्।
तस्य पूजा विधातव्या प्रयत्नेन यथाविधि।
मनोऽभीष्टफलप्राप्तिर्भैरवस्य सदादरात्॥ ४२॥
मार्गशीर्षस्य कृष्णायामष्टम्यां तस्य निर्मिता।
यात्रा साम्वत्सरी तत्र सर्वकामार्थसिद्धये॥ ४३॥

इन विघ्नेश्वरके स्मरणमात्रसे सभी विघ्नोंका नाश हो जाता है। इस सीताकुण्डसे दक्षिणकी ओर भैरव नामक क्षेत्रपाल हैं। इनके दर्शनसे व्यक्ति सभी कलुषोंसे रहित हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। भगवान् श्रीवासुदेवने इन श्रीभैरवको क्षेत्ररक्षार्थ सादर नियुक्त किया है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक सदा इनकी सविधि पूजा करनी चाहिये। इन भैरवकी सादर, सतत पूजाके द्वारा वांछित अभीष्ट सिद्ध हो जाता है। मार्गशीर्षमासकी कृष्णाष्टमीको सभी कामनाओंके सिद्धिहेतु श्रीभैरवकी साम्वत्सरी यात्रा निर्दिष्ट है॥ ४१—४३॥

पशूपहारसम्भूति कर्तव्यं पूजनं जनैः।
सर्वकामफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः॥ ४४॥
निर्विघ्नं तीर्थवसतिर्भैरवस्य प्रसादतः।
जायते तेन कर्तव्या पूजा तस्य प्रयत्नतः॥ ४५॥
एतस्मिन्नुत्तरे भागे रम्यं भरतकुण्डकम्।
यत्र स्नात्वा नरः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥ ४६॥
तत्र स्नानं तथा दानं सर्वमक्षयतां व्रजेत्।
अन्नं बहुविधं देयं वासांसि विविधान्यपि॥ ४७॥

यत्नतो देवताः पूज्या वस्त्रादिभिरलङ्कृतैः।

मनुष्यको यहाँपर नानाविध नैवेद्यादि पूजोपहारोंद्वारा भैरवजीकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे श्रीभैरवकी कृपासे सभी कामनाएँ सम्पन्न होती हैं। भगवान् भैरवकी कृपासे तीर्थमें वास विघ्नरहित हो जाता है, इसलिये प्रयत्नपूर्वक भैरवपूजन करना चाहिये। भैरवतीर्थसे उत्तरभागमें मनोहारी भरतकुण्ड है। मनुष्य निःसंदिग्धरूपसे यहाँ स्नानद्वारा पापरहित हो जाता है। यहाँ किया गया स्नान-दानादि समस्त सत्कर्म अक्षय हो जाता है। यहाँ अनेकविध अन्नों तथा विविध वस्त्रोंका दान करना चाहिये एवं वस्त्रालंकारादि उपहार अर्पित करके देवगणकी प्रयत्नपूर्वक अर्चना करनी चाहिये॥ ४४—४७१/२ ॥

नन्दिग्रामे वसन्पूर्वं भरतो रघुवंशजः॥ ४८॥
रामचन्द्रं हृदि ध्यायन् निर्मलात्मा जितेन्द्रियः।
ततः स्थित्वा प्रजाः सर्वा ररक्ष क्षितिवल्लभः॥ ४९॥
तत्र चक्रे महत्कुण्डं भरतो नाम भूपतिः।
राममूर्तिं च संस्थाप्य चचार विजितेन्द्रियः॥ ५०॥

पूर्वकालमें रघुवंशोत्पन्न निर्मलात्मा जितेन्द्रिय भरतजीने [अपने भ्राता] श्रीरामका हृदयमें ध्यान करते हुए नन्दिग्राममें निवास किया था। महाराज भरत वहीं रहकर समस्त प्रजाकी रक्षा करते रहे। उस समय उन जितेन्द्रिय महाराज भरतजीने इस महाकुण्डका निर्माण करके वहाँ श्रीराममूर्ति (श्रीरामचरणपादुका)-को स्थापित किया था। वे सदा इस कुण्डके समीप तपस्या करते रहते थे॥ ४८—५०॥

तत्कुण्डं सुमहत्पुण्यं नानापुण्यसमन्वितम्।
कुमुदोत्पलकह्लारपुण्डरीकसमन्वितम्॥ ५१॥
हंससारसचक्राह्वविहङ्गमविराजितम्।
उद्यानपादपच्छायासच्छायममलं सदा॥ ५२॥

नन्दिग्राममें श्रीरामपादुकाओंका पूजन करते श्रीभरतजी

तत्र स्नानं महापुण्यं प्रमोदानन्दनिर्मलम्।
तत्र स्नानं तथा श्राद्धं पितॄनुद्दिश्य कुर्वतः।
पितरस्तस्य तुष्यन्ति तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः॥ ५३॥
स्वर्णं चाऽत्र विधानेन दातव्यं च द्विजन्मने।
श्रद्धापूर्वकमेतत् तु कर्तव्यं प्रयतैर्नरैः॥ ५४॥

यह भरतकुण्ड महापवित्र तथा नानाविध पुण्योंसे परिपूर्ण है। कुमुद, उत्पल, कह्लार तथा पुण्डरीक आदि जातियोंके कमल पुष्पोंसे यह कुण्ड सुशोभित रहता है। हंस, सारस, चक्रवाक आदि पक्षी इस कुण्डकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। यह कुण्ड [तटवर्ती] उद्यानके वृक्षोंकी शीतल-घनी छायासे युक्त तथा अतीव निर्मल है। यहाँपर किया गया स्नान परमपुण्यमय, [शरीरको] विशेष मुदित करनेवाला, [चित्तको] आनन्दित करनेवाला एवं [रजोगुणरूप] मलका नाशक है। जो मनुष्य भरतकुण्डमें स्नान करके पितरोंके लिये श्राद्ध करता है, उसके प्रति पितृगण तथा सभी देवगण सन्तुष्ट हो जाते हैं। यहाँ भरततीर्थमें श्रद्धाभावसे सविधि ब्राह्मणको स्वर्णदान करना चाहिये। सावधान चित्तवाले मनुष्योंको इस सत्कृत्यका अवश्य ही अनुष्ठान करना चाहिये॥ ५१—५४॥

तत्पश्चिमदिशाभागे जटाकुण्डमनुत्तमम्।
यत्र रामादिभिः सर्वैर्जटाः परिहृता निजाः॥ ५५॥
जटाकुण्डमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्।
यत्र स्नानेन दानेन सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ ५६॥
पूर्वकुण्डे सुसम्पूज्यो भरतः श्रीसमन्वितः।
जटाकुण्डे सुसम्पूज्यौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ।
चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्॥ ५७॥

उसके पश्चिम भागमें जटाकुण्ड नामक श्रेष्ठ तीर्थ है। यहाँ

श्रीराम आदिने अपनी-अपनी जटाओंका त्याग किया था। इसीलिये यह सर्वोत्तमोत्तम तीर्थ जटाकुण्ड कहा जाता है। यहाँ स्नान तथा दान करनेसे समस्त कामनाओंकी पूर्ति होती है। भरतकुण्डमें देवी माण्डवीके साथ भरतजीकी भली-भाँति पूजा करनी चाहिये और जटाकुण्डमें सीता और लक्ष्मणके सहित श्रीरामकी पूजा करनी चाहिये। चैत्र कृष्णा चतुर्दशीके दिन इन दोनों कुण्डोंकी सांवत्सरी यात्रा होती है॥ ५५—५७॥

इति परमविधानैः पूजयेद्रामसीते
तदनु भरतकुण्डे लक्ष्मणं च प्रपूज्य।
विधिवदमृतकुण्डे द्वन्द्वसम्मज्जनेन
वसति सुकृतिमूर्तिर्वैष्णवे तत्र लोके॥ ५८॥

पुण्यात्मा पुरुष इन उत्तम विधानोंके द्वारा श्रीराम तथा श्रीसीताकी पूजा करनेके अनन्तर भरतकुण्डमें [भरतजी, शत्रुघ्नजी तथा] लक्ष्मणजीकी पूजा करे। तत्पश्चात् यथाविधि सपत्नीक इस अमृतकुण्डमें स्नान करके वह विष्णुलोकमें निवास करता है॥ ५८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्ये गयाकूपपिशाचमोचनमानसतीर्थतमसानदीमाण्डव्याद्या-श्रमसीताकुण्डदुग्धेश्वरभैरवभरतकुण्डजटाकुण्ड-माहात्म्यवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डके अन्तर्गत अयोध्यामाहात्म्यमें 'गयाकूप-पिशाचमोचन- मानसतीर्थ-तमसा नदी-माण्डव्य आदि आश्रम-सीताकुण्ड-दुग्धेश्वर-भैरवकुण्ड-भरतकुण्ड-जटाकुण्ड-माहात्म्यवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

अजितदेव, मत्तगजेन्द्र, सप्तसागर, सुरसादेवी, पिण्डारकदेव, विघ्नेश्वर तथा रामजन्मस्थान—इन तीर्थोंका इतिहास एवं माहात्म्य, मानसतीर्थ, अयोध्याकी परिक्रमाविधि, फलश्रुति एवं ग्रन्थका उपसंहार

अगस्त्य उवाच

निराहारो नरो भूत्वा क्षीराहारोऽपि वा पुनः।
अजितं पूजयेद्विप्र तस्य सिद्धिः करे स्थिता॥ १॥
महोत्सवस्तु कर्तव्यो गीतवादित्रसंयुतः।
एवं यः कुरुते धीमान् सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ २॥
एतस्मादुत्तरे विद्वन् वीरस्य शुभसूचकम्।
स्थानं मत्तगजेन्द्रस्य वर्तते नियतव्रत॥ ३॥
तदग्रे सरसि स्नात्वा वसेत्तत्र सुनिश्चितम्।
पूर्णां सिद्धिमवाप्नोति यामवाप्य न शोचति॥ ४॥
अयोध्यारक्षको वीरः सर्वकामार्थसिद्धिदः।
नवरात्रिषु पंचम्यां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्॥ ५॥
गन्धपुष्पादिधूपादिनैवेद्यादिविधानतः।
पूजनीयः प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धिदः।
यं यं काममिहेच्छेत तं तं काममवाप्नुयात्॥ ६॥

अगस्त्यजीने कहा—हे विप्र! जो मनुष्य निराहार रहकर अथवा दुग्धाहार ग्रहणकर अजितदेवका पूजन करता है, सिद्धि उसके करतलमें स्थित रहती है। गीत-वाद्यादिके साथ यहाँपर महोत्सव करना चाहिये। जो बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसा करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति करता है। हे विद्वन्! हे नियतव्रत! इस स्थानसे उत्तर दिशामें वीर मत्तगजेन्द्रजीका शुभसूचक स्थान

है। जो इस मत्तगजेन्द्रतीर्थसे आगे स्थित सरोवर (सप्तसागर)-में स्नानकर भलीभाँति वहाँ निवास करता है, वह साधक पूर्ण सिद्धिको प्राप्त करता है, जिसे पाकर वह शोकरहित हो जाता है। सभी कामनाओंको सिद्धि प्रदान करनेवाले वे वीर मत्तगजेन्द्रजी अयोध्याके रक्षक हैं। नवरात्रकी पंचमी तिथिको इस तीर्थकी साम्वत्सरी यात्रा होती है। गन्ध-पुष्प-धूप-नैवेद्य आदि वस्तुओंसे विधानानुरूप प्रयत्नपूर्वक इन सर्वकामार्थसिद्धिदाताका पूजन करना चाहिये। मनुष्य इनकी पूजा करके जो-जो अभिलाषा करता है, उसकी प्राप्ति कर लेता है॥ १—६॥

एतस्माद् दक्षिणे भागे सुरसा नाम राक्षसी।
विष्णुभक्ता सदा विप्र वर्तते सिद्धिदायिका॥ ७ ॥
तां सम्पूज्य नरो भक्त्या सर्वान् कामानवाप्नुयात्॥ ८ ॥
लङ्कास्थानादिहानीता रामेणोत्कृष्टकर्मणा।
अयोध्यायां स्थापिता सा रक्षार्थं नियतव्रतैः॥ ९ ॥
सम्पूज्य विधिवत् तस्या दर्शनं कार्यमादरात्।
सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थमुत्सवोऽपि शुभप्रदः।
कर्तव्यः सुप्रयत्नेन गीतवादित्रसंयुतैः॥ १०॥
नवरात्रे तृतीयायां यात्रा साम्वत्सरी भवेत्।
सर्वदा सुखसन्तानसिद्धये परमार्थदा।
नानासङ्गीतवादित्रनृत्योत्सवमनोहरा ॥ ११॥
एवं कृते न सन्देहः सर्वदा रक्षितो भवेत्॥ १२॥

हे विप्र! इस स्थानसे दक्षिण दिशामें सर्वदा सिद्धि देनेवाली सुरसा नामकी विष्णुभक्ता राक्षसी विराजमान है। भक्तिके साथ उसका पूजन करके मनुष्य सभी कामनाओंकी पूर्ति कर लेता है। उत्तम आचरणवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने लंकासे इन सुरसाजीको लाकर अयोध्याकी रक्षाहेतु यहींपर स्थापित किया था। व्रतनिष्ठ

जनोंको आदरपूर्वक इनका दर्शन और सम्यक् पूजन करना चाहिये। सभी कामनाओंके सिद्धिहेतु यहाँ प्रयत्नपूर्वक गीत-वाद्यसे संयुक्त शुभप्रद महोत्सव करना चाहिये। सर्वदा सुख और सन्तानकी सिद्धिके लिये नवरात्रकी तृतीया तिथिको यहाँकी साम्वत्सरी यात्रा करनेका विधान है। यह यात्रा [लौकिक अभ्युदयके साथ-साथ] पारमार्थिक लाभ भी देनेवाली है। इस यात्राको अनेकविध संगीत-वाद्यादि तथा मनोहर नृत्योत्सवके साथ सम्पन्न करना चाहिये। ऐसा करनेपर मनुष्य सर्वदा रक्षित रहता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ७—१२॥

एतत्पश्चिमदिग्भागे वर्तते परमो मुने।
पिण्डारक इति ख्यातो वीरः परमपौरुषः।
पूजनीयः प्रयत्नेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥ १३॥
यस्य पूजावशान्नॄणां सिद्धयः करसंश्रिताः।
तस्य पूजाविधानेन कर्तव्यं पूजनं नरैः॥ १४॥
सरयूसलिले स्नात्वा पिण्डारकं च पूजयेत्।
पापिनां मोहकर्तारं मतिदं कृतिनां सदा॥ १५॥
तस्य यात्रा विधातव्या सपुष्या नवरात्रिषु।

हे मुने! इस स्थानसे पश्चिम दिशाभागमें परम पौरुषवान् और पिण्डारक इस नामसे प्रसिद्ध वीर देवता प्रतिष्ठित हैं। गन्ध, पुष्प, अक्षत आदिसे प्रयत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये। पिण्डारकदेवकी पूजाके प्रभावसे मनुष्योंको सिद्धियाँ करतलगत हो जाती हैं, इसलिये मनुष्योंको विधानपूर्वक इनका पूजन करना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वह सरयूसलिलमें स्नानकर पिण्डारकजीकी पूजा करे। ये पिण्डारकदेव पापी लोगोंको सदा मोह प्रदान करनेवाले तथा पुण्यात्मा जनोंको सद्बुद्धि प्रदान करनेवाले हैं। नवरात्रके अवसरपर पुष्य नक्षत्रसे युक्त तिथिमें पिण्डारकतीर्थकी यात्राका विधान है॥ १३—१५ १/२॥

तत्पश्चिमदिशाभागे विघ्नेशं किल पूजयेत्॥ १६॥
यस्य दर्शनतो नृणां विघ्नलेशो न विद्यते।
तस्माद्विघ्नेश्वरः पूज्यः सर्वकामफलप्रदः॥ १७॥

पिण्डारकतीर्थसे पश्चिमदिशामें विघ्नेशकी अवश्य ही पूजा करनी चाहिये। जिनके दर्शनसे मनुष्योंको विघ्नका लेश भी नहीं रह जाता है। वे सर्वकामफलप्रद विघ्नेश्वर (महादेव) इसलिये पूज्य हैं॥ १६—१७॥

तस्मात्स्थानत ऐशाने रामजन्म प्रवर्तते।
जन्मस्थानमिदं प्रोक्तं मोक्षादिफलसाधनम्॥ १८॥

इन विघ्नेश्वरके स्थानसे ईशानकोणमें श्रीरामका जन्म हुआ था, इसलिये मोक्षादिफलका साधनरूप यह तीर्थ जन्मस्थान (श्रीरामजन्मभूमि)-के नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ १८॥

विघ्नेश्वरात् पूर्वभागे वासिष्ठादुत्तरे तथा।
लोमशात्पश्चिमे भागे जन्मस्थानं ततः स्मृतम्॥ १९॥
यद्दृष्ट्वा च मनुष्यस्य गर्भवासजयो भवेत्।
विना दानेन तपसा विना तीर्थैर्विना मखैः॥ २०॥

विघ्नेश्वर (ककरही बाजार अयोध्या नगरमें स्थित) महादेवसे पूर्व भागमें, वसिष्ठकुण्डसे उत्तर दिशामें तथा लोमशस्थान (रामगुलेला)-से पश्चिममें जन्मस्थान (श्रीरामजन्मभूमि)-की स्थिति मानी गयी है, जिसका दर्शन करनेसे मनुष्यको दान, तपस्या, तीर्थाटन और यज्ञ-यागादिका अनुष्ठान किये बिना ही गर्भवासरूप संकटपर विजय प्राप्त हो जाती है॥ १९-२०॥

नवमीदिवसे प्राप्ते व्रतधारी हि मानवः।
स्नानदानप्रभावेण मुच्यते जन्मबन्धनात्॥ २१॥
कपिलागोसहस्राणि यो ददाति दिने दिने।
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥ २२॥

जो व्रतधारी मनुष्य नवमी तिथिकी प्राप्ति होनेपर अर्थात् रामनवमीके अवसरपर [सरयूमें] स्नान तथा दान [करके श्रीरामजन्मभूमिका दर्शन] करता है, वह उस सत्कृत्यके प्रभावसे जन्मबन्धनसे छूट जाता है। जो मनुष्य नित्यप्रति सहस्र संख्यामें कपिला गौओंका दान करता है, उसे वही फल [भाव-भक्तिपूर्वक] श्रीरामजन्मभूमिके दर्शनसे प्राप्त हो जाता है॥ २१-२२॥

आश्रमे वसतां पुंसां तापसानां च यत्फलम्।
राजसूयसहस्राणि प्रतिवर्षाग्निहोत्रतः।
नियमस्थं नरं दृष्ट्वा जन्मस्थाने विशेषतः॥ २३॥

वानप्रस्थाश्रममें रहते हुए [कठिन तप करनेवाले] तपोनिष्ठ मनुष्योंको जो पुण्य प्राप्त होता है, हजारों राजसूय यज्ञोंको करनेका जो फल है तथा प्रतिवर्ष अग्निहोत्र करनेका जो फल है, वही फल नियममें स्थित मनुष्यको विशेषरूपसे श्रीरामजन्मस्थानके दर्शनसे प्राप्त होता है॥ २३॥

मातापित्रोर्गुरूणां च भक्तिमुद्वहतां सताम्।
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥ २४॥
पितॄणामक्षया तृप्तिर्गयाश्राद्धादिकं फलम्॥ २५॥

माता-पिता तथा गुरुके चरणोंमें भक्ति रखनेवाले सज्जनोंको जिस फलकी प्राप्ति होती है, उस फलकी सम्यक् रूपसे उपलब्धि श्रीरामजन्मभूमिके दर्शनसे हो जाती है। श्रीरामजन्मभूमिका दर्शन करनेवालोंके पितरोंको वह अक्षय तृप्ति सुलभ हो जाती है, जो गयाश्राद्धादिके द्वारा बतायी गयी है॥ २४-२५॥

मन्वन्तरसहस्रैस्तु काशीवासेषु यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥ २६॥
गयाश्राद्धं च ये कृत्वा पुरुषोत्तमदर्शनम्।
कुर्वन्ति तत्फलं प्रोक्तं कलौ दाशरथीं पुरीम्॥ २७॥

मथुरायां कल्पमेकं वसते मानवो यदि।
तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥ २८॥
पुष्करेषु प्रयागेषु माघे वा कार्तिके तथा।
तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥ २९॥
कल्पकोटिसहस्राणि ह्यवन्तीवासतो हि यत्।
तत्फलं समवाप्नोति सरयूदर्शने कृते॥ ३०॥
षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहजम्।
तत्फलं निमिषार्द्धेन कलौ दाशरथीं पुरीम्॥ ३१॥

सहस्रों मन्वन्तरोंतक काशीनिवासका जो फल है, सरयूदर्शनसे वही फललाभ होता है। गयाश्राद्ध करके पुरुषोत्तमदर्शन करनेपर मनुष्यको जो फललाभ होता है, वही फल कलियुगमें दाशरथीपुरी अयोध्याके दर्शनसे प्राप्त हो जाता है, ऐसा आर्षग्रन्थोंका कथन है। एक कल्पपर्यन्त मथुरापुरीमें निवास करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, वही फल सरयूदर्शन करनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। कार्तिकमासमें पुष्करवासका अथवा माघमासमें प्रयागवासका जो पुण्यलाभ होता है, वही पुण्यफल एकमात्र सरयूदर्शनसे प्राप्त हो जाता है। सहस्रकोटिकल्पपर्यन्त अवन्तीनगरीमें निवाससे जो फल कहा गया है, वही फल सरयूजीके दर्शनमात्रसे प्राप्त हो जाता है। साठ हजार वर्षोंतक जाह्नवीजलमें स्नान करनेका जो फल है, वही फल दाशरथी पुरी अयोध्यामें अर्धनिमेषतक निवास करनेसे मिल जाता है॥ २६—३१॥

निमिषं निमिषार्द्धं वा प्राणिनां रामचिन्तनम्।
संसारकारणाज्ञाननाशकं जायते ध्रुवम्॥ ३२॥
यत्र कुत्र स्थितो ह्यस्तु ह्ययोध्यां मनसा स्मरेत्।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पान्तरशतैरपि॥ ३३॥

जलरूपेण ब्रह्मैव सरयूर्मोक्षदा सदा।
नैवाऽत्र कर्मणो भोगो रामरूपो भवेन्नरः॥ ३४॥
पशुपक्षिमृगाश्चैव ये चान्ये पापयोनयः।
तेऽपि मुक्ता दिवं यान्ति श्रीरामवचनं यथा॥ ३५॥

मनुष्य एक निमेष अथवा आधे निमेषमात्र भी श्रीरामचिन्तन करके निश्चित ही संसारके कारणरूप अज्ञानका नाश कर लेते हैं। मानव जहाँ-कहीं भी रहे, यदि वह मन-ही-मन अयोध्याका स्मरण करता है, तो उस स्थितिमें सैकड़ों कल्पोंमें भी उसका पुनर्जन्म नहीं होता। सदा मोक्षदायिनी सरयूजी जलरूपमें ब्रह्म ही हैं, यहाँ कर्मका भोग नहीं है। [इस सरयूके सेवनसे] मानव रामरूप हो जाता है। पशु, पक्षी, मृग तथा अन्य पापयोनिजन्मा प्राणी भी [सरयूके प्रभावके कारण] मुक्त होकर स्वर्गगमन करते हैं—ऐसा श्रीरामका वचन है॥ ३२—३५॥

इत्युक्त्वा विरते तस्मिन् मुनौ कलशजन्मनि।
कृष्णद्वैपायनव्यासः पुनरूचे तपोधनः॥ ३६॥
दुर्लभा सर्वजन्तूनां कथा विस्तरतः क्रमात्।
यात्राक्रमोऽपि च मया श्रुत आगच्छतां नृणाम्॥ ३७॥

मुनिवर अगस्त्यजी जब यह सब कहकर विरत हो गये, तब तपोधन कृष्णद्वैपायन व्यासजीने पुनः कहा कि मैंने आपसे समस्त प्राणियोंके लिये जो दुर्लभ है, ऐसी कथा विस्तारसे सुनी और तीर्थसेवनहेतु यहाँ आनेवाले लोगोंका जो यात्राक्रम है, उसे भी आपसे मैंने सुना है॥ ३६-३७॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि क्षेत्रस्थानं यथाविधि।
यात्राक्रमं मुनिश्रेष्ठ सम्यक् त्वत्तस्तपोधन॥ ३८॥
फलम्ब्रूहि क्रमेणैव विस्तरात् पृच्छतो मम।
यद्यस्ति मयि ते विद्वन् कृपा कारुणिकोत्तम॥ ३९॥

यथा श्रुत्वा क्रमेणैव यात्रां विश्वविदाम्वर।
करोमि त्वत्प्रसादेन तथा कुरु यतव्रत॥ ४०॥

हे मुनिप्रवर! हे तपोधन! इस समय मैं आपसे यथाविधि यात्राक्रमके अनुसार क्षेत्रकी स्थिति और उस यात्राका फल भी विस्तारसे सुनना चाहता हूँ। हे विद्वन्! हे यतव्रत! हे सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ! हे परम कारुणिक! यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा है, तो जैसे आपसे सुनकर मैं स्वयं क्रमानुरूप अयोध्यायात्रा सम्पन्न कर सकूँ, वैसा विधि-विधान मुझे बतलाइये॥ ३८—४०॥

अगस्त्य उवाच

शृणु वक्ष्यामि तत्त्वेन यात्राक्रममथादितः।
अयोध्यां सप्ततीर्थानां यथावदनुपूर्वशः॥ ४१॥
मनोवाक्कायशुद्धेन निर्दोषेणान्तरात्मना।
मानसेषु सुतीर्थेषु स्नात्वा किल जितेन्द्रियः।
यः करोति विधिं सम्यक् स तीर्थफलमश्नुते॥ ४२॥

अगस्त्यजीने कहा—अब आप श्रवण कीजिये, मैं सम्यग् रीतिसे एक-एक करके अयोध्याके [तीर्थोंका वर्णन करूँगा। इस क्रममें सर्वप्रथम] सात [मानस तीर्थोंका निरूपण करता हूँ। इसके अनन्तर अयोध्याके] तीर्थोंके यात्रा-क्रमका प्रारम्भसे समाप्तिपर्यन्त समग्रतया वर्णन करूँगा। मन, वाणी और कर्मको शुद्ध रखकर तथा राग-द्वेषरूप दोषसे अन्तःकरणको शून्य करके जो मनुष्य श्रेष्ठ मानस तीर्थोंमें स्नान कर लेता है और तत्पश्चात् तीर्थयात्राके लिये निर्दिष्ट विधिका भली-भाँति सम्पादन करता है, उस जितेन्द्रिय मनुष्यको ही तीर्थफलकी प्राप्ति होती है॥ ४१-४२॥

व्यास उवाच

मानसान्येव तीर्थानि कथयस्व तपोधन।
येषु स्नातवतां नृणां विशुद्धिर्मनसो भवेत्॥ ४३॥

व्यासदेवने कहा—हे तपोधन! जिन तीर्थोंमें स्नानद्वारा मनुष्य शुद्ध मनवाला हो जाता है, उन मानस तीर्थोंका ही [सर्वप्रथम] आप माहात्म्य कहिये॥ ४३॥

अगस्त्य उवाच

शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघ।
येषु सम्यङ् नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्॥ ४४॥
सत्यतीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थानां सत्यवादिता॥ ४५॥
ज्ञानतीर्थं तपस्तीर्थं कथितं तीर्थसप्तकम्।
सर्वभूतदयातीर्थे विशुद्धिर्मनसो भवेत्॥ ४६॥
न तोयपूतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते।
स स्नातो यस्य वै पुंसः सुविशुद्धं मनोगतम्॥ ४७॥
भौमानामपि तीर्थानां पुण्यत्वे कारणं शृणु॥ ४८॥

अगस्त्यजी बोले—हे अनघ! सुनो! अब मैं उन मानसतीर्थोंका वर्णन करता हूँ, जिनमें भली-भाँति स्नान करके मनुष्य परम गतिको प्राप्त कर लेता है। सत्यतीर्थ, क्षमातीर्थ, इन्द्रियनिग्रह-तीर्थ, सर्वभूतदयातीर्थ, तीर्थोंमें श्रेष्ठ सत्यवादितातीर्थ, ज्ञानतीर्थ और तपस्तीर्थ—ये सात मानस तीर्थ कहे गये हैं। इनमें भी जो सर्वभूतदयातीर्थ है, उसमें स्नान करनेपर मन विशेष शुद्ध हो जाता है। [मनःशुद्धि ही वास्तविक स्नान है,] केवल जलसे शरीरका शुद्ध होना स्नान नहीं कहा जाता। यथार्थमें तो उसीने स्नान किया है, जिस पुरुषका मनोगत अर्थात् चिन्तन भलीभाँति विशुद्ध हो चुका है। पृथिवीके स्थूल तीर्थ किस प्रकार पवित्रताके सम्पादनमें कारण बनते हैं, अब इसका भी श्रवण करो॥ ४४—४८॥

यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मध्योत्तमाः स्मृताः।
तथा पृथिव्यामुद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः॥ ४९॥

तस्माद् भौमेषु तीर्थेषु मानसेषु च सम्वसेत्।
उभयेषु च यः स्नाति स याति परमां गतिम्॥ ५०॥
तस्मात् त्वमपि विप्रेन्द्र विशुद्धेनान्तरात्मना।
यात्रां कुरु प्रयत्नेन यात्रा वै नोदिता मया।
तं तु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र तीर्थयात्राविधिं क्रमात्॥ ५१॥
जायन्ते च जलेष्वेव म्रियन्ते च जलौकसः।
न च गच्छन्ति ते स्वर्गमशुद्धमनसो मलाः॥ ५२॥
विषयेष्वनिशं रागो मनसो मल उच्यते।
तेष्वेव हि न सङ्गम्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्॥ ५३॥

जैसे शरीरका कोई भाग उत्तम तथा कोई भाग मध्यम होता है, उसी प्रकार पृथिवीका भी कोई-कोई भाग [मध्यकोटिक अथवा] पुण्यतम माना गया है। इसलिये पार्थिव तीर्थ और मानस तीर्थ—इन दोनों ही तीर्थोंमें भलीभाँति स्थित होना चाहिये। जो मनुष्य उक्त दोनों प्रकारके तीर्थोंमें स्नान करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है। अतएव हे विप्रेन्द्र! आप भी विशुद्ध मनके साथ प्रयत्नपूर्वक तीर्थयात्रा कीजिये। इस यात्राक्रमका वर्णन मैंने पहले नहीं कहा था, अब इसे क्रमशः कहता हूँ। [तीर्थोंके] जलके निवासी (जलचर प्राणी) जलमें ही जन्म लेते हैं तथा जलमें ही मृत हो जाते हैं, तथापि वे स्वर्गमें नहीं जा पाते; क्योंकि उनका मन मलिन रहता है। निरन्तर विषयोंमें अनुराग ही मनोगत मल है। उन विषयोंके रागसे मनका संयुक्त न होना ही 'नैर्मल्य' कहा गया है अर्थात् जिसका विषयोंके प्रति मनोयोग नहीं है, उसका ही मन निर्मल होता है॥ ४९—५३॥

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानं न शुध्यति।
शतशोऽपि जलैर्धौते सुराभाण्डमपावनम्॥ ५४॥

दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतिस्तथा।
सर्वाण्येतानि तीर्थानि यदि भावेन निर्मलः॥ ५५॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव वसते नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा॥ ५६॥
एतत्ते कथितं विप्र मानसं तीर्थलक्षणम्।
स्नाते यस्मिन् क्रियाः सर्वाः सफलाः स्युः क्रियावताम्॥ ५७॥

जैसे जलमें सुरापात्रको भले ही सौ बार धोया जाय तथापि उसे शुद्ध नहीं कहा जाता, उसी प्रकार जबतक अन्तःकरण दूषित है, व्यक्ति तबतक तीर्थस्नानसे शुद्ध नहीं होता है। दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवा तथा वेद-पुराण आदिका श्रवण—ये सभी तीर्थ ही हैं, यदि भावसे निर्मल व्यक्ति हो। इन्द्रियोंको नियन्त्रित रखनेवाला व्यक्ति जहाँ-कहीं भी निवास करता है, वही स्थान उसके लिये नैमिष, पुष्कर, कुरुक्षेत्रादि परम तीर्थोंके सदृश है। हे विप्र! मैंने इस प्रकार मानसतीर्थका लक्षण कह दिया। जिसमें स्नानसे ही क्रियावान् लोगोंके समस्त क्रियाकलाप सफलीभूत हो जाते हैं॥ ५४—५७॥

प्रातरुत्थाय मतिमान् सङ्गमे स्नानमाचरेत्।
विभुं विष्णुहरिं दृष्ट्वा स्नायाद् वै ब्रह्मकुण्डके॥ ५८॥
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चक्रहरिं विभुम्।
ततो धर्महरिं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५९॥
एकादश्यामेकादश्यामियं यात्रा शुभावहा।
प्रातरुत्थाय मतिमान् स्वर्गद्वारजलाप्लुतः॥ ६०॥
विधाय नित्यजं कर्म अयोध्यां च विलोकयेत्।
सरयूं तु ततो दृष्ट्वा पश्येन्मत्तगजं ततः॥ ६१॥
बन्दीं च शीतलां चैव बटुकं च विलोकयेत्।
तदग्रे सरसि स्नात्वा महाविद्यां विलोकयेत्॥ ६२॥

पिण्डारकं ततो दृष्ट्वा ततो भैरवदर्शनम्।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यामेषा यात्रा फलप्रदा॥ ६३॥
अङ्गारकचतुर्थ्यां तु पूर्वोक्ता देवता अपि।
विघ्नेशं च ततः पश्येत् सर्वकामार्थसिद्धये॥ ६४॥
प्रातरुत्थाय मतिमान् ब्रह्मकुण्डजले प्लुतः।
विष्णुं विष्णुहरिं दृष्ट्वा मनोवाक्कायशुद्धिमान्॥ ६५॥

[अब श्रीअयोध्याजीके भौम तीर्थोंका यात्राक्रम कहा जा रहा है—] मतिमान् मानव प्रातः उठकर घाघरा-सरयू-संगममें स्नान करे, तदुपरान्त विभु विष्णुहरिका दर्शन करके ब्रह्मकुण्डमें स्नान करे। तदनन्तर चक्रतीर्थमें स्नानोपरान्त प्रभु चक्रहरि तथा धर्महरिका दर्शन करे। ऐसा करनेवाला समस्त कलुष-समूहसे मुक्त हो जाता है। प्रत्येक एकादशीके दिन यह शुभ यात्रा होती है। बुद्धिमान् मानव प्रभातकालमें शय्यात्यागके अनन्तर स्वर्गद्वारमें स्नान तथा नित्यकर्म सम्पन्न करके अयोध्यापुरीका अवलोकन करे। तदुपरान्त सरयूजी एवं मत्तगजेन्द्रका दर्शन करे। तत्पश्चात् बन्दीदेवी, शीतलादेवी तथा बटुकजीका अवलोकन करे। इन बटुकदेवके समक्ष एक सरोवर है। इसमें स्नानके उपरान्त महाविद्यादेवी, पिण्डारक वीर तथा भैरवजीका दर्शन करे। अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथिको यह यात्रा विशेष फलप्रद होती है। अंगारक चतुर्थीके दिन पुनः पूर्वोक्त देवगणका दर्शन करे। तत्पश्चात् सर्वाभीष्टसिद्धिके लिये विघ्नेश्वरजीका दर्शन करे। बुद्धिमान् मानव प्रातःकाल उठकर ब्रह्मकुण्डके जलमें स्नानोपरान्त विभु श्रीविष्णुहरिका दर्शन करके मन-वाणी तथा शरीरकी शुद्धि सम्पन्न करे॥ ५८—६५॥

मन्त्रेश्वरं ततो दृष्ट्वा महाविद्यां विलोकयेत्।
अयोध्यां च ततो दृष्ट्वा सर्वकामार्थसिद्धये॥ ६६॥

स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा सचैलो विजितेन्द्रियः।
नानाविधानि पापानि बहुजन्मकृतानि च।
सचैलस्नानतो यान्ति तस्मात् सचैलमाचरेत्॥ ६७॥
एषा वै गदिता यात्रा सर्वपापहरा शुभा॥ ६८॥

इसके पश्चात् मन्त्रेश्वर तथा महाविद्याका दर्शन करे। सर्वकामना-सिद्धिहेतु अयोध्याजीका दर्शन करे। इसके बाद मन तथा सभी इन्द्रियोंको भलीभाँति अनुशासितकर, स्वर्गद्वारमें वस्त्रसहित स्नान करे, [इससे वह अनेकजन्मार्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है।] वस्त्रको शरीरमें धारण किये हुए ही स्नान करनेसे बहुत-से जन्मोंमें किये गये पापोंका शमन होता है, अतः सचैल ही स्नान करना चाहिये। यही सर्वपापहारिणी शुभ अयोध्यायात्रा कही गयी है॥ ६६—६८॥

य एवं कुरुते यात्रां नित्यं शुभफलप्रदाम्।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ ६९॥
तस्मात् त्वमपि विप्रेन्द्र अयोध्यां व्रज मा चिरम्।
तत्र गत्वा क्रमेणैव यात्रां कुरु यतेन्द्रियः॥ ७०॥
अयोध्या परमं स्थानं अयोध्या परमं महत्।
अयोध्यायाः समा काचित् पुरी नैव प्रदृश्यते॥ ७१॥
अयोध्या परमं स्थानं विष्णुचक्रे प्रतिष्ठितम्॥ ७२॥
इत्येतत् कथितं विप्र मया पृष्टं हि यत्त्वया।
समाश्रय मुने तां त्वमनुजानीहि मामतः॥ ७३॥

जो मानव इस प्रकारसे शुभफलप्रदा यह यात्रा नित्य करता है, उसे सैकड़ों कोटिकल्पोंतक संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता। हे विप्रेन्द्र! अतः आप भी शीघ्र ही अयोध्या जाकर तथा संयतेन्द्रिय होकर इस क्रमसे यात्रानुष्ठान करें। अयोध्या उत्तम

स्थान है। यह सर्वतीर्थोत्तम है। अयोध्याके समान कहीं भी कोई पुरी दृष्टिगत होती नहीं। अयोध्या परम स्थान है, जो श्रीविष्णुचक्रपर स्थित है। हे विप्र! जैसा आपने प्रश्न किया, उसी प्रकारसे मैंने आपसे यह वर्णन किया है। हे मुनिप्रवर! आप अभीसे अयोध्याका भलीभाँति आश्रय ग्रहण कीजिये और अब मुझे विदा दीजिये॥ ६९—७३॥

सूत उवाच

इत्येतदुक्त्वा विरते मुनौ कलशजन्मनि।
उवाच मधुरं वाक्यं व्यासः स तपसां निधिः॥ ७४॥

सूतजीने कहा—जब कुम्भज अगस्त्यजी यह कहकर मौन हो गये, तब तपोनिधि श्रीव्यासजी मधुर वाणीसे कहने लगे॥ ७४॥

व्यास उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतकृत्योऽस्म्यहं मुने।
सत्यं शौचं श्रुतं विप्रं सुशीलं च क्षमार्जवम्।
सर्वं च निष्फलं तस्य अयोध्यां नागतो यदि॥ ७५॥
यस्मिन् मयि प्रसन्नेन त्वयोक्तो धर्मनिर्णयः।
इदानीमपि गच्छामि ह्ययोध्यां निर्मलां पुरीम्।
त्वमपि व्रज विप्रेन्द्र स्वमाश्रमपदं निजम्॥ ७६॥

व्यासजीने कहा—हे मुनिवर! मैं धन्य हूँ, अनुगृहीत हूँ तथा कृतकृत्य हूँ, ऐसा अनुभव कर रहा हूँ। मैंने समझ लिया कि जो मनुष्य अयोध्यागमन नहीं करता, उसका शौच, श्रवण, विप्रत्व, सुशीलता, क्षमा तथा सरलता ये—सभी गुण निष्फल ही हैं। हमारे ऊपर कृपाकर प्रसन्नतापूर्वक आपने धर्मनिर्णयका तत्त्वतः कथन किया है, उसीके अनुसार मैं अभी निर्मलपुरी श्रीअयोध्याको जा रहा हूँ। हे द्विजोत्तम! अब आप भी अपने आश्रमको पधारें॥ ७५-७६॥

सूत उवाच

इत्येवमुक्त्वा क्रमशो यात्राविधिमनुत्तमम्।
जगाम तपसां राशिरगस्त्यः कुम्भसम्भवः॥ ७७॥
स्वमाश्रमपदं धीरो विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
व्यासोऽपि महसां राशिर्जगाम विजितेन्द्रियः॥ ७८॥
अयोध्यामागतो विप्रः सर्वकामार्थसिद्धये।
आगत्यैतद्विधानेन कृत्वा यात्रां यथाक्रमम्॥ ७९॥
दृष्ट्वा महाश्चर्यकरं कारणं तीर्थमुत्तमम्।
आनन्दतुन्दिलस्तत्र सम्यगाचम्य बुद्धिमान्॥ ८०॥
ततो जगाम विप्रेन्द्रः स्वमाश्रमपदं मुनिः।
व्यासेन कथितं मह्यं माहात्म्यं क्रमशस्तदा॥ ८१॥
मया श्रुत्वा च माहात्म्यं यात्रां कृत्वा विधानतः।
कुरुक्षेत्रे समागत्य भवदग्रे निरूपितम्॥ ८२॥
इदं माहात्म्यमतुलं यः पठेत् प्रयतो नरः।
श्रद्धया यश्च शृणुयात् स याति परमां गतिम्॥ ८३॥

श्रीसूतजीने कहा—तपोराशि कुम्भज अगस्त्यजी क्रमशः [श्रीव्यासजीसे] इस प्रकार अयोध्याकी अत्युत्तम यात्राविधिका वर्णन करके वहाँसे अपने आश्रमको चले गये। उस समय विस्मयके कारण धैर्यशाली व्यासजीके नेत्रयुगल उत्फुल्ल हो रहे थे। अगस्त्यजीके जानेके बाद तेजपुंज इन्द्रियविजयी द्विजप्रवर श्रीव्यासजी भी सर्वाभीष्टप्राप्तिहेतु अयोध्या आ पहुँचे। बुद्धिमान् श्रीव्यासजीने अयोध्यामें पहुँच करके सम्यक् आचमन किया और सविधि अयोध्यापुरीकी यात्रा की। परमाश्चर्यमय तीर्थोत्तम अयोध्याके दर्शनसे वे आनन्दविह्वल हो उठे। यात्रा (परिक्रमा) सम्पन्न करनेके अनन्तर महर्षि व्यासजी अपने आश्रममें आये तथा उन्होंने क्रमशः इस अयोध्यामाहात्म्यका वर्णन किया। मैंने

भी उनसे यह प्रसंग सुनकर यथाविधि अयोध्यायात्रा (परिक्रमा) सम्पन्न की। अब कुरुक्षेत्रमें आकर आपके समक्ष पुरी-माहात्म्यको कह रहा हूँ। जो मनुष्य एकाग्र चित्तसे इस अतुलनीय अयोध्या-माहात्म्यका पाठ करता है और जो श्रद्धाभावसे इसे सुनता है, उसे परमगतिकी प्राप्ति होती है॥ ७७—८३ ॥

तस्मादेतत् प्रयत्नेन श्रोतव्यं च जनैः सदा।
द्विजपूजा विष्णुपूजा विधातव्या प्रयत्नतः॥ ८४॥
दातव्यं च सुवर्णादि यथाशक्त्या द्विजन्मने।

इसलिये लोगोंको चाहिये कि वे प्रयत्नपूर्वक इसका सर्वदा श्रवण करें, [अयोध्याकी यात्राके प्रसंगमें अथवा इस माहात्म्यका श्रवण करनेके अनन्तर] उन्हें श्रीहरि तथा ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये और यथाशक्ति ब्राह्मणको सुवर्ण आदिका दान करना चाहिये॥ ८४$^{१}/_{२}$ ॥

पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात्॥ ८५॥
अतिविपुलविधानैर्वर्णितं धर्ममाद्यं
कलयति परभक्त्या क्षेत्रमाहात्म्यमेतत्।
य इह मनुजवर्यः श्रीसनाथः स सम्यग्
व्रजति हरिनिवासं सर्वभोगाँश्च भुक्त्वा॥ ८६॥
यः पाठकस्यापि कदाचिदेव
ददाति वित्तं च यथात्मशक्त्या।
पात्राणि वस्त्राणि मनोहराणि
रौप्यं सुवर्णं च गवीः स मुच्येत्॥ ८७॥

इस अयोध्यामाहात्म्यका श्रवण करनेसे पुत्रार्थीको अनेक पुत्रोंकी तथा धर्माभिलाषीको धर्मलाभ होता है। मैंने अत्यन्त विस्तारसे अयोध्यामाहात्म्यकथारूप पूजनीय धर्मका वर्णन किया। जो मनुष्य परम भक्तिके साथ इस क्षेत्रमाहात्म्यको सुनता है, वह

श्रेष्ठ मनुष्य समस्त सम्पत्तियोंका अधिपति होता है। वह जीवनमें नाना भोगोंका उपभोग करके अन्तमें श्रीहरिलोकमें गमन करता है। जो वाचकको यथाशक्ति धन-सम्पत्ति, मनोहर पात्र, वस्त्र, चाँदी, स्वर्ण तथा गौका दान करता है, उसे [आवागमनसे] मुक्ति प्राप्त हो जाती है॥ ८५—८७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डेऽयोध्यामाहात्म्येऽगस्त्यव्याससम्वादेऽ-योध्या-यात्राविधिक्रमवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डके अन्तर्गत व्यास-अगस्त्य-संवादात्मक अयोध्यामाहात्म्यका 'अयोध्यायात्राविधिक्रमवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोक्तं श्रीअयोध्यामाहात्म्यं सम्पूर्णम्॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत अयोध्यामाहात्म्य सम्पूर्ण हुआ॥

॥ अयोध्या-माहात्म्य सम्पूर्ण॥

परिशिष्ट—

अयोध्याकी ८४ कोसी परिक्रमाके तीर्थस्थल

[अयोध्याकी शास्त्रीय परिधिमें लगे १४८ प्राचीन शिलालेख]*

एक बार अयोध्याके 'बड़ा स्थान' में १८९८ ई० के कार्तिकमें कल्पवासियोंके लिये 'अयोध्यामाहात्म्य' कथाका आयोजन हुआ। स्थानाध्यक्ष श्रीबिन्दु-गाद्याचार्य महन्त श्रीराममनोहर प्रसादाचार्यजी महाराजसे श्रोतासमाजने आग्रह किया कि अयोध्यामें जिन-जिन पौराणिक देव-ऋषिस्थानोंका उल्लेख है, यदि शिलालेखोंद्वारा वे चिह्नित करा दिये जाते तो तीर्थयात्रियोंको एक मार्गदर्शन मिल जाता! इसी आग्रहसे उन महापुरुषने सर्वप्रथम एक शिलालेख श्रीरामजन्मभूमिपर लगवाया। इसपर मुसलमानोंने आपत्ति की। विवाद फैजाबाद न्यायालयतक गया। यह घटना दिनांक ७।४।१८९८ की है। लगातार तीन वर्षोंतक मुकदमा चला। विद्वान् मजिस्ट्रेटने अपने आदेशमें यह भी निर्णय दिया था—*'निःसन्देह अयोध्यामें ही श्रीरामजन्मभूमि है (प्रथम शिलालेख लगा है) और अयोध्यामें मुसलमानोंका कोई ऐतिहासिक स्थल नहीं है।'*

निर्णयके अनुसार ही सन् १९०२ ई० में तत्कालीन I.C.S. श्रीआर. सी. होबर्ट महोदय (जिलाधिकारी फैजाबाद)-ने इस नगरीकी पौराणिकताको देखते हुए एक समितिका गठन किया था, जिसका नाम था—**'एडवर्ड अयोध्या तीर्थ विवेचनी सभा'।** उसी निर्णयके अनुसार सन् १९०२ में विश्वकी आदिम राजधानी श्रीअयोध्याजीकी ८४ कोसी परिक्रमाके अन्तर्गत पौराणिक महत्त्वके अनेक कुण्डों—तीर्थस्थलों, भवनों, मन्दिरों कूपों और टीलोंपर तत्कालीन ब्रिटिश शासनद्वारा उक्त महन्तजीके निर्देशनमें रुद्रयामलोक्त अयोध्या-माहात्म्यके आधारपर शिलालेख लगवाये गये थे। इनकी संख्या कुल १४८ थी। इसके अतिरिक्त तीन तीर्थस्थल और शेष रह गये थे। इन सभीकी नामावली क्रमशः इस प्रकार है—

---

* लेखक आचार्य श्रीरामदेवदासजी शास्त्रीके २०१४ ई० में प्रकाशित शोध-ग्रन्थ 'भारतीय संस्कृतिमें आर्यावर्तकी अयोध्या'के आधारपर यहाँ मात्र शिलालेख-स्थापनाकी पृष्ठभूमि एवं उनकी सांकेतिक नामावली ही दी गयी है। विस्तार-भयसे विस्तृत विवरण नहीं दिये जा रहे हैं। इन तीर्थस्थलोंमेंसे अनेक सामाजिक उदासीनताके कारण उपेक्षित हैं तथा कई स्थलोंपर स्वार्थी तत्त्वोंने अतिक्रमण कर रखा है। इन कारणोंसे स्थिति अत्यन्त चिन्तनीय है।

(क) श्रीरामकोटके अन्तर्गत ४३ शिलालेख—

१. श्रीरामजन्मभूमि
२. श्रीलोमशमुनि
३. श्रीसीताकूप
४. श्रीसुमित्राभवन
५. श्रीसीतापाकस्थान (सीतारसोई)
६. श्रीकैकेयीभवन (श्रीभरतजन्मभूमि)
७. श्रीरत्नमण्डप
८. श्रीकनकभवन
९. श्रीरामदुर्ग (रामकोट)
१०. श्रीहनुमानजी
११. श्रीरामसभा
१२. दंतधावनकुण्ड
१३. श्रीसुग्रीवजी
१४. श्रीक्षीरसागर
१५. श्रीक्षीरेश्वरनाथ
१६. श्रीरुक्मिणीकुण्ड
१७. श्रीअंगदजी (अंगदटीला)
१८. श्रीनलजी
१९. श्रीनीलजी
२०. श्रीसुषेणजी
२१. श्रीनवरत्न (कुबेरटीला)
२२. श्रीवसिष्ठकुण्ड
२३. श्रीवामदेवजी
२४. श्रीसागरकुण्ड
२५. श्रीगवाक्षजी
२६. श्रीदधिमुखजी
२७. श्रीदुर्गेश्वरजी
२८. श्रीशतबलिजी
२९. श्रीगंधमादनजी
३०. श्रीऋषभजी
३१. श्रीशरभजी
३२. श्रीपनसजी
३३. श्रीविभीषणजी
३४. श्रीसरमाजी
३५. श्रीविघ्नेशजी
३६. श्रीविभीषणकुण्ड
३७. श्रीपिण्डारकजी
३८. श्रीमत्तगजेन्द्र
३९. श्रीद्विविदजी
४०. सप्तसागर
४१. श्रीमैन्दजी
४२. श्रीजाम्बवान्‌जी
४३. श्रीकेसरीजी

(ख) पंचकोसी परिक्रमाके अन्तर्गत ४० शिलालेख—

४४. प्रमोदवन
४५. श्रीरामघाट
४६. श्रीसुग्रीवकुण्ड
४७. श्रीहनुमत्-कुण्ड
४८. श्रीस्वर्णखनिकुण्ड
४९. श्रीयज्ञवेदी
५०. सरयूतिलोदकीसंगम
५१. श्रीअशोकवाटिका
५२. श्रीसीताकुण्ड
५३. श्रीअग्निकुण्ड
५४. श्रीविद्याकुण्ड
५५. श्रीविद्यादेवी
५६. सिद्धपीठ
५७. श्रीखर्जूकुण्ड
५८. श्रीमणिपर्वत
५९. श्रीगणेशकुण्ड
६०. श्रीदशरथकुण्ड
६१. श्रीकौसल्याकुण्ड
६२. श्रीसुमित्राकुण्ड
६३. श्रीभरतकुण्ड
६४. श्रीदुर्भरसर (मोहबरा)
६५. श्रीमहाभरसरजी
६६. श्रीबृहस्पतिकुण्ड
६७. श्रीधनयक्षकुण्ड (धनैजा)
६८. श्रीउर्वशीकुण्ड
६९. श्रीचुटकी देवी
७०. श्रीविष्णुहरि
७१. श्रीचक्रतीर्थ
७२. श्रीब्रह्मकुण्ड एवं ब्रह्मघाट
७३. श्रीसुमित्राघाट
७४. श्रीकौसल्याघाट
७५. श्रीकैकेयीघाट
७६. ऋणमोचनघाट
७७. पापमोचनघाट (गोलाघाट)
७८. सहस्रधाराघाट (लक्ष्मणघाट)

७९. श्रीस्वर्गद्वार
८०. श्रीचन्द्रहरि
८१. श्रीनागेश्वरनाथ
८२. श्रीधर्महरि
८३. श्रीजानकीघाट

(ग) चौरासीकोसी परिक्रमाके अन्तर्गत अन्य ६५ शिलालेख—

८४. श्रीवैतरणी
८५. श्रीसूर्यकुण्ड
८६. श्रीनरकुण्ड
८७. श्रीनारायणकुण्ड (कोहुराताल)
८८. श्रीरतिकुण्ड
८९. श्रीकुसुमायुधकुण्ड
९०. श्रीदुर्गाकुण्ड
९१. श्रीगिरिजाकुण्ड
९२. श्रीमंत्रेश्वरजी
९३. श्री(लक्ष्मी)सरोवर
९४. श्रीशीतला देवी (बड़ी देवकाली)
९५. श्रीनिर्मलीकुण्ड
९६. श्रीगोप्रतारघाट
९७. श्रीगुप्तहरि
९८. श्रीचक्रहरि
९९. श्रीयमस्थल
१००. श्रीविघ्नेश्वर
१०१. श्रीयोगिनीकुण्ड
१०२. श्रीशक्रकुण्ड
१०३. श्रीबन्दीदेवी (जालपा देवी)
१०४. श्रीमनोरमा
१०५. मखस्थान
१०६. श्रीरामरेखातीर्थ
१०७. श्रीशृंगी ऋषि
१०८. श्रीवाल्मीकिजी
१०९. श्रीबिल्वहरि
११०. श्रीत्रिपुरारिजी
१११. श्रीपुण्यहरि
११२. श्रीहनुमत्कुण्ड
११३. श्रीविभीषणकुण्ड
११४. श्रीसुग्रीवकुण्ड
११५. श्रीरामकुण्ड
११६. श्रीसीताकुण्ड
११७. श्रीदुग्धेश्वर
११८. श्रीभैरवकुण्ड
११९. तमसा नदी
१२०. प्रमोदवन, तमसोत्पत्तिस्थान, श्रीमाण्डव्याश्रम
१२१. श्रवणकुमारआश्रम
१२२. श्रीपराशरजन्मभूमि
१२३.क–च्यवनाश्रम–१
ख–च्यवनाश्रम–२
१२४. श्रीगौतमाश्रम
१२५. श्रीमाण्डव्याश्रम
१२६. श्रीपिशाचमोचन
१२७. श्रीमानसतीर्थ
१२८. श्रीगयाकुण्ड
१२९. श्रीभरतकुण्ड
१३०. श्रीनन्दिग्राम
१३१. श्रीकालिका देवी
१३२. श्रीजटाकुण्ड
१३३. श्रीशत्रुघ्नकुण्ड
१३४. श्रीअजितकुण्ड
१३५. श्रीआस्तीकजी
१३६. श्रीरमणकाश्रम, तिलोदकीउद्गम, विद्याकुण्ड
१३७. श्रीघृताचीकुण्ड
१३८. श्रीसरयू–घाघरा–संगम तीर्थ
१३९. श्रीवराहक्षेत्र
१४०. जम्बूतीर्थ
१४१. श्रीअगस्त्यजी
१४२. श्रीतुंदिलजी
१४३. श्रीपराशर आश्रम
१४४. गोकुलातीर्थ श्रीकुण्ड,
१४५. श्रीलक्ष्मी (श्रीपीठ)
१४६. श्रीस्वप्नेश्वरी
१४७. कुटिला–वरस्रोत संगम
१४८. श्रीसरयू–कुटिला संगम

विशेष—तीन शिला-रहित तीर्थस्थल हैं—
१. अष्टावक्र–रामघाट (ग्राम अमदही)
२. जमदग्नि–आश्रम (ग्राम जमथा)
३. शौनकमुनि–आश्रम